ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

अनुक्रम

1. अहिंसा..2
2. अपरिग्रह..22
3. अचौर्य..39
4. अकाम..55
5. अप्रमाद..72
6. अहिंसा (प्रश्नोत्तर)..89
7. ब्रह्मचर्य (प्रश्नोत्तर)..106
8. अपरिग्रह (प्रश्नोत्तर)..127
9. अचौर्य (प्रश्नोत्तर)..145 10...संन्यास (प्रश्नोत्तर)
.... 163
11..अकाम (प्रश्नोत्तर)
.... 184
12..तंत्र (प्रश्नोत्तर)
.... 205
13...अप्रमाद (प्रश्नोत्तर)
.... 224

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया पहला प्रवचन

अहिंसा

मेंरे प्रिय आत्मन्,
आज मैं अहिंसा पर आपसे बात करूंगा। पंच महाव्रत नकारात्मक हैं, अहिंसा भी। असल में साधना नकारात्मक ही हो सकती है, निगेटिव ही हो सकती है। उपलब्धि पॉजिटिव होगी, विधायक होगी। जो मिलेगा वह वस्तुतः होगा और जो हमें खोना है, वही खोना है जो वस्तुतः नहीं है।
अंधकार खोना है, प्रकाश पाना है। असत्य खोना है, सत्य पाना है। इससे
एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि नकारात्मक शब्द इस बात की खबर देते हैं कि अहिंसा हमारा स्वभाव है, उसे पाया नहीं जा सकता, वह है ही। हिंसा पायी गयी है, वह हमारा स्वभाव नहीं है। वह अर्जित है, एचीव्ड। हिंसक बनने के लिए हमें कुछ करना पड़ा है। हिंसा हमारी उपलब्धि है। हमने उसे खोजा है, हमने उसे निर्मित किया है। अहिंसा हमारी उपलब्धि नहीं हो सकती। सिर्फ हिंसा न हो जाये तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा होगी।
इसलिए साधना नकारात्मक है। वह जो हमने पा लिया है और जो पाने योग्य नहीं है, उसे खो देना है। जैसे कोई आदमी स्वभाव से हिंसक नहीं है, हो नहीं सकता। क्योंकि कोई भी दुख को चाह नहीं सकता और हिंसा सिवाय दुख के कहीं भी नहीं ले जाती। हिंसा एक्सीडेंट है, सांयोगिक है। वह हमारे जीवन की धारा नहीं है। इसलिए जो हिंसक है वह भी चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक चौबीस घंटे अहिंसक हो सकता है। हिंसक चौबीस घंटे हिंसक नहीं हो सकता। उसे भी किसी वर्तुल के भीतर अहिंसक ही होना पड़ता है। असल में, अगर वह हिंसा भी करता है तो किन्हीं के साथ अहिंसक हो सके, इसीलिए करता है। कोई आदमी चौबीस घंटे चोर नहीं हो सकता। और अगर कोई चोरी भी करता है तो इसीलिए कि कुछ समय वह बिना चोरी के हो सके। चोर का लक्ष्य भी अचोरी है, और हिंसक का लक्ष्य भी अहिंसा है। और इसीलिए ये सारे शब्द नकारात्मक हैं।
धर्म की भाषा में दो शब्द विधायक हैं, बाकी सब शब्द नकारात्मक हैं। उन दोनों को मैंने चर्चा से छोड़ दिया है। एक "सत्य" शब्द विधायक है, पॉजिटिव है; और एक "ब्रह्मचर्य" शब्द विधायक है, पॉजिटिव है।
यह भी प्राथमिक रूप से ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जो पांच शब्द मैंने चुने हैं, जिन्हें मैं पंच महाव्रत कह रहा हूं, वे नकारात्मक हैं। जब वे पांचों छूट जायेंगे तो जो भीतर उपलब्ध होगा वह होगा सत्य, और जो बाहर उपलब्ध होगा वह होगा ब्रह्मचर्य।
सत्य आत्मा बन जायेगी इन पांच के छूट जाने पर और ब्रह्मचर्य आचरण बन जायेगा इन पांच के छूटने पर। वे दो विधायक शब्द हैं। सत्य का अर्थ है, जिसे हम भीतर जानेंगे। और ब्रह्मचर्य का अर्थ है, जिसे हम बाहर जीयेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है--ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ईश्वर जैसा आचरण उसी का हो सकता है, जो ईश्वर जैसा हो जाये। सत्य का अर्थ है--ईश्वर जैसे हो जाना। सत्य का अर्थ है--ब्रह्म। और जो ईश्वर जैसा हो गया उसकी जो चर्या होगी, वह ब्रह्मचर्य होगी। वह ब्रह्म जैसा आचरण होगा। ये दो शब्द धर्म की भाषा में विधायक हैं, पॉजिटिव हैं; बाकी पूरे धर्म की भाषा नकारात्मक है। इन पांच दिनों में इन पांच नकार पर विचार करना है। आज पहले नकार पर--अहिंसा... ।
अगर ठीक से समझें तो अहिंसा पर कोई विचार नहीं हो सकता है, सिर्फ हिंसा पर विचार हो सकता है और हिंसा के न होने पर विचार हो सकता है। ध्यान रहे अहिंसा का मतलब सिर्फ इतना ही है--हिंसा का न होना, हिंसा की एबसेन्स, अनुपस्थिति--हिंसा का अभाव।
इसे ऐसा समझें। अगर किसी चिकित्सक को पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? कैसे आप डेफिनीशन करते हैं स्वास्थ्य की? तो दुनिया में स्वास्थ्य के बहुत से विज्ञान विकसित हुए हैं, लेकिन कोई भी स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं करता। अगर आप पूछें कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? तो चिकित्सक कहेगाः जहां बीमारी न हो। लेकिन यह बीमारी की बात हुई, यह

स्वास्थ्य की बात न हुई। यह बीमारी का न होना हुआ। बीमारी की परिभाषा हो सकती है, डेफिनीशन हो सकती है कि बीमारी क्या है? लेकिन स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती--स्वास्थ्य क्या है? इतना ही ज्यादा से ज्यादा हम कह सकते हैं कि जब कोई बीमार नहीं है तो वह स्वस्थ है।
धर्म परम स्वास्थ्य है! इसलिए धर्म की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। सब परिभाषा अधर्म की है। इन पांच दिनों में हम धर्म पर विचार नहीं करेंगे। अधर्म पर विचार करेंगे।
विचार से, बोध से, अधर्म छूट जाये तो जो निर्विचार में शेष रह जाता है, उसी का नाम धर्म है। इसलिए जहां-जहां धर्म पर चर्चा होती है, वहां व्यर्थ चर्चा होती है! चर्चा सिर्फ अधर्म की ही हो सकती है। चर्चा धर्म की हो नहीं सकती। चर्चा बीमारी की ही हो सकती है, चर्चा स्वास्थ्य की नहीं हो सकती। स्वास्थ्य को जाना जा सकता है, स्वास्थ्य को जीया जा सकता है, स्वस्थ हुआ जा सकता है, चर्चा नहीं हो सकती। धर्म को जाना जा सकता है, जीया जा सकता है, धर्म में हुआ जा सकता है, धर्म की चर्चा नहीं हो सकती। इसलिए सब धर्मशास्त्र वस्तुतः अधर्म की चर्चा करते हैं। धर्म की कोई चर्चा नहीं करता।
पहले अधर्म की चर्चा हम करें--हिंसा। और जो-जो हिंसक हैं, उनके लिए यह पहला व्रत है। यह समझने जैसा मामला है कि आज हम जो विचार करेंगे वह यह मान कर करेंगे कि हम हिंसक हैं। इसके अतिरिक्त उस चर्चा का कोई अर्थ नहीं है। ऐसे भी हम हिंसक हैं। हमारे हिंसक होने में भेद हो सकते हैं। और हिंसा की इतनी पर्तें हैं, और इतनी सूक्ष्मताएं हैं, कि कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम अहिंसा कह रहे हैं और समझ रहे हैं, वह हिंसा का बहुत सूक्ष्म रूप हो। और ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम हिंसा कह रहे हैं, वह भी अहिंसा का बहुत स्थूल रूप हो। जिंदगी बहुत जटिल है।
उदाहरण के लिए, गांधी की अहिंसा को मैं हिंसा का सूक्ष्म रूप कहता हूं
और कृष्ण की हिंसा को अहिंसा का स्थूल रूप कहता हूं। उसकी हम चर्चा करेंगे तो ख्याल में आ सकेगा। हिंसक को ही विचार करना जरूरी है अहिंसा पर। इसलिए यह भी प्रासंगिक है समझ लेना, कि दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया।
जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। वह जमात हिंसकों की थी। उनमें
एक भी ब्राह्मण नहीं था। उनमें एक भी वैश्य नहीं था। बुद्ध क्षत्रिय थे। दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया है। दुनिया में अहिंसा का ख्याल, जहां हिंसा घनी थी, सघन थी, वहां पैदा हुआ है।
असल में हिंसकों को ही सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा है अहिंसा के संबंध में। जो चौबीस घंटे हिंसा में रत थे, उन्हीं को यह दिखाई पड़ा है कि यह हमारी बहुत अंतर-आत्मा नहीं है। असल में हाथ में तलवार हो, क्षत्रिय का मन हो, तो बहुत देर न लगेगी यह देखने में कि हिंसा हमारी पीड़ा है, दुख है। वह हमारा जीवन नहीं है। वह हमारा आनंद नहीं है।
आज का व्रत हिंसकों के लिए है। यद्यपि जो अपने को अहिंसक समझते हैं वे
आज के व्रत पर विचार करते हुए मिलेंगे! मैं तो मान कर चलूंगा कि हम हिंसक इकट्ठे हुए हैं। और जब मैं हिंसा के बहुत से रूपों की आपसे बात करूंगा तो आप समझ पायेंगे कि आप किस रूप के हिंसक हैं। और अहिंसक होने की पहली शर्त है, अपनी हिंसा को उसकी ठीक-ठीक जगह पर पहचान लेना। क्योंकि जो व्यक्ति हिंसा को ठीक से पहचान ले, वह हिंसक नहीं रह सकता है। हिंसक रहने की तरकीब, टेकनीक एक ही है कि हम अपनी हिंसा को अहिंसा समझे जायें। इसलिए असत्य, सत्य के वस्त्र पहन लेता है। और हिंसा, अहिंसा के वस्त्र पहन लेती है। वह धोखा पैदा होता है।
सुनी है मैंने एक कथा, सीरियन कथा है।
सौंदर्य और कुरूप की देवियों को जब परमात्मा ने बनाया और वे पृथ्वी
पर उतरीं, तो धूल-धवांस से भर गए होंगे उनके वस्त्र, तो एक झील के किनारे वस्त्र रख कर वे स्नान करने झील में गईं। स्वभावतः सौंदर्य की देवी को पता भी न था कि उसके वस्त्र बदले जा सकते हैं। असल में सौंदर्य को अपने वस्त्रों का पता ही नहीं होता है। सौंदर्य को अपनी देह का भी पता नहीं होता है। सिर्फ कुरूपता को देह का बोध होता है, सिर्फ कुरूपता को वस्त्रों

की चिंता होती है। क्योंकि कुरूपता वस्त्रों और देह की व्यवस्था से अपने को छिपाने का उपाय करती है। सौंदर्य की देवी झील में दूर स्नान करते निकल गई, और तभी कुरूपता की देवी को मौका मिला; वह बाहर आई, उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और चलती बनी। जब सौंदर्य की देवी बाहर आई तो बहुत हैरान हुई। उसके वस्त्र तो नहीं थे। वह नग्न खड़ी थी। गांव के लोग जागने शुरू हो गये और राह चलने लगी थी। और कुरूपता की देवी उसके वस्त्र ले कर भाग गई थी तो मजबूरी में उसे कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े। और कथा कहती है कि तब से वह कुरूपता की देवी का पीछा कर रही है और खोज रही है; लेकिन अब तक मिलना नहीं हो पाया। कुरूपता अब भी सौंदर्य के वस्त्र पहने हुए है, और सौंदर्य की देवी अभी भी मजबूरी में कुरूपता के वस्त्रों को ओढ़े हुए है।
असल में असत्य को जब भी खड़ा होना हो तो उसे सत्य का चेहरा उधार लेना पड़ता है! असत्य को भी खड़ा होना हो तो उसे सत्य का ढंग अंगीकार करना पड़ता है। हिंसा को भी खड़े होने के लिए अहिंसा बनना पड़ता है। इसलिए अहिंसा की दिशा में जो पहली बात जरूरी है, वह यह है कि हिंसा के चेहरे पहचान लेने जरूरी हैं। खास कर उसके अहिंसक चेहरे, नान-वायलेंट फेसे.ज पहचान लेना बहुत जरूरी है। हिंसा, सीधा धोखा किसी को भी नहीं दे सकती। दुनिया में कोई भी पाप, सीधा धोखा देने में असमर्थ है। पाप को भी पुण्य की आड़ में ही धोखा देना पड़ता है। यह पुण्य के गुण-गौरव की कथा है। इससे पता चलता है कि पाप भी अगर जीतता है तो पुण्य का चेहरा लगा कर ही जीतता है। जीतता सदा पुण्य ही है! चाहे पाप के ऊपर चेहरा बन कर जीतता हो और चाहे खुद की अंतरात्मा बन कर जीतता हो। पाप कभी जीतता नहीं। पाप अपने में हारा हुआ है। हिंसा जीत नहीं सकती। लेकिन दुनिया से हिंसा मिटती नहीं, क्योंकि हमने हिंसा के बहुत से अहिंसक चेहरे खोज निकाले हैं। तो पहले हम हिंसा के चेहरों को समझने की कोशिश करें।
हिंसा का सबसे पहला रूप, सबसे पहली डायमेंशन, उसका जो पहला आयाम है, वह बहुत गहरा है, वहीं से पकड़ें। सबसे पहली हिंसा, दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती हैः टू कन्सीव द अदर, एज द अदर। जैसे ही मैं कहता हूं आप दूसरे हैं, मैं आपके प्रति हिंसक हो गया। असल में दूसरे के प्रति अहिंसक होना असंभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, ऐसा स्वभाव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिंसक हो सकते हैं, हम दूसरे के प्रति अहिंसक हो ही नहीं सकते। होने की बात ही नहीं उठती, क्योंकि दूसरे को दूसरा स्वीकार कर लेने में ही हिंसा शुरू हो गई। बहुत सूक्ष्म है, बहुत गहरी है।
सार्त्र का वचन है--द अदर इज हेल, वह जो दूसरा है वह नरक है। सार्त्र के
इस वचन से मैं थोड़ी दूर तक राजी हूं। उसकी समझ गहरी है। वह ठीक कह रहा है कि दूसरा नरक है। लेकिन उसकी समझ अधूरी भी है। दूसरा नरक नहीं है, दूसरे को दूसरा समझने में नरक है! इसलिए जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमें मिलते हैं, वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं। उसे हम प्रेम कहते हैं।
अगर मैं किसी को किसी क्षण में अपना समझता हूं, तो उसी क्षण में मेरे
और उसके बीच जो धारा बहती है वह अहिंसा की है; हिंसा की नहीं रह जाती। किसी क्षण में दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है। लेकिन जिसको हम अपना समझते हैं वह भी गहरे में दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते हैं। इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। और इसलिए प्रेम की फ्लेम, वह जो प्रेम की ज्योति है, कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है। कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। चौबीस घंटे में यह कई बार बदलाहट होती है। जब वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा बीच में आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पड़ने लगता है, तब हिंसा थोड़ी कम हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते हैं, वह भी दूसरा है। पत्नी भी दूसरी है, चाहे कितनी ही अपनी हो। बेटा भी दूसरा है, चाहे कितना ही अपना हो। पति भी दूसरा है, चाहे कितना ही अपना हो। अपना कहने में भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नहीं हो पाता। प्रेम के अपने हिंसा के ढंग हैं।

प्रेम अपने ढंग से हिंसा करता है। प्रेमपूर्ण ढंग से हिंसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढंग से सताती है। पति, पत्नी को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। बाप, बेटे को प्रेमपूर्ण ढंग से सताता है। और जब सताना प्रेमपूर्ण हो तो बड़ा सुरक्षित हो जाता है। फिर सताने में बड़ी सुविधा मिल जाती है, क्योंकि हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है, तुम्हारे हित के लिए ही सता रहा हूं। जब हम किसी के हित के लिए सताते हैं, तब सताना बड़ा आसान है। वह गौरवान्वित, पुण्यकारी हो जाता है। इसलिए ध्यान रखना, दूसरे को सताने में हमारे चेहरे सदा साफ होते हैं। अपनों को सताने में हमारे चेहरे कभी भी साफ नहीं होते। इसलिए दुनिया में जो बड़ी-से-बड़ी हिंसा चलती है वह दूसरे के साथ नहीं, वह अपनों के साथ चलती है।
सच तो यह है कि किसी को भी शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना अनिवार्य शर्त है। किसी को मित्र बनाने के लिए शत्रु बनाना अनिवार्य शर्त नहीं है। शर्त ही नहीं है। असल में शत्रु बनाने के लिए पहले मित्र बनाना जरूरी है। मित्र बनाये बिना शत्रु नहीं बनाया जा सकता। हां, मित्र बनाया जा सकता है बिना शत्रु बनाये। उसके लिए कोई शर्त नहीं है शत्रुता की। मित्रता सदा शत्रुता के पहले चलती है।
अपनों के साथ जो हिंसा है, वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिए जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो, उसे पहले अपनों के प्रति जो हिंसा है, उसके प्रति जागना होगा। लेकिन मैंने कहा कि किसी-किसी क्षण में दूसरा अपना मालूम पड़ता है। बहुत निकट हो गये होते हैं हम। यह निकट होना, दूर होना, बहुत तरल है। पूरे वक्त बदलता रहता है।
इसलिए हम चौबीस घंटे प्रेम में नहीं होते किसी के साथ। प्रेम के सिर्फ क्षण होते हैं। प्रेम के घंटे नहीं होते। प्रेम के दिन नहीं होते। प्रेम के वर्ष नहीं होते। मोमेंट्स ओनली। लेकिन जब हम क्षणों से स्थायित्व का धोखा देते हैं तो हिंसा शुरू हो जाती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो यह क्षण की बात है। अगले क्षण भी करूंगा, जरूरी नहीं। कर सकूंगा, जरूरी नहीं। लेकिन अगर मैंने वायदा किया कि अगले क्षण भी प्रेम जारी रखूंगा, तो अगले क्षण जब हम दूर हट गये होंगे और हिंसा बीच में आ गई होगी तब, तब हिंसा प्रेम की शक्ल लेगी। इसलिए दुनिया में जितनी अपना बनानेवाली संस्थाएं हैं, सब हिंसक हैं। परिवार से ज्यादा हिंसा और किसी संस्था ने नहीं की है, लेकिन उसकी हिंसा बड़ी सूक्ष्म है।
इसलिए अगर संन्यासी को परिवार छोड़ देना पड़ा, तो उसका कारण था। उसका कारण था--सूक्ष्मतम हिंसा के बाहर हो जाना। और कोई कारण नहीं था, और कोई भी कारण नहीं था। सिर्फ एक ही कारण था कि हिंसा का एक सूक्ष्मतम जाल है जो अपना कहनेवाले कर रहे हैं। उनसे लड़ना भी मुश्किल है, क्योंकि वे हमारे हित में ही कर रहे हैं। परिवार का ही फैला हुआ बड़ा रूप समाज है, इसलिए समाज ने जितनी हिंसा की है, उसका हिसाब लगाना कठिन है!
सच तो यह है कि समाज ने करीब-करीब व्यक्ति को मार डाला है! इसलिए ध्यान रहे जब आप समाज के सदस्य की हैसियत से किसी के साथ व्यवहार करते हैं तब आप हिंसक होते हैं। अगर आप जैन की तरह किसी व्यक्ति से व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। हिंदू की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। मुसलमान की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। क्योंकि अब आप व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं कर रहे, अब आप समाज की तरह व्यवहार कर रहे हैं। और अभी व्यक्ति ही अहिंसक नहीं हो पाया तो समाज के अहिंसक होने की संभावना तो बहुत दूर है। समाज तो अहिंसक हो ही नहीं सकता, इसलिए दुनिया में जो बड़ी हिंसाएं हैं, वह व्यक्तियों ने नहीं की हैं, वह समाजों ने की हैं।
अगर एक मुसलमान को हम कहें कि इस मंदिर में आग लगा दो, तो अकेला मुसलमान, व्यक्ति की हैसियत से, पच्चीस बार सोचेगा। क्योंकि हिंसा बहुत साफ दिखाई पड़ रही है। लेकिन दस हजार मुसलमानों की भीड़ में उसको खड़ा कर दें तब वह एक बार भी नहीं सोचेगा, क्योंकि दस हजार की भीड़ एक समाज है। अब हिंसा साफ न रह गई, बल्कि अब यह हो सकता है कि वह धर्म के हित में ही मंदिर में आग लगा दे। ठीक यही मस्जिद के साथ हिंदू कर सकता है। ठीक यही सारे दुनिया के समाज एक-दूसरे के साथ कर रहे हैं।

समाज का मतलब है अपनों की भीड़। और दुनिया में तब तक हिंसा मिटानी मुश्किल है जब तक हम अपनों की भीड़ बनाने की जिद बंद नहीं करते। अपनों की भीड़ का मतलब है कि यह भीड़ सदा परायों की भीड़ के खिलाफ खड़ी होगी। इसलिए दुनिया के सब संगठन हिंसात्मक होते हैं। दुनिया का कोई संगठन अहिंसात्मक नहीं हो सकता। संभावना नहीं है अभी, शायद करोड़ों वर्ष लग जायें। जब पूरा मनुष्य रूपांतरित हो जाये तो शायद कभी अहिंसात्मक लोगों का कोई मिलन हो सके।
अभी तो सब मिलन हिंसात्मक लोगों के हैं, चाहे परिवार हो। परिवार दूसरे लोगों के खिलाफ खड़ी की गई इकाई है। परिवार बायोलॉजिकल यूनिट है। जैविक इकाई है, दूसरी जैविक इकाइयों के खिलाफ। समाज, दूसरे समाजों के खिलाफ सामाजिक इकाई है। राज्य, दूसरे राज्यों के खिलाफ राजनैतिक इकाई है। ये सब इकाइयां हिंसा की हैं। मनुष्य उस दिन अहिंसक होगा जिस दिन मनुष्य निपट व्यक्ति होने को राजी हो।
इसलिए महावीर को जैन नहीं कहा जा सकता, और जो कहते हों, वे महावीर के साथ अन्याय करते हैं। महावीर किसी समाज के हिस्से नहीं हो सकते। कृष्ण को हिंदू नहीं कहा जा सकता, और जीसस को ईसाई कहना निपट पागलपन है। ये व्यक्ति हैं, इनकी इकाई ये खुद हैं। ये किसी दूसरी इकाई के साथ जुड़ने को राजी नहीं हैं।
संन्यास समस्त इकाइयों के साथ जुड़ने से इनकार है। असल में संन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है, और समाज के साथ खड़े होने में हिंसक होना ही पड़ेगा। अपनों का चेहरा, हिंसा का सूक्ष्मतम रूप है।
इसलिए प्रेम जिसे हम कहते हैं वह भी अहिंसा नहीं बन पाता। अपना जिसे कहते हैं वह भी "मैं" नहीं हूं। वह भी दूसरा है। अहिंसा उस क्षण शुरू होगी जिस दिन दूसरा नहीं है; द अदर इज नॉट। यह नहीं कि वह अपना है। वह है ही नहीं। लेकिन यह क्या बात है कि दूसरा, दूसरा दिखाई पड़ता है। होगा ही दूसरा, तभी दिखाई पड़ता है।
नहीं, जैसा दिखाई पड़ता है वैसा हो ही, ऐसा जरूरी नहीं है। अंधेरे में रस्सी भी सांप दिखाई पड़ती है। रोशनी होने से पता चलता है कि ऐसा नहीं है। खाली आंखों से देखने पर पत्थर ठोस दिखाई पड़ता है। विज्ञान की गहरी आंखों से देखने पर ठोसपन विदा हो जाता है। पत्थर सब्स्टेन्शिअल नहीं रह जाता। असल में पत्थर पत्थर ही नहीं रह जाता। पत्थर मैटीरियल ही नहीं रह जाता। पत्थर पदार्थ ही नहीं रह जाता, सिर्फ एनर्जी रह जाता है। नहीं, जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जैसा दिखाई पड़ता है वह हमारे देखने की क्षमता की सूचना है सिर्फ। दूसरा है, इसलिए दिखाई पड़ता है? नहीं, दूसरे के दिखाई पड़ने का कारण दूसरे का होना नहीं है। दूसरे के दिखाई पड़ने का कारण बहुत अदभुत है। उसे समझ लेना जरूरी है। उसे बिना समझे हम हिंसा की गहराई को न समझ सकेंगे।
दूसरा इसलिए दिखाई पड़ता है कि मैं अभी नहीं हूं। यह शायद ख्याल में नहीं आयेगा एकदम से। मैं नहीं हूं, मुझे मेरा कोई पता नहीं है। इस मेरे न होने को, इस मेरे पता न होने को, इस मेरे आत्म-अज्ञान को मैंने दूसरे का ज्ञान बना लिया है। हम दूसरे को देख रहे हैं, क्योंकि हम अपने को देखना नहीं जानते। और देखना तो पड़ेगा ही। देखने की दो संभावनाएं हैंः या तो वह अदर डायरेक्टेड हो, दूसरे की तरफ हो तीर देखने का; या इनर डायरेक्टेड हो, अंतर की ओर तीर हो। इनर एरोड या अदर एरोड हो। दूसरे को देखें या अपने को देखें, ये देखने के दो विकल्प हैं। ये देखने के दो डायमेंशन हैं। चूंकि हम अपने को देख ही नहीं सकते, देख ही नहीं पाते, देखा ही नहीं, हम दूसरे को ही देखते रहते हैं। दूसरे का होना आत्म-अज्ञान से पैदा होता है। असल में ध्यान के डायमेंशन हैं।
एक युवक हॉकी के मैदान में खेल रहा है, पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। हजारों दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून बह रहा है, सिर्फ उसे पता नहीं है। क्या हो गया है उसको? होश में नहीं है? होश में पूरा है, क्योंकि गेंद की जरा-सी गति भी, छोटी-सी गति भी उसे दिखाई पड़ रही है। बेहोश है? बेहोश बिल्कुल नहीं है, क्योंकि दूसरे खिलाड़ियों का जरा-सा मूवमेंट, जरा-सी हलचल उसकी आंख में है। बेहोश वह नहीं है, क्योंकि खुद को पूरी तरह

संतुलित करके वह दौड़ रहा है। लेकिन यह पैर से खून गिर रहा है, यह दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा है? यह उसे पता क्यों नहीं चल रहा है?
उसकी सारी अटेंशन अदर डायरेक्टेड है। उसकी चेतना इस समय वन-डायमेंशनल है। वह बाहर की दिशा में लगी है। वह खेल में व्यस्त है। वह इतने जोर से व्यस्त है कि चेतना का टुकड़ा भी नहीं बचा है जो भीतर की तरफ जा सके। सब बाहर चेतना बह रही है। खेल बंद हो गया है, वह पैर पकड़ कर बैठ गया है और रो रहा है! और कह रहा है, बहुत चोट लग गई! मुझे पता क्यों नहीं चला?
आधा घंटा वह कहां था? आधा घंटा भी वह था, लेकिन दूसरे पर केंद्रित था।
अब लौट आया अपने पर। अब उसे पता चल रहा है कि पैर में चोट लग गई, दर्द है, पीड़ा है। अब उसका ध्यान अपने शरीर की तरफ गया। लेकिन गहरे में वह अभी भी अदर डायरेक्टेड है। अभी भी ध्यान उसका शरीर पर गया है। वह भी दूसरा ही है। वह भी बाहर ही है। अभी भी उसे पता चल रहा है कि पैर में दर्द हो रहा है। अभी भी उसे "उसका" पता नहीं चल रहा है जिसे पता चल रहा है कि दर्द हो रहा है। अभी उसका उसे कोई पता नहीं। अभी भी उसका उसे कोई पता नहीं है। अभी और भीतर की भी यात्रा संभव है। अभी वह बीच में खड़ा है। दूसरा बाहर है, मैं भीतर हूं, और दोनों के बीच में मेरा शरीर है। हमारी यात्रा, या तो दूसरा या अपना शरीर--इनके बीच होती रहती है। हमारी चेतना इनके बीच डोलती रहती है। या तो हम दूसरे को जानते हैं या अपने शरीर को जानते हैं, वह भी दूसरा है।
असल में अपने शरीर का मतलब केवल इतना है कि हमारे और दूसरे के बीच संबंधों के जो तीर हैं, तट हैं, जहां हमारी चेतना की नदी बहती रहती है, वह मेरा शरीर और आपका शरीर इनके बीच बहती रहती है। आपसे भी मेरा मतलब आपसे नहीं है, क्योंकि जब मेरा मतलब मेरे शरीर से होता है तो आपसे मतलब सिर्फ आपके शरीर से होता है। न आपकी चेतना से मुझे कोई प्रयोजन है, न मुझे आपकी चेतना का कोई पता है। जिसे अपनी चेतना का पता नहीं, उसे दूसरे की चेतना का पता हो भी कैसे सकता है?
मुझे मेरे शरीर का पता है और आपके शरीर का पता है। अगर ठीक से कहें तो हिंसा दो शरीरों के बीच का संबंध है--रिलेशनशिप बिटवीन टू बॉडीज। और दो शरीरों के बीच अहिंसा का कोई संबंध नहीं हो सकता। शरीरों के बीच संबंध सदा हिंसा का होगा। अच्छी हिंसा का हो सकता है, बुरी हिंसा का हो सकता है; खतरनाक हिंसा का हो सकता है, गैर- खतरनाक हिंसा का हो सकता है। लेकिन तय करना मुश्किल है कि खतरा कब गैर-खतरा हो जाता है, गैर-खतरा कब खतरा बन जाता है।
एक आदमी प्रेम से किसी को छाती से दबा रहा है। बिल्कुल गैर-खतरनाक हिंसा है। असल में दूसरे के शरीर को दबाने का सुख ले रहा है। लेकिन और थोड़ा बढ़ जाये, और जोर से दबाये तो घबड़ाहट शुरू हो जायेगी। छोड़े ही ना, और जोर से दबाये और श्वास घुटने लगे, तो जो प्रेम था वह तत्काल घृणा बन जायेगा, हिंसा बन जायेगा।
ऐसे प्रेमी हैं जिनको हम सैडिस्ट कहते हैं, जिनको हम परपीड़क कहते हैं। वे जब तक दूसरे को सता न लें तब तक उनका प्रेम पूरा नहीं होता। वैसे हम सब प्रेम में एक-दूसरे को थोड़ा सताते हैं। जिसको हम चुंबन कहते हैं, वह सताने का एक ढंग है। लेकिन धीमा, माइल्ड। हिंसा उसमें पूरी है लेकिन बहुत धीमी। लेकिन थोड़ा और बढ़ जाये, काटना शुरू हो जाये, तो हिंसा थोड़ी बढ़ी। कुछ प्रेमी काटते भी हैं। लेकिन तब तक भी चलेगा, लेकिन फिर फाड़ना-चीरना शुरू हो जाये... जिन्होंने प्रेम के शास्त्र लिखे हैं उन्होंने नख-दंश भी प्रेम की एक व्यवस्था दी है। कि नाखून से प्रेमी को दंश पहुंचाना, वह भी प्रेम है।
हिंदुस्तान में, हिंदुस्तान के जो कामशास्त्र के ज्ञाता हैं, वे कहते हैंः जब तक प्रेमी को नाखून से खुरेचें नहीं, तब तक उसके भीतर प्रेम ही पैदा नहीं होता। लेकिन नाखून से खुरेचना! तो फिर एक औजार लेकर खुरेचने में हर्ज क्या है? वह बढ़ सकता है! वह बढ़ जाता है! क्योंकि जब नाखून से खुरेचना रोज की आदत बन जायेगी, तब फिर रस खो जायेगा। फिर एक हथियार रखना पड़ेगा। जिस आदमी के नाम पर सैडीज्म शब्द बना, द सादे के नाम पर, वह आदमी अपने साथ एक कोड़ा भी रखता था, एक कांटा भी रखता था पांच अंगुलियों वाला, पत्थर भी रखता था, और भी प्रेम के कई साधन अपने बैग में रखता था। और जब किसी को प्रेम करता

तो दरवाजा लगा कर, ताला बंद करके, बस कोड़ा निकाल लेता। पहले वह दूसरे के शरीर को पीटता। जब उसकी प्रेयसी का सारा शरीर कोड़ों से लहू-लुहान हो जाता, तब वह कांटे चुभाता।... यह सब प्रेम था।
आप कहेंगे, यह अपना वाला प्रेम नहीं है। बस यह सिर्फ थोड़ा आगे गया। डिफरेंस इज ओनली ऑफ डिग्रीज। इसमें कोई ज्यादा, कोई क्वालिटेटिव फर्क नहीं है, कोई गुणात्मक फर्क नहीं है, क्वांटिटेटिव, परिमाण का, मात्रा का फर्क है। असल में दूसरे के शरीर से हमारे जो भी संबंध हैं, वे कम या ज्यादा, हिंसा के होंगे। इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं पड़ता।
कई प्रेमियों ने अपनी प्रेयसियों की गर्दन दबा डाली है प्रेम के क्षणों में, मार ही डाला है! उन पर मुकदमे चले हैं। अदालतें नहीं समझ पायीं कि यह कैसा प्रेम है? लेकिन अदालतों को समझना चाहिए, यह थोड़ा आगे बढ़ गया प्रेम है! यह संबंध जरा घनिष्ठ हो गया। वैसे सभी प्रेमी एक-दूसरे की गर्दन दबाते हैं। कोई हाथ से दबाता है, कोई मन से दबाता है, कोई और-और तरकीबों से दबाता है। लेकिन प्रेमी को दबाना हमारा ढंग रहा है। कम-ज्यादा की बात दूसरी है।
दो शरीरों के बीच में जो संबंध है, वह चाहे छुरा मारने का हो और चाहे चुंबन का और आलिंगन का हो, उसमें बुनियादी फर्क नहीं है। उसमें मूलतः फर्क नहीं है। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि दूसरे के शरीर में छुरा भोंकने में कुछ लोगों को जो आनंद आता है, क्या कभी आपने ख्याल किया कि उसका ख्याल सेक्सुअल पेनीट्रेशन से ही पैदा हुआ है? दूसरे के शरीर में छुरा भोंकने का जो रस है, या दूसरे के शरीर को गोली मार देने का जो रस है, क्या वह यौन-परवर्शन से ही पैदा नहीं हुआ है?
असल में यौन का सुख भी, दूसरे के शरीर में प्रवेश का सुख है। अगर किसी आदमी का दिमाग थोड़ा विकृत हो गया तो वह प्रवेश के दूसरे रास्ते खोज सकता है। विकृत कहें या इन्वेन्टिव कहें, आविष्कारक हो गया। वह कह सकता है कि दूसरे के शरीर में यौन की दृष्टि से प्रवेश तो जानवर भी करते हैं, इसमें आदमी की क्या खूबी? आदमी और भी तरकीबें खोजता है जिनसे वह दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाये। जो गहरे में खोजते हैं वे कहते हैं कि दूसरे की हत्या का सुख परवर्टेड सेक्स है। वे कहते हैं कि दूसरे को मार डालने का रस, दूसरे में प्रवेश का रस है।
कभी-कभी छोटे बच्चे, आपने ख्याल किया, अगर चलता हुआ कीड़ा देखते हैं तो तोड़ कर देखेंगे; फूल मिलेगा तो उसको फाड़कर देखेंगे। क्या आप सोच सकते हैं कि किसी आदमी को दूसरे आदमी को फाड़कर देखने में वही जिज्ञासा काम कर रही है? क्या आप कह सकते हैं कि विज्ञान भी बहुत गहरे में वायलेंस है? चीजों को फाड़कर देखने की चेष्टा है। लेकिन स्वीकृत है। अगर आप मेंढक को मार रहे हैं बाहर, तो लोग कहेंगे, बुरा कर रहे हैं। लेकिन लेबोरेट्री के टेबल पर मेंढक को काट रहे हैं तो कोई बुरा नहीं कहेगा। लेकिन हो सकता है यह काटनेवाला जो रस ले रहा है, वह वही रस है।
अभी बहुत देर है कि हम वैज्ञानिक के चित्त को ठीक से समझ पायें, अन्यथा हमें पता चलेगा कि उसने अपनी हिंसा की वृत्ति को वैज्ञानिक रुख दे दिया है, जो स्वीकृत रुख है। और हम हिंसा की वृत्ति को बहुत से रुख दे सकते हैं। कभी हमने यज्ञ का रुख दे दिया था, वह रिलीजियस ढंग था हिंसा का।
किसी आदमी को किसी जानवर को काटना है। काटने में बुराई है, पाप है--तो फिर काटने को पुण्य बना लिया जाये। तो हम यज्ञ में काटें, देवता की वेदी पर काटें, तो पुण्य हो जायेगा। काटने का मजा लेना है।
लेकिन अब वह पागलपन हो गया। अब हम जानते हैं कि देवता की कोई वेदी नहीं है; अब हम जानते हैं कि कोई यज्ञ की वेदी नहीं है, जहां काटा जा सके। और अगर काटना है तो ईमानदारी से यह कहकर काटो कि मुझे काटना है! इसमें देवता को क्यों फंसाते हो? इसमें भगवान को क्यों बीच में लाते हो? रामकृष्ण की जिंदगी में एक उल्लेख है कि एक आदमी रामकृष्ण के पास निरंतर आता था। हर वर्ष काली के उत्सव पर वह सैकड़ों बकरे कटवाता था। फिर बकरे कटने बंद हो गये। फिर उस आदमी ने जलसा मनाना बंद कर दिया। फिर दो वर्ष बीत गये। रामकृष्ण के पास वह बहुत दिन नहीं आया। फिर अचानक आया। रामकृष्ण ने कहा, क्या काली की भक्ति छोड़ दी? अब बकरे नहीं कटवाते? उसने कहा, अब दांत

ही न रहे, अब बकरे कटवाने से क्या फायदा? तो रामकृष्ण ने कहा, क्या तुम दांतों की वजह से बकरे कटवाते थे? तो उसने कहा, जब दांत गिरे तब मुझे पता चला कि अब मुझे कोई रस न रहा। ऐसे मांस खाने में कठिनाई पड़ती है, काली की आड़ ले कर खाना आसान हो जाता है।
लेकिन पुरानी वेदियां गिर गईं धर्म की। अब का धर्म विज्ञान है। इसलिए विज्ञान की वेदी पर अब हिंसा चलती है, बहुत तरह की हिंसा चलती है। विज्ञान हजार तरह के टार्चर के उपाय कर लेता है, लेकिन कोई इनकार हम नहीं करेंगे। इसी तरह कभी हमने धर्म की वेदी पर इनकार नहीं किया था, क्योंकि उस समय धर्म की वेदी स्वीकृत थी। अब विज्ञान की वेदी स्वीकृत है।
अगर एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में जायें तो बहुत हैरान हो जायेंगे। कितने चूहे मारे जा रहे हैं। कितने मेंढक काटे जा रहे हैं। कितने जानवर उल्टे-सीधे लटकाये गये हैं। कितने जानवर बेहोश डाले गये हैं। कितने जानवरों की चीर-फाड़ की जा रही है। यह सब चल रहा है। लेकिन वैज्ञानिक को बिल्कुल पक्का ख्याल है कि वह हिंसा नहीं कर रहा है। उसका ख्याल है कि वह आदमी के लिए सुख खोजने के लिए कर रहा है। बस, तब हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ़ लिया। अब चलेगा!
अब आप जब किसी को प्रेम करते हैं तो ख्याल करना कि आपके भीतर की हिंसा प्रेम की शक्ल तो नहीं बन जाती? अगर बन जाती है तो वह खतरनाक से खतरनाक शक्ल है, क्योंकि उसका स्मरण आना बहुत मुश्किल है। हम समझते रहेंगे, हम प्रेम ही कर रहे हैं।
दूसरा, तब तक दूसरा है, जब तक मुझे मेरा पता नहीं है। इसे मैं हिंसा की बुनियाद कहता हूं। हिंसा का अर्थ हैः द अदर ओरियेंटेड कांशसनेस, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना। स्वयं से उत्पन्न हो रही चेतना अहिंसा बन जाती है, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना हिंसा बन जाती है। लेकिन हमें दूसरे का ही पता है। हम जब भी देखते हैं, दूसरे को देखते हैं। और अगर हम कभी अपने संबंध में भी सोचते हैं, अपने बाबत भी सोचते हैं, तो हमेशा वाया द अदर, वह दूसरे हमारी बाबत क्या सोचते हैं, उसी तरह सोचते हैं। अगर मेरी अपनी भी कोई शक्ल है, तो वह आपके द्वारा दी गई शक्ल है।
इसलिए मैं सदा डरा रहूंगा कि कहीं आपके मन में मेरे प्रति बुरा ख्याल
न आ जाये, अन्यथा मेरी शक्ल बिगड़ जायेगी। क्योंकि मेरी अपनी तो कोई शक्ल है नहीं। अखबारों की कटिंग काटकर मैंने अपना चेहरा बनाया है। आपकी बातें सुनकर, आपकी ओपीनियन इकट्ठी करके, मैंने अपनी प्रतिमा बनाई है। अगर उसमें से एक पीछे खिसक जाता है--कोई भक्त गाली देने लगता है, कोई अनुयायी दुश्मन हो जाता है, कोई मित्र साथ नहीं देता, कोई बेटा बाप को इनकार करने लगता है-- तो बाप की प्रतिमा गिरने लगती है, गुरु की प्रतिमा गिरने लगती है। वह घबड़ाने लगता है कि मरा। क्योंकि मेरी तो अपनी कोई शक्ल नहीं है, मेरी अपनी कोई प्रतिमा नहीं। इन्हीं सबने मुझे एक प्रतिमा दी थी।
बाप को अपने बाप होने का पता नहीं है, किसी के बेटा होने भर का पता है। उसके बेटा होने की वजह से वह बाप है। अगर वह बेटा, बेटा होने से इनकार करने लगे, तो बाप का बाप होना मुश्किल में पड़ गया! पति को पति होने का कोई पता नहीं है, वह पत्नी के संदर्भ में पति है। अगर पत्नी जरा ही स्वतंत्रता लेने लगे तो उसका पति होना गड़बड़ हो गया। हम सब दूसरों के ऊपर निर्भर हैं। वह जो दूसरे पर निर्भर है, वह निरंतर दूसरे को देखता रहेगा।
स्वप्न में भी हम दूसरे को देखते हैं। जागने में भी दूसरे को देखते हैं। ध्यान के लिए बैठें तो भी दूसरे का ध्यान करते हैं। अगर ध्यान को भी बैठेंगे, तो महावीर का ध्यान करेंगे, बुद्ध का ध्यान करेंगे, कृष्ण का ध्यान करेंगे। वहां भी "द अदर" मौजूद है। जिस ध्यान में दूसरा मौजूद है, वह हिंसात्मक ध्यान है। जिस ध्यान में आप ही रह गये सिर्फ, वह शायद आपको अहिंसा में ले जाये।
दूसरा है, इसलिए नहीं दिखाई पड़ रहा। हम दिखाई नहीं पड़ रहे हैं तो हमारी चेतना दूसरे पर केंद्रित हो गई है। जिस दिन मैं दिखाई पडूंगा मुझे, उस दिन आप दूसरे की तरह दिखाई पड़ने बंद हो जायेंगे।
इसलिए महावीर जब चींटी से बच कर चल रहे हैं तो आप इस भ्रांति में मत रहना कि आप भी जब चींटी से बच कर चलते हैं, तो वही कारण है जो महावीर का

कारण है। आप जब चींटी से बच कर चलते हैं, तो चींटी से बच कर चल रहे हैं। और महावीर जब चींटी से बच कर चलते हैं तो अपने पर ही पैर न पड़ जाये, इसलिए बच कर चल रहे हैं! इन दोनों में बुनियादी फर्क है। महावीर का बचना अहिंसा। आपका बचना हिंसा ही है। दूसरा मौजूद है कि चींटी न मर जाये। और चींटी न मर जाये इसकी चिंता आपको क्यों है? इसकी चिंता सिर्फ इसलिए है कि कहीं चींटी के मरने से पाप न लग जाये। वह अदर ओरियेंटेड कांशसनेस है। कि कहीं चींटी के मरने से पाप न लग जाये, कहीं चींटी के मरने से नरक में न जाना पड़े, कहीं चींटी के मरने से पुण्य न छिन जाये, कहीं चींटी के मरने से स्वर्ग न खो जाये! चींटी से कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन सदा अपने से है। लेकिन चींटी पर ओरियेंटेड है। दिमाग चींटी पर केंद्रित है, चींटी से बच रहे हैं। नहीं, आपको ऐसा नहीं लगता जैसा महावीर को लगता है। महावीर का चींटी से बचना बहुत भिन्न है। वह चींटी से बचना ही नहीं है। अगर महावीर से हम पूछें कि क्यों बच रहे हैं? तो वह कहेंगे, अपने पर ही पैर कैसे रखा जा सकता है? नहीं, यह बचना नहीं है। असल में अपने पर पैर रखना असंभव है।
रामकृष्ण एक दिन गंगा पार कर रहे हैं। बैठे हैं नाव में। अचानक चिल्लाने लगते हैं जोर से, कि मत मारो, मत मारो, क्यों मुझे मारते हो? पास, आस-पास बैठे लोग कोई भी उनको नहीं मार रहे हैं। सब भक्त हैं, उनके पैर छूते हैं, पैर दबाते हैं, उनको कोई मारता तो नहीं। सब कहने लगे, आप क्या कह रहे हैं? कौन आपको मार रहा है? रामकृष्ण चिल्लाये जा रहे हैं। उन्होंने पीठ उघाड़ दी। पीठ पर देखा तो कोड़े के निशान हैं। खून झलक आया है। सब बहुत घबड़ा गये। रामकृष्ण से पूछा, यह क्या हो गया? किसने मारा आपको? रामकृष्ण ने कहा, वह देखो, वे मुझे मार रहे हैं।
उस किनारे पर मल्लाह एक आदमी को मार रहे हैं कोड़ों से, और उसकी पीठ पर
जो निशान बने हैं वे रामकृष्ण की पीठ पर भी बन गये। ठीक वही निशान। और जब तट पर उतर कर भीड़ लग गई है और दोनों के निशान देखे गये हैं तो तय करना मुश्किल हो गया कि कोड़े किसको मारे गये? ओरिजिनल कौन है? रामकृष्ण को चोट ज्यादा पहुंची है मल्लाह से। निशान वही हैं, चोट ज्यादा है। क्योंकि मल्लाह तो विरोध भी कर रहा होगा भीतर से, रामकृष्ण ने तो पूरा स्वीकार ही कर लिया! चोट ज्यादा गहरी हो गई। लेकिन रामकृष्ण के मुख से जो शब्द निकला--"मुझे मत मारो", इसका मतलब समझते हैं? एक शब्द है हमारे पास, सिम्पैथी, सहानुभूति। यह सहानुभूति नहीं है।
सहानुभूति हिंसक के मन में होती है। वह कहता है, मत मारो उसे। दूसरे
को मत मारो। सहानुभूति का मतलब है कि मुझे दया आती है। लेकिन दया सदा दूसरे पर आती है। यह सहानुभूति नहीं है, यह समानुभूति है, इम्पैथी है। सिम्पैथी नहीं है। यहां रामकृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि "उसे" मत मारो। रामकृष्ण कह रहे हैं "मुझे" मत मारो--यहां दूसरा गिर गया!
असल में दूसरे से जो हमारा फासला है वह शरीर का ही फासला है, चेतना का कोई फासला नहीं। चेतना के तल पर दो नहीं हैं। हम दूसरे को बचायें तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। हम दूसरे को बचायें, तो वह भी हिंसा ही है। जिस दिन हम ही रह जाते हैं, और बचने को कोई भी नहीं रह जाता, उस दिन अहिंसा फलित होती है।
इसलिए अहिंसा के बाबत इस गहरी हिंसा को समझ लेना जरूरी है, कि वह जो दूसरा है उससे छुटकारा कैसे होगा। वह सार्त्र ठीक कहता है कि द अदर इज हेल, पर ज्यादा अच्छा होगा कि सार्त्र के वचन में थोड़ा फर्क कर दिया जाये--द अदर इज नाट हेल, द अदरनेस इज हेल। दूसरा नहीं है नर्क, दूसरापन। दूसरापन गिर जाये तो दूसरा भी दूसरा नहीं है।
महावीर की अहिंसा को नहीं समझा जा सका, क्योंकि हम हिंसकों ने महावीर
की अहिंसा को हिंसा की शब्दावली दे दी। हमने कहा, दूसरे को दुख मत दो। लेकिन ध्यान रहे जब तक दूसरा है तब तक दुख जारी रहेगा। चाहे उसकी छाती में छुरा भोंको और चाहे उसे दूसरे की नजर से छुरा भोंको, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
क्या आपको ख्याल है कि आप कमरे में अकेले बैठे हों और कोई भीतर आ जाये
तो आप वही नहीं रह जाते जो आप अकेले थे। क्योंकि दूसरे ने आकर हिंसा शुरू कर दी। उसकी आंख, उसकी मौजूदगी! वह आपको मार नहीं रहा है, आपको चोट नहीं

पहुंचा रहा है, बहुत अच्छी बातें कर रहा है, कह रहा है, आप कुशल से तो हैं; लेकिन उसका देखना... ।
जैसे ही दूसरा भीतर आता है--ही हैज मेड यू द अदर। जैसे ही कोई कमरे में भीतर आया उसने आपको भी दूसरा बना दिया। हिंसा शुरू हो गई। अब उसकी आंख, उसका निरीक्षण, उसका देखना, उसका बैठना, उसका होना, उसकी प्रजेन्स, हिंसा है। अब आप डर गये, क्योंकि हम सिर्फ हिंसा से डर जाते हैं। अब आप भयभीत हो गये। अब आप संभल कर बैठ गये। आप अपने बाथरूम में और तरह के आदमी होते हैं, आप अपने बैठकखाने में और तरह के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि बैठकखाने में हिंसा की संभावना है। बैठकखाना वह जगह है जहां हम दूसरों की हिंसा को झेलते हैं। जहां हम दूसरों का स्वागत करते हैं, जहां हम दूसरों को निमंत्रित करते हैं।
अहिंसात्मक ढंग से हमने बैठकखाना सजाया है। इसलिए बैठकखाना हम खूब सजाते हैं कि दूसरे की हिंसा कम-से-कम हो जाये। वह सजावट दूसरे की हिंसा को कम कर दे। इसलिए बैठकखाने के चेहरे हमारे मुस्कुराते होते हैं। क्योंकि मुस्कुराहट दूसरे की हिंसा के खिलाफ आरक्षण है। अच्छे शब्द बोलते हैं बैठकखाने में, शिष्टाचार बरतते हैं, सभ्यता बरतते हैं। यह सब इंतजाम है, यह सब सिक्योरिटी और सेफ्टी मेजर्स हैं कि दूसरे आदमी की हिंसा को थोड़ी कम करो।
अगर आप भी गाली देंगे तो दूसरे की हिंसा को प्रबल होने का मौका मिलेगा। आप कहते हैंः बड़ी कृपा की कि आप आये! अतिथि तो भगवान है! विराजिये! तो उस दूसरे की हिंसा को आप कम कर रहे हैं। अब उसे हिंसक होने में कठिनाई पड़ेगी। दूसरा भी आपकी हिंसा को कम कर रहा है। इसलिए जब दो आदमी पहली दफे मिलते हैं तब उनके बीच बड़ा शिष्टाचार होता है। तीन-चार घंटे के बाद शिष्टाचार गिर जाता है। तीन-चार दिन के बाद समाप्त हो जाता है। तीन-चार महीने के बाद वे एक-दूसरे को गाली देने लगते हैं। हालांकि कहते हैं, प्रेम में दे रहे हैं, दोस्ती में दे रहे हैं!
पहले मिलते हैं तो कहते हैं, "आप", दो-तीन महीने के बाद मिलते हैं तो कहते हैं, "तू"। यह बात क्या हो गई तीन महीने में? असल में अब दोनों की हिंसा सेटेल्ड, व्यवस्थित हो गई। अब इतना ज्यादा सुरक्षा का इंतजाम करना जरूरी नहीं है।
दूसरे की मौजूदगी भी हिंसा बन जाती है। आपके लिए ही नहीं, आपकी मौजूदगी भी दूसरे के लिए हिंसा बन जाती है।
महावीर की जिंदगी में एक बहुत अदभुत घटना है। महावीर संन्यास लेना चाहते थे। तो उन्होंने अपनी मां से कहा कि मैं जाऊं संन्यास ले लूं? उनकी मां ने कहा, मेरे सामने दुबारा यह बात मत कहना। जब तक मैं जिंदा हूं तब तक संन्यास नहीं ले सकते। मुझ पर बड़ा दुख पड़ जायेगा। महावीर लौट गये।
मां ने न सोचा होगा, क्योंकि आम तौर से संन्यासी इतने अहिंसक नहीं होते कि इतनी जल्दी लौट जायें। अगर हिंसक वृत्ति होती महावीर की तो और जिद पकड़ जाते। कहते कि नहीं, लेकर ही रहूंगा। यह संसार तो सब माया-मोह है! कौन अपना? कौन पराया? यह सब तो झूठ है! संन्यास लेकर रहूंगा। तुम रोकने वाली कौन हो? बंधन कैसा? लेकिन नहीं, महावीर चुपचाप लौट गये। मां भी हैरान हुई होगी, क्योंकि ऐसा संन्यासी, जो एक दफे कहे कि संन्यास लेना चाहता हूं और मां कह दे, पिता कह दे, पत्नी कह दे कि नहीं मुझे बहुत दुख होगा, और लौट जाये! ऐसा आदमी कभी संन्यासी हो सकता है? कभी नहीं हो सकता। होने की जरूरत भी नहीं है। ऐसा आदमी संन्यासी है!
मां मर गई! पिता मर गये। मरघट से लौट रहे हैं महावीर! अपने बड़े भाई से कहा कि बात हुई थी माता-पिता से, तो वे बोले थे जब तक वे हैं तब तक संन्यास न लूं, उन्हें दुख होगा। अब संन्यास ले सकता हूं? घर लौट रहे हैं मरघट से! भाई ने कहा, तुम पागल हो गये हो? मां चली गई, पिता चले गये, हम अनाथ हो गये, और तुम भी छोड़ कर चले जाओगे? ऐसा दुख मैं न सह सकूंगा। महावीर चुप हो गये। फिर उन्होंने दुबारा बात न उठायी संन्यास की। बड़े अजीब संन्यासी रहे होंगे। इतना भी दुख दूसरे को पहुंचे यह भी अर्थहीन मालूम हुआ होगा। और ऐसे मोक्ष को भी लेकर क्या करेंगे जिसमें किसी को दुख देकर जाना पड़ता हो। रुक गये।

लेकिन एक अजीब घटना घटी उस घर में। ऐसी घटना शायद पृथ्वी पर और कहीं कभी भी नहीं घटी। एक अजीब घटना घटी। वर्ष-दो वर्ष में घर के लोगों को ऐसा लगने लगा कि महावीर हैं या नहीं, यह संदिग्ध हो गया! थे घर में--उठते थे, बैठते थे, आते थे, जाते थे, खाते थे, पीते थे, सोते थे--मगर घर के लोगों को संदेह पैदा होने लगा कि वह हैं या नहीं। उनकी उपस्थिति, अनुपस्थिति जैसी हो गई। उनका होना, न होने जैसा हो गया।
असल में दूसरे के प्रति जो दूसरे का बोध है अगर खो जाये तो दूसरे आदमी
की उपस्थिति का पता चलना मुश्किल होने लगेगा। हमें अपनी उपस्थिति का पता करवाना पड़ता है। हजार ढंग से हम करवाते हैं। अगर घर में पति आता है तो उसकी चाल से खबर करवाता है कि आ गया। उसकी आंख से खबर करवाता है कि मैं हूं। और मैं कौन हूं यह साफ होना चाहिए। शिक्षक क्लास में आता है तो खबर करवा देता है। गुरु शिष्यों के बीच में आता है तो सब ढंग, सारी व्यवस्था, खबर करवा देती है कि जानो कि मैं हूं।
महावीर अनुपस्थित जैसे हो गये। वे न किसी को देखते, न वे किसी को दिखाई पड़ते, ऐसे हो गये। वे चुपचाप घर में रहने लगे, चुपचाप गुजरने लगे। न वे किसी को बाधा देते, न किसी की बाधा लेते। वे एक अर्थ में, जिसको जीवित मृत्यु कहें, उसमें प्रवेश कर गये। घर के लोगों ने एक दिन बैठक की, और सबने कहा, अब उन्हें रोकना फिजूल है। क्योंकि वे हैं ही नहीं, रोकते किसको हो? हवा को मुट्ठी बांध कर रोका जा सकता है? पत्थर को रोका जा सकता है। पत्थर को मुट्ठी बांध कर रोका जा सकता है, क्योंकि पत्थर है, बहुत मजबूती से है। पत्थर कहता है, मैं हूं। लेकिन हवा को मुट्ठी बांध कर रोको तो जितनी थी वह भी बाहर निकल जाती है, क्योंकि हवा है ही नहीं। पत्थर के अर्थों में नहीं है। इसलिए हवा को फेंक कर मारा नहीं जा सकता किसी को। पत्थर को फेंक कर मारा जा सकता है। हवा का अस्तित्व बहुत नॉनवायलेंट है। पत्थर का अस्तित्व बहुत वायलेंट है।
महावीर हवा की तरह हो गये, तो घर के लोगों ने कहाः अब बेकार हम मुट्ठी बांध रहे हैं, वह आदमी जा चुका। और जितनी हमारी मुट्ठी बंधती है उतना वह आदमी बाहर होता चला जा रहा है। हम न रोकें। अब वह है ही नहीं। अब रोकना फिजूल ही है। रोकना भी तभी तक उचित है जब तक कोई रुकता हो, या न रुकता हो। दो में से कुछ भी करता हो तो रोकने का अर्थ है। अब तो वह आदमी है ही नहीं! तो घर के लोगों ने महावीर से कहा कि अब आप जाना चाहें तो जा सकते हैं। और उन्होंने कहा, अब तो बहुत देर हो चुकी है! मैं तो जा चुका हूं! अब मैं यहां नहीं हूं।
हिंसा की पहली गहरी चोट इन दो बातों से है जो ख्याल में ले लेनी चाहिए। क्या दूसरा है? जब तक दूसरा है तब तक हिंसा जारी रहेगी। और दूसरे के कारण आप एक झूठा मैं, एक झूठा अहंकार पैदा करेंगे, जो आप नहीं हैं। लेकिन दूसरों से काम चलाने के लिए पैदा करना पड़ेगा।
अहंकार कामचलाऊ अस्तित्व है। हमें अपना कोई पता नहीं है कि मैं कौन हूं? लेकिन हम कहते हैं कि मैं हूं। जिसे यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं, वह भी कहे मैं हूं, यह जरा ज्यादती है। क्योंकि होने का दावा तभी किया जा सकता है जब कौन होने का पता हो।
मुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूं? लेकिन मैं कहता हूं कि मैं हूं। यह मेरा "मैं" कहां से आया है? यह कहां से पैदा हुआ? अगर यह मेरे ज्ञान से पैदा हुआ है मैं, तब तो बड़े मजे की बात है, क्योंकि जिन्होंने भी स्वयं को जाना, उन्होंने मैं कहना बंद कर दिया। जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने कहा, हम तो नहीं हैं। जिन्होंने स्वयं को पाया, उन्होंने स्वयं को खो दिया। जिन्होंने स्वयं को नहीं पाया, वे कहते हैं, मैं हूं। यह मैं कहां से आया है? यह आपके भीतर से नहीं आया है। इसे कहना चाहिए सोशल बाई प्रोडक्ट है। यह समाज ने पैदा करवा दिया है। वह जो दूसरे हैं, उनके साथ व्यवहार करने के लिए आपको एक शब्द खोज लेना पड़ा है कि मैं हूं। जैसे हमने नाम खोज लिया है। बच्चा पैदा होता है बिना नाम के, नेमलेस। फिर हम उसको एक नाम दे देते हैं-- राम, कृष्ण, कुछ भी नाम दे देते हैं। वह नाम बच्चे के भीतर से नहीं आता, समाज उसे दे देता है। फिर वह जिंदगी भर राम बना रहता है। वह इस शब्द के लिए लड़ेगा, अगर किसी ने गाली दे दी तो लड़ेगा।

रामतीर्थ अमरीका में थे। कुछ लोगों ने गालियां दीं, तो वे हंसते हुए
घर लौटे। और जब लोगों को पता चला, उनके मित्रों को, कि उनको गालियां दी गईं तो वे बहुत नाराज हुए। रामतीर्थ को हंसते हुए देख कर उन्होंने पूछा कि आप पागल तो नहीं, आप हंसते क्यों हैं? गालियां दी गई हैं। रामतीर्थ ने कहा, मुझे कोई गाली देता तो मैं कोई जवाब देता। वे लोग राम को गाली दे रहे थे। राम से अपना क्या लेना-देना है? इस नाम के बिना भी मैं हो सकता था। दूसरे नाम का भी हो सकता था। तीसरे नाम का भी हो सकता था। कोई ए बी सी डी को गाली दे दे, इससे लेना-देना क्या? जब वे राम को गाली दे रहे थे तब हम भी भीतर बड़े खुश हो रहे थे, कि देखो राम, कैसी गालियां पड़ रही हैं, आया मजा? बनोगे राम तो गाली पड़ेगी। उन्होंने नाम दिया, उन्होंने गालियां दीं। हम बाहर थे। नाम भी उनका, गाली भी उनकी। वे खुद ही खेल रहे थे। कुछ लोगों का खेल होता है। कुछ लोग ताश के पत्ते अकेले खेलते हैं। दोनों तरफ से चाल चलते हैं। होना चाहिए उन्हें पागलखाने में, लेकिन होते बहुत बुद्धिमान लोग हैं। समाज दोहरी चाल चलती है--नाम भी देती है, गाली भी देती है। प्रशंसा भी देती है, निंदा भी देती है। आदर भी देती है, अपमान भी देती है। दोहरी चाल है समाज की। और उस दोहरी चाल में आदमी बुरी तरह फंसता है। वह दूसरा भी झूठ है और यह मैं? यह मेरा "मैं" भी झूठ है। ये दो झूठ एक साथ जिंदा रहते हैं। जिस दिन दूसरा गिरता है, उसी दिन मैं गिर जाता है। इधर मैं गिरता, उधर दूसरा गिर जाता है।
मैं और तू के गिर जाने पर जो शेष रह जाता है वह अहिंसा है। तो जब तक हम
कह सकते हैं, तू, तब तक हिंसा जारी रहेगी। जब तक हम कह सकते हैं, मैं... मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप "मैं" शब्द का उपयोग न करेंगे। मैं शब्द का उपयोग करना ही पड़ेगा। महावीर भी करते हैं, लेकिन तब वह शब्द है, लिंग्विस्टिक ट्रिक, तब वह भाषा का खेल है। तब वह अस्तित्व नहीं है। तब "मैं" सिर्फ एक शब्द है, जो उपयोगी है। बहुत से शब्द उपयोगी हैं, लेकिन अस्तित्व में नहीं हैं, अस्तित्व से उनका कोई संबंध नहीं है।
ध्यान रहे, इस मैं और तू के बीच जो उपद्रव पैदा हुआ है, वह हिंसा है। मैं और तू के बीच पैदा हुआ उपद्रव होगा ही। दो झूठ खड़े हैं। दो झूठों के बीच जो भी होगा, वह उपद्रव ही हो सकता है। हां, यह उपद्रव कभी प्रीतिपूर्ण हो सकता है, कभी अप्रीतिपूर्ण हो सकता है। कभी यह उपद्रव प्रेम बन सकता है, कभी घृणा बन सकता है। यह बात दूसरी है। लेकिन जब तक "मैं" है और जब तक "तू" है तब तक हिंसा है। यह हिंसा का पहला और सूक्ष्मतम रूप है। फिर हिंसा के बहुत रूप हैं जो इससे फैलते चले जाते हैं। उनको तो ऐसे ही गिना दूं, क्योंकि अगर ओरिजनल सोर्स हमारे ख्याल में आ जाये। फिर तो अनंत हिंसाएं हैं। उनका सारा हिसाब लगाना तो बहुत मुश्किल है।
अहिंसा तो एक है, हिंसाएं अनंत हैं। हिंसा मल्टी-डायमेंशनल है। लेकिन निकलती एक ही झरने से है। मैं और तू का झरना, या कहें आत्म-अज्ञान का झरना।
महावीर से अगर कोई पूछेः अहिंसा क्या है? तो वे कहेंगेः आत्मज्ञान।
हिंसा क्या है? तो वे कहेंगेः आत्म-अज्ञान। अपने को न जानना हिंसा है।
यह बड़ी अजीब बात है। हम तो समझते हैं कि दूसरे को दुख देना हिंसा है।
हम तो समझते हैं, दूसरे को सुख देना अहिंसा है। लेकिन ध्यान रहे, दूसरे को चाहे सुख दो, चाहे दुख दो, हर हालत में दुख ही पहुंचता है। देने की सब आकांक्षाएं व्यर्थ हो जाती हैं, क्योंकि दूसरे को सुख दिया ही नहीं जा सकता। सुख सिर्फ स्वयं को दिया जा सकता है। जिस दिन आप आप नहीं रह जाते, दूसरे नहीं रह जाते, उस दिन ही आपकी तरफ मुझसे सुख बह सकता है। और जब तक आपको सुख देने की मैं कोशिश करता हूं, तब तक दुख ही देता हूं। लेकिन हमें ख्याल में नहीं आता।
कभी आपने सोचा कि जिन-जिन को आपने सुख दिया, उन-उन को दुख पहुंचा! लोग रोज शिकायत करते हैं कि हम जिसको भी सुख देते हैं, वह हमें सुख नहीं लौटाता। आप सुख देते होंगे, पहुंचता दुख है। वह भी सुख देता है, पहुंचता दुख है। बड़ी गलतफहमी होती है। जो हम देते हैं वह पहुंचता नहीं, कभी नहीं पहुंचा।
इसलिए जितने हम उन पर नाराज होते हैं जो हमें सुख देते हैं, उतने हम उन
पर नाराज नहीं होते जो हमें दुख देते हैं। क्योंकि कम-से-कम लेन-देन साफ-
13

सुथरा तो होता है कि वे दुख दे रहे हैं। लेकिन जो हमें सुख देने की बात करते हैं और जब दुख पहुंचता है--जैसे मैं किसी को प्रेम करने लगूं और कल उससे विवाह कर लूं तो मैं सब सुख देने की कोशिश करूंगा और दुख पहुंचेगा। किस पति ने किस पत्नी को कब सुख दिया? किस पत्नी ने किस पति को कब सुख दिया? लेकिन शायद मैं समझूंगा कि मैं सुख पहुंचा रहा हूं और दूसरा दुख पहुंचा रहा है। वही भूल हो रही है दूसरे को भी, वह भी सोच रहा है, मैं सुख पहुंचा रहा हूं, दूसरा दुख पहुंचा रहा है।
मनुष्य जीवन का सारा अंतर्द्वंद्व, सुख पहुंचाने की कोशिश और दुख पहुंचने की स्थिति से पैदा होता है। पहुंचाते सभी सुख हैं, पहुंचता सदा दुख है। असल में दूसरे को हम सुख पहुंचा ही नहीं सकते, दूसरे के साथ हम अहिंसक हो ही नहीं सकते। यह इम्पॉसिबिलिटी है। इसका कोई उपाय नहीं है कि हम दूसरे के साथ अहिंसक हो सकें। हम दूसरे को फूल भी फेंक कर मारेंगे, जब वह लगेगा, तो पत्थर हो जायेगा।
एक फकीर को सूली दी जा रही थी। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे थे, अंगारे फेंक रहे थे। मंसूर लटका था सूली पर और लोग फेंक रहे थे। एक फकीर जुन्नैद नाम का भी उनमें मौजूद था। वह भी एक सूफी संत था। भीड़ बड़ी थी और सभी कुछ-न-कुछ फेंक रहे थे। जुन्नैद के मन में दुख तो था कि मंसूर की हत्या ठीक नहीं हो रही, लेकिन इतनी हिम्मत भी न थी कि कह सके कि यह ठीक नहीं हो रहा है। सब लोग कुछ फेंक रहे थे। जुन्नैद कुछ न फेंके तो शायद लोग उसको भी मारें कि तुम ऐसे क्यों खड़े हो? तो जुन्नैद ने एक फूल फेंक कर मारा। सोचा उसने कि मंसूर को लगेगा भी नहीं, मंसूर समझेगा कि फूल फेंका, भीड़ भी समझेगी कुछ फेंका, खाली हाथ नहीं खड़ा रहा। लेकिन लोगों के पत्थर तो मंसूर झेल गया, जुन्नैद का फूल न झेल सका।
जुन्नैद का फूल लगते ही मंसूर तो धाड़ मार कर रोने लगा। अब तक हंस रहा था। जुन्नैद तो घबड़ा गया। जुन्नैद ने कहा, मैंने फूल फेंक कर मारा और आप रोते हो और इतने पत्थर खा गये? मंसूर ने कहा, फूल भी फेंक कर मारा न? मारने से दुख पहुंचता है। कोई पत्थर फेंके, सीधा लेन-देन है। लेकिन फूल? मारते भी हो और छिपाते भी हो। मारना भी चाहते हो और बताना भी नहीं चाहते। चोट गहरी पहुंच गयी जुन्नैद! और ये तो नासमझ थे, इन्हें माफ किया जा सकता था, पर तुम भी मारते हो! पर जुन्नैद ने कहा कि मैंने फूल फेंका है। मंसूर ने कहा, कुछ भी फेंको, चोट लग जाती है! असल में फेंकते ही हम तब हैं जब दूसरा है, नहीं तो हम फेंकेंगे कहां?
ध्यान रहे भगवान की मूर्ति पर चढ़ाये गये फूल भी हिंसा हो जाती है। क्योंकि हम दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं। भक्त वह नहीं है जिसने भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ाये। भक्त वह है जो खोजने निकला और जिसने भगवान के सिवाय कुछ भी न पाया। फूल में भी उसे पाया, और पत्थर में भी उसे पाया। चढ़ाने वाले में भी उसे पाया, चढ़ने वाले में भी उसे पाया। और वह पूछने लगा कि किस पर चढ़ाऊं और किसको चढ़ाऊं? और किसके लिए चढ़ाऊं? और कैसे चढ़ाऊं? और कौन चढ़ाये? जब कोई अहिंसा को उपलब्ध होता है तो दूसरा मिट जाता है। और दूसरा कब मिटता है? जब कोई स्वयं को जानता है तब दूसरा मिटता है, उसके पहले नहीं मिटता। फिर हमारी बहुत तरह की हिंसाएं पैदा होती चली जाती हैं। हम चलते हैं तो हिंसा है, हम उठते हैं तो हिंसा है, हम बैठते हैं तो हिंसा है, हम बोलते हैं तो हिंसा है, हम देखते हैं तो हिंसा है।
इसलिए इस ख्याल में कोई न पड़े कि अगर हमने बहुत स्थूल हिंसाएं रोक लीं
तो कोई फर्क हो जायेगा। कोई आदमी मांसाहार न करे, अच्छा है न करे, लेकिन इस भ्रम में न पड़े, वह बहुत बुरा है कि अहिंसा हो गयी। इतना ही कहे कि थोड़ी-सी हिंसा रुकी। लेकिन ध्यान रहे, यह हिंसा किसी दूसरी जगह से निकलना शुरू न हो जाये।
यह निकलेगी, यह मार्ग खोजेगी। क्योंकि हिंसा मिटी नहीं है, वह मिट नहीं सकती, इस भांति नहीं मिट सकती। अगर मांस खाना छोड़ दिया है तो अक्सर आप देखेंगे कि मांसाहारी जितना भला आदमी मालूम पड़ेगा, गैर-मांसाहारी उतना भला आदमी नहीं मालूम पड़ेगा। यह बड़ी अजीब-सी बात है, बड़ी दुखद है, लेकिन है। साधारणतः जो शराब पी लेता है, सिगरेट पी लेता है, होटल में खाना खा लेता है, वह थोड़ा-सा विनम्र आदमी मालूम पड़ेगा। जो सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं

खाता, होटल में नहीं खाता, ऐसा जीता है, ऐसा नहीं जीता, वह अविनम्र और कठोर होता चला जायेगा।
जो हिंसा उसकी निकलती नहीं है वह इकट्ठी होकर उसके भीतर संगृहीत होनी शुरू हो जाती है। इसलिए आमतौर से जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं, वे अच्छे सिद्ध नहीं होते। दुर्घटना है यह। बुरा आदमी कई बार बहुत अच्छा सिद्ध होता है, और अच्छे आदमी अक्सर बुरे सिद्ध होते हैं। अच्छे आदमी के साथ दोस्ती तो मुश्किल ही है, बुरे आदमी के साथ ही दोस्ती हो सकती है। और दोस्ती के लिए भी थोड़ा-सा विनम्र दिल चाहिए, अच्छे आदमी के पास वह नहीं रह जाता। इसलिए महात्माओं से दोस्ती बहुत मुश्किल है। दो महात्माओं की भी मुश्किल है, औरों की तो मुश्किल ही है।
आप महात्मा के अनुयायी हो सकते हैं या दुश्मन हो सकते हैं, दोस्त नहीं
हो सकते। अच्छे आदमी के पास दोस्ती खो जाती है, कठोर हो जाता है। हाथ फैलाता है जो वह दोस्ती के लिए, वह खतम हो जाता है। अक्सर जो समाज, जिसको हम कहें कि सहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क नहीं करते, वहां बड़ी मात्रा में भले लोग मिल जाते हैं। जो समाज असहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क करते हैं, वहां अच्छा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बुराई बाहर से तो रुक जाती है और भीतर इकट्ठी हो जाती है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि ऋषि-मुनियों से ज्यादा क्रोधी आदमी को खोजना कठिन हो जाता है। दुर्वासा ऋषि-मुनि में ही पैदा हो सकते हैं। कहीं और नहीं पैदा हो सकते हैं।
इधर मैं निरंतर सोचता रहा तो मेरे ख्याल में आया कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता, थोड़ा मांस खा लेता, थोड़ा बे-वक्त जग जाता, थोड़ा जाकर कहीं नृत्यगृह में नाच कर लेता, तो शायद दुनिया में करोड़ों आदमी मरने से बच सकते थे। लेकिन हिटलर सिगरेट नहीं पीता, मांस नहीं खाता, चाय नहीं पीता। पक्का शाकाहारी, प्युरिटन, शुद्धतावादी; नियम से सोता, नियम से उठता ब्रह्म-मुहूर्त में। सख्त नीतिवादी आदमी है, चारों तरफ से सख्त है। सारी शक्ति इकट्ठी हो गयी है।
कई बार ऐसा लगता है कि थोड़े अच्छे आदमी भी थोड़े से, जिसको इनोसेंट नानसेंस कहें, निर्दोष बेवकूफियां कहें, ऐसे थोड़े-से काम करें, तो विनम्र और सरल हो जाते हैं। लेकिन अच्छे आदमी सदा ही अच्छा करने की इतनी चेष्टा करते हैं! अच्छा होना बहुत दूसरी बात है, अच्छा करना बहुत दूसरी बात है। अच्छा करने से कोई कभी अच्छा नहीं होता। अच्छा होने से अच्छा करना निकल सकता है। वह बहुत दूसरी बात है। लेकिन हम सदा उल्टा पकड़ते हैं।
हमने देखा महावीर को कि महावीर मांस नहीं खाते, तो हमने सोचा हम भी मांस न खायेंगे तो महावीर जैसे अच्छे हो जायेंगे। भूल हो गयी, तर्क गलत हो गया, कहीं गणित चूक गया। महावीर कुछ हो गये हैं, इसलिए मांस खाना असंभव है। मांस न खाने से कोई महावीर नहीं हो सकता। और अगर मांस न खाने से कोई महावीर हो सके तो महावीर होना दो का--ैडी का हो गया। जितनी कीमत मांस की, उतनी ही कीमत महावीर की हो गयी। उससे ज्यादा न रही। इतना सस्ता मामला नहीं है। धर्म इतना सस्ता नहीं है कि हम यह न खायेंगे तो हम धार्मिक हो जायेंगे; कि हम यह न पीयेंगे तो हम धार्मिक हो जायेंगे; कि हम रात में पानी न पीयेंगे तो धार्मिक हो जायेंगे।
मैं नहीं कहता हूं कि आप पीयें। ध्यान रहे, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि रात में पानी पीयें। पीने से भी धार्मिक नहीं हो जायेंगे। नहीं पीते हैं, भला है; लेकिन इस भूल में न पड़ जाना कि धार्मिक हो गये, अहिंसक हो गये। वह बड़ा खतरा है, बहुत सस्ता काम किया और बहुत महंगा विश्वास पैदा हो गया। ना कुछ किया और सब कुछ पाने का ख्याल हो गया। कंकर-पत्थर बीने और समझा कि हीरे-जवाहरात हाथ आ गये। यह भूल हो गयी, अहिंसा के साथ यह भूल बहुत गहरी हो गयी है। क्योंकि अहिंसा को हमने पकड़ा है आचरण से, गहरे से नहीं, अध्यात्म से नहीं। आचरण से अहिंसा पकड़ी जायेगी तो खतरनाक है। और जब आचरण से कोई अहिंसा को पकड़ता है, तब सूक्ष्म रूप से हिंसक होता चला जाता है।
इस संबंध में एक बात और फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। जब हिंसा सूक्ष्म बनती है तो पहचान के बाहर हो जाती है। मैं आपको कई तरह से दबा सकता हूं। एक दबाना हिटलर का भी है--आपकी छाती पर छुरी रख देगा। एक दबाना महात्मा का भी होता है--आपकी छाती पर छुरी नहीं रखेगा, अपनी छाती पर छुरी रख लेगा। एक

दबाना मेरा यह हो सकता है कि मार डालूंगा अगर मेरी बात न मानी। और एक दबाना यह हो सकता है कि मर जाऊंगा अगर मेरी बात न मानी। लेकिन दबाना, कोअर्शन जारी है। अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाते हैं, बुरे लोग बुरे ढंग से दबाते हैं। लेकिन बुरे लोग फिर भी सिनसियर हैं, सीधी है बात, जानते हैं कि हाथ में छुरी है। अच्छे आदमी जानते हैं कि हाथ में माला है। लेकिन माला से भी फांसी लगायी जा सकती है। इसका बोध नहीं होता।
और अगर हिंसा सूक्ष्म हो तो दो रूप लेती है। एक तो दूसरे की तरफ अहिंसा का चेहरा बनाती है, हिंसा का काम करती है; और दूसरी तरफ अगर हिंसा और भी सूक्ष्म हो जाये तो अपने को भी सताना शुरू कर देती है। मजा यह है कि अहिंसा दूसरे को भी नहीं सता सकती, हिंसा अंततः अपने को भी सता सकती है। तो हिंसा अंत में सेल्फ-टार्चर भी बन जाती है।
जैसे मैंने कहा--सैडिस्ट। दो तरह के लोग होते हैं। आम तौर से दो ही तरह
के लोग होते हैं, तीसरी तरह का आदमी कभी-कभी होता है। कभी कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई जीसस, कभी... । आम तौर से दो तरह के आदमी होते हैंः दूसरों को सताने वाले लोग और अपने को सताने वाले लोग, परपीड़क और आत्मपीड़क। जैसा मैंने कहा द सादे के बाबत कि वह प्रेम करेगा तो दूसरे को सतायेगा, वैसा एक आदमी हुआ मैसोच। वह अपने को ही सतायेगा। जब तक सुबह से उठ कर अपने को दस-पचास कोड़े न मार ले, तब तक दिन में उसको ताजगी न आयेगी।
तो दुनिया में कोड़े मारने वाले संन्यासी हुए हैं, कांटों पर लेटने वाले संन्यासी हुए हैं, कांटों के जूते पहनने वाले संन्यासी हुए हैं, घाव बना लेने वाले संन्यासी हुए हैं। ये किस तरह के लोग हैं? यह संन्यास हुआ? यह धर्म हुआ?
एक आदमी दूसरे को भूखा मारे तो हम कहेंगे अधार्मिक, और एक आदमी अपने
को भूखा मारे तो हम जुलूस निकालेंगे! बड़े आश्चर्य की बात है। क्या दूसरे को सताना अधार्मिक तो अपने को सताना धार्मिक हो सकता है? सताना अगर अधार्मिक है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसको सताया? हां, दूसरे को सताते तो दूसरा रक्षा भी कर सकता था, अपने को सतायेंगे तो रक्षा का भी उपाय नहीं है। अपने को सताना बहुत आसान है। दूसरे को सताने में हजार तरह की कठिनाइयां हैं--समाज है, कानून है, पुलिस है, अदालत है। अभी तक अपने को सताने के खिलाफ न कोई कानून है, न कोई पुलिस है, न कोई अदालत है। होनी तो चाहिए, क्योंकि कुछ दुष्ट अपने को सताते हैं। जिस दिन अच्छी दुनिया होगी उस दिन उनके लिए भी अदालत होगी।
और ध्यान रहे जो अपने को सताता है, वह सब तरह से दूसरे को सतायेगा ही। क्योंकि जो अपने को नहीं छोड़ता है, वह दूसरे को कैसे छोड़ सकता है? यह असंभव है। यह बिल्कुल असंभव है। अगर मैंने अपने को भूखा रख कर जुलूस निकलवा लिया तो ध्यान रखिये मैं आपको भी भूखा रखवाने के सब उपाय करूंगा। और जब तक आपका जुलूस न निकल जाये तब तक चैन न लूंगा। हिंसा और गहरी और सूक्ष्म हो जाती है तो मैसोचिस्ट बन जाती है, आत्म-पीड़क बन जाती है।
महावीर की मूर्ति देखी? यह आदमी मालूम पड़ता है कि इसने खुद को सताया होगा? इस आदमी का शरीर देखा? इस आदमी की शान देखी? इस आदमी का सौंदर्य देखा? ऐसा लगता है कि इसने खुद को सताया होगा? कथाएं झूठी होंगी या फिर यह मूर्ति झूठी है! इस आदमी ने अपने को सताया नहीं है। महावीर जैसी सुंदर प्रतिमा, मैं समझता हूं, किसी की भी नहीं है। मैं तो ऐसा ही सोचता हूं निरंतर कि महावीर के नग्न हो जाने में उनका सौंदर्य भी कारण है। असल में कुरूप आदमी नग्न नहीं हो सकता। कुरूप आदमी वस्त्र को सदा संभाल कर रखेगा, क्योंकि वस्त्रों में सौंदर्य को कोई नहीं छिपाता, वस्त्रों में सिर्फ कुरूपता छिपायी जाती है।
जो-जो अंग सुंदर होते हैं वह तो हम वस्त्रों के बाहर कर देते हैं। जो-
जो अंग कुरूप होते हैं, उन्हें हम वस्त्रों में छिपा लेते हैं। महावीर सर्वांग-सुंदर मालूम होते हैं। ऐसे अनुपात वाला शरीर मुश्किल से दिखाई पड़ता है। इस आदमी की जितनी सताने की कथाएं हैं, मुझे नहीं लगता, इस आदमी पर घटी होंगी। अन्यथा हमें मूर्ति बदल देनी चाहिए। यह मूर्ति सच्ची नहीं मालूम होती।

मैं मानता हूं कि मूर्ति सच्ची है, कथाएं झूठी हैं। असल में कथाएं मैसोचिस्ट्स ने लिखी हैं। कथाएं उन्होंने लिखी हैं जो स्वयं को सताने के लिए उत्प्रेरित हैं। वे कथाएं ढाल रहे हैं। वे महावीर के आनंद को भी दुख बना रहे हैं। वे महावीर की मौज को भी त्याग बना रहे हैं। वे महावीर के भोग को भी, परम भोग को भी, त्याग की व्याख्या दे रहे हैं। मेरी दृष्टि में महावीर महल को छोड़ते हैं, क्योंकि बड़ा महल उन्हें दिखाई पड़ गया है। उनकी दृष्टि में वे सिर्फ महल को छोड़ते हैं, कोई बड़ा महल दिखाई नहीं पड़ता। मैं जानता हूं कि महावीर सोने को छोड़ते हैं, क्योंकि वह मिट्टी हो गया और परम स्वर्ण उपलब्ध हो गया है।
अगर महावीर किसी दिन खाना नहीं खाते तो वह अनशन नहीं है, उपवास है। अनशन का मतलब है भूखे मरना। उपवास का मतलब है इतने आनंद में होना कि भूख का पता भी न चले। वह बहुत और बात है। वह बात ही और है। उपवास शब्द आप सुनते हैं! उपवास शब्द में रोटी, भोजन, खाना-पीना कुछ भी नहीं आता। उस शब्द में ही नहीं है वह। उपवास का मतलब हैः भीतर, भीतर, और पास और पास होना। टु बी नीयरर टु वन सेल्फ। उपवास का इतना ही मतलब है, अपने पास होना। जब कोई आदमी बहुत गहरे में, भीतर अपने पास होता है, तो शरीर के पास नहीं हो पाता; इसलिए शरीर की भूख-प्यास का उसे स्मरण नहीं होता। अगर शरीर के पास होंगे तभी तो ख्याल आयेगा।
जब ध्यान बहुत भीतर है तो शरीर से ध्यान चूक जाता है। उपवास का मतलब है, ध्यान की अंतर्यात्रा। उपवास अनशन नहीं है। लेकिन मैसोचिस्ट उपवास को अनशन बना देगा। वह कहेगा कि बिना भूखे रहे आत्मा नहीं मिल सकती। भूखे रहने से आत्मा के मिलने का क्या संबंध हो सकता है? आत्मा भूख को प्रेम करती है? भूखे रहने से आत्मा के मिलने से कोई संबंध नहीं है। हां, आत्मा के मिलने की घड़ी में भूखा रहना हो सकता है। कभी आपने ख्याल किया हो, न किया हो तो अब करना, जिस दिन आप आनंदित होंगे, उस दिन भोजन ज्यादा नहीं कर पायेंगे। अगर कोई प्रियजन घर में आ जाये और आप बहुत आनंदित हों तो भोजन कम हो जायेगा। आनंद इतना भर देता है, इट इज सो फुलफिलिंग, कि भीतर कुछ खाली नहीं रह जाता जिसमें भोजन डालो। महावीर ने जिस आनंद को जाना है वह तो परम आनंद है, वह इतना भर देता है, इतना भर देता है भीतर, कि जगह खाली नहीं रह जाती। दुखी आदमी ज्यादा खाना खाते हैं। ध्यान रहे जिस दिन आप दुख में होंगे
उस दिन आप ज्यादा खाना खा जायेंगे, क्योंकि आप इतने खाली होंगे। तो जो आदमी जितना दुखी है, उतना ज्यादा खाना खाने लगेगा।
असल में बचपन में बच्चे को पहली दफे ही यह बोध हो जाता है कि सुख और खाने में कोई संबंध है। मां जब बच्चे को पूरा प्रेम करती है तो दूध भी देती है और उस प्रेम में उसे आनंद भी मिलता है। जिस बच्चे को पक्का आश्वासन है कि जब उसे दूध चाहिए मिल जायेगा, वह बच्चा ज्यादा दूध नहीं पीता। मां परेशान रहती है कि ज्यादा पिलाये। वह ज्यादा नहीं पीता, क्योंकि वह जानता है, जब भी चाहिए तब मिल जायेगा। लेकिन अगर नर्स हो दूध पिलाने वाली... और कई माताएं सिर्फ नर्सेस हैं, उन्होंने बच्चे को पेट में लिया, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता! अगर मां इससे दुखी होती और बच्चे को जबर्दस्ती दूध से अलग करती है तो बच्चा ज्यादा पीने लगेगा, क्योंकि भविष्य का भरोसा नहीं है। बच्चा चिंतित है, एंक्जाइटी से भरा हुआ है। इसलिए जहां जितनी ज्यादा चिंता होगी वहां उतना ही भोजन ज्यादा शुरू हो जायेगा। चिंतित लोग ज्यादा खाना खाने लगते हैं।
चिंतित लोग खाली हो जाते हैं। चिंता एक तरह की एंपटीनेस है। वह भीतर
सब खाली कर देती है। आदमी ज्यादा खाने लगता है। ज्यादा खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि यह आदमी दुखी है। कम खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि यह आदमी सुखी है।
आनंद तो और आगे की बात है। जब कोई आनंद से भर जाता है तो महीनों भी बीत सकते हैं। और ध्यान रहे, महावीर के महीनों उपवास में बीते। महीनों उन्होंने भोजन नहीं किया, ऐसा नहीं कहूंगा--भोजन नहीं कर पाये, ऐसा कहूंगा। ऐसे भरे हुए थे! लेकिन महीना इतने आनंद से बीता हो तो भी महावीर के शरीर पर तो नुकसान होना ही चाहिए भोजन के न होने का। यह बड़े मजे की बात है कि शरीर को नुकसान जितना भोजन के न होने से पहुंचता है, उतना भोजन नहीं

मिला इससे पहुंचता है। भोजन के न होने से इतना नुकसान नहीं पहुंचता, जितना नहीं मिला इससे पहुंचता है। गहरे में शरीर को जो नुकसान पहुंचते हैं वह मनोदशाओं से पहुंचते हैं।
अभी यूरोप में एक महिला थी... और कुछ दिनों पहले बंगाल में एक महिला थी। बंगाल में प्यारी बाई नाम की एक महिला थी, जिसने तीस साल, पूरे तीस साल भोजन नहीं किया और शरीर को कोई नुकसान ही नहीं पहुंचा। और यह महावीर की बात तो पुरानी हो गयी, इसलिए इसकी मेडिकल परीक्षा का कोई उपाय नहीं है। लेकिन इस प्यारी बाई के सारे के सारे मेडिकल परीक्षण हुए। तीस साल उसने कोई भोजन नहीं किया। उसके पेट में एक दाना नहीं गया। उसकी सारी अंतड़ियां सिकुड़ कर सूख गयीं। लेकिन उसके स्वास्थ्य में कोई फर्क नहीं पहुंचा। क्या हुआ? एक मिरैकल हुआ? एक चमत्कार हुआ! इसे क्या हो गया? मेडिकल साइंस को समझाना मुश्किल हो गया कि इसे क्या हुआ।
असल में वह इतनी आनंदित थी कि हम सोच भी नहीं सकते कि आनंद भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि भोजन आनंद बनता है। दूसरा छोर हमें पता नहीं कि आनंद भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक छोर जानते हैं कि भोजन आनंद बनता है, दूसरा छोर भी है। सब चीजें कनवर्टीबल हैं। अगर पानी बरफ बन सकता है तो बरफ पानी बन सकता है। अगर एनर्जी मैटर बन सकती है तो मैटर एनर्जी बन सकता है। अगर भोजन आनंद बनता है तो आनंद भोजन बन सकता है। बना है! प्यारी बाई तीस साल तक भूखे रह कर कह गयी कि भूखे महावीर ने अगर बारह साल में कुल तीन सौ पैंसठ दिन भोजन किया होगा तो यह अनशन नहीं था, अन्यथा शरीर चला गया होता। आनंद भोजन बन गया।
अभी यूरोप में एक महिला थी। उस पर तो और भी प्रयोग हो सके। वह परम स्वस्थ थी, असाधारण रूप से स्वस्थ थी। और वर्षों उसने भोजन नहीं किया। क्या हुआ? वह कृष्ण की दीवानी नहीं थी। यह प्यारी बाई कृष्ण की दीवानी थी, वह क्राइस्ट की दीवानी थी। और प्यारी बाई से भी ज्यादा महत्वपूर्ण घटना उसकी जिंदगी में थी। क्योंकि हर शुक्रवार को, जब क्राइस्ट को सूली लगी, तब उसके दोनों हाथों से खून बहने लगता था, बिना किसी चोट पहुंचाये। इतनी एक हो गयी थी एम्पैथी में कि वह ऐसा नहीं बोलती थी कि जीसस ने कहा, वह ऐसा ही बोलती थी कि मैंने कहा था--जब मुझे सूली लगी थी तो मैंने कहा था, इन सबको माफ कर दो, क्योंकि ये निर्दोष हैं और नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं। तो ठीक शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ फैल जाते, आंखें बंद हो जातीं और उसके हाथ की साबित गद्दियों में से खून गिरना शुरू हो जाता। स्टिगमैटा शुरू हो जाता। शुक्रवार की रात घाव विदा हो जाते। खून बंद हो जाता। दूसरे दिन हाथ बिल्कुल ठीक हो जाते। और सैकड़ों बार उसके हाथ से खून बहा, और भोजन उसका बंद! और तब तो बड़ी मुश्किल हो गयी, उसका वजन कम न हो! तो क्या हुआ?
एक बहुत कीमती बात आपसे कहना चाहता हूं। वह यह कि कुछ सूत्र हैं, कुछ राज हैं, जिनके द्वारा आनंद भी भोजन बन जाता है। लेकिन वह उपवास है, वह अनशन नहीं है।
अहिंसा न तो किसी और को सताती, न स्वयं को सताती। अहिंसा सताती ही नहीं। हिंसा ही सताती है। हिंसा के गृहस्थ रूप हैं, हिंसा के संन्यस्त रूप हैं; हिंसा के अच्छे रूप हैं, बुरे रूप हैं। और अगर दोनों से हम सजग हो जायें तो शायद अहिंसा की खोज हो सकती है।
चार दिन तक एक-एक सूत्र की खोज आपके साथ करना चाहूंगा और पांचवें दिन, अंतिम दिन इन चारों सूत्रों में कैसे उतरा जा सकता है, उसकी बात करूंगा। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम, ये चार परिणाम हैं और पांचवां सूत्र अप्रमाद, अवेयरनेस, इन परिणामों तक पहुंचने का मार्ग है। जो मिलेगा, वह है सत्य। जो खिलेगा जीवन में, जिसकी फ्लावरिंग होगी, वह है ब्रह्मचर्य। मेरी बातें इतने प्रेम और शांति से सुनीं, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
शणमुखानंद हाल, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया दूसरा प्रवचन

अपरिग्रह

मेरे प्रिय आत्मन्,
दूसरे महाव्रत "अपरिग्रह" को समझने के लिए परिग्रह को समझना आवश्यक है। बड़ी भ्रांतियां हैं परिग्रह के संबंध में। परिग्रह का अर्थ वस्तुओं का होना नहीं होता। परिग्रह का अर्थ होता है--वस्तुओं पर मालकियत की भावना। परिग्रह का अर्थ होता है--पजेसिवनेस। कितनी वस्तुएं हैं आपके पास, इससे कुछ तय नहीं होता। आप किस दृष्टि से उन वस्तुओं का व्यवहार करते हैं, आप किस भांति उन वस्तुओं से संबंधित हैं, सब कुछ इस पर निर्भर है। और वस्तुओं के ही नहीं, हम व्यक्तियों के प्रति भी परिग्रही, पजेसिव होते हैं।
हिंसा के संबंध में कुछ बातें मैंने कल आपसे कहीं। परिग्रह, पजेसिवनेस, हिंसा का ही एक आयाम, एक डायमेंशन है। सिर्फ हिंसक व्यक्ति ही पजेसिव, परिग्रही होता है। जैसे ही मैं किसी व्यक्ति पर, किसी वस्तु पर मालकियत की घोषणा करता हूं, वैसे ही मैं गहरी हिंसा में उतर जाता हूं। बिना हिंसक हुए मालिक होना असंभव है। मालकियत हिंसा है। वस्तुओं की मालकियत तो ठीक ही है, व्यक्तियों की मालकियत भी हम रखते हैं।
पति मालिक है पत्नी का। पति शब्द का अर्थ ही मालिक होता है, द ओनर। पति
को हम स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब होता है, मालिक। परिग्रह का अर्थ है--स्वामित्व की आकांक्षा। पिता बेटे का मालिक हो सकता है, गुरु शिष्य का मालिक हो सकता है। जहां भी मालकियत है वहां परिग्रह है, और जहां भी परिग्रह है वहां संबंध हिंसात्मक हो जाते हैं। क्योंकि बिना किसी के साथ हिंसा किये मालिक नहीं हुआ जा सकता; और बिना किसी को गुलाम बनाये मालिक नहीं हुआ जा सकता। और बिना परतंत्रता थोपे पजेसिव होना असंभव है।
लेकिन क्यों है मनुष्य के मन में इतनी आकांक्षा कि वह मालिक बने? क्यों दूसरे का मालिक बनने की आकांक्षा है? दूसरे के मालिक बनने में इतना रस क्यों है?
बहुत मजे की बात हैः चूंकि हम अपने मालिक नहीं हैं, इसलिए। जो व्यक्ति अपना मालिक हो जाता है, उसकी मालकियत की धारणा खो जाती है। लेकिन हम अपने मालिक नहीं हैं और उसकी कमी हम जिंदगी भर दूसरों के मालिक होकर पूरी करते रहते हैं।
लेकिन कोई चाहे सारी पृथ्वी का मालिक हो जाये तो भी कमी पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि अपने मालिक होने का मजा और है, और दूसरे के मालिक होने में सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं। अपना मालिक होना एक आनंद है, दूसरे का मालिक होना सदा दुख है। इसलिए जितनी बड़ी मालकियत होती है, उतना बड़ा दुख पैदा हो जाता है। जिंदगी भर हम कोशिश करते हैं कि वह जो एक चीज चूक गई है, कि हम अपने मालिक नहीं हैं, सम्राट नहीं हैं अपने, वह हम दूसरों के मालिक बन कर पूरा करने की कोशिश करते हैं।
यह ऐसे ही है जैसे कोई प्यास को आग से पूरा करने की कोशिश करे और प्यास
और बढ़ती चली जाये। आग से प्यास नहीं बुझायी जा सकती। दूसरे का मालिक बन कर अपनी मालकियत नहीं पायी जा सकती। बल्कि बड़े मजे की बात है कि जितना ही हम दूसरे के मालिक बनते हैं, जिसके हम मालिक बनते हैं उसका हमें गुलाम भी बन जाना पड़ता है। असल में मालकियत दोहरी परतंत्रता है। जिसके हम मालिक बनते हैं वह तो हमारा गुलाम बनता ही है, हमें भी उसका गुलाम बन जाना पड़ता है। मालिक अपने गुलाम का भी गुलाम होता है। पति कितना ही पत्नी का मालिक बनता हो, लेकिन गुलाम भी हो जाता है। और सम्राट कितने ही बड़े राज्य का मालिक हो, पूरी तरह गुलाम हो जाता है। गुलाम हो जाता है भय का, क्योंकि जिन्हें हम परतंत्र करते हैं, उन्हें हम भयभीत कर देते हैं। और जिन्हें हम परतंत्र करते हैं, उनकी तरफ से हमारे प्रति विद्रोह और बगावत शुरू हो जाती है। और जिन्हें हम परतंत्र करते हैं, वे भी हमें परतंत्र करना चाहते हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक गाय को रस्सी बांध कर जंगल की तरफ ले जा रहा है और एक संन्यासी उस रास्ते से गुजर रहा है। वह आदमी गाय को खींचता हुआ जंगल की तरफ ले जा रहा है। उस संन्यासी ने खड़े होकर उस गांव के लोगों से पूछा कि मैं एक सवाल पूछना चाहता हूं। यह गाय इस आदमी के साथ बंधी है या यह आदमी इस गाय के साथ बंधा है? गांव के लोगों ने कहा, बात सीधी और साफ है, कि गाय आदमी के साथ बंधी है। तो संन्यासी ने पूछा, अगर गाय भाग जाये तो आदमी उसके पीछे भागेगा या नहीं भागेगा? उन लोगों ने कहा, भागना ही पड़ेगा। तो उस संन्यासी ने कहा, गाय बहुत दृश्य रस्सी से बंधी है; और यह आदमी बहुत अदृश्य रस्सी से बंधा है। यह भी गाय को छोड़ नहीं सकता। गाय के गले में रस्सी है जो बहुत साफ है और दिखाई पड़ रही है। इस आदमी के गले में भी गाय की रस्सी है जो बहुत साफ है, पर दिखाई नहीं पड़ रही है।
मालिक और गुलाम में इतना ही फर्क है कि एक की गुलामी दृश्य होती है और दूसरे की गुलामी अदृश्य होती है। इससे ज्यादा कोई भी फर्क नहीं है। हम जिसे गुलाम बनाते हैं वह हमें भी गुलाम बना लेता है। द पजेसर बिकम्स द पजेस्ड। अपरिग्रह खोज है इस बात की कि मैं अपना मालिक कैसे हो जाऊं।
सुना है मैंने, एक फकीर के मरने का वक्त करीब आ गया था। थोड़े-से पैसे उसके पास थे। उसने अपने शिष्यों से कहा कि इस गांव के सबसे गरीब आदमी को मैं ये पैसे दे देना चाहता हूं। तो गांव के सारे गरीब दूसरे दिन इकट्ठे हो गये। लेकिन उसने किसी को गरीब मानना स्वीकार न किया। एक-एक को उसने कहा कि नहीं तू नहीं है, नहीं तू नहीं है। अभी असली गरीब नहीं आया।
और फिर दोपहर सम्राट अपने रथ से निकला तो उसने अपने पैसों की झोली सम्राट के रथ पर फेंक दी। सम्राट को भी पता था कि सबसे गरीब आदमी को वे पैसे मिलने वाले हैं उस फकीर के। उस सम्राट ने हंस कर कहा कि पागल हो गये हो, सबसे अमीर आदमी पर पैसे फेंकते हो? घोषणा की थी सबसे गरीब आदमी के लिए। तो उस फकीर ने कहा कि जिनके पास कम चीजें हैं उनकी गुलामी भी कम है, उनकी गरीबी भी कम है। तुम्हारे पास चीजें ज्यादा हैं, तुम्हारी गुलामी भी बड़ी है और तुम्हारी गरीबी भी बड़ी है। और मजा यह है सम्राट, कि जिनके पास बहुत कम है शायद उन्होंने और खोज की आशा छोड़ दी हो, किंतु जिनके पास बहुत ज्यादा है उनकी खोज की आशा का भी कोई हिसाब नहीं। तुमसे बड़े गरीब आदमी को मैं इस जमीन पर नहीं जानता हूं। ये पैसे मैं तुम्हें भेंट कर जाता हूं। शायद उस फकीर का कहना ठीक ही था। बड़े गुलाम वे ही हैं जिन्हें दूसरों
के सम्राट होने का भ्रम पैदा हो जाता है। और बड़े गरीब वे ही हैं जो बाहर की संपत्ति से भीतर की गरीबी मिटाना चाहते हैं। और बड़े परतंत्र वे ही हैं जो दूसरों को परतंत्र करके स्वयं की स्वतंत्रता के ख्याल में भटकते हैं। कोई भी आदमी किसी को परतंत्र करके स्वतंत्र नहीं हो सकता। परिग्रह, इसी भ्रांति का नाम है।
मैं स्वतंत्र होना चाहता हूं तो मैं सोचता हूं कि किसी को परतंत्र कर लूं तो मैं स्वतंत्र हो जाऊं। लेकिन परतंत्रता दोहरी है। जंजीरें दोनों तरफ कस जाती हैं। जेलखाने में वे जो कैदी बंद हैं वे ही जेल में बंद नहीं हैं। वह जो जेलखाने के बाहर संतरी खड़ा हुआ है वह भी उतना ही बंधा है। एक दीवाल के बाहर बंधा है, एक दीवाल के भीतर बंधा है। न दीवाल के भीतर वाला भाग सकता है, न दीवाल के बाहर वाला भाग सकता है। और बड़े मजे की बात है कि दीवाल के भीतर वाला तो भागने का उपाय भी करे, दीवाल के बाहर वाला भागने का उपाय भी नहीं करता है। वह इस ख्याल में है कि स्वतंत्र है।
मैंने सुना है कि डाकुओं के एक गिरोह ने एक नेता को पकड़ लिया। जंगल में निकलती थी कार, गाड़ी रोक ली और डाकुओं के गिरोह ने उस नेता को पकड़ लिया। लेकिन वे डाकू बड़े मजेदार लोग थे। नेता तो बहुत घबड़ाया, लेकिन उन डाकुओं ने कहा, घबड़ाओ मत, क्योंकि हम सजातीय हैं, हम एक ही जाति के हैं। उस नेता ने कहा, मैं मतलब नहीं समझा। तो उन डाकुओं ने कहा कि कई बातों में हमारा बड़ा तालमेल है। तुम्हारे आगे पुलिस चलती है, हमारे पीछे पुलिस चलती है। ज्यादा फर्क नहीं है। तुम पुलिस की तरफ से आगे से बंधे होते हो, हम पीछे से बंधे होते हैं। और ध्यान रहे, आगे पुलिस हो तो भागना जरा मुश्किल है। पीछे पुलिस हो तो भागा भी जा सकता है।

जिंदगी के अनूठे रहस्यों में से एक यह है कि हम जिसे भी बांधते हैं उससे हमें बंध ही जाना पड़ेगा। उसे बांधने के लिए भी बंध जाना पड़ेगा। परिग्रह की बड़ी गहराइयां हैं। उसके सूक्ष्मतम हिस्सों को समझ लेना जरूरी है, तो उसके बाहर के विस्तार को भी समझा जा सकता है।
परिग्रह की पहली जो कोशिश है वह यह है कि मुझे यह ख्याल भूल जाये कि मैं परतंत्र हूं। मुझे यह ख्याल भूल जाये कि मैं सीमित हूं। मुझे यह ख्याल भूल जाये कि मैं अपना मालिक नहीं हूं। लेकिन यह ख्याल भुलाया नहीं जा सकता। अगर मैं मालिक नहीं हूं तो नहीं हूं। और कितना ही मैं विस्तार करूं इसे भुलाने का, उस सारे विस्तार के बीच भी मेरे गहरे में मैं जानूंगा कि मैं मालिक नहीं हूं। सिकंदर भी जानता है कि वह मालिक नहीं है, हिटलर भी जानता है कि वह मालिक नहीं है। और जितना ही पता चलता है कि मालिक नहीं हूं, उतना ही वह बाहर की मालकियत को फैलाता चला जाता है, मजबूत करता चला जाता है। जितनी ही बाहर की मालकियत मजबूत होती है, हो सकता है थोड़ी-बहुत देर को भूल जाता हो, लेकिन बार-बार स्मरण लौट आता है कि मैं मालिक नहीं हूं।
हम भीतर मालिक क्यों नहीं हैं? जो भीतर है उसे हम जानते भी नहीं, तो मालिक होना तो बहुत असंभव है।
स्वामी राम अमरीका गये तो अमरीकी प्रेसिडेंट उनसे मिलने आया। और उस अमरीकी प्रेसिडेंट ने राम की बातें बड़ी अजीब सी पायीं। असल में भाषा अलग थी, भाषा अलग होगी ही। संन्यासी जो भाषा बोलता है वह किसी और दुनिया की भाषा है। राम सदा अपने को बादशाह राम कहते थे। उस अमरीकी प्रेसिडेंट ने कहा, मैं जरा समझ नहीं पा रहा। ह्वाट डू यू मीन बाई इट? यह बादशाह राम, इसका मतलब क्या है? आपके पास कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं। कुछ भी तो नहीं है आपके पास सिवाय लंगोटी के। बादशाह कैसे हो?
तो राम ने कहा, यह लंगोटी थोड़ी-सी बाधा है मेरी बादशाहत में। इसलिए घोषणा जरा धीरे करता हूं। ऐसे अब मैं किसी चीज से बंधा हुआ नहीं हूं। बस, यह लंगोटी रह गई है। मैं बादशाह हूं! क्योंकि मुझे कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी कोई मांग नहीं है। मेरी कोई चाह नहीं है। यह एक लंगोटी है, यह थोड़ा मुझे बांधे हुए है। और लंगोटी तो मुझे क्या बांधेगी, मैंने ही इसको बांधा हुआ है। इसलिए हम दोनों बंध गये हैं। लंगोटी मुझसे बंध गई है, मैं लंगोटी से बंध गया हूं।
निश्चित ही महावीर अपने को बादशाह कह सकते हैं। महावीर के बड़े भाई ने शायद सोचा होगा कि राज्य छोड़कर चला गया छोटा भाई। सोचा होगा, कैसा पागल है? बड़े के हाथ में सब राज्य दे गया, साम्राज्य दे गया और खुद नंगा होकर फकीर हो गया। नासमझ है। लेकिन बहुत कम लोग समझ पाये कि बादशाह हो गये महावीर, और बड़ा भाई गुलाम रह गया।
बादशाहत इस बात से शुरू होती है कि मैं जो हूं उतना पर्याप्त हूं। इट
इज एनफ टु बी वनसेल्फ। कोई कमी नहीं है जिसे मुझे पूरा करना पड़े। कोई कमी नहीं है जिसकी वजह से मैं खाली रहूं। कोई कमी नहीं है जिसके बिना मुझे लगे कि कुछ अधूरा है। बादशाहत एक इनर फुलफिलमेंट है, एक भीतरी आप्तता है। सब है, इसलिए कोई कमी नहीं है। लेकिन सम्राट के पास कुछ भी नहीं है। बहुत है उसके पास, जो दिखाई पड़ता है चारों तरफ, लेकिन वह खुद ही उसके पास नहीं है। और भीतर एक खालीपन है, भीतर एक एंपटीनेस है, एक रिक्तता है।
भीतर हम सब रिक्त हैं। इस रिक्तता को हम फर्नीचर से भरेंगे, इस रिक्तता को हम मकान से भरेंगे, इस रिक्तता को हम धन से भरेंगे। इस रिक्तता को हम यश, पद, प्रतिष्ठा से भरेंगे। फिर भी हम पायेंगे कि सारी पद-प्रतिष्ठाएं इकट्ठी हो गई हैं; सारा धन का ढेर लग गया है, और भीतर की रिक्तता अपनी जगह खड़ी है। बल्कि पहले इतनी दिखाई नहीं पड़ती थी जितनी अब दिखाई पड़ती है, क्योंकि कंट्रास्ट है--बाहर धन के ढेर लग गये हैं तो भीतर की रिक्तता और प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ने लगती है। गरीब आदमी को अपनी गरीबी उतनी साफ कभी नहीं दिखाई पड़ती जितनी अमीर आदमी को अपनी गरीबी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है।
मेरी दृष्टि में तो अमीरी का एक ही लाभ है कि उससे गरीबी दिखाई पड़ती है। इसलिए मैं सदा अमीरी के पक्ष में रहता हूं। क्योंकि उसके बिना गरीबी कभी दिखाई नहीं पड़ सकती। काले तख्ते पर जैसे सफेद रेखाएं उभर कर दिखाई

पड़ने लगती हैं, ऐसे बाहर इकट्ठे हो गये धन में भीतर की निर्धनता प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ने लगती है। सब होता है बाहर और भीतर कुछ भी नहीं होता है। वह जो भीतर की रिक्तता है, उसी को भरने के लिए परिग्रह है।
लेकिन कोई सोच सकता है कि बाहर की चीजें छोड़ दें तो क्या भीतर की रिक्तता मिट जायेगी? यही असली सवाल है, क्या हम बाहर की चीजें छोड़ कर भाग जायें तो भीतर की रिक्तता मिट जायेगी?
अगर बाहर की चीजों के होने से भीतर की रिक्तता नहीं मिटी तो बाहर की चीजों के न होने से कैसे मिटेगी? बाहर की चीजों के होने से भी न मिटी तो बाहर की चीजों के छूटने से कैसे मिट सकती है?
लेकिन आदमी का मन बुनियादी भूलों में घिरा रहता है। पहले वह सोचता है बाहर की चीजों को इकट्ठा करने से भर लूंगा। फिर जब पाता है कि बाहर की चीजें इकट्ठी हो गईं और भराव नहीं आया, तो सोचता है, बाहर की चीजों को छोड़ कर भर लूं। लेकिन पागल हुआ है। जब चीजों से भरा न जा सका, तो चीजों के हटाने से कैसे भर जाएगा?
इसलिए ध्यान रहे, अपरिग्रह का अर्थ बाहर की चीजों को छोड़ना नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ भीतर की पूर्णता को पाना है। और जब भीतर पूर्णता भरती है, तो बाहर चीजों को भरने की दौड़ विदा हो जाती है।
इसलिए मैंने कहा, परिग्रह का अर्थ वस्तुओं से नहीं है, परिग्रह का अर्थ पजेसिवनेस से है। एक जनक रह सकता है घर में भी लेकिन जनक परिग्रही नहीं है। परिग्रह तो है बहुत, परिग्रही नहीं है। और एक संन्यासी अपरिग्रही दिखाई पड़ता है, और परिग्रही हो सकता है। अक्सर होता है। क्योंकि उसने दूसरी भूल की है। उसने भूल की है कि चीजों को हटा दूंगा। लेकिन चीजों को हटाने से क्या होगा? भीतर का खालीपन, हो सकता है दिखाई पड़ना बंद हो जाये, इतना हो सकता है। इतना हो सकता है कि चूंकि बाहर चीजें न रह जायें इसलिए बाहर भी खाली हो जाये, भीतर भी खाली हो जाये तो कंट्रास्ट न रह जाये और चीजें दिखाई पड़नी बंद हो जायें। लेकिन भीतर का खालीपन बाहर के खालीपन से भी नहीं मिट सकता। भीतर तो भराव चाहिए, भीतर फुलफिलमेंट चाहिए, भीतर एक पूर्णता का पॉजिटिव जन्म, विधायक जन्म चाहिए तो ही बाहर की पकड़ विदा होगी, अन्यथा विदा नहीं हो सकती।
एक फकीर हुआ है डायोजनीज। नंगा गुजर रहा है जंगल से। शायद महावीर की जोड़ का आदमी पश्चिम में वही हुआ। नग्न ही है। उतना ही मस्त, उतना ही आनंदित, उतना ही स्वस्थ। जंगल से गुजरता है। कुछ लोग गुलामों को बेचने बाजार में जा रहे हैं। उन्होंने देखा इस डायोजनीज को--अकेला, नंगा, स्वस्थ, सुंदर, शक्तिशाली। सोचा, अगर यह पकड़ में आ जाये तो इसके दाम अच्छे मिल सकते हैं। मगर डर लगा उन्हें कि इसे पकड़ भी पायेंगे! थे तो वे आठ, लेकिन डर लगा कि इसे पकड़ भी पायेंगे! शक्तिशाली है बहुत। कहीं झंझट न हो जाये। फिर भी आठ हैं, कोशिश कर ली जाये।
उन्होंने बड़ी ताकत इकट्ठी करके डायोजनीज पर हमला बोला, लेकिन डायोजनीज ने हमले का जवाब तो नहीं दिया; या कहें कि जवाब दिया, लेकिन डायोजनीज के ढंग से दिया। बीच में खड़ा हो गया आंख बंद करके और उनसे कहा कि बोलो क्या इरादे हैं? उसने कोई लड़ाई ही न की। वे सब कंप रहे थे भय से। उसने कहा, आश्वस्त हो जाओ, भयभीत मत होओ। मुझसे तुम्हारा कोई बुरा न होगा। क्योंकि जिसने अपने प्रति बुरा करना बंद कर दिया, वह किसी के प्रति बुरा कैसे कर सकता है? बोलो, क्या इरादे हैं?
वे बहुत घबड़ाये। क्योंकि डायोजनीज उनके हमले का जवाब दे देता तो शायद इतने न घबड़ाते। उन्हें कहने में बड़ी कठिनाई हो गई कि हम तुम्हें गुलाम बनाने आये हैं। वे एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। तो डायोजनीज ने कहा, मत फिक्र करो, बोलो, तुम जो कहोगे वही हो जाएगा। उन्होंने नीचे आंखें झुका कर कहा कि हम बहुत शर्मिंदा हैं, लेकिन हम तुम्हें गुलाम बनाने आये हैं। डायोजनीज ने कहा, यह भी खूब बढ़िया रहा। चलो, हम गुलाम हुए। अब क्या इरादे हैं? उन लोगों ने डायोजनीज की तरफ देखा और उन्होंने कहा कि गुलाम हुए? क्या कोई विरोध न करोगे? डायोजनीज ने कहा, हम अपने मन के मालिक हैं। हम गुलाम होना भी चुन सकते हैं, लड़ाई कुछ भी नहीं है। अब कहां चलना है? तो उन्होंने कहा, हम हाथ में जंजीरें डाल दें। डायोजनीज ने कहा, पागलो,

जंजीरों की कोई जरूरत नहीं। हम तो तुम्हारे साथ चल ही रहे हैं। चलो जहां चलना है।
वे डायोजनीज को लेकर बाजार में पहुंचे। भीड़ इकट्ठी हो गई। इतना सुंदर गुलाम शायद ही कभी बिकने आया हो। टिकटी पर खड़ा किया गया डायोजनीज को। और जब नीलाम करने वाले आदमी ने कहा कि जो इस गुलाम को खरीदना चाहे वह बोली शुरू करे। तो डायोजनीज ने कहा, चुप नासमझ, पूछ उनसे कि कौन किसके साथ आया है? वे मेरे पीछे आये हैं कि मैं उनके पीछे आया हूं? बंधा कौन किससे है? मैं उनसे बंधा हूं कि वे मुझसे बंधे हैं? गुलाम शब्द का उपयोग मत करना। हम अपने मालिक हैं। रुक, मैं खुद ही आवाज लगा देता हूं। तो डायोजनीज ने उस टिकटी से खड़े होकर कहा कि अगर कोई एक मालिक को खरीदना चाहे तो एक मालिक बिकने आया हुआ है। भीड़ हैरान हो गई। उन्होंने कहा, मालिक? डायोजनीज ने कहा, मैं अपना मालिक हूं।
यह जो अपनी मालकियत है, यह एक विधायक उपलब्धि है। यह विधायक उपलब्धि
हो जाये तो बाहर की पकड़ छूट जाती है। बाहर की पकड़ सिर्फ इसीलिए है कि भीतर की कोई पकड़ नहीं है। हम बाहर पकड़े चले जाते हैं। और जिसको भी हम बाहर पकड़ते हैं उसकी हम हत्या करना शुरू कर देते हैं।
परिग्रह की जो हिंसा है वह यही है कि अगर हम किसी व्यक्ति को पकड़ेंगे बाहर तो हम उसे मारना शुरू कर देंगे। क्योंकि बिना मारे उसे पजेस नहीं किया जा सकता। उसे मारना ही पड़ेगा। अगर एक गुरु एक शिष्य को पकड़ ले तो वह शिष्य को मारना शुरू कर देगा। क्योंकि जिंदा शिष्य शिष्य नहीं बनाया जा सकता। उसे मारना जरूरी है। इसलिए आज्ञाएं, अनुशासन, नियम, मर्यादा उन सब में उसे मारा जाएगा। उसकी स्वतंत्रता काटी जाएगी। जब वह मुर्दा हो जाएगा तभी शिष्य हो सकता है। एक पति अपनी पत्नी को मारना शुरू कर देगा, एक पत्नी अपने पति को मारना शुरू कर देगी। एक मित्र दूसरे मित्र को मारना शुरू कर देगा। क्योंकि जब उसे बिल्कुल मार डाला जाये, तभी आश्वस्त हुआ जा सकता है कि वह भाग नहीं जाएगा। वह स्वतंत्र नहीं हो जाएगा।
लेकिन इसमें एक बड़ी आंतरिक कठिनाई है। जब हम किसी व्यक्ति को मार कर उसके मालिक हो जाते हैं तो मालिक होने का मजा चला जाता है। यह कंट्राडिक्शन है। बिना मारे मालिक नहीं हो सकते, और मारा कि मजा गया। क्योंकि मरे हुए के मालिक होने में कोई मजा नहीं आता।
इसलिए एक पत्नी से मन दूसरी पत्नी पर जाता है, दूसरी से तीसरी पर जाता है। एक मकान से दूसरे मकान पर, दूसरे से तीसरे मकान पर। एक गुरु से दूसरे गुरु पर, एक शिष्य से दूसरे शिष्य पर। जिस चीज के हम मालिक हो जाते हैं, वह बेमानी हो जाती है। क्योंकि मालिक होते ही वह मुर्दा हो जाती है, और मुर्दा के मालिक होने में कोई ज्यादा मजा नहीं आता। कोई मजा नहीं है। जिंदा का मालिक होना चाहिए।
इसलिए मालकियत में एक दूसरा विरोधाभास है। और वह विरोधाभास यह है कि मालकियत मारती है और मार कर अप्रसन्न हो जाती है। क्योंकि प्रसन्नता खो जाती है। प्रेयसी जितना सुख देती है उतना पत्नी नहीं देती। लेकिन प्रेयसी को तत्काल पत्नी बनाने की इच्छा होती है। क्योंकि प्रेयसी की मालकियत अनिश्चित है। पत्नी की मालकियत सुनिश्चित है। लेकिन पत्नी बनते ही वह मर गई। मरते ही वह बेमानी हो गई।
इसलिए जिस व्यक्ति को हम पा लेते हैं वह बेमानी हो जाता है। हम उसे भूल जाते हैं, वह अर्थ ही नहीं रह जाता। जो लोग व्यक्तियों को मार-मार कर इकट्ठा करते जाते हैं, वे धीरे-धीरे व्यक्तियों से ऊब जाते हैं। क्योंकि मारने में व्यर्थ श्रम करना पड़ता है। श्रम के बाद फल कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए जो समझदार परिग्रही हैं, चालाक, वे व्यक्तियों को छोड़ कर वस्तुओं पर परिग्रह बिठाने लगते हैं। उनको मारने की झंझट नहीं करनी पड़ती। वे मरी-मराई ही होती हैं। इसलिए जो लोग व्यक्तियों से परेशान होकर ऊब गये हैं, वे धन इकट्ठा करने में, पद इकट्ठा करने में लग जाते हैं। वह ज्यादा सुविधापूर्ण है, कनवीनिएंट है। एक घर में कुर्सी ले आये हैं तो वह मरी हुई ही घर में आती है। उसको कहां रखना है, इसके आप पूरे मालिक हैं। रखना है, नहीं रखना है, आप पूरे मालिक हैं। उसको मारने की जद्दोजहद और परेशानी नहीं होती। और जब हम किसी व्यक्ति को घर में लाते हैं तो उसको भी हम कुर्सी

बनाना चाहते हैं। जब तक वह कुर्सी नहीं बनता तब तक हमें बेचैनी रहती है। जब वह कुर्सी बन जाता है तब फिर बेचैनी शुरू हो जाती है।
इसलिए जो चालाक परिग्रही हैं, वे वस्तुओं पर मेहनत करते हैं। जो नासमझ परिग्रही हैं, वे व्यक्तियों पर मेहनत करते रहते हैं। लेकिन दोनों ही अज्ञान की मेहनत हैं। न तो हम व्यक्तियों से भर सकते हैं अपने को, न वस्तुओं से भर सकते हैं अपने को। हमारे हाथ खाली ही रह जायेंगे। भरने की जगह सिर्फ एक है। हम अपने से भर सकते हैं। और कोई भराव नहीं है। इस दुनिया में और कोई भराव है ही नहीं। कभी रहा ही नहीं है। हम सिर्फ अपने से भर सकते हैं। लेकिन अपना हमें कोई पता नहीं है।
इस अपने का कैसे पता लगे? और इस अपने के पता लगने में अपरिग्रह की दृष्टि कैसे सहयोगी हो सकती है? तो एक बात आप से कहना चाहूंगा--जो भी आपके पास है, आल दैट यू हैव, जो भी आपके पास है, उस पर एक दफा गौर से नजर डाल कर देखना कि क्या उससे आप जरा भी, रंचमात्र भी भर सके हैं? जो भी आपके पास है, क्या उसने इंच भर भी कहीं आपको भरा है?
सबके पास कुछ न कुछ है। इस "कुछ" ने आपको जरा भी भरा हो तो फिर आप इस "कुछ" को बढ़ाने में लग जाना। थोड़ा भरा है तो और ज्यादा भर सकेगा, और ज्यादा भर सकेगा, और ज्यादा भर सकेगा। लेकिन अगर इस "कुछ" ने बिल्कुल न भरा हो तो फिर थोड़ा समझना पड़ेगा कि यह "कुछ" कितना ही ज्यादा हो जाये तो भी भर नहीं पाएगा। यह गणित बहुत सीधा है, लेकिन अनुभव हमेशा आशा के सामने हार जाता है। हमारा अतीत का अनुभव तो यही होता है कि परिग्रह भर नहीं पाया, लेकिन भविष्य की आशा यही होती है कि शायद कुछ और मिल जाये, और भर जाये।
सुना है मैंने कि एक गांव में एक आदमी की तीसरी पत्नी मरी और उसने फिर चौथी शादी की। तो गांव के लोग उसे कुछ भेंट करना चाहते थे, लेकिन भेंट करते-करते थक गये थे। तीन दफा शादी कर चुका था। हर बार भेंट कम होती चली गई थी। जब उसने चौथी शादी की तो उम्र भी बहुत हो गई थी और गांव के लोग भी परेशान हो गये थे कि अब क्या भेंट करें। तो गांव के लोगों ने एक तख्ती उसे भेंट की जिस पर लिखा था--अनुभव के ऊपर आशा की विजय। तीन पत्नियों का अनुभव भी उसको चौथी पत्नी से न रोक पाया। पूरा गांव जानता था कि जब तक पत्नी जिंदा रहती है, तब तक वह गांव में पत्नी के जिंदा होने के लिए रोता है। और जब पत्नी मर जाती है तो पत्नी के मरने के लिए रोता है।
अनुभव पर आशा सदा जीत जाती है। परिग्रही का चित्त जो है वह आशा से बंधा हुआ चलता है। अपरिग्रह की दृष्टि तो तभी आयेगी जब आशा पर अनुभव जीते। आपका अतीत, आपका अनुभव पर्याप्त है कहने को कि सब पाकर भी कुछ पाया नहीं गया है। और वे जो राष्ट्रपति के पदों पर पहुंच जाते हैं, वे कुर्सियों पर बैठ कर अचानक पाते हैं कि कुर्सी पर बैठ गये, पाया कुछ भी नहीं गया है। असल में जहां पाना है वह है दिशा बीइंग की, और जो हम पा रहे हैं वह है दिशा हैविंग की। जो हम पा रहे हैं वे हैं चीजें, और जो हमें पाना है वह है आत्मा। ये चीजें कभी भी आत्मा नहीं बन सकतीं। यह भ्रांत-दौड़ एक जिंदगी नहीं, अनंत जिंदगी चलती है। असल में हम अपने पुराने अनुभवों को भुलाते चले जाते हैं। ऐसा नहीं है कि पिछले जन्म के अनुभव हमारे भूल गये हैं, हमने भुला दिये हैं। हम इसी जन्म के अनुभवों को भुलाते, उपेक्षा करते चले जाते हैं। हम सदा ही अनुभव को इंकार करते चले जाते हैं और हम सोचते हैं कि जो अब तक हुआ उससे भिन्न आगे हो सकता है। अनेक जन्मों का अनुभव भी हमें इस बात से नहीं रोक पाता है कि हम वस्तु को आत्मा न बना सकेंगे। हैविंग, बीइंग नहीं बन सकता है। वह असंभावना है।
लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि असंभव की भी आकांक्षा बड़ी रसपूर्ण होती है। जो नहीं हो सकता, उसको करने का भी दिल होता है। कई बार तो इसीलिए होता है कि वह नहीं हो सकता। अब चांद पर चढ़ने का मजा चला गया। हजारों साल से आदमी को था। चांद पर पहुंचने की आकांक्षा बड़ी रसपूर्ण थी, क्योंकि वह असंभव मालूम पड़ता था। वह इतना असंभव मालूम पड़ता था कि जो लोग चांद पर पहुंचने का ख्याल करते थे, उनको हम पागल समझते थे।
अंग्रेजी का तो जो पागल के लिए शब्द है लूनाटिक, उसका मतलब है चांदमारा। वह लूना से बना है। जिस आदमी के दिमाग में चांद छा गया, जो अब

चांद पर पहुंचना चाहता है, तो उसको पागल कहते थे। हिंदी में भी पागल के लिए चांदमारा शब्द है। जिस पर चांद का हमला हो गया, जो असंभव से पीड़ित हो गया। लेकिन हम सब चांदमारे हैं, हम सब लूनाटिक हैं। लूनाटिक इस अर्थ में कि
हम सब असंभव के लिए चाहते रहते हैं। सबसे बड़ा असंभव इस जगत में क्या है--द मोस्ट इंपासिबल? चांद पर पहुंचा जा सकता है, इसलिए अब चांद पर पहुंचने वालों को लूनाटिक कहना ठीक नहीं है। अब बात खतम हो गयी। अब यह शब्द बदल देना चाहिए। अब चांदमारा पागल का पर्यायवाची नहीं रहा। अब तो चांद पर बुद्धिमान आदमी पहुंच गये हैं, शायद मंगल पर पहुंचें, फिर शायद किसी तारे पर पहुंचें। लेकिन ये सब कठिन हैं, असंभव नहीं हैं।
असंभव सिर्फ जगत में मेरे हिसाब से एक चीज है और वह यह है कि वस्तु को कभी भी आत्मा नहीं बनाया जा सकेगा--हैविंग कैन नाट बी ट्रांसफार्म्ड इनटू बीइंग। वह एक असंभावना है जो सुनिश्चित रूप से असंभव रहेगी।
इसलिए महावीर या बुद्ध या जीसस उन लोगों को पागल कहते हैं जो परिग्रह में पड़े हैं। परिग्रही, अर्थात पागल। वह एक ऐसे काम में लगा है जो हो ही नहीं सकता है। हो सकता है कि नहीं हो सकता, यही उसका आकर्षण हो। लेकिन आकर्षण से असत्य सत्य नहीं बनते। परिग्रह का सत्य यह है कि वह असंभावना है।
सुना है मैंने कि सिकंदर से डायोजनीज ने एक बार कहा था कि तू अगर पूरी दुनिया पा लेगा, तो तूने कभी सोचा है कि फिर क्या करेगा? सिकंदर, कहते हैं, सुन कर उदास हो गया और सिकंदर ने कहा, यह मेरे ख्याल में नहीं आया। ठीक कहते हैं आप। दूसरी तो कोई दुनिया नहीं है। अगर मैं एक पा लूंगा तो फिर क्या करूंगा। एकदम अनएंप्लाएड हो जाऊंगा, बेकार ही हो जाऊंगा। सिकंदर उदास हो गया यह जान कर कि दूसरी दुनिया नहीं है। इसका मतलब? इसका मतलब यह कि जब वह पूरी दुनिया पा लेगा तब कितनी उदासी होगी, अभी तो सिर्फ ख्याल है। आपने कभी सोचा नहीं कि जो आप चाहते हैं, अगर पा लेंगे तो क्या होगा। अगर इस दुनिया में किसी दिन ऐसा इंतजाम किया जा सके जैसा कि कथाओं में वर्णन है, कि स्वर्ग में है--अगर हम कभी इस दुनिया में कल्पवृक्ष बना सके तो प्रत्येक आदमी को महावीर हो जाना पड़ेगा। अगर हम किसी दिन कल्पवृक्ष बना सकें इस दुनिया में, और कल्पवृक्ष के नीचे जो आपने चाहा वह तत्काल मौजूद हो गया, तो सारी दुनिया अपरिग्रही हो जायेगी। कोई परिग्रह नहीं रह जायेगा। क्योंकि जैसे ही कोई चीज आपको तत्काल मिल जाये, आप हैरान होते हैं कि मिलते ही वह बेकार हो गयी। आप फिर पुरानी जगह खड़े हो गये, जहां आप मिलने के पहले थे। वही रुख किसी और चीज के लिए हो गया। आप एक भूख हैं, एक खालीपन, एक रिक्तता, जो हर चीज के बाद फिर आगे आकर खड़ी हो जाती है। आदमी एक क्षितिज की भांति, होरीजन की भांति है।
देखते हैं, आकाश छूता हुआ मालूम पड़ता है जमीन को। चलते चले जायें, लगता है यही रहा पास--दस मील होगा, बीस मील होगा। अभी पहुंच जायेंगे। पहुंचते हैं और पाते हैं कि आकाश बीस मील आगे हट गया। हट नहीं सकता था अगर वहां होता। आपके चलने से आकाश के हटने का कोई संबंध नहीं है। आकाश कभी भी कहीं पृथ्वी को नहीं छूता है, सिर्फ छूता हुआ दिखायी पड़ता है। पृथ्वी गोल है, और इसलिए आकाश छूता हुआ दिखाई पड़ता है। आकाश कहीं भी छूता नहीं। मनुष्य की वासनाएं सर्कुलर हैं, गोल हैं, और इसलिए आशा उपलब्धि बनती हुई दिखायी पड़ती है, कभी बनती नहीं। मनुष्य की वासनाएं वर्तुलाकार हैं, जैसे पृथ्वी गोल है, और आशा का आकाश चारों तरफ है, तो ऐसा लगता है, ये रहे दस मील। अभी पहुंच जाऊंगा जहां आशा उपलब्धि बन जायेगी, जहां जो मैंने चाहा है, वह मिल जायेगा और मैं तृप्त हो जाऊंगा। दस मील चल कर पता चलता है कि होरीजन आगे चला गया। आकाश आगे बढ़ गया, वह अब और आगे जाकर छू रहा है। फिर हम बढ़ते हैं, और जिंदगी भर बढ़ते रहते हैं, और अनेक जिंदगी बढ़ते रहते हैं।
और मजा यह है कि हमें यह कभी ख्याल नहीं आता कि दस मील पहले जो आकाश छूता हुआ दिखायी पड़ता था, वह फिर दस मील आगे दिखायी पड़ने लगा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आकाश छूता ही नहीं। अन्यथा आकाश आप से डर कर भाग रहा हो और जमीन को छूने के स्थान बदल रहा हो, ऐसा तो नहीं हो सकता।
फिर और बड़े मजे की बात है कि हमसे दस मील आगे जो और खड़े हैं वे भी भाग रहे हैं और जहां हमें लगता है कि आकाश छूता है, वहां खड़े लोग भी और आगे भाग

रहे हैं। उन लोगों के भी जो आगे हैं, जहां उन्हें लगता है कि आकाश छूता है, वे भी भाग रहे हैं। जब सारी पृथ्वी भाग रही हो, तो जिन्हें थोड़ा भी विवेक है, उन्हें यह स्मरण आ जाना कठिन नहीं है कि आकाश पृथ्वी को कहीं छूता ही नहीं। छूना सिर्फ एपियरेंस है, सिर्फ छूता हुआ मालूम पड़ता है। आशा कहीं उपलब्धि नहीं बनती। वासना कहीं तृप्ति नहीं बनती, कामना कहीं पूर्ण नहीं होती, सिर्फ छूती हुई, होती हुई मालूम पड़ती है! और आदमी दौड़ता चला जाता है। इसलिए परिग्रह के संबंध में अपने अतीत-अनुभव को पूरा-का-पूरा देख लेना जरूरी है। लेकिन हम धोखा देने में कुशल हैं। दूसरे को धोखा देने में उतने कुशल नहीं हैं जितना अपने को धोखा देने में कुशल हैं। दूसरे को धोखा देना बहुत मुश्किल भी है, क्योंकि दूसरा जो है वहां। पर अपने को धोखा देना बहुत आसान है, सेल्फ डिसेप्शन बहुत ही आसान है। हम अपने को धोखा दिये चले जाते हैं।
एक रुपया, मैं सोचता हूं, मुझे मिल जाये तो आनंदित हो जाऊंगा। रुपया मेरे हाथ में आ जाता है, आनंदित बिल्कुल नहीं होता। सोचता हूं, दूसरा रुपया मिल जाये; लेकिन दूसरा रुपया भी पहले रुपये की प्रतिलिपि है, कापी है, यह ख्याल में नहीं आता। दूसरा भी मिल जाता है। तीसरा रुपया भी मिल जाता है, तीसरा रुपया भी दूसरे की प्रतिलिपि है। वह भी उसी का चेहरा है। तीसरा भी मिल जाता है। ये मिलते चले जाते हैं, मिलते चले जाते हैं। एक दिन मैं पाता हूं कि मैं तो खो गया, रुपये ही रुपये हो गये हैं। लेकिन वह जो पहले रुपये के वक्त जो आकाश कहीं मुझे छूता मालूम पड़ता था, वह करोड़ रुपये के बाद भी वहीं छूता हुआ मालूम पड़ता है। फासला उतना ही है, जितना एक रुपये की आशा में था, उतना ही करोड़ रुपये के बाद फिर पुनः उसी आशा में है।
इसलिए कभी-कभी हमें हैरानी होती है कि करोड़पति भी एक रुपये के लिए इतना पागल क्यों होता है! करोड़पति भी एक रुपये के लिए उतना ही दीवाना होता है जितना जिसके पास एक नहीं है वह होता है; क्योंकि फासला दोनों का सदा बराबर है। आशा और उपलब्धि का फासला वही है। आपके पास कितना है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो आगे है, जो नहीं है आपके पास, वह दौड़ाता चला जाता है। और कई बार तो करोड़पति और भी कृपण हो जाता है, क्योंकि उसके अनुभव ने कहा कि करोड़ रुपये हो गये, फिर भी अभी उपलब्धि नहीं हुई। जीवन तो चुक गया। अब एक-एक रुपये को जितने जोर से पकड़ सके--क्योंकि जीवन चुक रहा है। इधर जीवन समाप्त हो रहा है। जब एक रुपया पास था तो जीवन भी पास था। दौड़ भी थी, ताकत भी थी, पर अब वह भी खतम हो गयी। अब करोड़ रुपये तो पास हो गये हैं, पर जीवन की शक्ति क्षीण हो गयी है। इसलिए बूढ़ा होते-होते आदमी और परिग्रही हो जाता है, और जोर से पकड़ने लगता है कि अब जिंदगी तो बहुत कम है। जितनी जल्दी, जितना ज्यादा पकड़ा जा सके, जितनी जल्दी जितनी यात्रा की जा सके... !
सुना है मैंने, एलिस नाम की एक लड़की स्वर्ग पहुंच गयी है और वहां जाकर तकलीफ में है। भूखी है, प्यासी है, खड़ी है। दूर की यात्रा है जमीन से स्वर्ग तक की, परियों के देश तक की, और फिर परियों की रानी उसे दिखायी पड़ी, वृक्ष के नीचे खड़ी है और बुला रही है। आवाज सुनायी पड़ती है। आवाजें बड़ी भ्रामक हैं, वे सुनायी पड़ती हैं। हाथ दिखायी पड़ता है। हाथ बड़े भ्रामक हैं, वे दिखायी पड़ते हैं। और उसके आस-पास मिठाइयों का ढेर लगा है, फल-फूल का ढेर लगा है; और वह भूखी लड़की दौड़ना शुरू कर देती है। सुबह है, सूरज उग रहा है। वह भागती है, भागती है। दोपहर हो गयी, सूरज सिर पर आ गया, लेकिन फासला उतना का उतना है।
लेकिन वह लड़की लड़की है, अगर बूढ़ी होती तो रुक कर सोचती भी नहीं। वह लड़की खड़ी होकर सोचती है कि बात क्या है? सुबह हो गयी, दोपहर हो गयी दौड़ते- दौड़ते, और जो इतनी निकट मालूम पड़ती थी रानी, अब भी उतनी ही निकट है! कुछ भी फर्क नहीं पड़ा। डिस्टेंस वही है! तो वह चिल्ला कर पूछती है कि रानी, यह तुम्हारा देश कैसा है? सुबह से दोपहर हो गयी दौड़ते-दौड़ते, लेकिन फासला कम नहीं होता।
रानी कहती है कि तू थोड़ा धीरे दौड़ती है, इसलिए फासला कम नहीं होता। जरा तेजी से दौड़। तू दौड़ की ताकत कम लगा रही है, दौड़ काफी नहीं है।
यह बात लड़की की समझ में आ जाती है। बूढ़े की समझ में भी आ जाती है तो लड़की की समझ में आ जाये तो बहुत कठिन नहीं। उसकी समझ में आ जाती है कि जरूर

फासला इसीलिए पूरा नहीं होता है कि दौड़ कमजोर है। इसलिए वह और तेजी से दौड़ती है। फिर सांझ सूरज ढलने लगता है, लेकिन फासला उतना का उतना ही है। फिर वह चिल्ला कर पूछती है कि अब तो अंधेरा भी उतरने लगा। वह रानी कहती है, तेरी दौड़ कमजोर है। वह लड़की और तेजी से दौड़ती है। अब तो अंधेरा भी काफी छाने लगा है, और रानी का दिखायी पड़ना मुश्किल होने लगा है। अब वह अंधेरे में चिल्ला कर पूछती है, तेरा देश कैसा है! अब तो रात भी उतर आयी, अब पहुंचने की आशा भी खोती है।
रानी की खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है और वह कहती है, पागल लड़की, शायद तुझे पता नहीं, दुनिया में सब जगह--जिस पृथ्वी से तू आती है, उस जगह भी--कोई कभी वहां नहीं पहुंचता, जहां पहुंचना चाहता है। फासला सदा वही रहता है, जो शुरू करते वक्त होता है।
जन्म के दिन जितना फासला है, मृत्यु के दिन उतना ही फासला होता है। सिर्फ एक फर्क पड़ता है। जन्म के दिन सूरज निकलता है, मृत्यु के दिन सूरज ढलता है और अंधेरा हो रहा होता है। जन्म के दिन आशाएं होती हैं, मृत्यु के दिन फ्रस्ट्रेशन्स होते हैं, विषाद होता है, हार होती है। जन्म के दिन आकांक्षाएं होती हैं, अभीप्साएं होती हैं, दौड़ने का बल होता है; मृत्यु के दिन थका मन होता है, हार होती है, टूट गये होते हैं। लेकिन फिर भी ऐसा समझने की कोई जरूरत नहीं है कि मरता हुआ आदमी अपरिग्रही हो जाता हो। मरता हुआ आदमी भी यही सोचता है, काश थोड़ी ताकत और होती, और थोड़े दिन और शेष होते तो दौड़ लेता! पहुंच जाता!
ऐसी कथा है कि एक सम्राट की मौत करीब आ गयी। सौ वर्ष पूरे हो गये। मौत भीतर आयी और उसने सम्राट से कहा, मैं लेने आ गयी हूं। आप तैयार हो जायें। मौत सभी के पास आकर कहती है, आप तैयार हो जायें। हम न सुनें, यह बात दूसरी है; हम बहरे बन जायें, यह बात दूसरी है।
सम्राट ने कहा, वक्त आ गया जाने का, लेकिन अभी तो मैं कुछ भी न भोग पाया। अभी तो सब आशाएं ताजी हैं, और अभी कोई चीज पूरी नहीं हुई। अभी मैं कैसे जा सकता हूं? लेकिन मौत ने कहा कि मुझे तो किसी को ले ही जाना पड़ेगा। अगर तुम्हारा कोई बेटा राजी हो तुम्हारी जगह मरने को, तो मैं उसे ले जाऊं! वह अपनी उम्र तुम्हें दे दे। सम्राट ने अपने बेटे बुलाये, बहुत बेटे थे उसके, सौ बेटे थे। बहुत रानियां थीं उसकी। उसने उन सब बेटों से कहा, कौन है जो मुझे अपनी उम्र दे दे, क्योंकि अभी तो मेरा कुछ भी पूरा नहीं हुआ। लेकिन वे बेटे भी आदमी थे और जब मरता हुआ सौ वर्ष का बूढ़ा भी जिंदा रहना चाहे तो पचास साल का उसका बेटा क्यों जिंदा रहना न चाहे? अस्सी साल का उसका बेटा जिंदा क्यों न रहना चाहे? और बीस साल का उसका बेटा जिंदा क्यों न रहना चाहे? वे निन्यानबे बेटे तो चुप होकर बैठ गये। जो सबसे कम उम्र का बेटा था वह उठ कर खड़ा हुआ। उसकी उम्र कोई पंद्रह-सोलह साल थी। उसने कहा कि मेरी उम्र ले लें। मौत ने उसे बहुत रोका कि पागल तू यह क्या कर रहा है!
उसने कहा कि जब मेरे पिता सौ वर्ष में कुछ पूरा नहीं कर पाये, तो मैं
भी क्या पूरा कर पाऊंगा! उनको दे जाता हूं। शायद दो सौ वर्ष में वे कुछ पूरा कर पायें। सौ वर्ष ही तो मेरे पास हैं न! और मेरा भी कोई बेटा शायद ही राजी होगा जिस दिन मुझे उम्र की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि देखता हूं कि निन्यानबे बेटों में से कोई राजी नहीं है, तो मेरा बेटा भी शायद ही कोई राजी होगा। और उस बेटे ने मौत से कहा कि कम-से-कम मुझे यह तो रहेगा कि अपनी कोई आशा विफल न हुई, क्योंकि हमने कोई आशा ही न की। तो आनंद के साथ तो मर सकूंगा। पिता तो बहुत विषाद से मर रहे हैं। इतनी कृपा करना मुझ पर, कि जब सौ साल बाद पिता फिर से मरें, तो मुझे जरा खबर कर देना कि क्या हालत बनी। सौ वर्ष बीत गये। वर्ष बीतने में देर नहीं लगती। सौ वर्ष बीत गये, मौत फिर से द्वार पर खड़ी हो गयी है आकर। सम्राट ने कहा, लेकिन अभी तो सब आशाएं अधूरी हैं, कोई सपने पूरे नहीं हुए। तब तक उसके पुराने सौ बेटे मर चुके हैं, लेकिन और सौ बेटे पैदा हो गये हैं। उसने कहा, मेरे बेटों को बुलाओ। मौत ने कहा, देखते नहीं आप, दो सौ वर्ष में भी कुछ नहीं हो पाया। उसने कहा, थोड़ा और समय मिल जाये तो शायद पूरा हो जाये।

वह "शायद", वह "परहेप्स" आखिरी मृत्यु के क्षणों में भी खड़ा रहता है। शायद पूरा हो जाये! ठीक, सौ बेटे बुलाये गये, फिर एक बेटा राजी हो गया। मौत ने उसे भी समझाया कि तू पागल है। पर उसने कहा, बेहतर हो कि तू हमारे पिता को समझा कि वह पागल हैं। क्योंकि दो सौ वर्ष में कुछ पूरा नहीं हो पाया तो मैं भी क्या कर पाऊंगा? उस बेटे ने मरने के पहले अपने पिता से पूछा कि थोड़ा- बहुत भी पूरा हुआ है दो सौ वर्षों में? उसके पिता ने कहा, थोड़ा-बहुत? कुछ भी पूरा नहीं हुआ। मैं वहीं खड़ा हूं जहां मैं आया था पृथ्वी पर, तब था। तो उस बेटे ने कहा, मैं खुशी से जाता हूं, कोई विषाद नहीं है।
कहते हैं, ऐसा एक हजार साल तक हुआ। वह बूढ़ा एक हजार साल तक जीया। उसके बेटे बदलते चले गये, उसकी उम्र बढ़ती चली गयी, और जब हजारवें वर्ष मौत आयी तो मौत थक चुकी थी, लेकिन वह बूढ़ा नहीं थका था। और मौत ने कहा, बस, अब नहीं। अब काफी हो गया। मैं कब तक आती रहूंगी? तुम अनुभव से सीखते ही नहीं। उस बूढ़े ने कहा, लेकिन अभी तो कुछ भी नहीं हुआ। अभी तो सब वहीं का वहीं रिक्त और खाली है। थोड़ा समय शायद मिल जाये तो कुछ हो सके। यह बात वह दस बार मौत से कह चुका है। इस बूढ़े पर हंसना मत आप, यह कहानी नहीं है, यह हम सबकी कहानी है। यह बात हम भी मौत से हजार बार कह चुके हैं, याद नहीं है। उसको भी याद नहीं था। अगर उसको भी याद होता कि दस बार यही बात कही जा चुकी है, तो शायद दसवीं बार कहने में हिम्मत टूट जाती। वह भी भूल चुका था। उसने मौत से कहा, कौन-सा अनुभव? कैसा अनुभव? उस मौत ने कहा, मैं दस बार आ चुकी हूं। उस बूढ़े ने कहा, मुझे कुछ स्मरण नहीं।
असल में दुख को हम भुलाना चाहते हैं और हम भूल जाते हैं। जो-जो दुख है उसे हम भूल जाते हैं, जो-जो सुख है उसे हम सम्हाल कर रखते हैं। जो-जो दुख है उसे हम छोटा करते जाते हैं, जो-जो सुख है उसे हम धीरे-धीरे मन में बड़ा करते जाते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी कहता है, बचपन में बहुत सुख था। कोई बच्चा नहीं कहता। बच्चा कहता है, कितनी जल्दी बड़े हो जायें। बड़े के पास बहुत सुख मालूम पड़ता है। कोई बच्चा सुखी नहीं है। लेकिन सब बूढ़े कहते हैं, बचपन में बहुत सुख था। बच्चे बहुत जल्दी बड़े होना चाहते हैं। सब बच्चे परेशान हैं, क्योंकि उनको हजार तरह के दुख हैं। बच्चा होना भी बड़ा दुख है बड़ों की दुनिया में। चारों तरफ बड़े हैं और एक छोटा बच्चा है। बड़े गंभीर चर्चा कर रहे हैं और उसे खेलने की आज्ञा नहीं है। और उस छोटे बच्चे को बड़ों की गंभीर चर्चा एकदम निपट नासमझी की मालूम पड़ती है, खेल सार्थक मालूम पड़ता है। सब तरफ दबाव है, सब तरफ आज्ञा है--यह मत करो, वह मत करो। बच्चा बहुत जल्दी बड़ा होना चाहता है कि कब वह बड़ा हो जाये और दूसरों से कह सके कि यह मत करो। लेकिन सब बूढ़े कहते हैं कि बचपन बहुत सुखद था। उन्होंने बचपन के सब दुख भुला दिये।
अब यह बड़े मजे की बात है, आप कहेंगे कि नहीं, एक आदमी अगर सौ बार मरा हो,
दस बार मौत आयी हो उसकी, तो भूल नहीं सकता। आप जन्मे थे, आपको याद है जन्म की? निश्चित ही एक बात तो कम-से-कम पक्की है ही, पीछे के जन्मों को हम छोड़ दें, इस बार आप जन्मे हैं इतना तो पक्का ही है। लेकिन आपको कोई याद है जन्म की? जन्म इतनी दुखद प्रक्रिया है कि उसकी याद मन नहीं बनाता। मां जितना दुख झेलती है जन्म देते वक्त, वह कुछ भी नहीं है, जो बेटा झेलता है। और मां तो बहुत जल्दी प्रसव-पीड़ा से मुक्त हो जायेगी। कोई कारण नहीं है, लेकिन बेटा, वह जो दुख झेलता है वह इतना भारी है कि उसे अपनी स्मृति से हटा देता है।
हमारी स्मृति पूरे वक्त चुनाव कर रही है कि क्या बचाना है, क्या हटाना है। अगर हमें कोई बताने वाला न हो कि हम जन्मे हैं, तो हमें पता ही नहीं चलेगा कि हम जन्मे हैं। लेकिन जन्म के वक्त आप थे, जन्म की घटना आपके ऊपर घटी है। जन्म की घटना से आप गुजरे हैं, लेकिन उसकी स्मृति कहां है? उसकी स्मृति नहीं है, क्योंकि वह बहुत दुखद घटना है। मां के अंधकारपूर्ण पेट से, परम विश्राम से, जहां श्वास लेने की तकलीफ भी नहीं है, जहां जीने के लिए भी कुछ करना नहीं पड़ता, सिर्फ जीना है।
मनोवैज्ञानिक तो हजार-हजार अनुभव के आधार पर कहते हैं कि मनुष्य को मोक्ष की जो कल्पना आयी है, वह गर्भ की स्मृति से आयी है। गर्भ में इतनी शांति है, इतना मौन है, टोटल साइलेंस है, कोई श्रम नहीं है। कुछ करना नहीं

है, सिर्फ होना है। उस होने की दुनिया से एक झटके के साथ उस दुनिया में आना जहां जिंदा रहना हो तो श्वास भी लेनी पड़ेगी, भोजन भी लेना पड़ेगा, रोना भी पड़ेगा, चिल्लाना भी पड़ेगा। जहां जिंदगी कठिनाइयों से गुजरेगी। उतने बड़े शांत और सुखद अनुभव से इतने बड़े दुखद अनुभव में प्रवेश! बच्चा भूल जाता है।
लेकिन गहरी हिप्नोसिस में आपको याद दिलाया जा सकता है कि आप जब पैदा हुए तो आपका अनुभव क्या था। गहरी सम्मोहन की अवस्था में या गहरे ध्यान में, आपको मां के पेट के अनुभव भी याद दिलाये जा सकते हैं। अगर आपकी मां गिर पड़ी थी तो वह जो चोट लगी थी, उसकी खबर भी आप तक पहुंची थी। वह भी आपकी स्मृति का हिस्सा है, लेकिन हम भूल गये हैं। ठीक ऐसे ही हम भी बहुत बार मरे हैं, जैसा वह राजा ययाति, जिसकी मैं कहानी कह रहा था, दस बार मौत आयी लेकिन भूलता चला गया। उसने कहा, मैं तो तुझे पहचानता ही नहीं हूं। मैं तो सोचता हूं तू पहली बार ही आयी है, थोड़ा समय मुझे मिल जाये तो मैं अपनी आकांक्षाएं पूरी कर लूं। लेकिन उस मौत ने कहा कि नहीं अब बहुत हो चुका। तुम हजार साल के अनुभव से नहीं सीखे, तो तुम करोड़ वर्ष के अनुभव से भी नहीं सीख सकते हो। जिसे सीखना है वह एक अनुभव से भी सीखता है, जिसे नहीं सीखना है वह अनंत अनुभव से भी नहीं सीखता। हम ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने सीखना बंद कर दिया है। ये जिनको हम महावीर या कृष्ण या बुद्ध कहते हैं, ये वे लोग हैं जो जिंदगी के अनुभव से सीखते हैं। हम ऐसे लोग हैं जो सीखते ही नहीं। हम ऐसे लोग हैं जिन्होंने जान-बूझ कर आंखें बंद कर रखी हैं और सीखेंगे नहीं। और वही करते चले जायेंगे जो हम कर रहे थे; और वही भोगते चले जायेंगे जो हम भोग रहे थे; और वही आशाएं, वही विषाद, वही पुनरावृत्ति और वही चक्र!
कभी आपने शायद ख्याल न किया हो, हमारा शब्द हैः संसार। संसार का मतलब होता हैः द ह्वील, चक्र, जिसमें वही स्पोक बार-बार लौट आते हैं, जिसमें वही धुरी बार-बार घूमने लगती है। वह जो भारत के झंडे पर चक्र बनाया हुआ है, वह उन राजनीतिज्ञों को पता नहीं है कि किसलिए बना लिया है। बस, अशोक के स्तंभ पर बना था तो सोचा कि अशोक का चिह्न है, उसे चुन लिया है।
लेकिन राजनीतिज्ञ कैसे समझ पायेगा कि वह चक्र एक धार्मिक प्रतीक है।
और जितने चक्कर में राजनीतिज्ञ रहता है, उतने चक्कर में तो कोई नहीं रहता है। वह तो चक्के के भीतर है, वह तो स्पोक्स को पकड़ कर बैठा हुआ है, घूम रहा है पूरे वक्त। कुछ दूसरे उसको छुड़ाने की भी कोशिश कर रहे हैं, तो भी छूटता नहीं है। वे दूसरे भी उसे छुड़ा कर उसके स्पोक को खुद पकड़ लेना चाहते हैं। और उन्हें कभी ख्याल नहीं आता है कि जिस भांति वे उसको छुड़ाने की कोशिश कर रहे हैं, कुछ लोग उनको छुड़ाने की भी कोशिश करेंगे, जब वे पकड़ लेंगे। वह चल रहा है पूरे वक्त।
जगत, संसार, एक चक्र है। जिस चक्र में हम वही किये चले जाते हैं, वही दोहराये चले जाते हैं। कल भी आपने क्रोध किया था, और कल भी आप पछताये थे, और कल भी आपने कसम खायी थी कि अब क्रोध नहीं करेंगे। आज फिर आप क्रोध करेंगे, आज फिर आप पछतायेंगे, आज फिर आप कसम खायेंगे कि क्रोध नहीं करेंगे। कल भी यही होगा, परसों भी यही होगा। हम आदमी हैं या मशीन हैं? यंत्र अगर घूमता चला जाये तो समझ में आता है, आदमी भी घूमता चला जाये तो शक होता है कि यह आदमी है या मशीन है।
लोग कहते हैं कि आदमी जो है वह रेशनल एनिमल है, लेकिन आदमी इसका कोई सबूत नहीं देता। आदमी को देख कर बिल्कुल पता नहीं चलता कि आदमी बुद्धिमान है। आदमी से ज्यादा बुद्धिहीन प्राणी खोजना बहुत मुश्किल है। आदमी सीखता ही नहीं। जो बड़ी-से-बड़ी बात सीखने की हो सकती है जिंदगी में, वह यह है कि परिग्रह एक व्यर्थता है। वस्तुएं व्यर्थ हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। आपके घर में कुर्सी है, यह व्यर्थ है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। कुर्सी कैसे व्यर्थ हो सकती है? कुर्सी तो बैठने के काम आती है, आ सकती है। मैं यह नहीं कह रहा कि आपके पास मकान है, वह व्यर्थ है। मकान रहने के काम आ सकता है, आता है, आना चाहिए। वस्तुएं व्यर्थ हैं, यह मैं नहीं कह रहा। वस्तुओं की अपनी सार्थकता है। जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि वस्तुओं से हम अपने को भर लेंगे, इसकी कोई सार्थकता नहीं है। वस्तुएं हमारी आत्माएं बन जायेंगी, इसका कोई उपाय नहीं है।

परिग्रह के प्रति अगर हम थोड़ी-सी भी आंख खोल कर देख लें तो हम अचानक पायेंगे कि हम उस दुनिया में प्रवेश करने लगे हैं, जहां पजेसिवनेस छूटती है, और खोती है, और विदा हो जाती है। फिर जिस दिन हम पकड़ छोड़ देते हैं उस दिन एक घटना घटती है कि हम अकेले ही रह जाते हैं। न तो पत्नी रह जाती है, न मित्र रह जाते हैं, न भाई रह जाते हैं, न मकान रह जाता है। ये सब अपनी जगह हैं। ये एक बड़े खेल के हिस्से हैं।
और यह खेल ठीक वैसा है जैसा लोग शतरंज खेलते हैं। उसमें कोई घोड़ा होता है, कोई हाथी होता है, लेकिन कभी कोई इस भ्रम में नहीं पड़ता कि इस घोड़े पर सवारी की जाये। शतरंज के खेल और नियम के भीतर घोड़ा बड़ा सार्थक है, उसकी अपनी उपयोगिता है, उसकी अपनी चाल है, उसकी अपनी हार और जीत है। लेकिन कभी- कभी लोग शतरंज में भी पागल हो जाते हैं।
इजिप्त में एक सम्राट शतरंज में पागल हो गया। वह धीरे-धीरे इतना पागल
हो गया कि उसने असली घोड़े छुड़वा दिये अपने अस्तबलों से और शतरंज के घोड़े बंधवा दिये। वह दिन-रात घोड़े-हाथियों में जीने लगा शतरंज के, और जब उस पर हमला होने की संभावना आयी तो उसने कहा कि शतरंज के सब घोड़े लगा दो। तब तो उसके दरबार के लोगों ने कहा कि अब दिमाग पूरा खराब हो गया है। अब बड़ी मुश्किल है, इसको कैसे ठीक किया जाये, यह कैसे ठीक होगा?
तो देश के सब विचारक, समझदार लोग, वाइ.ज मैन बुलाये गये और उनसे पूछा गया कि यह कैसे ठीक होगा। उन्होंने कहा कि इसने शतरंज के खेल को जिंदगी समझ लिया है। एक बूढ़ा आदमी जो उन बुद्धिमानों में आया हुआ था वह उठ कर जाने लगा। उसने कहा, सम्राट ठीक नहीं होगा। क्योंकि जो ठीक करने आये हैं, इनमें और उसमें बहुत फर्क नहीं है। इसने शतरंज के खेल को जिंदगी समझा हुआ है और इन लोगों ने जिंदगी को शतरंज का खेल बनाया हुआ है। ये दोनों एक से हैं। इनमें बहुत फर्क नहीं है।
उस बूढ़े को उस सम्राट ने पकड़ लिया कि तुम कुछ बुद्धिमानी की बात कह रहे हो। अगर हम दोनों एक से पागल हैं तो तुम कुछ बुद्धिमानी की बात कह रहे हो। मैं क्या करूं? तो उसने कहा कि तुम कुछ मत करो, तुम सिर्फ शतरंज खेलो, जोर से शतरंज खेलो। बड़े शतरंज के खिलाड़ी बुलाये गये और राजा को उनके साथ शतरंज खेलने में लगा दिया गया। साल भर में ऐसा हुआ कि राजा ठीक हो गया और उसके साथ खेलने वाले पागल हो गये। हो ही जायेंगे। राजा ठीक हो गया, क्योंकि साल भर दिन-रात खेलता ही रहा। खेलते-खेलते उसको दिखायी पड़ा कि न तो घोड़ा घोड़ा है, न हाथी हाथी है, सब खेल है।
हम बहुत खेल लिये हैं, हम सब खेल लिए हैं, हम सब खेल रहे हैं। लेकिन हमें अभी शतरंज का घोड़ा, शतरंज का घोड़ा नहीं मालूम पड़ता, घोड़ा ही मालूम पड़ता है।
सारे संबंध जिंदगी के, शतरंज का खेल हैं। उसके नियम हैं। उनका पालन करना चाहिए। और ध्यान रहे, जो आदमी जिंदगी को खेल समझता है, उसको नियम-पालन करना बड़ा आसान हो जाता है, कठिनाई ही नहीं रह जाती। तब यह सब गंभीरता नहीं रह जाती, इसमें कोई मामला ही नहीं रह जाता। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह जाती। अगर यह खेल है, तो गंभीरता गयी। देन यू आर नाट सीरियस।
लेकिन कुछ लोग खेल को ही जिंदगी बना लेते हैं, तब वे खेल में भी गंभीर
हो जाते हैं, तब खेल में भी तलवारें चल जाती हैं। शतरंज के खिलाड़ियों में तलवारें बहुत दफा चल गयी हैं। अगर शतरंज के घोड़े और हाथी कुछ भी समझते होंगे तो इन खिलाड़ियों पर बहुत हंसे होंगे, कि ये क्या कर रहे हैं? लकड़ी के घोड़े-हाथियों पर तलवारें चला रहे हैं।
जिंदगी की हमारी जो व्यवस्था है, वह सारी की सारी व्यवस्था अपनी जगह ठीक है। वस्तुएं वस्तुएं हैं, हैविंग हैविंग है, धन धन है, पद पद है। आत्मा कोई भी नहीं। इस स्मरण का नाम परिग्रह से मुक्ति है। परिग्रह छोड़ कर भाग जाने का नाम नहीं है। इसलिए जिन्हें हम संन्यासी कहते हैं साधारणतया, वे इनवर्टेड परिग्रही हैं, वे शीर्षासन करते हुए परिग्रही हैं। वे सिर्फ उल्टे खड़े हो गये हैं, हैं वे आप ही। जो आप हैं, वही वे हैं। बल्कि कई मामलों में वे आपसे भी ज्यादा गंभीर हैं।
मैं तो सोच ही नहीं सकता कि संन्यासी और गंभीर! यह असंभव होना चाहिए। संन्यासी अगर गंभीर है तो उसका मतलब है कि वह सिर्फ शीर्षासन लगा कर खड़ा

हो गया संसारी है। गंभीरता का मतलब यह है कि संसार बड़ा सार्थक है। वह जो नासमझियों का जाल है, वह बड़ा कीमती है। इसको कीमत हम दो तरह से दे सकते हैं। इसमें उतर कर, डूब कर, इसको छाती से पकड़ कर। इसे हम एक और तरह से कीमत दे सकते हैं। इससे भयभीत होकर, इससे भाग कर।
एक अंतिम बात। तीन संन्यासी हुए चीन में। जिन्हें मैं संन्यासी कहने
को राजी हूं, क्योंकि उन तीन संन्यासियों से ज्यादा गैर-गंभीर आदमी शायद ही हुए हों। उनको लोग जानते नहीं, उनका नाम ही लोगों को पता नहीं है, क्योंकि नाम वगैरह सब खेल की बातें हैं। उन संन्यासियों ने कभी अपना नाम नहीं बताया कि उनका नाम क्या है। जब कोई उनसे पूछता कि तुम कौन हो, तो वे एक-दूसरे की तरफ देखकर हंसते, और इतने जोर से खिलखिलाते कि पूछने वाला भी थोड़ी देर में हंसने लगता। धीरे-धीरे उनकी हंसी गांव भर में फैल जाती। तो लोग उनको इतना ही जानतेः द थ्री लाफिंग सेंट्स, तीन हंसते हुए संन्यासी। उनका नाम कुछ रहा नहीं। जब भी उनसे कोई सवाल पूछता तो वे हंसते। उन्होंने हंसने से ही एक उत्तर दिया। जब भी कोई उनसे पूछता कि आप हंसते क्यों हैं हमारे सवालों से? तो वे कहते कि तुम इतनी गंभीरता से पूछते हो कि तुम्हें दिया गया कोई भी उत्तर खतरनाक सिद्ध होगा। तुम उसको भी गंभीरता से पकड़ लोगे।
परिग्रह नासमझी है, तो परिग्रह के खिलाफ साधा गया त्याग भी नासमझी है। चीजों को पकड़ना पागलपन है, तो चीजों को छोड़ कर भागना कम पागलपन नहीं है। चीजों के प्रति मोहग्रस्त होना पागलपन है, तो चीजों के प्रति विरक्त होना कम पागलपन नहीं है। ये दोनों ही पागलपन हैं, एक-दूसरे की तरफ पीठ किये हुए खड़े हैं। और दोनों पागल सोच रहे हैं यही कि कहीं दूसरा मजा न ले रहा हो।
मुझे संन्यासी मिलते हैं जो मुझे कहते हैं कि कई दफा मन में ऐसा संदेह उठने लगता है कि कहीं हमने भूल तो नहीं की? उठेगा, स्वाभाविक है। संन्यासी के मन में यह ख्याल उठना स्वाभाविक है कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की जो मैं सब छोड़ कर भाग आया। जो लोग वहां भोग रहे हैं, कहीं बड़े आनंद में तो नहीं हैं? और जो भोग रहे हैं वे बड़े परेशान हैं, वे संन्यासियों के पैर छूते रहते हैं जाकर। वे सोचते रहते हैं कि संन्यासी बड़े आनंद में होगा। हम तो बड़े दुख में पड़े हैं।
यह भ्रांति चलती रहती है और हमारे चेहरे धोखा देते रहते हैं। संन्यासी एकांत में संदिग्ध होता है, भीड़ में आश्वस्त हो जाता है। जब लोग उसके पैर छूते हैं, तब उसे पक्का हो जाता है कि नहीं, ये लोग आनंद में नहीं हो सकते, नहीं तो मेरे पैर छूने न आते। एकांत में संदिग्ध हो जाता है, जब भीड़ हट जाती है।
इसलिए अगर किसी को अपने झूठे संन्यास को बनाये रखना हो तो भीड़ अनिवार्य है, अन्यथा बहुत मुश्किल है संन्यास को बनाये रखना। अकेले में संन्यासी संदिग्ध हो जाता है, कि पता नहीं, गांव में लोग आनंद न लूट रहे हों। इसलिए धीरे-धीरे सब संन्यासी गांव में आ जाते हैं। वहां दोहरे फायदे होते हैं। एक तो लोग सामने रहते हैं। दूसरे, लोग पैर छूते हैं, आदर देते हैं तो संन्यासी को भरोसा आता है कि नहीं, अगर ये आनंद में होते तो इधर मेरे पास न आते। त्यागी के पास आ रहे हैं। पर संन्यासी को पता नहीं कि इनके भी संदेह के क्षण हैं। ये भी संदेह से भर जाते हैं कि पता नहीं, संन्यासी आनंद न लूट रहा हो। असल में दूसरा आनंद लूट रहा है, यह ख्याल हम सबके मन में होता ही है। क्योंकि दूसरों का हम चेहरा जानते हैं और अपनी आत्मा जानते हैं। अपना दुख परिचित होता है, दूसरे के मुखौटे परिचित होते हैं।
नहीं, न तो वस्तुएं पकड़ने योग्य हैं, न वस्तुएं छोड़ने योग्य हैं। इसलिए अपरिग्रह का अर्थ वैराग्य नहीं है, अपरिग्रह का अर्थ विरक्ति नहीं है, अपरिग्रह का अर्थ विराग नहीं है, अपरिग्रह का अर्थ त्याग नहीं है। यह आखिरी बात ठीक से ख्याल में ले लेंगे, अन्यथा मैंने परिग्रह के संबंध में जो कहा, कहीं वह आपको त्यागी न बना दे, कहीं आप संसार को छोड़ कर न भागने लगें, कहीं आप घर-द्वार को छोड़ कर जंगल की राह न ले लें।
नहीं, परिग्रह को जो समझ लेगा, वह छोड़ने की बात भूल कर न करेगा। क्योंकि छोड़ा उसे जा सकता है जिसे कभी पकड़ा गया हो। जो परिग्रह को समझ

लेगा, वह पायेगा कि कुछ पकड़ा ही नहीं जा सका है, छोड़ना किसे है? छोड़ कैसे सकते हैं, छोड़ने का उपाय कहां है? जो दूसरा है, जो अन्य है, जो वस्तु है, वह वस्तु है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। मकान मकान है। अपरिग्रह का मतलब यह है कि मकान के भीतर एक आदमी हो, चाहे बाहर हो, वह नान-पजेसिव हो गया; उसका कोई मालकियत का भाव नहीं रहा। अब वह मालिक नहीं है। उसने बाहर की दुनिया में मालकियत खोजनी बंद कर दी। उसका यह मतलब नहीं है कि बाहर की दुनिया को छोड़ कर वह भाग गया। भागेगा कहां? सब जगह जहां जायेगा, बाहर की दुनिया है। और अगर कोई घर छोड़ कर जायेगा और एक वृक्ष के नीचे बैठ जायेगा, और कल दूसरा आदमी आकर संन्यासी उससे कहेगा कि हटो यहां से, इस वृक्ष के नीचे हम धूनी रमाना चाहते हैं, तो वह कहेगाः बंद करो बकवास। इस पर मेरा पहले से कब्जा है। यहां मैं पहले से हूं। यह वृक्ष मेरा है, झंडा देखो वृक्ष के ऊपर लगा है। यह मंदिर मेरा है, यह आश्रम मेरा है।
परिग्रह से भागा हुआ आदमी फिर परिग्रह पैदा कर लेगा। क्योंकि परिग्रह
से भागा हुआ आदमी समझ नहीं पाया कि परिग्रह क्या है। वह फिर पैदा कर लेगा। हां, जनता उसको रोकेगी, अनुयायी उसको रोकेंगे। वह सब तरह की चेष्टा करेंगे कि परिग्रह पैदा न हो जाये। वे कहेंगे, मकान मत बनने दो। वे कहेंगे, मंदिर मत बनने दो। वे कहेंगे, आश्रम मत बनने दो। वे कहेंगे, यह मत बनने दो, वह मत बनने दो। वे सब तरफ से रोकेंगे। तब संन्यासी बहुत सूक्ष्म रास्ते खोजेगा। रुपये इकट्ठे करना मुश्किल हो जायेगा तो वह सूक्ष्म रास्ते खोजेगा। वह अनुयायी इकट्ठे करने लगेगा। और जो मजा किसी को तिजोरी के सामने रुपया गिनने में आता है, वही मजा उसको अनुयायियों को गिनने में आने लगेगा कि कितने अनुयायी हो गये। गिनता रहेगा, कहेगा सात सौ, कि हजार, कि दस हजार, कि लाख, कि दो लाख। कितने अनुयायी हैं? कितने शिष्य हैं? कान फूंकने लगेगा, मंत्र बांटने लगेगा और इकट्ठे करने लगेगा आंकड़े। आंकड़े का मजा है--रुपये में हो कि अनुयायियों में हो, कोई फर्क नहीं पड़ता है।
जिंदगी भागने से नहीं समझी जा सकती। जो भागता है वह नासमझी में भाग गया। जिंदगी जहां है वहीं समझने की जरूरत है। और जब समझ ली जाती है तो अचानक हम पाते हैं कि कुछ चीजें एकदम से विदा हो गयीं। छोड़नी नहीं पड़तीं। एकदम से अचानक हम पाते हैं कि पति पत्नी अपनी जगह हैं, लेकिन बीच से पजेसन खो गया, मालकियत चली गई। अब पति पति नहीं है, सिर्फ मित्र रह गया। अब पत्नी पत्नी नहीं है, दासी नहीं है, सिर्फ मित्र रह गई। वह बीच का संबंध अचानक खो गया।
अपरिग्रह का मतलब है हमारे और व्यक्तियों, हमारे और वस्तुओं के बीच
के संबंध का रूपांतरण। मालकियत गिर गई। बीच से मालकियत गिर जाये मेरे और किसी के बीच, तो अपरिग्रह फलित हो गया। इसलिए अपरिग्रह त्याग से बहुत कठिन बात है। अपरिग्रह वैराग्य से बहुत कठिन बात है। वैराग्य बहुत सरल बात है। क्योंकि वह दूसरी अति है, और मन का पैंडुलम दूसरी अति पर बहुत जल्दी जा सकता है। जो आदमी बहुत ज्यादा खाना खाता है, उससे उपवास करवाना सदा आसान है। जो आदमी स्त्रियों के पीछे पागल है, उसे ब्रह्मचर्य की कसम दिलवाना बहुत आसान है। जो आदमी बहुत क्रोधी है, उसे अक्रोध का व्रत दिलवाना बहुत आसान है।
लेकिन ध्यान रहे, वह अक्रोध का व्रत भी क्रोधी आदमी ले रहा है। इसलिए जल्दी ले रहा है। अगर कम क्रोधी होता तो थोड़ा सोच कर लेता। अगर और भी कम क्रोधी होता तो शायद लेता ही नहीं। क्योंकि व्रत लेने के लिए भी क्रोध होना जरूरी है। अभी तक वह दूसरों पर क्रोधित था, अब अपने पर क्रोधित हो गया है, और कोई फर्क नहीं है। अभी तक वह दूसरों की गर्दन दबाता था, अब वह व्रत लेकर अपनी गर्दन दबायेगा कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। अब देखूं कि कैसे क्रोध होता है! अब वह अपनी गर्दन पकड़ लेगा। एक अति से दूसरी अति सदा आसान है। लेकिन जो मध्य में ठहर जाते हैं, वे धर्म को उपलब्ध हो जाते हैं। कन्फ्यूशियस एक गांव में गया। और उस गांव के लोगों ने कहा कि हमारे गांव में एक बहुत बुद्धिमान आदमी है, आप जरूर उनके दर्शन करें। कन्फ्यूशियस ने कहा, उसे तुम बुद्धिमान क्यों कहते हो? तो उन्होंने कहा कि वह बहुत विचारशील है। कन्फ्यूशियस ने कहा कि ज्यादा विचारशील तो नहीं है? उन्होंने कहा कि ज्यादा, बहुत ज्यादा विचारशील है। एक काम करता है तो तीन

बार सोचता है। तो कन्फ्यूशियस ने कहा कि मुझे उस आदमी से बचाओ। मैं वहां न जाऊंगा। पर उन्होंने कहा, आप कैसी बातें कर रहे हैं! क्या वह आदमी बुद्धिमान नहीं है? कन्फ्यूशियस ने कहा, वह जरा ज्यादा बुद्धिमान हो गया, जरा ज्यादा अनबैलेंस्ड हो गया। जो आदमी एक बार सोचता है वह भी अति पर है, जो तीन बार सोचने लगा वह दूसरी अति पर चला गया। दो बार काफी है। कन्फ्यूशियस का मतलब कुल इतना है कि जो बीच में ठहर जाये, काफी है। वह
जो गोल्डन मीन है, वह जो बीच में ठहर जाना है; न त्याग, न भोग। न वस्तुओं की पकड़, न वस्तुओं का छोड़। अपरिग्रह तब फलित होता है, मध्य में फलित होता है। ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। इसमें अपरिग्रह की आप बिल्कुल चिंता न करें। आप चिंता करें परिग्रह को समझने की। और ध्यान रखें, परिग्रह को छोड़ने की चिंता भर मत करना, परिग्रह को समझने की चिंता करना। परिग्रह क्यों, क्या, कौन सी कमी पूरी कर रहा है? दो चीजें जिस दिन दिख जायेंगी कि परिग्रह को मैं अपनी आत्मा की भर्ती और पूर्ति करना चाहता हूं, आत्मा के खालीपन और रिक्तता को भरना चाहता हूं, यह असंभव है--एक। और दूसरी बात यह कि जिस चीज से हम बंधते हैं, बांधते हैं, उससे बंध भी जाते हैं और गुलाम हो जाते हैं। और तीसरी कि हमारे सारे अतीत का अनुभव कहता है कि सब मिल जाये फिर भी कुछ नहीं मिलता है। खाली के खाली रह जाते हैं। यह स्मरण पूरा हो जाये तो आप अचानक पायेंगे कि आपकी जिंदगी में अपरिग्रह की किरणें उतरनी शुरू हो गई हैं।
कल हम तीसरे सूत्र अचौर्य पर विचार करेंगे। वह भी परिग्रह की एक और भी सूक्ष्म यात्रा है।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं,
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें!
शणमुखानंद हाल, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया तीसरा प्रवचन

अचौर्य

मेरे प्रिय आत्मन्,
हिंसा का एक आयाम परिग्रह है। हिंसक हुए बिना परिग्रही होना असंभव है। और जब परिग्रह विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है, तो चोरी का जन्म होता है। चोरी परिग्रह की विक्षिप्तता है, पजेसिवनेस दैट हैज गॉन मैड। स्वस्थ परिग्रह हो तो धीरे-धीरे अपरिग्रह का जन्म हो सकता है। अस्वस्थ परिग्रह हो तो धीरे-धीरे चोरी का जन्म हो जाता है। स्वस्थ परिग्रह धीरे- धीरे दान में परिवर्तित होता है, अस्वस्थ परिग्रह धीरे-धीरे चोरी में परिवर्तित होता है।
अस्वस्थ परिग्रह का अर्थ है कि अब दूसरे की चीज भी अपनी दिखाई पड़ने लगी, हालांकि दूसरा अपना नहीं दिखाई पड़ता है। अस्वस्थ परिग्रह का अर्थ है, वह जो इनसेन पजेसिवनेस है, वह दूसरे को तो दूसरा मानती है, लेकिन दूसरे की चीज को अपना मानने की हिम्मत करने लगती है। अगर दूसरा भी अपना हो जाये तब दान पैदा होता है। और जब दूसरे की चीज भर अपनी हो जाये और दूसरा दूसरा रह जाये तो चोरी पैदा होती है।
चोरी और दान में बड़ी समानता है। वे एक ही चीज के दो छोर हैं। चोरी में दूसरे की चीज अपनी बनाने की कोशिश है, दान में दूसरे को अपना बनाने की कोशिश है। चोरी में हम दूसरे की चीज छीन कर अपनी कर लेते हैं। दान में हम अपनी चीज दूसरे की कर देते हैं। एक अर्थ में दान चोरी का प्रायश्चित है। अक्सर दानी कभी अतीत का चोर होता है, और अक्सर चोर भविष्य का दानी हो सकता है। यह जो चोरी है, यह अगर चीजों तक ही संबंधित होती तो बहुत बड़ी बात न थी। जहां तक वस्तुओं की चोरी का संबंध है, इससे कानून, न्याय, राज्य, समाज का जोड़ है। धर्म से तो किसी और गहरी चोरी का संबंध है।
तो ऐसा हो सकता है कि एक दिन आ जाये कि संपत्ति ज्यादा हो, ऐफ्ल्युएंट
हो तो वस्तुओं की चोरी बंद हो जाये, लेकिन उस दिन भी अचौर्य का महत्व रहेगा। इसलिए साधारणतः जिसे हम धार्मिक व्यक्ति कहें वह जिस चोरी से रोकने की बात कर रहा है, वह चोरी तो बहुत जल्दी खत्म हो जायेगी। लेकिन कोई महाव्रत कभी खत्म नहीं हो सकता। इसलिए अचौर्य का कोई और गहरा अर्थ भी है, जो सदा सार्थक रहेगा, सदा प्रासंगिक रहेगा। अगर किसी दिन पूरी तरह समाज समृद्ध हो गया तो चोरी तो बंद हो जायेगी। जो वस्तुओं की चोरी है, वह अधिकतर गरीबी के कारण पैदा होती है। लेकिन और भी चोरियां हैं। महाव्रत का संबंध उन गहरी चोरियों से है।
तो पहले उस गहरी चोरी को हम थोड़ा समझें जिसमें हम सब सम्मिलित हैं, वे लोग भी जिन्होंने कभी किसी की वस्तु नहीं चुराई होगी।
चोरी का अर्थ ही क्या है? चोरी का गहरा आध्यात्मिक अर्थ है कि जो मेरा नहीं है, उसे मैं मेरा घोषित करूं। बहुत कुछ मेरा नहीं है जिसे मैंने मेरा घोषित किया है, यद्यपि मैंने कभी किसी की चोरी नहीं की है।
शरीर मेरा नहीं है, लेकिन मैं मेरा घोषित करता हूं। चोरी हो गई, अध्यात्म की दृष्टि से चोरी हो गई। शरीर पराया है, शरीर मुझे मिला है, शरीर मेरे पास है। जिस दिन मैं घोषणा करता हूं कि मैं शरीर हूं उसी दिन चोरी हो गई। आध्यात्मिक अर्थों में मैंने किसी चीज पर दावा कर दिया, जो दावा अनाधिकारपूर्ण है, मैं पागल हो गया। लेकिन हम सभी शरीर को अपना, अपना ही नहीं, बल्कि मैं ही हूं ऐसा मान कर चलते हैं।
मां के पेट में एक तरह का शरीर था आपके पास। आज अगर आपके सामने उसे रख दिया जाये तो खाली आंखों से देख नहीं सकेंगे। बड़ी खुर्दबीन चाहिए जिससे दिखाई पड़ सकेगा और कभी न मानने को राजी होंगे कि कभी यह मैं था। फिर बचपन में एक शरीर था जो रोज बदल रहा है। प्रतिदिन शरीर बह रहा है। अगर हम एक आदमी के जिंदगी भर के चित्र रखें सामने, तो वह आदमी हैरान हो जायेगा कि इतने शरीर मैं था! और मजे की बात है कि इन सारे शरीरों में यात्रा करते वक्त हर शरीर को उसने जाना कि यह मैं हूं।

एक अमरीकन अभिनेता का जीवन मैं पढ़ता था। कई बार संन्यासियों के जीवन थोथे होते हैं, उनमें कुछ भी नहीं होता। जिन्हें हम तथाकथित अच्छे आदमी कहते हैं, अक्सर उनके पास कोई जिंदगी नहीं होती। इसलिए अच्छे आदमी के आसपास कहानी लिखना बहुत मुश्किल है। उसके पास कोई जिंदगी नहीं होती। वह थोथा, समतल भूमि पर चलने वाला आदमी होता है, कोई उतार-चढ़ाव नहीं होते। अक्सर जिसको हम बुरा आदमी कहते हैं, उसमें एक जिंदगी होती है, और उसमें उतार-चढ़ाव होते हैं और अक्सर बुरे आदमी के पास जिंदगी के गहरे अनुभव होते हैं। अगर वह उनका उपयोग कर ले तो संत बन जाये। अच्छा आदमी कभी संत नहीं बन पाता। अच्छा आदमी बस अच्छा आदमी ही रह जाता है--सज्जन। सज्जन याने मिडियॉकर। जिसने कभी बुरे होने की भी हिम्मत नहीं की, वह कभी संत होने की भी सामर्थ्य नहीं जुटा सकता।
इस अभिनेता की मैं जिंदगी पढ़ रहा था। उसकी जिंदगी बड़े उतार-चढ़ाव की जिंदगी है। अंधेरे की, प्रकाशों की, पापों की, पुण्यों की--लेकिन उसका अंतिम निष्कर्ष देख कर मैं दंग रह गया। अंतिम उसने जो निष्कर्ष दिया है, पूरी जिंदगी में जो बात उसे सबसे ज्यादा बेचैन की है, काश वह आपको भी बेचैन कर सके। आखिरी बात उसने यह कही है कि मेरी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मैंने इतने प्रकार के अभिनय किये, जिंदगी में मैंने इतनी एक्टिंग्स कीं, मैं इतने व्यक्ति बना, कि अब मैं तय नहीं कर पाता हूं कि मैं कौन हूं? कभी वह शेक्सपियर के नाटक का कोई पात्र था, कभी वह किसी और कथा का कोई और पात्र था। कभी किसी कहानी में वह संत था, और कभी किसी कहानी में वह पापी था। जिंदगी में इतने पात्र बना वह कि आखिर में कहता है कि मुझे अब समझ नहीं पड़ता कि असली में मैं कौन हूं? इतने अभिनय करने पड़े, इतने चेहरे ओढ़ने पड़े, कि मेरा खुद का चेहरा क्या है वह मुझे कुछ पक्का नहीं रहा।
दूसरी बड़ी गहरी बात उसने कही है कि जब भी मैं किसी पात्र का अभिनय करने मंच पर जाता हूं तब मैं एट-ईज होता हूं। क्योंकि वहां स्वयं होने की जरूरत नहीं होती, एक अभिनय निभाना पड़ता है, तो मैं एकदम सुविधा में होता हूं, मैं निभा देता हूं। "टु स्टेप इन ए रोल इज ईजीयर।" उसने लिखा है कि एक अभिनय में कदम रखना आसान है। "बट टु स्टेप आउट आफ इट बिकम्स कांप्लेक्स।" जैसे ही मैं मंच से उतरता हूं उस अभिनय को छोड़ कर, वैसे ही मेरी दिक्कत शुरू हो जाती है कि अब मैं कौन हूं? तब तक तो तय होता है कि मैं कौन था, अब मैं कौन हूं?
हजार अभिनय करके यह तय करना उसे मुश्किल हो गया है कि मैं कौन हूं? कहना चाहिए कि उसकी जिंदगी में अचौर्य का क्षण निकट आ गया है। लेकिन हमारी जिंदगी में हमें पता नहीं चलता। सच बात तो यह है कि कोई अभिनेता इतना अभिनय नहीं करता, जितना अभिनय हम सब करते हैं। मंच पर नहीं करते हैं, इससे ख्याल पैदा नहीं होता है। बचपन से लेकर मरने तक अभिनय की लंबी कहानी है। ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो अभिनेता नहीं है। कुशल-अकुशल का फर्क हो सकता है, लेकिन अभिनेता नहीं है, कोई ऐसा आदमी नहीं है। और अगर कोई आदमी अभिनेता न रह जाये तो उसके भीतर धर्म का जन्म हो जाता है।
हम चेहरे चुरा कर जीते हैं। हम शरीर को अपना मानते हैं वह भी अपना नहीं है, और हम जिस व्यक्तित्व को अपना मानते हैं वह भी हमारा नहीं है। वह सब उधार है। और जिन चेहरों को हम अपने ऊपर लगाते हैं; जो मास्क, जो परसोना, जो मुखौटे लगा कर हम जीते हैं वह भी हमारा चेहरा नहीं है।
बड़ी से बड़ी जो आध्यात्मिक चोरी है वह चेहरों की चोरी है, व्यक्तित्वों की चोरी है।
बेंजामिन फ्रेंकलिन ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि बचपन से ही मुझे पूर्ण होने की इच्छा है, तो मैंने बारह नियम तय किये थे जिनका उपयोग करके मैं पूर्ण हो जाऊंगा। उन बारह नियमों में समस्त धर्मों ने जो श्रेष्ठ बातों की चर्चा की है वह सब आ जाते हैं। संयम है, संकल्प है, शील है, शांति है, मौन है, सदभाव है... वह सारे बारह, सब अच्छी बातें उन बारह में आ जाती हैं।
बेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि लेकिन मैं इनको पाऊं कैसे? तो मैंने एक-एक आचरण का अभ्यास करना शुरू कर दिया। मैंने बुरा बोलना बंद कर दिया, और जब बुरा आये तो उसे दबाने लगा, और रोज रात हिसाब-किताब रखने लगा कि

आज मैंने कोई बुरी बात तो नहीं बोली। आज मैंने किसी चीज में असंयम तो नहीं किया। आज मैंने कोई अनाचार तो नहीं किया। आज मैंने चोरी की बात तो नहीं सोची। आज मैंने आलस्य तो नहीं किया। वह हिसाब रखने लगा और रोज-रोज अभ्यास साधने लगा, फिर अभ्यास सध गया।
और बेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि मैंने अपने आचरण को पूरा साध लिया और तब एक ईसाई साधु ने उसे कहा कि तुमने सब तो साध लिया, लेकिन तुम बड़े अहंकारी हो गये हो। स्वभावतः जिसने सब साध लिया वह अहंकारी हो जायेगा। साधा है, सिद्ध हो गया है, तो अहंकार हो जायेगा। तो उस ईसाई फकीर ने कहा कि एक तेरहवां नियम और जोड़ दो--ह्यूमिलिटी, विनम्रता। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा कि मैं उसको भी साध लूंगा। उसने फिर ह्यूमिलिटी भी साध ली, उसने विनम्रता भी साध ली। वह विनम्र भी हो गया।
लेकिन अपने संस्मरण में उसने एक वचन लिखा है जो बड़ा कीमती है। उसने लिखा है कि अंततः लेकिन मुझे ऐसा लगा कि जो भी मेरी उपलब्धि है, इट इज जस्ट एन एपियरेंस, वह सिर्फ दिखावा है। जो भी मैंने साध लिया है, वह सिर्फ चेहरा बन पाया है, वह मेरी आत्मा नहीं बन पायी। स्वभावतः जो भी हम बाहर से साधेंगे वह चेहरा ही बनता है। जो भीतर से आता है वही आत्मा होती है।
हम सब बाहर से ही साधते हैं धर्म को। अधर्म होता है भीतर, धर्म होता है बाहर। चोरी होती है भीतर, अचौर्य होता है बाहर। परिग्रह होता है भीतर, अपरिग्रह होता है बाहर। हिंसा होती है भीतर, अहिंसा होती है बाहर। फिर चेहरे सध जाते हैं। इसलिए धार्मिक आदमी जिन्हें हम कहते हैं, उनसे ज्यादा चोर व्यक्तित्व खोजना बहुत मुश्किल है।
चोर व्यक्तित्व का मतलब यह हुआ कि जो वे नहीं हैं, वे अपने को माने चले जाते हैं, दिखाये चले जाते हैं। आध्यात्मिक अर्थों में चोरी का अर्थ हैः जो आप नहीं हैं उसे दिखाने की कोशिश, उसका दावा। हम सब वही कर रहे हैं, सुबह से सांझ तक हम दावे किये जाते हैं।
वह अमरीकी अभिनेता ही अगर भूल गया हो कि मेरा ओरीजिनल-फेस, मेरा अपना चेहरा क्या है, ऐसा नहीं है; हम भी भूल गये हैं। हम सब बहुत-से चेहरे तैयार रखते हैं। जब जैसी जरूरत होती है वैसा चेहरा लगा लेते हैं। और जो हम नहीं हैं, वह हम दिखाई पड़ने लगते हैं। किसी आदमी की मुस्कुराहट देख कर भूल में पड़ जाने की कोई जरूरत नहीं है, जरूरी नहीं है कि भीतर आंसू न हों। अक्सर तो ऐसा होता है कि मुस्कुराहट आंसुओं को छिपाने का इंतजाम ही होती है। किसी आदमी को प्रसन्न देख कर ऐसा मान लेने की कोई जरूरत नहीं है कि उसके भीतर प्रसन्नता का झरना बह रहा है, अक्सर तो वह उदासी को दबा लेने की व्यवस्था होती है। किसी आदमी को सुखी देख कर ऐसा मान लेने का कोई कारण नहीं है कि वह सुखी है, अक्सर तो दुख को भुलाने का आयोजन होता है।
आदमी जैसा भीतर है वैसा बाहर दिखाई नहीं पड़ रहा है, यह आध्यात्मिक चोरी है। और जो आदमी इस चोरी में पड़ेगा उसने वस्तुएं तो नहीं चुराईं, व्यक्तित्व चुरा लिये। और वस्तुओं की चोरी बहुत बड़ी चोरी नहीं है, व्यक्तित्वों की चोरी बहुत बड़ी चोरी है।
इसलिए जिस आदमी को अचौर्य में उतरना हो, उसे पहली बात यह समझ लेनी चाहिए कि वह भूल कर भी कभी व्यक्तित्व न चुराये। महावीर से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा। बुद्ध से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जायेगा। जीसस से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा। कृष्ण से जो व्यक्तित्व लेगा वह चोर हो जाएगा।
चोर का मतलब ही यह है कि जिसने जो है वह नहीं, बल्कि जो नहीं था उसको ओढ़ लिया। अब दूसरा कोई आदमी पृथ्वी पर दुबारा महावीर नहीं हो सकता, हो ही नहीं सकता। वे सारी की सारी स्थितियां दुबारा नहीं दोहराई जा सकतीं जो महावीर के होने के वक्त हुईं। न तो वह पिता खोजे जा सकते हैं फिर से जो महावीर के थे। न वह मां खोजी जा सकती है फिर से जो महावीर की थी। न वह आत्मा दुबारा खोजी जा सकती है जो महावीर की थी। न वह शरीर खोजा जा सकता है जो महावीर का था। न वह युग खोजा जा सकता है जो महावीर का था। न वे चांद-तारे खोजे जा सकते हैं। कुछ भी नहीं खोजा जा सकता। इस जगत में जो क्षण बह गया वह बह गया।

इसलिए दूसरा कोई आदमी जब भी महावीर होने की कोशिश करेगा तो वह चोर महावीर हो जाएगा। दूसरा कोई आदमी अगर कृष्ण होने की कोशिश करेगा तो वह चोर कृष्ण हो जाएगा। कोई आदमी जब भी दूसरा आदमी होने की कोशिश करेगा तो आध्यात्मिक चोरी में पड़ जाएगा। उसने व्यक्तित्व चुराने शुरू कर दिये। और धर्म का हम यही मतलब समझे बैठे हैंः किसी के जैसे हो जाओ, अनुयायी बनो, अनुकरण करो, अनुसरण करो, पीछे चलो, ओढ़ो, किसी को भी ओढ़ो, खुद मत रहो बस, किसी को भी ओढ़ो। इसलिए कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई ईसाई है, कोई बौद्ध है। ये कोई भी धार्मिक नहीं हैं। ये धर्म के नाम पर गहरी चोरी में पड़ गये हैं। अनुयायी चोर होगा ही आध्यात्मिक अर्थों में, उसने किसी दूसरे व्यक्तित्वों को चुरा कर अपने पर ओढ़ना शुरू कर दिया जो वह नहीं है। पाखंड, हिपोक्रेसी परिणाम होगा।
इसलिए जितना तथाकथित धार्मिक समाज, उतना पाखंडी, उतना हिपोक्रेट। उसका कारण है, क्योंकि वहां कोई व्यक्ति वही नहीं है, जो वह है। वहां सभी व्यक्ति वही है, जो वह नहीं है। ऐसा समझें कि कोई व्यक्ति अपनी जगह नहीं है, सब किसी और की जगह खड़े हैं। कोई व्यक्ति अपनी आंखों से नहीं देख रहा है, सब किसी और की आंखों से देख रहे हैं। कोई व्यक्ति अपने होठों से नहीं हंस रहा है, सब व्यक्ति दूसरों के होठों से हंस रहे हैं। कोई व्यक्ति अपने से नहीं जी रहा है, सब व्यक्ति किसी और से जी रहे हैं। जो असंभव है। न तो मैं किसी की जगह जी सकता हूं और न किसी की जगह मर सकता हूं। न मैं किसी के होठ से हंस सकता हूं और न किसी के हृदय से अनुभव कर सकता हूं। मेरा अनुभव अनिवार्यरूपेण निजी होगा। और निजी होगा उसी दिन मैं अचौर्य को उपलब्ध होऊंगा, उसके पहले नहीं हो सकता। मैं जिस दिन स्वयं ही रह जाऊंगा, मेरे पास कोई ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व नहीं होगा, उस दिन मैं अचौर्य को उपलब्ध हो जाऊंगा, अन्यथा मैं चोर बना रहूंगा।
ध्यान रहे, वस्तुओं के चोरों को तो हम जेलों में बंद कर देते हैं, व्यक्तित्वों के चोरों के साथ हम क्या करें? जिन्होंने पर्सनैलिटीज चुराई हैं, उनके साथ क्या करें? उन्हें हम सम्मान देते हैं, उन्हें हम मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में आदृत करते हैं।
ध्यान रहे, वस्तुओं के चोर ने कोई बहुत बड़ी चोरी नहीं की है, व्यक्तित्व के चोर ने बहुत बड़ी चोरी की है। और वस्तुओं की चोरी बहुत जल्दी बंद हो जाएगी, क्योंकि वस्तुएं ज्यादा हो जाएंगी, चोरी बंद हो जाएगी, लेकिन व्यक्तित्वों की चोरी जारी रहेगी। हम चुराते ही रहेंगे, दूसरे को ओढ़ते ही रहेंगे।
इसे आप जरा सोचना कि आप स्वयं होने की हिम्मत जिंदगी में जुटा पाये,
या नहीं जुटा पाये? अगर नहीं जुटा पाये तो आपके व्यक्तित्व की अनिवार्य आधार-शिला चोरी की होगी। आपने कोई और बनने की कोशिश तो नहीं की है? आपके चेतन-अचेतन में कहीं भी तो किसी और जैसा हो जाने का आग्रह तो नहीं है? अगर है, तो उस आग्रह को ठीक से समझ कर उससे मुक्त हो जाना जरूरी है। अन्यथा अचौर्य, नो-थेफ्ट की स्थिति नहीं पैदा हो पाएगी। और यह चोरी ऐसी है कि इससे आपको कोई भी रोक नहीं सकता, क्योंकि व्यक्तित्व अदृश्य चोरियां हैं। धन चुराने जाएंगे, पकड़े जा सकते हैं। व्यक्तित्व चुराने जाएंगे, कौन पकड़ेगा? कैसे पकड़ेगा? कहां पकड़ेगा? और व्यक्तित्व की चोरी ऐसी है कि किसी से कुछ छीनते भी नहीं और आप चोर हो जाते हैं। व्यक्तित्व की चोरी आसान और सरल है। सुबह से उठ कर देखना जरूरी है कि मैं कितनी बार दूसरा हो जाता हूं। हम व्यक्ति नहीं हो पाते व्यक्तित्वों के कारण। पर्सनैलिटीज के कारण पर्सन पैदा नहीं हो पाता।
यह शब्द पर्सनैलिटी बड़ा अच्छा शब्द है--यूनान में ग्रीक ड्रामा से आया हुआ शब्द है। यूनान में जो यूनानी ड्रामा होता था उसमें प्रत्येक अभिनेता को अपने ऊपर एक मुखौटा, एक चेहरा ओढ़ना पड़ता था, एक मास्क पहनना पड़ता था। उस चेहरे को परसोना कहते थे। और उस चेहरे से बने हुए व्यक्तित्व को पर्सनैलिटी कहते थे। पर्सनैलिटी का मतलब था जो वो नहीं है वह। पर्सनैलिटी का मतलब कि जो आप नहीं हैं।
इसलिए जितनी बड़ी पर्सनैलिटी हो उतनी बड़ी चोरी होगी। बहुत कुछ चुराया हुआ होगा। एक साधु है, वह महावीर की पर्सनैलिटी लिये हुए है। ठीक महावीर

जैसा नग्न खड़ा हो गया है। ठीक महावीर जैसा चलता, उठता, बैठता है। ठीक महावीर जैसा खाता-पीता है। ठीक महावीर के शब्द बोलता है। बिल्कुल महावीर हो गया है। लेकिन यह होना बाहर से ही हो सकता है। भीतर से तो वह सिर्फ वही हो सकता है जो है, यह पर्सनैलिटी है।
इसलिए चोरों के पास अक्सर अपना व्यक्तित्व होता है। साधुओं के पास अपना होता ही नहीं। अगर जेलखाने में जायें और चोरों की आंखों में झांकें तो ऐसा लगेगा कि वे जो हैं, हैं। मंदिरों में जायें और साधुओं की आंखों में झांकें तो लगेगा कि वे जो नहीं हैं वही हैं।
बुरा आदमी अक्सर वही होता है, जो है। क्योंकि बुरे को कोई भी ओढ़ता नहीं। अच्छा आदमी अक्सर वही होता है जो नहीं है, क्योंकि अच्छे को ओढ़ने का मन होता है। अच्छा होना तो बहुत कठिन है, ओढ़ना बहुत आसान है। अच्छा होना तो तपश्चर्या है, अच्छा होना आर्डुअस है। लेकिन अच्छे को ओढ़ लेना खेल है, सुविधा है, बहुत कन्वीनिएंट है। फिर अच्छे होने के साथ बड़ी कठिनाइयां हैं; क्योंकि दुनिया अच्छी नहीं है। इसलिए अच्छा होने वाला आदमी दुनिया के साथ मुसीबत में पड़ जाता है। टु बी मॉरल इन ए इम्मॉरल सोसायटी, टु बी गुड इन ए बैड सोसायटी, एक अनैतिक समाज में नैतिक होना बड़ी दुविधा है। एक बुरे समाज में अच्छे होना बड़ी कठिनाई मोल लेना है। यही है तपश्चर्या साधु की।
साधु की तपश्चर्या नंगा खड़ा हो जाना नहीं है। साधु की तपश्चर्या भूखा
रह जाना नहीं है। ये बड़ी सस्ती और सरल बातें हैं, जो कोई भी नासमझ साध सकता है। असल में समझ हो तो साधना मुश्किल, ना-समझी हो तो साधना आसान। साधु की तपश्चर्या हैः टु बी मॉरल इन ए इम्मॉरल वर्ल्ड, नैतिक होना अनैतिक जगत में तपश्चर्या है। क्योंकि चारों तरफ से चोट पड़ेगी। इसलिए सुविधापूर्ण है वस्त्र ओढ़ लेना। नैतिकता के वस्त्र ओढ़ो, अनैतिक रहो। अनैतिक रहो, दुनिया से कोई तकलीफ नहीं होगी। नैतिकता के वस्त्र ओढ़ो, बाजारों में, सार्वजनिक स्थानों में।
इसलिए हमारे पास दो तरह के चेहरे हैंः प्राइवेट फेसेस, पब्लिक फेसेस।
और नियम है कि वह जो व्यक्तिगत चेहरा है, निजी चेहरा है, उसे कभी सार्वजनिक स्थान में मत ले जाना। कोई नहीं ले जाता। कभी-कभी शराब वगैरह कोई पी ले तो भूल हो जाती है, अन्यथा नहीं। कोई शराब पी ले तो भूल जाता है कि पब्लिक प्लेस है और प्राइवेट फेस, तो तकलीफ होती है।
इसलिए भले आदमी शराब पीने से बहुत डरते हैं। बुरे आदमी उतने नहीं डरते हैं, क्योंकि उनका चेहरा सब जानते हैं। उससे बड़ा और बुरा चेहरा उनके पास नहीं है। अगर दुनिया के सब भले आदमियों को इकट्ठा करके शराब पिलाई जा सके तो आपको पता चलेगा कि प्राइवेट फेसेस क्या हैं।

यूनान में एक फकीर था गुरजिएफ। वह तो जब भी कोई आदमी वहां आता तो उससे पहले पूछता कि भले आदमी हो कि बुरे आदमी हो? शायद ही कभी कोई आदमी कहता कि मैं बुरा आदमी हूं। क्योंकि इतना भला आदमी बहुत मुश्किल है खोजना जो कह सके कि मैं बुरा आदमी हूं। अक्सर तो लोग कहते कि कैसी आप बात पूछते हैं! भला हूं, साधना करने आया हूं, साधना करने ही क्यों आता अगर भला न होता? हालांकि हालत उल्टी है, भला आदमी किसलिए साधना करने जाएगा?
गुरजिएफ कहता, पहली साधना यह रहेगी कि पंद्रह दिन शराब पीनी पड़ेगी। अक्सर तो भला आदमी भाग जाता। कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई फकीर और शराब पीने के लिए कहेगा। लेकिन अर्थपूर्ण थी उस गुरजिएफ की बात। वह कहता था पंद्रह दिन तो मैं शराब पिलाऊंगा ताकि मैं तुम्हारा प्राइवेट फेस देख सकूं। अन्यथा मैं किसके साथ बात करूं, अन्यथा मैं किसके साथ व्यवहार करूं, अन्यथा मैं किसको बदलूं? क्योंकि तुम जो दिखाई पड़ रहे हो, अगर इसको मैंने बदला तो बेकार मेहनत हो जाएगी, क्योंकि तुम तो यह हो ही नहीं। यह बदलाहट बेकार। यह रंगरोगन मैं कर दूंगा, यह तुम्हारे मुखौटे पर हो जाएगा, तुम्हारे चेहरे से इसका कोई संबंध नहीं है। और मुखौटा बिल्कुल अलग चीज है, तुम उसे कभी भी उतार कर रख सकते हो, बदल सकते हो। तुम मुझसे बेकार मेहनत मत करवाओ। पहले मुझे तुम्हारा ओरिजिनल फेस, तुम्हारा असली चेहरा देख लेने दो।

अक्सर तो अच्छा आदमी भाग जाता शराब का नाम सुन कर ही। भागना ही बता देता कि उस आदमी के भीतर कुछ छिपा है जो प्रकट होने से डरेगा। लेकिन अगर कोई रुक जाता तो बड़ी हैरानी होती। पंद्रह दिन गुरजिएफ उसे शराब ही पिलाये जाता। जितनी ज्यादा से ज्यादा पिला सकता, पिलाता। और उसके असली चेहरे को खोजता।
कैसा दुर्भाग्य कि आदमी के असली चेहरे को खोजने के लिए उसे बेहोश करना पड़ता है। इतनी परतें हैं नकली चेहरों की, चोरी इतनी गहरी है, इतनी लंबी है, अनंत जन्मों की है कि असली चेहरा बहुत-बहुत, बहुत पीछे छिप गया है। एक मुखौटा उतारो तो दूसरा उसके नीचे है। प्याज की तरह आदमी हो गया है। एक छिलका निकालो फिर छिलका, और छिलका निकालो फिर छिलका।
आप इस भ्रम में मत रहना कि प्याज को खोज लेंगे। आप छिलके निकालते जाओ, निकालते जाओ, निकालते जाओ, बस छिलके ही निकलते चले जाएंगे। आखिर में कुछ भी नहीं बचेगा। आखिरी छिलका निकल जाएगा। आप पूछोगे प्याज कहां है? पता चलेगा छिलकों का जोड़ ही प्याज थी, प्याज का अपना कोई अस्तित्व न था।
हम करीब-करीब अनंत जन्मों में इतने व्यक्तित्वों की चोरी किये हैं, हमने इतने मुखौटे ओढ़े हैं कि हमारा अपना तो कोई चेहरा नहीं रह गया है। अगर हमारे छिलके उतारे जाएंगे तो आखिर में शून्य रह जाएगा। लेकिन उसी शून्य से शुरू करना पड़ेगा, क्योंकि उसी शून्य से अचौर्य में गति होगी। उसके पहले कोई गति नहीं हो सकती। अगर एक आदमी को यह पता चल जाये कि मेरा कोई चेहरा ही नहीं है, तो बड़ी उपलब्धि है यह।
आपसे मैं कहना चाहूंगा कि आप चोरी से बचने की कोशिश का नाम अचोरी मत समझ लेना। चोरी से जो बचा है, वह भी चोरी से बचा हुआ चोर है। चोरी जिसने की है चोरी में फंस गया चोर है। वे दोनों चोर हैं। चोरी उनके भीतर है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक की चोरी व्यवहार तक चली गयी है, एक की चोरी मन तक रह गयी है।
लेकिन चोरी का जो असली गहरा आध्यात्मिक, स्पिरिच्युअल अर्थ है, वह यह
है कि क्या आपके पास अपना चेहरा है?
नहीं खोज पाएंगे। आइने के सामने खड़े होंगे, वह जो चेहरा दिखाई पड़ेगा, पता चलेगा वह किसी और का है। हालांकि अब तक उसे हमने अपना ही समझा है। फिर ऐसा भी नहीं है कि हमारे पास एक ही चेहरा हो, जिससे हम चौबीस घंटे काम चलाते हों। चौबीस घंटे हमको फंक्शनली इतने बहुत-से चेहरे बदलने पड़ते हैं-- पति के सामने पत्नी को कुछ और ही होना पड़ता है; पति पत्नी के सामने कुछ और होता है, अपनी पत्नी के सामने कुछ और होता है, पड़ोसी की पत्नी के सामने कुछ और होता है। तत्काल चेहरा बदल जाता है। अपने मालिक के सामने कुछ और होता है, अपने नौकर के सामने कुछ और होता है। अगर मेरे इस तरफ मालिक को बिठाल दिया जाये और मेरे इस तरफ नौकर को बिठाल दिया जाये तो मेरा नौकर मेरे आधे चेहरे में कुछ और देखेगा, मेरा मालिक मेरे आधे चेहरे में कुछ और देखेगा-- मेरे दो चेहरे एक साथ होंगे। इधर नौकर को मैं दबाता हुआ रहूंगा। इधर मालिक की तरफ मैं पूंछ हिलाता हुआ रहूंगा। यह मेरे एक ही साथ मुझे दोनों काम करने पड़ेंगे।
तो कई दफे बहुत लोगों के बीच जब आप होते हैं तो आप गिरगिट हो जाते हैं। इसके साथ कुछ और, उसके साथ कुछ और, इसके साथ कुछ और। बड़ी कठिनाई हो जाती है।
मैंने सुना है नसरुद्दीन के बाबत। नसरुद्दीन की दो प्रेयसियां थीं।
विनम्र आदमी रहा होगा, नहीं तो दो प्रेयसियों पर कौन रुकता है। दोनों से अलग-अलग मिलता था। दो प्रेयसी से एक साथ मिलना बहुत कठिन है। क्योंकि दोनों को ऐसे चेहरे दिखाये हैं, जो वायदा किया है कि एक को ही दिखाया है।
प्रत्येक से कहा, तेरे सिवाय किसी को प्रेम नहीं करता।
लेकिन प्रेयसियां भी बहुत होशियार हैं, वे तत्काल पता लगा लेती हैं।
वे प्रेमी की इतनी खोज नहीं करतीं जितनी प्रेमी की प्रेयसियों की खोज करती हैं। उन दोनों ने पता लगा लिया और एक दिन नसरुद्दीन को फंसा लिया और नसरुद्दीन से कहा, आज तो हम दोनों को एक साथ जवाब दो। नसरुद्दीन ने कहा, गरीब आदमी को इस तरह मत फंसाओ। क्योंकि तुम दोनों अलग-अलग हो तो बड़ी सुविधा रहती है, इतनी देर में मैं चेहरा बदल लेता हूं। लेकिन उन दोनों ने तो उसे पकड़ लिया और कहा, तुम जवाब दो कि हम दोनों में सुंदर कौन है?

नसरुद्दीन ने कहा, तुम एक से एक बढ़कर सुंदर हो, तुम एक दूसरे से बढ़कर सुंदर हो।
पता नहीं प्रेयसियां समझ पाईं कि नहीं। शायद ही समझ पायी होंगी, क्योंकि प्रेम से बुद्धि का बहुत कम संबंध है। पता नहीं आप भी समझ पाये कि नहीं! नसरुद्दीन कह रहा है, तुम एक दूसरे से बढ़कर सुंदर हो! क्या कहना! बड़ी गहरी मजाक नसरुद्दीन आदमी से कर रहा है। दोनों चेहरे एक साथ संभालने हों तो बेचारा क्या कर सकता है? गिरगिट हो गया वह। कह रहा है कि तुम दोनों एक दूसरे से बढ़कर हो।
चौबीस घंटे में हम चौबीस चेहरे बदल रहे हैं। चौबीस नहीं और ज्यादा बदलने पड़ते हैं, और यह चेहरों की बदलाहट तनाव पैदा करती है। टेंशन जो है वह चेहरों की बदलाहट है। जिस आदमी के पास एक चेहरा है उस आदमी को तनाव नहीं होता। तनाव का कोई कारण नहीं रहा। तनाव सदा होता है चेहरों को बार-बार बदलने से। इतनी बार बदलना पड़ता है कि बहुत मुश्किल हो जाती है और बीच-बीच जो गैप पड़ता है, जब आप एक चेहरे को उतार कर दूसरा लाते हैं तो बीच का जो गैप होता है वह बहुत एंग्जाइटी पैदा करता है; क्योंकि उस वक्त आपके पास कोई चेहरा नहीं होता है, उस वक्त आप बड़ी कठिनाई में होते हैं। वह ठीक कहता है अमरीकी अभिनेता, "टु स्टेप इन ए रोल इज ईजीअर बट टु स्टेप आउट इज आरडुअस।" बाहर होना किसी रोल के बड़ा मुश्किल है, लेकिन हमें तो चौबीस घंटा करना पड़ता है। चेहरों को बदलना पड़ता है, बदलना पड़ता है, बदलना पड़ता है।
लेकिन आदमी बहुत होशियार है। जैसे पहले गाड़ियों में कन्वेंशनल गेयर
था तो बदलना पड़ता था। अब ऑटोमैटिक गेयर है, उसे नहीं बदलना पड़ता। जो बहुत कुशल लोग हैं उनके पास ऑटोमैटिक गेयर हैं। वे चेहरे बदलते नहीं, चेहरे बदल जाते हैं। चेहरे के बदलने के हमने ऑटोमैटिक गेयर तय कर लिये हैं, अब हमें बदलना नहीं पड़ता। नौकर आया कि चेहरा बदला। मालिक आया कि चेहरा बदला। पत्नी आई कि चेहरा और हुआ। प्रेयसी आई कि चेहरा और हुआ। मित्र आया तो चेहरा और हुआ। अब चेहरा बदलता रहता है। पुराने आदमी को धार्मिक होने में बड़ी सुविधा थी। उसके पास कन्वेंशनल गेयर थे। उसको चेहरा बदलना पड़ता था, इसलिए यह भी पता चलता था कि मैं चेहरा बदल रहा हूं। आधुनिक सभ्यता ने कन्वेंशनल गेयर हटा दिये, जिनको बदलना पड़ता था। अब ऑटोमैटिक गेयर हैं। सभ्य आदमी और असभ्य आदमी में मैं इतना ही फर्क करता हूं, कन्वेंशनल गेयर और ऑटोमैटिक गेयर का, और कोई फर्क नहीं करता हूं।
असभ्य आदमी को चेहरा बदलना पड़ता है। बदलना पड़ने की वजह से उसे हर बार पता चलता है कि मैं कुछ कर रहा हूं। यह मैं क्या कर रहा हूं, उसे कठिनाई होती है। सभ्य आदमी का मतलब है, सभ्यता का अर्थ है, ऐसा प्रशिक्षण जो आपको चेहरे बदलने के कष्ट से बचा देता है। ऐसी शिक्षा जो आपको चेहरे बदलने के कष्ट से बचा देती है। और चेहरे अपने आप बदलने लगते हैं। इसलिए सभ्य आदमी का धार्मिक होना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उसको चोरी का पता ही नहीं चलता। उसे गैप का पता ही नहीं चलता, वह जो दो चेहरों के बीच में क्षण गुजरता है, जहां खाली जगह छूट जाती है, उसका उसे पता नहीं चलता। तनाव तो बढ़ता जाता है सभ्य आदमी का, क्योंकि तनाव चेहरे बदलने से पैदा होता है। लेकिन यह चेहरे न बदलूं यह बोध पैदा नहीं होता, क्योंकि गेयर ऑटोमैटिक है। वह अपने आप हो जाता है, इसलिए जितना सभ्य आदमी, उतना धर्म से दूर जाता हुआ मालूम पड़ता है।
जीसस, बुद्ध या महावीर एक असभ्य दुनिया में पैदा हुए थे। सभ्य दुनिया में हम जीसस, बुद्ध और महावीर जैसे हैसियत के आदमी पैदा नहीं कर पा रहे हैं। उसके कारण हैं। बेचैनी तो उससे भी ज्यादा है। असभ्य आदमी इतना बेचैन नहीं था। बेचैनी तो बहुत है, लेकिन यह पता नहीं चलता कि बेचैनी क्यों है? बेचैनी क्यों है, इसका हमें बोध कम हो गया।
तो मैं आप से कहना चाहूंगा अचौर्य को समझने के लिए अपने चेहरे बदलने
के प्रति आपको सजग होना पड़ेगा। सजग होने की एक तरकीब है और सजग होने का एक अर्थ है। आप जितने सजग होते हैं किसी भी चीज के प्रति, उसकी गति कम हो जाती है।
कभी आपने फिल्म देखी है। उसकी कभी मशीन बिगड़ जाये, मशीन के बिगड़ने का मतलब क्या? मशीन धीमी चलने लगे, प्रोजेक्टर धीमा चलने लगे तो परदे पर

फिल्म की गति क्षीण हो जाती है। तो जो आदमी एकदम से हाथ उठाता मालूम पड़ रहा था परदे पर, फिर दस आदमी धीरे-धीरे हाथ उठाते हुए मालूम पड़ते हैं और हाथों के बीच गैप हो जाता है। जब मैं भी हाथ उठाता हूं तो यह हाथ एक झटके में नहीं उठता, सिर्फ आपकी आंख इतनी गति को पकड़ नहीं पाती अन्यथा हाथ को बीस पोजीशन लेनी पड़ती इतने हटने में। लेकिन अगर गौर से देखें, और मशीन आपकी थोड़ी धीमी हो जाये... और गौर से देखने से धीमी हो जाती है। किसी भी चीज को अगर बहुत गौर से देखें तो प्रक्रिया धीमी हो जाती है, दो कारण से। क्योंकि गौर से देखने के लिए पहले तो आपको खड़ा होना पड़ता है। आपको रुकना पड़ता है। अगर आप अपने चेहरे बदलने की प्रक्रियाओं को गौर से देखें तो प्रक्रिया धीमी हो जाएगी और आप देख सकेंगे कि कब आपका चेहरा बदला और अपने पर हंस सकेंगे कि चेहरा बदल लिया गया।
अचौर्य के महाव्रत में आप अपने चेहरे बदलने को देखना। एक आदमी दूकान
से मंदिर की ओर जा रहा है। उसे पता रखना चाहिए कि कब उसने चेहरा बदला, किस स्टेप पर, मंदिर की किस सीढ़ी पर चेहरा बदला गया। दूकान पर वही तो चेहरा नहीं था जो मंदिर में होता है, बदलाहट कहीं तो हुई है जरूर। कहीं उसने चेहरा बदला है। पुरुष वेनीटी बैग वगैरह साथ नहीं रखते, स्त्रियां साथ रखती हैं। बस से उतरने के पहले चेहरा बदलती हैं, साथ में इंतजाम भी रखती हैं। वैसा बहुत भीतरी इंतजाम हम सबके पास है--जहां से हम चेहरे निकालते हैं और बदलते हैं। जब आप घर से मंदिर की तरफ जा रहे हैं तब आप जरा होशपूर्वक जानना कि चेहरा किस जगह बदलता है। किस जगह दूकानदार हटता है और साधक आता है। किस जगह दूकान पर बैठा हुआ आदमी जाता है और मंदिर में प्रवेश करने वाला आदमी आता है। जहां आप जूते उतारते हैं मंदिर के बाहर वहीं तो यह परिवर्तन नहीं होता? जरूरी नहीं है कि वहीं हो। असल में जूते उतरवाये इसलिए जाते हैं वहां कि कृपया अब चेहरा बदलो, अब वह जगह आ गयी जहां आपका पुराना ढंग नहीं चलेगा, जूता यहां उतारो! जहां लिखा रहता है "कृपया जूता यहां" वहीं नीचे तख्ती होनी चाहिए "कृपया चेहरे यहां"। कई लोग अपने चेहरे लिये भीतर घुस जाते हैं। जूता लिये मंदिर में चले जायें उतनी अपवित्रता नहीं होगी, चेहरा लिये चले गये तो ज्यादा होगी। लेकिन उसका किसी को पता नहीं चलता।
आपको मैं कहना चाहूंगा कि जब आप चेहरे बदलते हैं तो आप जरा होश रखना
कि आप कब बदलते हैं। और इसका बड़ा मजा होगा। अब तक आप दूसरों पर हंसे हैं, तब आप अपने पर हंसना शुरू हो जायेंगे। और जब आप जान कर चेहरा बदलेंगे तो चेहरा बदलना मुश्किल हो जायेगा, और धीरे-धीरे आप कहेंगे कि यह क्या पागलपन है? यह मैं क्या अभिनय कर रहा हूं?
धीरे-धीरे चेहरा बदलना कठिन हो जायेगा और जिस दिन चेहरा बदलना कठिन होगा और बीच का अंतराल बढ़ेगा, और कभी-कभी आप बिना चेहरे के रह जायेंगे तब आप का ओरिजिनल फेस जन्मेगा। आपके भीतर आपका चेहरा आना शुरू होगा।
तो एक तो चौबीस घंटे बदलते हुए चेहरों का ख्याल रखना, और दूसरा किसी
का चेहरा--महावीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का, अपना बनाने की कोशिश मत करना। भूल कर मत करना। अनुयायी बनना ही मत, अन्यथा चोर बने बिना कोई उपाय ही नहीं है।
अनुयायी दो चोरी करता है। चेहरा चुराता है जो बहुत सिनसियर अनुयायी होता है। कहना चाहिए जो बहुत सिनसियर चोर होता है, जो बहुत ईमानदारी से चोरी करता है, वह चेहरे चुराता है। जो बेईमानी से चेहरे चुराता है वह चेहरे नहीं चुराता, सिर्फ विचार चुराता है। वह महावीर का चेहरा नहीं ओढ़ता, सिर्फ महावीर का विचार पकड़ लेता है। पंडित के पास सिर्फ विचार की चोरी होती है, तथाकथित साधु के पास चेहरों की चोरी होती है।
तो ध्यान रखना, कुछ कमजोर चोर हैं। वह कहते हैं, चेहरा तो मुश्किल है महावीर का लगाना, लेकिन अहिंसा परमधर्म है, यह तो हम अपने भीतर लिख ही सकते हैं। महावीर का शास्त्र तो पढ़ ही सकते हैं। कृष्ण का चेहरा लगाकर तो जरा कठिनाई है, लेकिन कृष्ण की गीता तो कंठस्थ कर ही सकते हैं।
तो दो तरह की चोरी है--विचार की, चेहरे की। चेहरे की चोरी वाले आदमी को
हम बहुत सिनसियर चोर और ईमानदार चोर कहते हैं। क्योंकि इस बेचारे आदमी ने जैसा विचारा वैसा किया भी। ध्यान रखें, जिसने विचार से कुछ किया है वह

आदमी चेहरा ओढ़ लेगा। धर्म का कोई संबंध किसी सिद्धांत को तय करके उसके अनुसरण करने से नहीं है। नहीं तो बेंजामिन फ्रेंकलिन वाली घटना घटेगी, एपियरेंसेज पैदा हो जायेंगे, दिखावे पैदा हो जायेंगे।
अक्सर हम कहते हैं, जो विचारते हो उसके अनुसार आचरण करो। यह चोर बनाने
का सूत्र है, लेकिन सिनसियर, ईमानदार चोर इससे पैदा होते हैं। हम लोगों से कहते हैं, जो विचारते हो उसका आचरण भी करो, पर हमें पहले यह तो पता लगा लेना चाहिए कि कहीं विचार चोरी से तो नहीं आया है? अन्यथा आचरण और भी गहरी चोरी में ले जायेगा। जब हम किसी से कहते हैं कि इस आदमी का विचार और आचरण बिल्कुल एक-सा है, तब हमें पूछ लेना चाहिए कि इसके आचरण से इसका विचार आया है, या इसके विचार से इसका आचरण आया है। अगर इसके आचरण से इसका विचार आया है तब तो यह धार्मिक आदमी है, अगर इसके विचार से इसका आचरण आया है तो यह आदमी चोर है। मगर यह फर्क एकदम से दिखाई नहीं पड़ता।
जब आचरण से कोई विचार आता है, तब उसकी सुगंध और है, क्योंकि आचरण आत्मा
से आता है। जब किसी विचार से आचरण आता है तो विचार, शास्त्र से आता है। शास्त्र से आया हुआ विचार खुद भी चोरी है, फिर शास्त्र से आये हुए विचार के अनुसार जीवन को ढाल लेना और बड़ी चोरी है। और जो इस तरह की चोरियों में भटक जाते हैं वे आत्मा को खो देते हैं। उन्हें पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि वे कौन हैं?
नहीं, मैं नहीं कहता हूं कि विचार के अनुसार आचरण। मैं कहता हूं, आचरण
के अनुसार विचार। बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे आप, क्योंकि आचरण कहां से लायें? अगर विचार के अनुसार आचरण हो तो विचार तो मिल सकते हैं, आचरण कहां से लायें! आचरण की कोई दूकान नहीं है। आचरण कहीं बिकता नहीं। विचार तो बिकते हैं। विचारों की तो किताबें हैं। आचरणों की कोई किताबें नहीं। आचरण का कोई शास्त्र नहीं है। इसलिए आचरण आप कहां से लायेंगे? अगर महावीर से लायेंगे तो फिर विचार से आया, बुद्ध से लायेंगे तो विचार से आया, कृष्ण से लायेंगे तो विचार से आया। आचरण कहां से लाइयेगा? अगर किसी दूसरे से लायेंगे तो पहले विचार आयेगा। अगर अपने से लायेंगे तो बात और हो जायेगी। तब पहले विचार नहीं आयेगा, पहले अनुभव आयेगा।
अगर चोर आचरण है आपका, तो कृपा करके चोर जैसा विचार करिये। इसमें एक सरलता होगी। आपका आचरण चोर का है, तो चोर जैसा ही विचार करिये। और मैं आपसे कहता हूं कि अगर आपका आचरण चोर का है और विचार भी चोर का है तो आप चोरी के बाहर हो जायेंगे! अगर आपका आचरण चोर का है और विचार अचौर्य का है तो आप चोरी के बाहर कभी नहीं होंगे। क्योंकि आप कहेंगे आचरण तो बाहरी चीज है, असली चीज तो विचार है। ऐसे तो मैं अचोर हूं, मजबूरियों में चोर बन जाता हूं। तो धीरे-धीरे साध लूंगा, आचरण भी बदल लूंगा। जब विचार बदल गया तो आचरण भी बदल जायेगा--व्रत ले लूंगा, कसम खा लूंगा। तो आप जिंदगी भर पोस्टपोन करते रहेंगे, क्योंकि आप भीतरी रूप से अनुभव करेंगे कि विचार तो अचोरी का है। ऐसे तो आदमी मैं भीतर से अच्छा हूं। ऐसी बाहर की परिस्थितियां हैं, कारण हैं, जो चोर बना देते हैं, चोर मैं हूं नहीं।
यह ध्यान रखें आप कि आपका जो व्यवहार है, वह बहुत दूर है आपसे। आपका जो विचार है वह बहुत निकट है। इसलिए अगर हम किसी आदमी को उसके विचार में गलती बतायें तो वह मानने को राजी नहीं होता। अगर हम किसी आदमी को कहें कि तुम्हारे पैर में फोड़ा है, वह झंझट नहीं करता, वह कहता है, इलाज बताइये! लेकिन हम किसी आदमी से कहें कि तुम्हारे मन में रोग है, तो वह लड़ने को तैयार हो जाता है, वह कहता है, आपकी गलती है देखने में।
शरीर के रोग को आदमी स्वीकार कर लेता है, वह बहुत दूर है। मन के फोड़े
को वह स्वीकार नहीं करता, वह बहुत निकट है। मन के फोड़े पर चोट उस पर ही चोट है। तो हमने एक तरकीब की है। एक टेक्नीकल तरकीब है हमारी कि हम विचार अच्छे करते हैं, आचरण बुरा करते हैं। इससे सुविधा रहती है। सुविधा यह रहती है कि हम अपने भीतर मानते ही चले जाते हैं कि हम आदमी अच्छे हैं। अगर आपको मैं गाली दूं तो मैं यह नहीं कहूंगा कि मैं गाली देने वाला आदमी हूं; मैं कहूंगा, मैं तो गाली कभी नहीं देता, लेकिन इस आदमी ने गाली दी इसलिए मुझे गाली देनी पड़ी। यही आदमी जिम्मेदार है मेरी गाली को पैदा करवाने में। जब आप किसी से लड़ते हैं तो आप यह नहीं कहते हैं कि लड़ाई मेरे भीतर है। आप कहते

हैं, इस आदमी ने लड़ाई की सिच्युएशन पैदा कर दी। मुझे लड़ना पड़ा। ऐसे आदमी मैं लड़ने वाला नहीं हूं। और इसको आप विश्वास भी दे लेंगे क्योंकि भीतर आप कभी लड़ने का विचार तो करते नहीं। विचार तो सदा अहिंसा, अचोरी, अपरिग्रह का करते हैं। शास्त्र तो अहिंसा, अचोरी, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य का पढ़ते हैं। तो विचार तो बड़े अच्छे हैं। आचरण! तो आचरण के लिए दूसरा जिम्मेदार हो जाता है। आप बच जाते हैं। फिर एक और सुविधा होती है, जब विचार अच्छे हैं तो आज नहीं कल ताकत जुटा कर, संकल्प पैदा करके, स्थिति ठीक बनाकर, आचरण भी बदल लेंगे। तो पोस्टपोनमेंट किया जा सकता है।
ध्यान रहे, जिस आदमी को जिंदगी में ट्रांसफार्मेशन लाना हो उसे पोस्टपोनमेंट से बचना चाहिए। स्थगन से बचना चाहिए। वह बहुत कनिंग, बहुत चालाक तरकीब है। एक आदमी कहता है, मैं हूं तो अभी हिंसक लेकिन अहिंसा को मानता हूं। धीरे-धीरे अहिंसक हो जाऊंगा। वह कहेगा, कल हो जाऊंगा, परसों हो जाऊंगा। इस जन्म में हो जाऊंगा, अगले जन्म में हो जाऊंगा, वह उसे पोस्टपोन करता जायेगा और रहेगा हिंसक। लेकिन हिंसक होने की जो पीड़ा है उससे बच जायेगा; क्योंकि अहिंसक होने की आशा उसकी पीड़ा को कम कर देगी। वह कंसोलेटरी है।
तो मैं कहता हूं, चोरी करना तो चोरी का विचार भी करना। और जितने अचोरी
के शास्त्र हों उनमें आग लगा देना। और घर में दीवालों पर लिखना कि चोरी परमधर्म है। और अपने हृदय में जानना कि चोरी परम कर्तव्य है। जो चोरी नहीं करता है वह गलती करता है।
अगर आप विचार भी चोरी का करें और आचरण भी चोरी का करें तो आप अपने साथ
जी न सकेंगे। क्योंकि तब अपने चोर के साथ कोई भी नहीं जी सकता। और आप पक्के चोर हो जायेंगे। पूरे चोर हो जायेंगे। इसके साथ जीना मुश्किल हो जायेगा। आपकी पूरी पर्सनैलिटी, आचरण में, विचार में, आपका पूरा व्यक्तित्व चोर हो जायेगा। और आपकी आत्मा को इस चोर के साथ जीना मुश्किल हो जायेगा। एक क्षण जीना मुश्किल है।
लेकिन जीने की तरकीब है। वह तरकीब यह है कि हम कल ठीक कर लेंगे। विचार
तो अच्छे हैं, आचरण बुरा है। आचरण दूसरों के कारण बुरा है, इस तरह के ख्याल को बहुत तरह के प्रमाण भी मिल जाते हैं। जैसे एक आदमी जंगल में चला जाये तो वहां क्रोध नहीं करता। वह कहता है, देखो, क्रोध दूसरे लोग करवाते थे। अब मैं जंगल में आ गया, अब मैं कहां क्रोध कर रहा हूं!
इसलिए साधु जंगल की तरफ भागता है। वहां उसे आश्वासन हो जाता है कि मैं बिल्कुल अच्छा आदमी हूं, मैं पहले भी अच्छा आदमी था, बुरे लोगों के बीच में घिरा था, इसलिए सब गड़बड़ हो रही थी। इसलिए पति पत्नी को छोड़कर भाग जाता है और सोचता है, देखो अब तो मैं माया-मोह के बाहर हो गया। उस स्त्री की वजह से माया-मोह पैदा हो रहा था। इसलिए पुरुष शास्त्रों में लिखते हैं, स्त्री नरक का द्वार है! भागे हुए स्त्री से, भाग गये हैं छोड़कर, अब वह कह रहे हैं, स्त्री नरक का द्वार है। क्योंकि वही उलझा रही थी, मैं तो सदा ही मुक्त था, इसके लिए कारण मिल जाते हैं।
अगर हम किसी कुएं में बाल्टी डालें और उसमें पानी न हो तो बाल्टी पानी बाहर नहीं ला सकती। बाल्टी उसी पानी को लाती जो कुएं में होता है। बाल्टी सिर्फ बाहर लाने का काम करती है। जब मैं आपको गाली देता हूं तो मेरी गाली आप में क्रोध पैदा नहीं कर सकती। गाली में क्रोध पैदा करवाने की ताकत ही नहीं है। लेकिन आपके भीतर जो क्रोध के पानी का कुआं भरा हुआ है, गाली बाल्टी बन जाती है, आपके क्रोध को बाहर ले आती है। गाली जो है वह प्रोडक्टिव नहीं है, वह सिर्फ मेनीफेस्टिंग है। वह किसी चीज को पैदा नहीं करती सिर्फ अभिव्यक्त करवाती है। लेकिन एक कुएं में बाल्टी न डाली जाये तो कुआं समझेगा अब पानी है ही नहीं, अब निकालता ही नहीं। वह बाल्टी का कसूर था कि बाल्टी भीतर आती थी और पानी की गड़बड़ पैदा होती थी। मैं तो सदा से खाली हूं, पानी है ही नहीं। देखो, अब कोई बाल्टी नहीं आती। अब कहां पानी निकल रहा है?
हम सब इसी भ्रम में हैं, अकेले में पता नहीं चलता। असल में हमारे व्यक्तित्व का पता ही हमें दूसरों के साथ चलता है। जब हम दूसरे के साथ हैं

तभी पता चलता है कि हमारे भीतर क्या-क्या है। दूसरा मौका बनता है, हमें प्रकट होने का।
इसलिए कृपा करके दूसरे को जिम्मेदार मत ठहराना। जिसने भी इस दुनिया में दूसरे को जिम्मेदार ठहराया वह आदमी धार्मिक नहीं हो पाया है। धार्मिक आदमी का मतबल है, टोटल रिस्पांसिबिलिटी इज माइन। टोटल, पूरा का पूरा दायित्व मेरा है। अधार्मिक आदमी का मतलब है कि दायित्व किसी और का है, मैं तो भला आदमी हूं, लोग मुझे बुरा किये दे रहे हैं। कोई आपको बुरा नहीं कर रहा है।
दूसरी तरकीब, आप भीतर अच्छे विचार करते रहते हैं इसलिए आप भीतर जानते हैं कि भीतर तो मैं अच्छा हूं। जब दूसरों के संबंध में आता हूं तो बाहर बुरा हो जाता हूं। इसलिए यह बाहर से बुरा होना दूसरे के कारण है। अच्छे विचार से बचना, अगर अच्छे आचरण को जन्म देना हो। अगर बुरा आचरण है, कृपा करके बुरा विचार करना, पूरी तरह बुरे हो जाना। पूरी तरह बुरे आदमी के साथ जीना मुश्किल है। आधे अच्छे आदमी के साथ जीने की सुविधा बनायी जा सकती है। आधा अच्छा आदमी बुरे आदमी से भी बुरा है। आधे सत्य पूरे असत्यों से बुरे होते हैं। क्योंकि पूरे असत्य से मुक्त हो जायेंगे आप, आधे असत्य से कभी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि वह जो आधा सत्य है वह बंधन का काम करेगा।
तो मैं आपसे कहूंगा, विचार के अनुसार आचरण मत बनाना। आचरण के अनुसार
ही विचार करना। ताकि चीजें साफ हों और अगर चीजें साफ हुईं तो कोई भी आदमी इस दुनिया में बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकता। आप भी अपने बुरे आदमी के साथ नहीं जी सकते। और एक दफा यह पता चल जाये कि मैं एक बुरी पर्त के साथ जी रहा हूं तो इस पर्त को उखाड़ फेंकने में उतनी ही आसानी होगी जैसे पैर से कांटा निकालने में होती है। इस बुरी पर्त को फेंक देने में, इस व्यक्तित्व को, इस पर्सनालिटी को, इस प्याज की पर्त को उखाड़ कर फेंक देने में उतनी ही आसानी होगी जैसे शरीर से मैल को अलग कर देने में होती है।
लेकिन अगर कोई आदमी अपने मैल को सोना समझ रहा हो तब कठिनाई हो जाती है। कोई आदमी अपनी बीमारी को अगर मूल्य दे रहा हो, आभूषण समझ रहा हो, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। अब अगर हम किसी बच्ची की नाक को छेदें तो उसे तकलीफ होगी, लेकिन सोने के आभूषण की आकांक्षा में नाक छिदवाने के लिए कोई भी तैयार हो जाता है। अब शरीर को छेदना पागलपन है। लेकिन सोने की आशा में हम पागलपन करने को भी तैयार हो जाते हैं। अब शरीर को छेदना कुरूपता है, लेकिन सौंदर्य के ख्याल में, भ्रम में, हम शरीर को छेदने को राजी हो जाते हैं। हम बुरे होने को राजी हो गये हैं, क्योंकि बुरे होने के पीछे हम सोने
की कील लगाये हुए हैं विचारों की। विचार के अनुसार आचरण कभी मत करना, आचरण के अनुसार विचार करना और तब आपके व्यक्तित्व की सीधी और सच्ची सफाई हो जायेगी। आप जो होंगे वही होंगे, धोखे का उपाय नहीं रह जायेगा। दूसरे के धोखे का डर नहीं है, अपने को धोखा देने का उपाय नहीं रह जायेगा। आप अपने चेहरों को पहचान सकेंगे। और जिस दिन यह चेहरे चारों तरफ से पहचान में आ जाते हैं और इनकी कुरूपता, इनकी गंदगी और इनकी दुर्गंध, इनका कोढ़, जब चारों तरफ से दिखाई पड़ने लगता है, बाहर और भीतर, तब आप इसके साथ रह नहीं सकते। यह ऐसे ही हो जाता है, जब किसी के कपड़ों में आग लगी हो और वह अपने कपड़ों को फेंक कर नग्न हो जाये। ठीक ऐसे ही ट्रांसफार्मेशन होता है। ऐसे ही क्रांति घटित होती है। जब सारा व्यक्तित्व रुग्ण और आग लगा मालूम होता है तब आप उसे फेंक देते हैं। उसे फेंकने के लिए फिर एक क्षण भी विचार नहीं करना पड़ता कि कल फेंकूंगा। ऐसा नहीं है... ।
बुद्ध के पास कोई आया और उसने कहा कि महाराज कुछ उपदेश दें। तो बुद्ध
ने कहा, करोगे अभी कि कल? उसने कहा, अभी तो बहुत मुश्किल है। तो बुद्ध ने कहा, फिर कल ही आना। जिस दिन करना हो उसी दिन आ जाना। उसने कहा कि नहीं आप उपदेश तो दे दें। वक्त पर काम पड़ेगा, आप मिले न मिले। कभी उपयोग में जरूर लाऊंगा।
बुद्ध ने कहा कि मैं एक गांव से गुजरता था और घर में आग लग गई थी। मैंने उस घर के लोगों को कहा, अभी मत भागो कल भाग जाना। वे कहने लगे, पागल हो गये हो तुम! घर में आग लगी है, कल तक कैसे रुका जा सकता है। तो बुद्ध ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, तुम जो हो अभी मानते हो कि ठीक हो, इसलिए कल

तक ठहरा सकते हो। और जब तुम ठीक ही हो तो मुझे क्यों परेशान करते हो? मैं क्यों व्यर्थ की बातें तुमसे कहूं? जिस दिन तुम्हें पता लगे कि तुम ठीक नहीं हो... । नहीं, उस आदमी ने कहा, मुझे पता तो है मैं ठीक नहीं हूं। आदमी अच्छा नहीं हूं, बुरे काम करता हूं, लेकिन आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है। आत्मा तो शुद्ध ही है सदा। यह सब आचरण, तो आचरण बदल लूंगा, आप उपदेश करें।
हम सब उपदेश ग्रहण करने को बहुत आतुर और उत्सुक हैं। फिर हम सोचते हैं, उसके अनुसार आचरण बना लेंगे। यह आचरण वैसा ही होगा जैसा मंच पर अभिनेता का होता है। पहले उसे स्क्रिप्ट मिल जाती है, पहले उसे ढांचा मिल जाता है नाटक का, फिर उसको कंठस्थ करता है। फिर रिहर्सल करता है। फिर आकर मंच पर दिखा देता है करके कि यह रहा।
अभिनय का मतलब है विचार के अनुसार आचरण, लेकिन आत्मा का मतलब कुछ और है, आचरण के अनुसार विचार। अगर बुरा आचरण है तो बुरा विचार ही करना। टूट जाएंगे आप। आप का व्यक्तित्व बच नहीं सकेगा, बिखर जाएगा। और जिस दिन आपका पुराना व्यक्तित्व पूरा बिखर जाएगा उस दिन उस खाली जगह में उसका जन्म होगा जो आपका असली चेहरा है।
जापान में झेन फकीरों के पास अगर कोई जाता है तो वे बहुत से सवाल उससे पूछते हैं। उनमें से एक सवाल यह भी है कि कृपा करके अपना ओरिजिनल चेहरा प्रकट कीजिए, अपना असली चेहरा दिखाइये? अब नया आदमी आया है उससे कोई फकीर कहता है, असली चेहरा दिखाइये? तो वह कहता है, यही मेरा चेहरा है। तो फकीर कहता है, अगर यही तेरा चेहरा है तो यहां आने की कोई जरूरत नहीं। जा खोज-- असली चेहरा लेकर आ। कभी-कभी कुछ हिम्मतवर लोग असली चेहरा लेकर आ जाते हैं। लेकिन वे फकीर भी बहुत अदभुत हैं, वे कहे ही चले जाते हैं कि माना कि यह पिछले से ज्यादा आथेंटिक है, पिछले वाले से ज्यादा गहरा है, लेकिन फिर भी असली नहीं है। अपना असली लेकर आ। उस चेहरे को ला, जो जन्म के पहले तेरे पास था और मौत के बाद तेरे पास होगा। जन्म के पहले कौन-सा चेहरा तेरे पास था, उसे ले आ। या मरने के बाद तेरे पास फिर जो चेहरा होगा, उसे ले आ। कृपा करके यह बीच के चेहरों को यहां मत ला। और जब कोई आदमी आकर बैठ जाता है फेसलेस, बिना चेहरे के, तो वह फकीर कहता है, ठीक है, अब तू असली जगह आ गया।
बड़ी उपलब्धि है फेसलेसनेस। लेकिन हम बहुत डरते हैं। अगर चेहरा खो जाये तो हम बहुत डरते हैं, हम पूछते हैं इससे बड़ी मुश्किल हो गई। फिर हम जल्दी चेहरा बनाने में लगते हैं।
चेहरा खोना ही चाहिए अगर चोरी खोनी है। और वह क्षण आना ही चाहिए जहां आपको पक्का न रह जाये कि मैं कौन हूं। अगर आपको जानना है कि आप कौन हैं, चोर चेहरों को हटाइए, चाहे महावीर से लिये हों, चाहे बुद्ध से, चाहे कृष्ण से, चाहे मुसलमान के, चाहे जैन के, चाहे हिंदू के। उन चेहरों को हटाइए और उसको खोजिए जो आपका है। और जिस दिन आपके सारे चेहरे गिर जायेंगे, अचानक आपके सामने वह रूप प्रगट हो जाता है जो आपका है। जैसे ही वह रूप प्रकट होता है आप अचौर्य को उपलब्ध हो जाते हैं। और जिस आदमी ने व्यक्तित्व चुराने बंद कर दिए, जिसने चेहरे चुराने बंद कर दिए, जिसने आचरण चुराने बंद कर दिए, वह आदमी वस्तुएं नहीं चुरा सकता। वह असंभव है। वह असंभव है, उसका कोई उपाय नहीं रह जाता। जिसने इतनी गहरी चोरियां छोड़ दीं, वह इन क्षुद्र चोरियों के लिए नहीं जाएगा; लेकिन हम क्षुद्र चोरियां छोड़ने में लगे रहते हैं।
एक मित्र मेरे पास आये, उन्होंने मुझसे कहा कि मैं रिश्वत नहीं लेता हूं। बड़े आफिसर हैं। मैंने कहा, अगर पांच रुपये कोई देने आये? उन्होंने कहा, क्या आप फिजूल की बातें करते हैं। मैं लेता ही नहीं रिश्वत। मैंने कहा, कोई पांच सौ देने आये? उन्होंने उतने जोर से नहीं कहा कि क्या फिजूल की बातें करते हैं। उन्होंने कहा, नहीं, नहीं, मैं लेता ही नहीं हूं। मैंने पूछा, अगर कोई पांच हजार रुपया लेकर आये? तो उन्होंने मुझे गौर से देखा, संदेह उनके मन में आ गया। मैंने कहा, अगर कोई पांच लाख लेकर आये? उन्होंने कहा, फिर सोचना पड़ेगा।
तो हमारे चोर होने में हो सकता है मात्राएं हों, डिग्रीज हों। हो सकता
है आप दो पैसे न चुराते हों, लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि आप अचोर हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आपने दो पैसे चुराये कि दो लाख चुराये। चोरी में कोई मात्रा हो सकती है? चोरी कम और ज्यादा हो सकती है? दो पैसे की चोरी

कम और दो लाख की ज्यादा! दो पैसा कम होंगे, दो लाख ज्यादा होंगे, चोरी तो एक-सी है। चोरी कैसे भिन्न, कम और ज्यादा हो सकती है? चोरी का एक्ट तो टोटल है। दो पैसे चुराऊं तो भी मैं उतना ही चोर होता हूं जितना दो लाख चुराऊं। तो यह हो सकता है आपके चोरी के अपने मापदंड हैं, मेरे चोरी के अपने मापदंड हैं। मैं दो पैसे चुराता हूं, आप दो लाख चुराते हैं। दो लाख चुरानेवाले, दो पैसे चुराने वाले को जेल में बंद कर सकते हैं। कर सकते हैं, क्योंकि दो पैसा वाले अभी जेल नहीं बना सकते, दो लाख वाले जेल बना सकते हैं। दो लाख वाले चोरों को पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि दो लाख वाले चोर दो लाख रुपया किसी को भी चोरी में दे सकते हैं। तो जो मजिस्ट्रेट दो पैसेवाले चोर को सजा दे दे, वह दो लाख वाले चोर को कैसे सजा दे? क्योंकि तब तक तो वह मजिस्ट्रेट भी चोर हो जाएगा। दो लाख के लिए तो वह भी चोरी को राजी हो सकता है। तो बड़े चोर छोटे चोरों को फंसाये चले जाते हैं। बड़े चोर दीवारों के बाहर, छोटे चोर दीवारों के भीतर। होशियार चोर दीवारों के बाहर, नासमझ चोर दीवारों के भीतर। लेकिन पूरा समाज चोर है।
और यह चोरी जब तक हम वस्तुओं के संबंध में ही सोचते रहेंगे तब तक मिटनेवाली नहीं है। यह हो सकता है कि मैं सब छोड़ कर भाग जाऊं और कहूं कि मैं चोरी नहीं करूंगा। लेकिन मेरा भोजन कोई चोर लायेगा, मेरे कपड़े कोई चोर लायेगा, मेरे रहने का आश्रम कोई चोर बनायेगा। इससे क्या फर्क पड़ता है। सिर्फ मैं और भी होशियार चोर हूं। मैं खुद चोरी नहीं करता हूं, दूसरे से करवाता हूं। और कोई फर्क नहीं पड़ जाएगा। लेकिन मैं जिम्मेदारी के बाहर नहीं भाग सकता। चोरी है, समाज चोर है, समाज चोर रहेगा। तब तक, जब तक हम चोरी को वस्तुओं की चोरी समझ रहे हैं। समाज चोर है, क्योंकि हमने बहुत गहरे में सबको चोर होने की ही शिक्षा दी है।
हम एक बच्चे से कहते हैं कि विवेकानंद जैसे हो जाओ। अब इस बच्चे का क्या कसूर है कि विवेकानंद जैसा हो जाये? विवेकानंद बहुत भले थे, लेकिन इस बच्चे की कौन-सी गलती कि विवेकानंद हो जाये? और अगर हो गया तो चोर हो जाएगा। हम कहते हैं, महावीर जैसे हो जाओ। अब कोई गलती की है आपने पैदा होकर? अगर महावीर को ही सिर्फ पैदा होने का हक है पृथ्वी पर तो अब तक दुनिया खतम हो जानी चाहिए। वह हो चुके पैदा, मामला खतम हो गया। अब आपके होने की क्या जरूरत है? तो महावीर की कार्बन कापियों को दुहराने की क्या जरूरत है? जब ओरिजिनल ही हो गई तो अब फिजूल की और मेहनत किस लिए कर रहे हैं? एक महावीर काफी!
नहीं, किसी आदमी को कार्बन कॉपी होने की जरूरत नहीं है। व्यक्तित्व चुराने से बचना, आचरण चुराने से बचना, तब किसी दिन आपकी अपनी आत्मा प्रकट होगी जो अचौर्य को उपलब्ध होती है। और उसके बाद वस्तुओं को तो चुराने का सवाल ही नहीं उठता। वह सवाल ही नहीं है।
यह थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। यह आप कोशिश करने में मत लग जाना अन्यथा
यह मेरा उधार विचार हो जाएगा और चोरी शुरू हो जाएगी। चोरी के बहुत सूक्ष्म रास्ते हैं। हो सकता है आप कहें कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, चलें अब यही करें, चोरी शुरू हो गई। कृपा करके यही मत करना जो मैं कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं उसे समझ लेना, और छोड़ देना। समझ आपके पास रह जाये, विचार नहीं। परफ्यूम रह जाये, फूल नहीं। मैंने जो बात कही वह समझ लेना, फिर उसे यहीं छोड़ जाना। बात से कोई लेना-देना नहीं, समझ आपके साथ चली जाएगी। वह समझ आपकी जिंदगी को बदले तो बदलने देना, न बदले तो न बदलने देना। कृपा करके ऊपर से थोपने की कोशिश मत करना, अन्यथा चोरी जारी रहेगी। और अचोरी कभी उपलब्ध नहीं हो सकती।
कल चौथे सूत्र अकाम पर हम बात करेंगे। मैंने कहा कि जब हिंसा रूप लेती
है तो उसका एक रूप परिग्रह है और जब परिग्रह पागल होता है, विक्षिप्त होता है, तो उसका एक रूप चोरी है। कल अकाम की बात करेंगे। अकाम तीनों का आधार है। काम, वासना, डिजायरिंग, चाह, वह हिंसा का भी आधार है। वह परिग्रह का भी आधार है। वह चोरी का भी आधार है। काम इन तीनों के नीचे बैठा है और सरका हुआ है, सबकी जड़ में वह है। कल हम काम को समझेंगे और परसों अप्रमाद को।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
शणमुखानंद हाल, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया चौथा प्रवचन

अकाम

मेरे प्रिय आत्मन्,
अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, तीन महाव्रतों पर हमने विचार किया है। आज चौथा व्रत है, अकाम। काम मनुष्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऊर्जा का नाम है। जिन तीन व्रतों की हमने बात की उन सबके आधार में काम की शक्ति ही काम करती है। यदि काम सफल हो जाये तो परिग्रह बन जाता है। यदि काम स्वयं की हीनता से विफल हो जाये तो चोरी बन जाता है। यदि काम दूसरे के कारण से विफल हो जाये तो हिंसा बन जाता है। काम के मार्ग पर, कामना के मार्ग पर, इच्छा के मार्ग पर, अगर कोई बाधा बनता हो तो काम हिंसक हो उठता है। अगर कोई बाधा न हो, भीतर की ही क्षमता बाधा बनती हो तो काम चोर हो जाता है। और अगर कोई बाधा न हो, भीतर की कोई अक्षमता न हो और काम सफल हो जाये तो परिग्रह बन जाता है। इस काम को गहरे से समझना जरूरी है।
मनुष्य एक ऊर्जा है, एक एनर्जी है। इस जगत में ऊर्जा, एनर्जी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। समस्त जीवन एक ऊर्जा है। वे दिन लद गये कि जब कुछ लोग कहते थे, पदार्थ है। वे दिन समाप्त हो गये।
नीत्से ने इस सदी के प्रारंभ होते समय में कहा था कि "ईश्वर मर गया है।" लेकिन यह सदी अभी पूरी नहीं हो पाई, ईश्वर तो नहीं मरा, पदार्थ मर गया है। मैटर इज डेड। "मर गया है" कहना भी ठीक नहीं है। पदार्थ कभी था ही नहीं। वह हमारा भ्रम था, दिखाई पड़ता था। वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ सिर्फ सघन हो गई ऊर्जा है, कंडेंस्ड एनर्जी। पदार्थ जैसी कोई चीज ही जगत में नहीं है। वह जो पत्थर है इतना कठोर, इतना स्पष्ट, इतना सब्सटेंसियल वह भी नहीं है। वह भी विद्युत की धाराओं का सघन हो गया रूप है।
आज सारा जगत, विज्ञान की दृष्टि में ऊर्जा का समूह है, एनर्जी है। धर्म की दृष्टि में सदा से ही यही था। धर्म उस शक्ति को परमात्मा का नाम देता था। विज्ञान उस शक्ति को अभी एनर्जी, शक्ति मात्र ही कह रहा है। थोड़ा विज्ञान और आगे बढ़ेगा तो उससे एक और भूल टूट जाएगी। आज से पचास साल पहले विज्ञान कहता था, पदार्थ ही सत्य है। आज विज्ञान कहता है, शक्ति ही सत्य है। कल विज्ञान को कहना पड़ेगा कि चेतना ही सत्य है, कांशसनेस ही सत्य है। जैसे विज्ञान को पता चला कि ऊर्जा का सघन रूप पदार्थ है, वैसे ही विज्ञान को आज नहीं कल पता चलेगा कि चेतना का सघन रूप एनर्जी है।
यह जो ऊर्जा है जीवन की, प्रत्येक व्यक्ति भी इसी ऊर्जा का स्फुलिंग है, इसी ऊर्जा का एक छोटा-सा रूप है। आप भी, मैं भी, सब। यह ऊर्जा, यह शक्ति अगर बाहर की तरफ बहे तो काम बन जाती है, वासना बन जाती है। और अगर भीतर की तरफ बहे तो अकाम बन जाती है, आत्मा बन जाती है। जो भेद है वह सिर्फ दिशा का है। काम जब लौट पड़ता है वापस, अपनी तरफ, रिटर्निंग होम, वापस घर की तरफ जब कामना लौट पड़ती है, तो अकाम बनता है, आत्मा बनती है। और जब काम ऊर्जा बाहर की तरफ बहती रहती है जीवन से, तो धीरे-धीरे आदमी क्षीण, निर्बल, निस्तेज होता चला जाता है। और वह उसकी कामना से दुनिया में बहुत-सी चीजें पा लेता है, लेकिन एक अपने को भर पाने से वंचित रह जाता है। जिसे हमें पाना है, शक्ति उसी की तरफ जानी चाहिए। अगर हमें बाहर की वस्तुएं पानी हैं तो शक्ति को बाहर जाना पड़ेगा, और अगर हमें भीतर की आत्मा पानी हो तो शक्ति को भीतर जाना पड़ेगा।
ध्यान रहे, काम से मेरा मतलब है, बाहर बहती हुई ऊर्जा। अकाम से मतलब है, भीतर बहती हुई ऊर्जा। शक्ति के दो ढंग हैं--बाहर की तरफ बहे या भीतर की तरफ बहे। जब बाहर की तरह बहती है तो व्यक्ति और सब पा सकता है, सिर्फ स्वयं को खो देता है। और सब पा लेने का भी कोई सार नहीं, अगर स्वयं खो जाये। सारा जगत भी हम पा लें तो भी कोई सार नहीं, अगर उस पाने में मैं ही खो जाऊं। अगर ऊर्जा भीतर की तरफ बहती है तो अकाम बन जाती है।
काम का अर्थ ही है कामना, डिजायर, इच्छा। जब भी हम कोई कामना करते हैं
तो हमें बाहर की तरफ बहना पड़ता है, क्योंकि इच्छा कहीं बाहर तृप्ति की आशा

बन जाती है। कुछ पाने को है बाहर, तो हमें बाहर की तरफ बहना पड़ता है। हम सब बाहर बहते हुए लोग हैं। हम सब कामनाएं हैं; वी आर डिजायर। चौबीस घंटे हम बाहर की तरफ बह रहे हैं, किसी को धन पाना है, किसी को यश पाना है, किसी को प्रेम पाना है। और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि अगर किसी को परमात्मा भी पाना है तो भी वह बाहर की तरफ बहता चला जाता है। वह सोचता है कि कहीं आकाश में परमात्मा बैठा है। किसी को मोक्ष पाना है तो वह भी सोचता है कहीं ऊपर मोक्ष है वह पाना है।
धर्म का बाहर से कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए जिनके ईश्वर बाहर हों वह ठीक से समझ लें कि उनका धर्म से कोई नाता नहीं है। जिनका मोक्ष बाहर हो वह ठीक से समझ लें, वह धार्मिक नहीं हैं। जिनके पाने की कोई भी चीज बाहर हो वह समझ लें कि वह कामी हैं। सिर्फ एक ही स्थिति में काम से मुक्ति होती है और वह यह कि हम भीतर बहना शुरू हो जायें। बाहर कोई भी ऑबजेक्ट, बाहर कोई भी पाने की चीज, हमारी ऊर्जा को बाहर की तरफ ले जाती है। और हम धीरे-धीरे खाली होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। फिर दूसरा जन्म, फिर एक ऊर्जा लेकर पैदा होते हैं, फिर बाहर की तरफ बहते हैं, फिर समाप्त हो जाते हैं। फिर तीसरा जन्म, फिर ऊर्जा लेकर पैदा होते हैं, फिर बाहर की तरफ बहते हैं और समाप्त हो जाते हैं।
जन्म के साथ हम शक्ति लेकर आते हैं। मृत्यु के साथ हम शक्ति खोकर वापिस लौट जाते हैं। जो व्यक्ति मृत्यु के साथ भी शक्ति लेकर वापिस लौटता है उसे फिर आने की जरूरत नहीं रह जाती है। जन्म के साथ सभी शक्ति लेकर आते हैं। मृत्यु के साथ अधिकतम शक्ति खोकर, निस्तेज, खाली कारतूस, चले हुए कारतूस, जिसकी खोल रह गयी है गोली तो जा चुकी है, उस खोल को लेकर वापिस लौट जाते हैं। जो व्यक्ति मरते क्षण में भी अपनी पूरी ऊर्जा को बचा कर ले जाता है उसे लौटने की जरूरत नहीं पड़ती। जो कबीर की भांति मरते क्षण में कह सकता है कि "ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया"। कुछ खर्च नहीं किया, कुछ खोया नहीं, दौड़े नहीं। चादर संभालो, जैसी दी थी वैसी ही वापिस लौटा देते हैं। जो मृत्यु के क्षण में बिना कुछ खोये वैसा ही वापस लौट जाता है जैसा जन्म के क्षण में आया था, उसे वापिस जन्म लेने की जरूरत नहीं रह जाती। अकाम, जन्म-मृत्यु से मुक्ति है। काम, बार-बार जन्म में लौट आना है। कारण है... ।
कोई कामना कभी ठीक अर्थों में पूरी नहीं होती, हो नहीं सकती। और जो बाहर की तरफ दौड़ने का आदी हो गया है, जब भी कोई कामना पूरी होने के करीब होती है तब तक वह नयी कामना बना लेता है। क्योंकि फिर बाहर की तरफ दौड़ेगा कैसे? बाहर की तरफ दौड़ना ही जिसकी जिंदगी बन गयी है। वह, एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि दूसरी को जन्मा लेता है। बल्कि एक के पूरे होने के साथ अनेक को जन्मा लेता है, फिर दौड़ना शुरू कर देता है। हम बाहर की तरफ दौड़ती हुई ऊर्जाएं हैं। आऊट गोइंग एनर्जीस। इसलिए हम खाली कारतूसों की तरह मर जाते हैं। इसलिए हमारी मृत्यु एक सौंदर्य नहीं हो पाती और हमारी मृत्यु एक अनुभव नहीं बन पाती। हमारी मृत्यु एक दुख, एक निस्तेज पीड़ा, एक नपुंसकता, एक इंपोटेंस बन जाती है। हम सब भांति टूट कर समाप्त हो जाते हैं। इसलिए मृत्यु में इतनी पीड़ा है। वह पीड़ा मृत्यु की नहीं है। वह पीड़ा निस्तेज खाली हो गये आदमी की है जो सब भांति रिक्त हो गया, जिसमें अब कुछ भी नहीं बचा, सिर्फ खाली खोल रह गया। इसलिए मौत दुख देती है।
लेकिन मौत भी आनंद दे देती है उसे, जो खाली नहीं, भरा हुआ है। हम भरे हुए कैसे रह पायें, इसी सूत्र को समझने के लिए अकाम है। लेकिन अकाम को समझने के पहले काम की समस्त यात्रा समझ लेनी चाहिए। काम किस तरह गति करता है हमारा! हम बाहर की तरफ कैसे बहते हैं, इसे समझ लेना जरूरी है। इसे हम समझ लें तो भीतर की तरफ बहना बड़ी सरल बात है, बड़ी आसान।
हजारों लाखों साल से हमें पता है कि पदार्थ अणुओं से बना है, एटम से बना है, लेकन हम अणु को तोड़ नहीं पाये थे। इस सदी में आकर हमने अणु को तोड़ लिया। अणु को ता.ेडते ही बड़ी चमत्कारिक पूर्ण घटना घटी। और वह यह कि एक छोटे से अणु में, हाइड्रोजन के छोटे से अणु में, या किसी भी चीज के छोटे से अणु में, जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता, इतनी ऊर्जा छिपी थी कि टूटते ही भयंकर शक्ति का जन्म हुआ। एक छोटे से अणु के विस्फोट से हिरोशिमा में एक लाख लोग

तत्काल मृत्यु को उपलब्ध हो गये। एक छोटे से अणु में इतनी ऊर्जा छिपी थी भीतर, कि फूट पड़ा तो इतना विस्फोट हुआ।
विज्ञान ने अणु को तोड़ कर एक बहुत कीमती बात बता दी है, वह यह कि प्रत्येक चीज के भीतर अनंत ऊर्जा छिपी है। अगर टूट जाये तो विस्फोट हो जाता है और सब बाहर बह जाता है। अगर बंद हो जाये... लेकिन हमें तो कभी पता नहीं था कि बंद अणु में इतनी ऊर्जा छिपी है। विज्ञान ने जो काम किया है, धर्म ने उससे ठीक उल्टा काम बहुत पहले कर लिया है। विज्ञान ने तोड़ा है अणु, धर्म ने जोड़ा था। इसीलिए धर्म का नाम हैः योग। योग का अर्थ हैः जोड़। मनुष्य की चेतना भी एक अणु है और उस अणु को हम अगर टूटा हुआ रहने दें
तो उसमें से सब बह जाता है, अनंत ऊर्जा बह जाती है। अगर वह अणु जुड़ जाये, बंद हो जाये--एनेलीसिस नहीं, विश्लेषण नहीं, टूटे नहीं--सिन्थेथिस हो जाये, संश्लिष्ट हो जाये, इंटीग्रेटेड हो जाये, बंद हो जाये, बिंदु बन जाये, अपने में बिंदु हो जाये, सब तरफ से बाहर खोना बंद हो जाये, तो अनंत ऊर्जा भीतर उपलब्ध हो जाती है। इस अनंत ऊर्जा की अनुभूति अनंत परमात्मा की अनुभूति है। इस अनंत ऊर्जा का अनुभव अनंत आनंद का अनुभव है। इस अनंत ऊर्जा का अनुभव अनंत वीर्य का अनुभव है। इस अनंत ऊर्जा के अनुभव के बाद फिर कुछ अनुभव करने को शेष नहीं रह जाता, सब अनुभव हो जाता है।
लेकिन समझना चाहिए कि आदमी टूटा हुआ अणु है। चेतना का टूटा हुआ अणु है। उसमें छेद है; जैसे कोई छेद वाली बाल्टी से पानी भरता हो। पानी भरा हुआ दिखाई पड़ता है जब बाल्टी पानी में डूबी होती है, और जैसे ही बाल्टी पानी के बाहर निकली कि खाली होनी शुरू हो जाती है। छेद हैं चारों तरफ, ऊपर तक आते- आते सिर्फ पानी के गिरने का शोरगुल भर होता है, पानी आता नहीं, खाली बाल्टी वापस लौट आती है।
जन्म के क्षण में हम सब ऊर्जा से भरे हुए होते हैं। जब तक जन्म नहीं हुआ, तब तक हम भरी बाल्टी होते हैं। जन्म के साथ ही बाल्टी ऊपर उठी कुएं से, और गिरना शुरू हुआ। अगर ठीक से समझें तो जन्म के साथ ही हमारा मरना शुरू हो जाता है; हममें से कुछ रिक्त होना, खाली होना शुरू हो जाता है। हम फूटी बाल्टी की तरह खाली होने लगते हैं। जन्म का पहला क्षण मरने की शुरुआत है। खाली होना शुरू हो गया।
इसीलिए जन्म के पहले क्षण के बाद ही प्रत्येक व्यक्ति मरने के योग्य
हो जाता है--कभी भी मर सकता है। अब यह बात दूसरी है कि योग्यता वह कब पूरी करेगा। फिर जीवन भर हम खाली, खाली, खाली होते चले जाते हैं। थोड़ा-बहुत जो जिंदगी में हमें भरेपन का अनुभव होता है वह शायद सुबह हम जब रात के बाद उठते हैं तो थोड़ी देर को लगता है, कुछ भरे हैं। रात भर में ऊर्जा थोड़ी-सी संकलित हो पाती है, क्योंकि इंद्रियों के द्वार बंद हो जाते हैं। आंखें बंद हो जाती हैं, हाथ शिथिल पड़ जाते हैं, कान सुनते नहीं, होठ बोलते नहीं, नाक सूंघती नहीं, सब बंद हो जाता है। द्वार बंद हो जाते हैं। इसलिए सुबह एक ताजगी मालूम पड़ती है। वह ताजगी, वह ताजगी रात को थोड़ी-सी ऊर्जा के ठहर जाने के कारण पता चल रही है।
अगर कोई व्यक्ति अपने पूरे जीवन की ऊर्जा को ठहरा ले तो वह जिस ताजगी
का अनुभव करता है उसका हमें कोई भी पता नहीं है। उसका हमें कोई पता नहीं हो सकता। अगर हम अपनी जीवन भर की सब सुबह की ताजगी को इकट्ठा जोड़ लें तो भी उससे कुछ पता नहीं चल सकता। अगर एक व्यक्ति की नींद खो जाये तो फिर जीना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वह रात जो था.ेडी ऊर्जा इकट्ठी करता है वह भी बंद हो गयी। पंद्रह दिन नींद खो जाये तो आदमी पागल हो जाए। पंद्रह दिन भोजन न मिले तो चल सकता है। पंद्रह दिन नींद न मिले तो कठिनाई होगी।
अगर कोई बीमार है और सो न सके तो चिकित्सक पहले फिक्र करता है कि बीमारी को पीछे देख लेंगे, पहले नींद आ जाए। क्योंकि जिस ऊर्जा से बीमारी को ठीक होना है, वह संकलित होनी चाहिए, संग्रहीत होनी चाहिए, इकट्ठी होनी चाहिए। हम सिर्फ ऊर्जा खो रहे हैं। और काम, ऊर्जा को खोने की विधि है। काम के बहुत रूप हैं, उसमें सर्वाधिक सघन रूप यौन है। इसलिए धीरे-धीरे काम और यौन, काम और सेक्स पर्यायवाची बन गये। भोजन से ऊर्जा मिलती है, नींद से ऊर्जा बचती है, व्यायाम से ऊर्जा जगती है, फिर इस ऊर्जा को हम खर्च करते

हैं। इस ऊर्जा का बहुत-सा खर्च तो सिर्फ जीवन-व्यवस्था में व्यय हो जाता है।
इस ऊर्जा का बहुत-सा खर्च तो ऊर्जा को कल भी हम पैदा कर सकें, इसमें खर्च हो जाता है। इस ऊर्जा का बहुत-सा खर्च तो ऊर्जा भीतर जाकर पैदा हो सके... जब आप भोजन लेते हैं भीतर तो बहुत बड़ा चमत्कार घटित होता है। आप साधारण मृत पदार्थ को भीतर ले जाते हैं और आपकी जीवन-ऊर्जा उसे जीवंत बनाती है। नान-आरगेनिक को आरगेनिक बनाती है। उसमें बहुत ऊर्जा व्यय होती है। भोजन ऊर्जा देता है, लेकिन भोजन को करने और भोजन को खून बनाने में ऊर्जा व्यय होती है। चलते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है, बैठते हैं तो ऊर्जा व्यय होती है, सोते हैं तो सोने में भी ऊर्जा व्यय होती है, संग्रहीत भी होती है।
इस सारी प्रक्रिया, जीवन की सारी प्रक्रिया के बाद जो थोड़ी-बहुत ऊर्जा आपके पास बचती है, उसका आपने सिवाय काम को यौन में परिवर्तन करने के और कोई उपयोग नहीं किया है। उस ऊर्जा का आप सिर्फ सेक्स में उपयोग करते हैं। इसलिए यह समझ लेने जैसा है कि सब कुछ करके जो बचता है हमारे पास, उसका हम क्या उपयोग कर रहे हैं। उसका उपयोग अगर सिर्फ सेक्स में हो रहा है तो ध्यान रहे, यह सेक्स सिर्फ रिलीफ है। यह यौन सिर्फ ऊर्जा के भार से मुक्ति है।
अब बड़े मजे की बात है। ऊर्जा इकट्ठी करने में चौबीस घंटे खर्च करते हैं, उसे बचाने के लिए आठ घंटे सोते हैं। खाना कमाने के लिए जिंदगी भर मेहनत करते हैं। और फिर जब ऊर्जा आपके पास आती है तो आप उस ऊर्जा के भार से भारी हो जाते हैं। उसे फेंकने के लिए कोशिश करते हैं। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति दिन भर धन कमाये और सांझ जाकर नदी में फेंक आये, क्योंकि दिन भर धन कमाने के लिए पागल रहे, सांझ पाया कि धन ने थैली को बोझिल कर दिया है। और अब बोझ बुरा मालूम पड़ता है तो बोझ से खाली हो लें और नदी में फेंक आये। हम ऊर्जा इकट्ठी करते हैं पहले, ऊर्जा न हो तो उसका श्रम करते हैं, और
जब ऊर्जा पास में आ जाये तो ऊर्जा बोझिल हो जाती है, बर्डनसम हो जाती है, चित्त पर भारी हो जाती है, फिर उसको फेंकना पड़ता है। सेक्स, ऊर्जा को फेंकने के लिए हम उपयोग में लाते हैं। वह सिर्फ रिलीफ है। उससे हम फिर खाली हो जाते हैं।
अब बड़ी एब्सर्ड जिंदगी है आदमी की। कल सुबह उठ कर वह फिर ऊर्जा इकट्ठी करने में लगेगा, कल सांझ तक वह फिर ऊर्जा इकट्ठी करेगा और जब उसके पास ऊर्जा इकट्ठी हो जायेगी तो उसे फेंक कर फिर रिलीफ पायेगा। अजीब पागलपन है! इकट्ठा करना, फेंकना, इकट्ठा करना, फेंकना। अर्थ क्या होगा इस जिंदगी का? प्रयोजन क्या होगा इस जिंदगी में? पायेंगे क्या इस जिंदगी में?
लेकिन यह हमें दिखाई नहीं पड़ता। अगर खाना न मिले तो हम परेशान हैं, खाना मिल जाये तो हम परेशान हैं। अगर शक्ति पास में न हो तो हम दुर्बल हैं, शक्ति पास में हो जाये तो दुर्बल होने को हम फिर आतुर हैं। आदमी एक एब्सडर्डिटी है। जैसा आदमी है, वह बिल्कुल ही तर्कहीनता है। जैसा आदमी है, उससे तो जैसे बुद्धि का कोई संबंध नहीं है। जैसे कि कोई झरना सिर्फ इसलिए सरोवर बन रहा है कि जब बन जाये तो दीवाल टूटे और बह जाये। और दीवालें जब टूट जायें तो फिर दीवालें बनायी जायें, फिर झरना भरा जाये और फिर तोड़ा जाये, जिंदगी भर हम इकट्ठा करते और खोते हैं।
यह जिंदगी नहीं हो सकती, कहीं भूल हो रही है। ऊर्जा को इकट्ठा करना तो ठीक है, लेकिन खोने के लिए ही इकट्ठा करना बहुत बेमानी है, बहुत मीनिंगलेस है। अगर कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए जन्म लेता हूं कि मर जाऊं, हम कहेंगे कि पागल हो। अगर कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए इकट्ठा करता हूं कि खो दूं, तो हम कहेंगे कि तुम पागल हो। कोई आदमी कहे कि मैं इसलिए मकान बनाता हूं कि गिरा दूं, हम कहेंगे तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं। लेकिन हम सब की खुद की क्या हालत है? जिंदगी में हम करते क्या हैं? क्या कर रहे हैं! हम जो भी इकट्ठा करते हैं, खोने के लिए इकट्ठा करते हैं।
लेकिन शायद हमने कभी इस तरह सोचा नहीं। हम जो भी इकट्ठा करते हैं वह खोने के लिए इकट्ठा करते हैं! इसलिए साधु-संन्यासी हमसे उल्टा काम शुरू

करते हैं। वे इकट्ठा करना कम कर देते हैं जिसमें कि खोने के लिए मौका न रह जाये। लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
एक आदमी दो पैसे कमाता है सांझ नदी में फेंक आता है। दूसरा आदमी इस डर
से कि सांझ नदी में फेंकने से बच सकूं कमाता ही नहीं। लेकिन सांझ को दोनों एक से दरिद्र होते हैं। फेंकने वाले के पास भी दो पैसे नहीं होते। जिसने कमाया नहीं उसके पास भी दो पैसे नहीं होते। ये दोनों दीन होते हैं।
आप जिस-तिस ढंग से ऊर्जा कमाते हैं और काम में व्यय कर देते हैं, यौन में व्यय कर देते हैं। संन्यासी डर के ऊर्जा कमाना बंद कर देता है, उपवास करता है, खाना कम खाता है। अपने शरीर में इतनी ही शक्ति पैदा करता है जितना रोजमर्रा के काम में आ जाये, अतिरिक्त न बचे। अतिरिक्त बचे तो वह मुश्किल में पड़ जायेगा। क्योंकि फिर आपका ही काम उसे करना पड़ेगा। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप कमा कर खो देते हैं, वह कमाता ही नहीं ताकि खोना न पड़े। लेकिन इससे कोई ऊर्जा बचती नहीं।
अभी अमेरिका की एक विज्ञानशाला में वे एक प्रयोग कर रहे थे। वह हिंदुस्तान भर के संन्यासियों को ठीक से समझ लेना चाहिए। तीस विद्यार्थियों को एक महीने तक भूखा रखा गया और यह समझने की कोशिश की गयी कि भूख और सेक्स का क्या संबंध है? भूख से यौन का क्या संबंध है?
बड़े अदभुत परिणाम हुए। पहले सात दिनों में जब उन्हें भूखा रखा गया तो उनकी यौन-प्रवृत्ति तीव्र हो गयी, उनकी सेक्सुअलिटी बढ़ गयी। लेकिन सात दिन के बाद फिर उनकी यौन-प्रवृत्ति कम होती चली गयी। पंद्रहवें दिन उनके सामने नग्न चित्र भी रखे गये स्त्रियों के, तो वे उत्सुक न रहे। किसी भी तरह उन्हें भड़काया जाये, वे कोई रस न लें। तीस दिन पूरे होते-होते उन तीसों युवकों में किसी तरह की काम-वासना न रह गयी, किसी तरह का यौन न रहा। वे बिल्कुल ठंडे, कोल्ड हो गये, फ्रोजन, जम गये, बिल्कुल। उनको हिलाने का कोई उपाय न रहा, सेक्स जैसे विदा हो गया।
फिर उनको भोजन दिया गया। सात दिन में फिर वापस लौटना शुरू हो गया। पंद्रह दिन के बाद वे फिर अपनी जगह वापस लौट गये जहां थे। तीस दिन के बाद वे फिर सामान्य व्यक्ति थे। वही रस, वही यौन, वही वासना फिर उनको पकड़ ली। हुआ क्या? यौन नष्ट नहीं हुआ, सिर्फ यौन को जो अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए
वह नहीं मिली। सांप तो जिंदा रहा, लेकिन चलने की ताकत न रही। सांप पड़ गया बेहोश। पड़ा रहा, प्रतीक्षा करता रहा कि जब शक्ति मिले तो चलूं। फिर शक्ति मिली, फिर सांप हिलने-डोलने लगा, फिर सांप खड़ा हो गया।
इन तीस दिनों के प्रयोग ने यह बताया कि संन्यासी अपने को लंबे अरसे से धोखा दे रहे हैं। हां, अगर इन बच्चों को निरंतर ही कम भोजन पर रखा जा सके, इतना ही भोजन दिया जाये जितना उनके चलने, उठने, बैठने, बात करने में खतम हो जाये शक्ति, तो अब यह बिना सेक्स के जिंदा रह सकेंगे। लेकिन यह अकाम नहीं है, यह सिर्फ मुर्दा काम है, यह मरा हुआ सेक्स है। यह मुर्दा काम है, यह मुर्दा यौन है, यह अकाम नहीं है।
इसलिए जिन लोगों को यह समझ में आ गया कि शक्ति इकट्ठी होती है, फिर उससे मुक्त होने के लिए, रिलीफ के लिए हमें यौन में जाना पड़ता है, उन लोगों ने शक्ति इकट्ठी करनी बंद कर दी। वे भी उसी भ्रांति में हैं, जिस भ्रांति में बाकी लोग हैं।
गृहस्थ और संन्यासी भ्रांतियों के उल्टे छोर हैं। अकाम का यह अर्थ नहीं है। अकाम का अर्थ है, शक्ति तो पैदा हो, लेकिन यौन से विसर्जित न हो, संग्रहीत हो। और जब शक्ति बहुत बड़े पैमाने पर संग्रहित होती है और यौन से विसर्जित नहीं होती, तो वह शक्ति आपके भीतर ऊर्ध्वगमन शुरू करती है। जैसे कि हम एक नदी की बाढ़ को रोक दें, बांध बना दें, तो नदी की जो गहराई थी--समझ लें दस फीट थी, बांध बनाने पर बांध की गहराई सौ फीट हो जायेगी। और नदी जितनी रुकने लगेगी, उतनी ही दीवार बड़ी करनी पड़ेगी और बांध गहरा होता जायेगा और बांध हजार फीट गहरा भी हो सकता है। ऊपर उठने लगेगा। जब भी कोई शक्ति रोकी जाती है, तो ऊपर उठती है, क्योंकि संग्रहीत होती है। जब आपके भीतर शक्ति अतिरिक्त इकट्ठी होने लगती है तो आपके भीतर शक्ति का अंबार लगता है और ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है।

अभी आपकी सेक्स लेवल से ऊपर शक्ति कभी नहीं उठती। बस आपकी जिंदगी का
जो सेक्स का तल है, यौन का जो तल है, शक्ति वहां तक जरा-सी भी ऊपर उठी कि आपने उसका व्यय किया, फिर आप अपनी जगह लौट आये। अगर यह शक्ति इकट्ठी हो, तो सेक्स लेवल से ऊपर उठती है। और ध्यान रहे सेक्स मनुष्य का निम्नतम सेंटर है। नीचे से नीचे का द्वार है। उसके ऊपर और बड़े द्वार हैं। अगर यह शक्ति ऊपर उठे तो यह दूसरे द्वार खोलने शुरू करती है।
समझ लें, कि मनुष्य के भीतर सेक्स जैसे छह द्वार और हैं और ऊर्जा एक-एक द्वार पर आती है तो आनंद की गति बढ़ती है और आप हैरान होते हैं। जब सेक्स से ऊपर उठकर दूसरे चक्र पर शक्ति आती है तो आप हैरान होते हैं कि मैं कैसा पागल था, मैं शक्ति को कहां खो रहा था? यहां खोऊं तो बहुत आनंद आता है। उससे बहुत ज्यादा आता है जो पहले केंद्र पर आ रहा था।
जैसे कोई आदमी खदान खोद रहा है। उसे कंकड़-पत्थर मिल जाते हैं। वह उन्हीं रंगीन कंकड़-पत्थरों को लेकर घर आ जाता है। फिर उसे कोई कहता है, पागल, यह तो रंगीन कंकड़-पत्थर हैं; थोड़ा और खोद। वह थोड़ा और खोदता है और उसे तांबा मिल जाता है, वह घर लौट आता है। बाजार में उसे कुछ पैसे उस तांबे के मिल जाते हैं। लेकिन कोई उसे कहता है, पागल तू जरा थोड़ा और खोद। और वह खोदता चला जाता है और चांदी मिलती है, सोना मिलता है और हीरे-जवाहरात मिलते हैं और वह खोदता चला जाता है।
हम व्यक्तित्व की पहली पर्त पर जी रहे हैं--सेक्स की पर्त पर--जहां कि कंकड़- पत्थर से ज्यादा कुछ नहीं मिल सकता। अगर वहां से ऊर्जा इकट्ठी हो और थोड़ी आगे बढ़े, तो दूसरा चक्र खुलना शुरू होता है, जहां कि सुख के तल बदल जाते हैं। और ध्यान रहे, सेक्स के तल पर दूसरे का होना जरूरी है हमारे सुख के लिए। दूसरे चक्र पर दूसरे का होना जरूरी नहीं है, हम अकेले काफी हो जाते हैं। और व्यक्ति मुक्त होने लगता है। सातवें चक्र पर जब ऊर्जा पहुंचती है--आपके मस्तिष्क तक जब ऊर्जा पहुंच जाती है, जब आपकी शक्ति इतनी भर जाती है कि सेक्स सेंटर और सहस्रार के बीच दोनों में शक्ति प्रवाहित होने लगती है, तो कोई उसे कुंडलिनी कहे, कोई उसे कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--जिस दिन आपकी ऊर्जा इतनी इकट्ठी है कि आपके मस्तिष्क के चक्रों को भी चलाने लगती है, उस दिन आप पहली बार आत्मज्ञान को उपलब्ध होते हैं, ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं। उस दिन आप जानते हैं, कि कहां पहुंच गया। लेकिन हम पहले ही चक्र पर खो जाते हैं। जिंदगी को वह हमारा छिद्र सब कुछ विदा करवा देता है। लेकिन इसका क्या मतलब है? क्या मैं यह कह रहा हूं कि आप सेक्स को दबायें, रोकें? अगर आपने दबाया और रोका तो आप कभी भी न रोक पायेंगे, क्योंकि शक्ति का एक नियम है कि दबाई गयी शक्ति विद्रोही हो जाती है। और जिस शक्ति को जितने जोर से दबाया जाता है, वह उतनी ही जोर से रिपेल करती है और रिएक्ट करती है। किसी शक्ति को भी दबाया नहीं जा सकता। शक्ति को सिर्फ मार्ग दिये जा सकते हैं। ये दो ढंग हैं। शक्ति को नया मार्ग दें तो शक्ति उससे प्रवाहित होने लगती है या शक्ति का पुराना मार्ग रोकें तो शक्ति उसी मार्ग पर जोर से चोट करने लगती है।
तो जो भी लोग सेक्स से लड़ेंगे वे जिंदगी भर के लिए कामुक रह जायेंगे।
वे कभी भी काम से बाहर नहीं जा सकते। सेक्स से लड़कर कभी कोई व्यक्ति ऊपर के चक्रों तक नहीं पहुंचा है, जीवन की ऊंचाइयां नहीं छुई हैं। हां, जीवन के ऊपर के चक्रों को गतिमान करके कोई व्यक्ति जरूर सेक्स से मुक्त हो गया है। ब्रह्मचर्य सेक्स से लड़ाई नहीं है। ब्रह्मचर्य सेक्स से ऊंचे केंद्रों का सक्रिय हो जाना है। इसलिए नेगेटिव मत पकड़ लेना। जैसा कि हजारों साल से इस मुल्क में हम पकड़े हुए हैं। हजारों साल से यह हमारी समझ में आ गया था बहुत पहले, कि यह ऊर्जा अगर रुक जाये तो बड़े आनंद के द्वार खोल देती है। लेकिन यह ऊर्जा रुके कैसे? तो हम रोक लें इसे जबर्दस्ती से। जितना आप रोकेंगे उतनी यह ऊर्जा धक्का देगी और जिस जगह आप रोकेंगे, वहां ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। और जिस चक्र पर ध्यान होगा वह चक्र सक्रिय रहता है। इसलिए जो लोग ऊर्जा को रोकते हैं काम के बिंदु पर, यौन के बिंदु पर, वे यौन के प्रति अति सक्रिय हो जाते हैं। सच तो यह है कि उनका पूरा व्यक्तित्व जननेंद्रिय बन जाता है। वे उसके बाहर नहीं रह जाते। उनका सारा बोध वहीं अटक जाता है। उनकी चेतना वहीं उलझ जाती है। और वह उलझी हुई चेतना

जितनी चोट करती है, उतना ही वह केंद्र सक्रिय होता है। और वह केंद्र जब सक्रिय जोर से होता है तो उनके पास एक ही उपाय बचता है, कि भोजन कम कर दें, व्यायाम कम कर दें और मुर्दे की तरह जीने लगें, ताकि ऊर्जा पैदा न हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे तो साधारण गृहस्थ अच्छा है। कम से कम ऊर्जा पैदा तो करता है। ऊर्जा पैदा हो तो किसी दिन ऊपर की यात्रा भी हो सकती है। संन्यासी इससे बुरी हालत में है। वह ऊर्जा पैदा ही नहीं करता। हालांकि उसकी ऊर्जा बाहर नहीं जाती, लेकिन उसके पास ऊर्जा होती भी नहीं कि ऊपर जा सके। ऊर्जा चाहिए ही। जो बाहर जाती है, वह भीतर भी जा सकती है। लेकिन जो बाहर जाने योग्य भी नहीं रही, वह भीतर जाने योग्य कभी नहीं रह जाती। जो बाहर की ही यात्रा करने में असमर्थ हो गया है, वह भीतर की यात्रा कभी न कर सकेगा।
इसलिए एक बात तो पहले यह ध्यान में रख लेना कि हमारे पास अतिरिक्त ऊर्जा चाहिए ही। तो ऊर्जा को पैदा करने का तो पूरा इंतजाम होना चाहिए, लेकिन ऊर्जा को नयी दिशाएं देने का भी इंतजाम होना चाहिए। वह दो-तीन सूत्र मैं आप से कहूं कि इस ऊर्जा को नयी दिशायें कैसे मिलती हैं!
एक, सिर्फ हम वर्तमान में जी सकें, तो ऊर्जा इकट्ठी होती है और ऊपर की तरफ चलना शुरू हो जाती है। एक पहला सूत्र--लिविंग इन द प्रेजेंट। जो आदमी भी बहुत कल की सोचता है और परसों की सोचता है और आगे का सोचता है और भविष्य में जीने की कोशिश करता है, उसकी ऊर्जा बह जाती है। क्योंकि भविष्य है दूर; और भविष्य से हमारा जो संबंध है वह कामना का ही हो सकता है और कोई संबंध नहीं हो सकता। भविष्य है नहीं, भविष्य होगा। और होगा से हमारा संबंध सिर्फ वासना का हो सकता है, इच्छा का, डिजायर का हो सकता है और कोई संबंध नहीं हो सकता।
जीसस एक गांव के पास से गुजर रहे हैं। और वह अपने शिष्यों को कहते हैं, देखते हो यह लिली के खिले हुए फूल! उन शिष्यों ने कहा, देखते हैं। जीसस ने कहा कि देखो इनका सौंदर्य, देखो इनका खिलना, देखो इनका आनंद और जीसस ने कहा कि सोलोमन-- सम्राट सोलोमन जो अपने वैभव के पूर्ण शिखर पर था और जिसके पास सारी पृथ्वी की संपत्ति थी--वह अपने वैभव के पूर्ण शिखर पर भी इतना सुंदर नहीं था, जितने कि यह लिली के जंगली फूल सुंदर हैं। किसी ने पूछा, लेकिन ऐसा क्यों है? तो जीसस ने कहा, सोलोमन हमेशा भविष्य में जी रहा था, यह फूल अभी जी रहे हैं, इनकी ऊर्जा को कामना बनने का मौका नहीं है, इनकी ऊर्जा जीवन बन रही है।
ध्यान रहे, जब भी हम ऊर्जा को कामना बनाते हैं तो भविष्य के कारण बनाते हैं। कामना अर्थात फ्यूचर ओरिएंटेशन। वासना का मतलब है भविष्य में जीने की इच्छा। और जीवन है सदा अभी और यहीं। जिस व्यक्ति ने भविष्य में जीने की इच्छा को अपने जीवन में प्रबल किया, वह बाहर की तरफ बहता रहेगा और उसकी ऊर्जा खोती रहेगी। भविष्य हमारी ऊर्जा को बुरी तरह पी जाता है, एब्जार्ब कर लेता है। वर्तमान में ऊर्जा संग्रहीत होती है। इसलिए जिस व्यक्ति को अपनी ऊर्जा को, अपनी शक्ति को अकाम तक पहुंचाना हो, ब्रह्मचर्य तक पहुंचाना हो, जिसे अपनी ऊर्जा को सत्य और ब्रह्म तक ले जाना हो, जिसे अपनी ऊर्जा को स्वयं तक पहुंचाना हो, उसे भविष्य की इच्छाएं, भविष्य की कामनाएं, भविष्य को धीरे-धीरे क्षीण कर देना चाहिए। उसे जीना चाहिए अभी और यहीं, हियर एंड नाउ। जब आप खाना खा रहे हैं तो सिर्फ खाना खायें। दफ्तर में मत प्रवेश कर जायें खाना खाते वक्त। और जब दफ्तर में बैठें तो दफ्तर में ही बैठें और दफ्तर में बैठकर खाना न खायें। और जब सिनेमा-गृह में जायें तो सिनेमा-गृह में जायें, उस वक्त मंदिर को बिल्कुल वहां प्रवेश न करने दें। और जब मंदिर में जायें तो मंदिर में हों, सिनेमा-गृह मंदिर में न आये। प्रतिपल जहां आप हैं, वहां पूरे होने की कोशिश करें। कठिन होगी यह बात, लेकिन सरल बन जायेगी। कठिन होगी इसलिए कि हमारी आदतें सदा वहां होने की नहीं हैं, जहां हम हैं। सदा वहां होने की हैं जहां हम नहीं हैं। जहां आप होते हैं वहां आप होते ही नहीं। आपका वह जो मन है काम से भरा हुआ, वह कहीं और होता है। जब आप कलकत्ते में होते हैं तो मन बंबई में होता है। जब आप बंबई में होते हैं तो मन कलकत्ते में होता है। जहां हम हैं उस क्षण में हमारा मन वहां नहीं होता, इसलिए जहां हम नहीं हैं वहां से हमें काम का

विस्तार करना पड़ता है और जुड़ना पड़ता है। वह जोड़ हमारी ऊर्जा को खोने का रास्ता है। अगर कोई व्यक्ति अभी और यहीं जीने के लिए धीरे-धीरे, धीरे-धीरे समर्थ हो जाए... और सरल है होना। सरल इसलिए है कि अगर आप प्रयोग करेंगे तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे कि खाना इतना आनंदपूर्ण कभी भी नहीं था जितना आनंदपूर्ण उस क्षण हो जाता है जिस क्षण आप खाना खाते वक्त पूरे मौजूद हैं, जिस वक्त आप खाना ही खा रहे हैं।
एक झेन फकीर के पास एक सम्राट मिलने गया था। वह फकीर अपने बगीचे में गड्ढा खोद रहा था। उस सम्राट ने कहा कि मैं आपसे कुछ ज्ञान सीखने आया हूं। तो उस फकीर ने कहा, बैठो और देखो और सीखो। सम्राट बैठ गया, वह फकीर अपना गड्ढा खोदता रहा। सम्राट ने कहा, कुछ कहियेगा भी? आप तो गड्ढा ही खोदे चले जा रहे हैं। उस फकीर ने कहा, गौर से देखो--मैं हूं ही नहीं, बस गड्ढा खोदना ही है। गड्ढा खोदना ही हो रहा है। मैं हूं ही नहीं। मैं इतना पूरा लीन हूं इस गड्ढा खोदने में कि मुझे अलग करने की कोई जरूरत नहीं। मैं गड्ढा खोद रहा हूं ऐसा कहना गलत है। मैं गड्ढा खोदने की क्रिया हो गया हूं ऐसा ही कहना ठीक है। तुम भी देखने की क्रिया हो जाओ। कृपा करके उस बात को मत सोचो कि जब मैं बोलूंगा तो क्या बोलूंगा, और जब तुम समझोगे तो क्या समझोगे। तुम कृपा करके यहां सिर्फ देखना हो जाओ। उस सम्राट ने कहा, यह तो बड़ा मुश्किल है, सिर्फ देखना। मुझे लौटना भी है। तो उस फकीर ने कहा, लौट जाओ, लेकिन तब लौटना ही हो जाओ। पर उस सम्राट ने कहा, मुझे आपसे कुछ पूछना भी है। तो उस फकीर ने कहा, फिर पूछ लो, फिर प्रश्न ही बन जाओ।
हम जो भी कर रहे हैं, हम वही नहीं हैं। अगर आप क्रोध करते वक्त पूरा क्रोध बन जायें, तो शायद दोबारा क्रोध कर न सकें। लेकिन क्रोध करते वक्त क्षमा मांग रहे हैं भीतर। क्रोध करते वक्त प्रायश्चित कर रहे हैं भीतर। क्रोध करते वक्त जान रहे हैं कि बड़ा बुरा कर रहा हूं। तब आप क्रोध में भी पूरे नहीं हो पाते। प्रेम में भी पूरे नहीं हो पाते। जिस प्रेमी से मिलने के लिए वर्षों तक प्रतीक्षा की, जब वह मिल जाता है तब हम कुछ और सोचते हैं। जिस प्रेमी से मिलने के लिए वर्षों सोचा था, वह जब मिल जाता है और पास बैठ जाता है तब हम उसे भूल जाते हैं और कुछ और सोचने लगते हैं। जिस धन को खोजने के लिए वर्षों मेहनत की थी, जब वह मिल जाता है, तिजोरी में चाबी लगा कर, बाहर बैठ कर हम कुछ और सोचने लगते हैं। हम पूरे वक्त चूकते चले जाते हैं। हम सदा ही भविष्य में अपनी शक्ति को व्यय करते रहते हैं।
अगर शक्ति को संग्रहीत करना है--और शक्ति के संग्रहीत हुए बिना कोई अंतर्यात्रा संभव नहीं है--तो हमें वर्तमान में जीना सीखना होगा। वर्तमान के साथ बड़ी खूबी है। वर्तमान सरकुलर है, राउंड शेप्ड है। एक नदी है, वह वन-डायमेंशनल है। वह भागी जा रही है, वह पूरे वक्त भागी जा रही है सागर की तरफ। वन-डायमेंशनल है, उसमें एक आयाम है। वह भागी जा रही है। एक सरोवर है, वह भाग नहीं सकता, वह गोल है। वह अपने भीतर ही घूमता रह जाता है। सारी भ्रमण-यात्रा उसकी भीतर है। जिस क्षण आप वर्तमान के क्षण में होते हैं, उस क्षण आप सरोवर की भांति हो जाते हैं। गोल, वर्तुलाकार शक्ति आपके भीतर घूमने लगती है। क्योंकि बाहर जाने के लिए कोई मौका नहीं मिलता, मौका मिलता है भविष्य में। कल क्या करूंगा, इससे तत्काल मौका मिल जाता है। कल क्या होगा, तत्काल मौका मिल जाता है। अभी हूं, यहां हूं... ।
आप मुझे यहां सुन रहे हैं। अगर आप मुझे सिर्फ सुन रहे हैं, तो आप जरा-
सी भी शक्ति नहीं खोयेंगे। आप एक वर्तुलाकार व्यक्तित्व बन गये। नान-डायमेंशनल। अब आपका कोई आयाम न रहा। अब आप बह नहीं सकते, अगर सिर्फ सुन रहे हैं। अगर सुनने के साथ सोच रहे हैं तो आप थक जायेंगे। आपकी शक्ति क्षीण होगी। अगर मैं सिर्फ बोल रहा हूं तो मैं थकने वाला नहीं हूं, अगर मुझे बोलने के साथ सोचना भी पड़ रहा है, तो मैं थक जाऊंगा। अगर कोई भी क्रिया पूरी हो रही है तो शक्ति नहीं खोती, शक्ति संग्रहीत होती है। कोई भी क्रिया अगर टोटल है तो शक्ति संग्रहीत होती है। प्रेम अगर पूर्ण है तो शक्ति लाता है। क्रोध अगर पूर्ण है तो वह भी शक्ति खोता नहीं। जो भी पूर्ण हो जाता है, वह खोता नहीं। और बड़े मजे की बात है कि अगर क्रोध पूर्ण हो जाये तो आप क्रोध से मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि वह इतना व्यर्थ मालूम पड़ता है।

अगर आप प्रेम में पूर्ण हो जायें तो आप प्रेम से भर जाते हैं। क्योंकि वह इतना बहुत सार्थक मालूम पड़ता है।
जिस क्रिया को पूर्णता से किया जा सके उसे मैं पुण्य कहता हूं। और जिस क्रिया को पूर्णता में किया ही न जा सके, उसे मैं पाप कहता हूं। पाप और पुण्य की और कोई कसौटी जगत में नहीं है।
अगर आप क्रोध को पूरी तरह कर सकते हैं और फिर दुबारा भी कर सकते हैं तो फिर क्रोध पाप नहीं है। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। आप क्रोध को अधूरा करते हैं, इसलिए दुबारा फिर कर पाते हैं। अगर आप क्रोध को एक बार पूरा कर लें, तो आपके चारों तरफ नरक उपस्थित हो जायेगा, जिस नरक को आपने शास्त्रों में पढ़ा है वह आपके आस-पास खड़ा हो जायेगा। और दुबारा आप उस नरक में फिर प्रवेश नहीं चाहेंगे। फिर आप माफी नहीं मांगेंगे किसी से; बस, क्रोध से बाहर हो जायेंगे। आग इतनी जोर से लगेगी कि उससे बाहर होने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं रह जायेगा।
लेकिन हम कुनकुनी आग में जीते हैं, ल्युकवार्म। थोड़ा-थोड़ा करते रहते हैं तो जिंदगी भर चलता रहता है। चुकता भी नहीं और चलता भी रहता है। नरक पूरा बन जाये तो स्वर्ग में जाने में देर नहीं है। लेकिन नरक भी हम इतने धीरे-धीरे बनाते हैं कि वह कभी पूरा नहीं बन पाता, उससे छुटकारा नहीं हो पाता।
इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूं अकाम की यात्रा के लिए और काम के ऊर्ध्वगमन के लिए, वह है प्रतिपल जीना। संन्यासी का अर्थ घर छोड़ कर भाग जाना नहीं है। संन्यासी का अर्थः जो प्रतिपल जी रहा है, जो पल के बाहर नहीं जीता, जो अभी जीता है, यहीं जीता है, कहीं और नहीं जीता। जो भी व्यक्ति ऐसी चित्त-दशा में आ जाये, वह संन्यासी है। संन्यास का अर्थ हैः टु बी इन द प्रेजेंट, टु बी इन द लिविंग मूमेंट। वह जो जीवंत-क्षण है उसमें अगर हम हैं तो हमारी शक्ति ऊपर उठनी शुरू हो जायेगी।
यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह जीवंत-क्षण हमारे चारों ओर से हमें घेर ले--क्रोध में भी हम पूरे हो सकें तो क्रोध से हम मुक्त हो जायेंगे और अगर यौन में भी, सेक्स में भी पूरे हो सकें तो हम सेक्स से मुक्त हो जायेंगे। क्योंकि जो व्यक्ति संभोग के क्षण में, सेक्स के क्षण में, यौन के क्षण में पूरी तरह मौजूद है, वह दुबारा फिर आकांक्षा नहीं करेगा, बात समाप्त हो गई, बात व्यर्थ हो गयी। वह बात इतनी राख हो गयी कि अब दुबारा मुट्ठी बांधने का कोई अर्थ न रहा। लेकिन हम उस क्षण में भी पूरे वहां नहीं हैं। आदमी आतुर है संभोग के लिए। चौबीस घंटे दौड़ रहा है। पूरी जिंदगी दौड़ रहा है। धन कमा रहा है, मकान बना रहा है, बहुत गहरे में सेक्स की तृप्ति की दौड़ चल रही है। सब हो जाये तो वह उसकी तृप्ति कर सके। और फिर जब सेक्स का क्षण आता है तब वह उसमें पूरा नहीं है। तब वह हजार दूसरी बातें सोचने लगता है कि ब्रह्मचर्य अच्छा है, वह सोचने लगता है कि ब्रह्मचर्य परम जीवन है। जब सेक्स का क्षण आता है तब वह यह सोचता है। और जब ब्रह्मचर्य की कसम लेता है तब सेक्स का विचार करता रहता है। यह आदमी पागल है, इनसेन है। यह पागलपन हमारी जिंदगी की ऊर्जा को कभी भी ऊपर की तरफ जाने नहीं देता।
इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूंः पल-पल जीना। तो आपके भीतर अकाम शुरू
हो जायेगा, काम क्षीण होने लगेगा, क्योंकि काम के लिए भविष्य जरूरी है। कामना के लिए कल जरूरी है। सच तो यह है कि कल अस्तित्व में होता ही नहीं, सिर्फ कामना में होता है। इट इज ए बाय प्रोडक्ट आफ डिजायर। कल तो होता ही नहीं, कल तो कहीं है ही नहीं। कल सिर्फ वासना की उत्पत्ति है। भविष्य कहीं है ही नहीं। जो है वह सदा वर्तमान है। भविष्य सिर्फ कामना की उत्पत्ति है। हम निरंतर कहते हैं कि समय के तीन हिस्से हैं--भविष्य, वर्तमान, अतीत। गलत कहते हैं। समय का तो सिर्फ एक ही रूप है, वर्तमान। समय के तीन रूप नहीं हैं। समय का एक ही रूप है, वर्तमान। समय तो हमेशा नाउ, अभी है। यह भविष्य और अतीत कहां से पैदा हुए? अतीत हमारी स्मृतियों से पैदा हुआ है और भविष्य हमारी कामनाओं से पैदा हुआ है।
पहला सूत्र काम-मुक्ति काः वर्तमान के क्षण में होने की कोशिश। जंगल जाने को नहीं कहता। जहां आप हैं वहीं पूरी तरह हों। भोजन करें तो पूरी तरह

और सोयें तो पूरी तरह, स्नान करें तो पूरी तरह। और बहुत छोटी चीजों से शुरू करें।
दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूंः सृजनात्मक हों, बी क्रिएटिव। क्योंकि जो आदमी सृजनात्मक नहीं है, उसकी ऊर्जा निरंतर सेक्स से बहना चाहेगी, क्योंकि वह भारी हो जायेगा। उसके पास शक्ति तो होगी, काम नहीं होगा। और हम बहुत "क्रिएटिव" बिल्कुल नहीं हैं। हमारे जीवन में सृजन जैसी कोई चीज नहीं है। हमने कोई चीज ऐसी नहीं बनायी है, जिसे हम कहें सृजनात्मक है। इसका मतलब क्या?
नहीं, आप कहेंगे, हमने बनाया है। हमने कुर्सी बनायी है। हम फर्नीचर बनाते हैं। हम मकान बनाते हैं। हम कपड़े बनाते हैं। हम सृजनात्मक हैं। नहीं, यह सृजन नहीं है।
सृजन और निर्माण का फर्क समझ लें। निर्माण का मतलब है, कोई उपयोगी चीज बनाना, युटीलिटेरियन। कुर्सी पर बैठा जा सकता है, उसका कोई उपयोग है, बाजार में उसका कुछ दाम है, इसलिए कुर्सी का बनाना सृजन नहीं है। प्रोडक्शन, उत्पादन है। लेकिन एक आदमी गीत गाता है, कोई मूल्य नहीं है। एक आदमी एक चित्र बनाता है, कोई मूल्य नहीं है। एक आदमी नाचता है, कोई हेतु, परपजिवनेस नहीं है। सृजन वहां से शुरू होता है जहां यूटीलिटी, उपयोगिता खतम होती है। जहां तक उपयोगिता है वहां तक सृजन नहीं है। आप कुछ जिंदगी में ऐसा भी करते रहें जिसकी कोई उपयोगिता नहीं, सिवाय इसके कि आपको उसे करने में आनंद आता है। जिंदगी में ऐसा कुछ चलता रहे जिसे करने में आपको आनंद आता है, जिसके अंतिम परिणाम से कोई संबंध नहीं है।
वानगाग ने चित्र बनाये, जब उसने बनाये थे तब उनको खरीदने के लिए कोई राजी नहीं था। एक चित्र वानगाग की जिंदगी में बिका नहीं। उसके छोटे भाई ने कभी यह ख्याल किया कि बेचारे का एक चित्र नहीं बिका, कितना दुखी न होगा यह! तो उसने एक आदमी को कुछ पैसे दिये और कहा, तू मेरी तरफ से जाकर एक चित्र खरीद ले। कम-से-कम उसे एक तृप्ति तो मिल जायेगी कि उसकी एक चीज तो बिकी। वह आदमी गया।
कोई आदमी चित्र खरीदने आया! वानगाग उसे चित्र बताने लगा। लेकिन वह कोई खरीददार तो न था। वह कोई चित्र को प्रेम करने वाला आदमी नहीं था। वह तो किसी का सिर्फ एजेंट था। पैसे भी किसी और के थे। कोई भी चित्र खरीद लेना था। उसने कोई भी चित्र उठाकर कहा, यह पैसे लो। वानगाग की आंख से आंसू बहने लगे, उसने पैसे वापस कर दिये और कहा, मालूम होता है मेरे भाई ने तुम्हें भेजा है। वापस लौट जाओ।
उसका भाई आया माफी मांगने। तो उसके भाई ने उससे पूछा कि जब तुम चित्र बेचना भी नहीं चाहते तो बनाते किसलिए हो? वानगाग ने कहा, बनाने में ही मिल जाता है वह जो चाहिये। बनाते क्षण में ही मिल जाता है वह जो चाहिए। जब मैं चित्र बनाता हूं, तब सब मुझे मिल जाता है, अब और कुछ चाहिए नहीं।
जब कोई गीत गाता है, तो सब मिल जाता है गाने में। लेकिन हां, अगर गायक
भी प्रशंसा के लिए आतुर हो तो बाजारू है। वह सृजनात्मक नहीं है। अगर चित्रकार भी बाजार में बेचने के लिए चित्र बनाता है, तो यह कंस्ट्रक्शन है, प्रोडक्शन है। यह क्रिएशन नहीं है।
हम कहते हैं कि परमात्मा ने जगत बनाया, क्रिएट किया। बनाया नहीं बनाया--बड़े अर्थ की बात नहीं है, लेकिन परमात्मा को हम कहते हैं, उसने सृजन किया। उसका एक ही अर्थ है। हम यह नहीं कहते, प्रोड्यूस्ड बाई; परमात्मा ने उत्पादन किया। कम कहते, सृजन किया। सिर्फ इसलिए कि नान-परपि.जव है। परमात्मा को इससे कुछ भी मिलने का नहीं है। परमात्मा को इससे कुछ भी उपलब्ध होने वाला नहीं है। अगर कुछ भी मिला होगा, तो इसके बनाने में ही मिला होगा, इसके बनने में ही मिला होगा, अन्यथा इसके बाहर कुछ मिलने को नहीं।
जिस आदमी की जिंदगी में कुछ ऐसे क्षण हैं जब वह आनंद और सृजन में जीता
है, वह आदमी धीरे-धीरे अकाम को उपलब्ध हो जायेगा। क्योंकि काम की दूसरी शर्त है, काम की दूसरी शर्त हैः द रिजल्ट! कामना का आखिरी स्रोत, उदगम का, दौड़ का, शक्ति का, एक ही है कि मिलेगा क्या? हम हमेशा पूछते हैं... ।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान हम करें, लेकिन ध्यान में मिलेगा क्या? उनको पता ही नहीं कि ध्यान का मतलब ही एक ऐसा काम है जिसमें कुछ मिलेगा नहीं, ध्यान ही मिलेगा। और ध्यान के मिलने का अपना अर्थ है। हम जूता खरीदते हैं, तो जूते का दूकानदार यह नहीं कह सकता कि आप बस आनंद से खरीद लें, मिलेगा कुछ नहीं। नहीं, जूता एक यूटीलिटी है, कोई खरीदेगा नहीं। लेकिन आप अगर जूते की दूकान पर जिस भांति जाते हैं उस भांति मंदिर में गये और पूछा कि प्रार्थना से मिलेगा क्या? तो आप गलत जगह पर पहुंच गये। नहीं, जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, उसका परिणाम नहीं है महत्वपूर्ण। उसका होना ही महत्वपूर्ण है। पर हमारी जिंदगी में ऐसा कोई क्षण नहीं है जो अपने में महत्वपूर्ण हो!
जिस व्यक्ति को धर्म के जगत में प्रवेश करना है और जिसे ऊर्जा को ऊपर
ले जाना है उसे कुछ ऐसे काम खोजने पड़ेंगे जो काम नहीं हैं। जो सिर्फ खेल हैं, लीलाएं हैं। इसलिए कृष्ण के जीवन को हम चरित्र नहीं कहते। राम के जीवन को चरित्र कहते हैं। राम का जीवन चरित्र है। बहुत गंभीर मामला है। राम हर चीज को बड़ी गंभीरता से ले रहे हैं, उनके लिए खेल नहीं है मामला। उनके लिए जिंदगी एक काम है। कृष्ण के लिए जिंदगी एक खेल है। नाच रहे हैं, तो कुछ मिलने वाला नहीं है। बांसुरी बजा रहे हैं, तो कुछ मिलने वाला नहीं है। राम तो जो भी कर रहे हैं उसमें कम-से-कम चरित्र मिलेगा, मर्यादा मिलेगी, वंश-परंपरा की प्रतिष्ठा मिलेगी। वह सब मिलना है, राम बहुत यूटीलिटेरियन हैं। राम की बुद्धि बहुत उपयोगितावादी है। इसलिए एक धोबी के कहने से वे पत्नी को बाहर फेंक सकते हैं। यूटीलिटी में तकलीफ हो रही है, उपयोगिता में बाधा पड़ रही है। राम की मर्यादा क्षीण हो जायेगी। राम के चरित्र पर धब्बा लग जायेगा। राम की रघुकुल-परंपरा का क्या होगा? यश, वंश, सब उपयोगिता है।
कृष्ण अगर राम की जगह होते तो सीता को फेंक नहीं सकते थे। हो सकता था, खुद ही बांसुरी बजाते हुए भाग जाते। यह हो सकता था, सीता को नहीं फेंक सकते थे। अगर राम की जगह कृष्ण होते तो सीता की अग्नि-परीक्षा नहीं लेते--बहुत बेहूदी बात मालूम पड़ती, बहुत यूटीलिटेरियन मालूम पड़ती। प्रेम की कहीं परीक्षाएं होती हैं? और अगर प्रेम की भी परीक्षा होती है तो फिर इस जिंदगी में बिना परीक्षा के कुछ भी नहीं बचेगा। सीता की परीक्षा ली जा सकी कि तुम आग से गुजरो, क्योंकि प्रेम पवित्र है या नहीं इसका पक्का होना चाहिए। प्रेम अपने आप में ही पवित्र है। प्रेम की और कोई पवित्रता नहीं होती। सीता ने नहीं कहा राम से कि तुम भी गुजरो। तुम भी साथ चले आओ, क्योंकि तुम भी अकेले थे, क्या भरोसा? और स्त्री का तो थोड़ा-बहुत भरोसा हो सकता है, पुरुष का होना जरा मुश्किल है। लेकिन सीता ने नहीं कहा। सीता के लिए जिंदगी एक गंभीरता नहीं है, एक प्रेम है, इसलिए सीता राजी हो गयी। निकल गयी। प्रेम परीक्षा नहीं मांगता, प्रेम सब परीक्षाएं दे सकता है। लेकिन कृष्ण तो बात ही नहीं करते, यह कोई सवाल ही नहीं था। इसलिए कृष्ण के जीवन को हम चरित्र नहीं कहते। कृष्ण के जीवन को हम लीला कहते हैं। वह कृष्ण-लीला है। लीला का मतलब है कि पूरी जिंदगी क्रिएटिव है। परपजिव नहीं है, यूटीलिटेरियन नहीं है। जिंदगी एक खेल है।
धार्मिक आदमी की जिंदगी गंभीर नहीं होती। और जो आदमी गंभीर है वह बोझिल हो जायेगा और जो बोझिल होगा, उसको सेक्स से रास्ता खोजना पड़ेगा। इसलिए जिंदगी जितनी गंभीर होती जा रही है उतनी सेक्सुअलिटी बढ़ रही है। जिंदगी जितनी सीरियस होती जा रही है उतनी सेक्सुअलिटी बढ़ रही है। क्योंकि जितने आप गंभीर होंगे, उतने तनाव से भर जायेंगे। जितने तनाव से भर जायेंगे, उतनी रिलीफ की जरूरत पड़ेगी। इसलिए जिस मुल्क में जितना तनाव है, उतनी ज्यादा कामुकता बढ़ जायेगी, क्योंकि और कोई रास्ता नहीं दिखता। चित्त बोझिल हो जायेगा। शक्ति को बाहर फेंको, हल्के हो जाओ। एक ही रास्ता रह जायेगा।
दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं--जिंदगी को गंभीरता से मत लेना। डोंट टेक
इट सीरियसली, सीरियसनेस इज ए बेसिक डिसी.ज। बहुत बुनियादी बीमारी है सीरियस होना। लेकिन आमतौर से हमारा साधु, संन्यासी बहुत सीरियस होता है। सच तो यह है कि अगर चेहरा गंभीर और रोता हुआ न हो तो साधु होने की योग्यता

पूरी नहीं होती। क्वालीफिकेशन जरूरी है वह। इसलिए अक्सर रोते हुए लोग साधु-संन्यासी हो जाते हैं। साधु-संन्यासी होने की वजह से रोते हुए दिखाई पड़ते हैं, ऐसा मत समझना; रोते हुए थे, इसलिए साधु-संन्यासी हो जाते हैं। क्योंकि वहां उनके रोने को भी प्रतिष्ठा और आदर मिलने लगता है। वैसे रोते हुए दिखाई देते तो कोई भी पूछता कि यह क्या शक्ल ले कर घूम रहे हो? लेकिन संन्यास में वह शक्ल प्रतिष्ठित हो जाती है।
नहीं, जिंदगी गंभीरता नहीं है। और जो जिंदगी में गंभीर है वह काम से मुक्त नहीं हो सकेगा। जिंदगी खेल बन जाये तो आदमी काम से मुक्त हो जाता है। पर पूरी जिंदगी को नहीं कह रहा हूं कि आप खेल बना लें, शायद वह संभव नहीं है; लेकिन जिंदगी में कुछ तो हो, जो खेल हो। बच्चे इतने हल्के हैं। और ध्यान रहे बच्चे इतने अकामी हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बच्चों की जिंदगी गंभीर नहीं है, एक खेल है, जिंदगी एक लीला है। बच्चा खेल रहा है, गंभीर नहीं है। जैसे-जैसे गंभीर होगा, वैसे-वैसे सेक्स उसकी दुनिया में आयेगा।
क्या आपको यह पता है कि सेक्सुअल-मेच्योरिटी की उम्र रोज नीचे गिरती
जा रही है? चौदह साल से अमरीका में बारह साल हो गयी, ग्यारह साल हो गयी। कुछ लड़कियां ग्यारह साल में मेच्योर होने लगी हैं और संभावना है कि इस सदी के पूरे होते-होते मेच्योरिटी की उम्र सात साल तक भी आ सकती है। सात साल... मामला क्या है? लड़कियां हमेशा चौदह साल में मेच्योर होती थीं, ये सात साल में क्यों होने लगीं? असल में सात साल में ही लड़कियां इतनी गंभीर हो गयी हैं अब, जितनी चौदह साल में पहले हुआ करती थीं। जिंदगी सात साल में ही काफी भारी हो गयी। शिक्षा, व्यवस्था, शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति रोज भारी होती जा रही है। छोटे बच्चे जितने भारी हो जायेंगे, उतनी जल्दी उन्हें शक्ति बाहर फेंकने के लिए सेक्स का मार्ग खोजना पड़ेगा।
इससे उल्टा भी हो सकता है। अगर हम बच्चों को देर तक हल्का रख सकें, बहुत हल्का रख सकें, तो शायद बीस साल, पच्चीस साल तक... ।
हम कहानियां सुनते हैं लेकिन हमें पता नहीं है, और जो गुरुकुल चलाते हैं उनको भी पता नहीं है कि मामला क्या है। क्योंकि गुरुकुल चलाने वाले लोग तो आम तौर से गंभीर होते हैं। लेकिन पच्चीस साल तक किसी जमाने में हम गुरुकुल में युवकों को काम के, सेक्स के, बाहर रख सके थे। उसका कारण क्या था? उसका कारण था कि हम पच्चीस साल तक उन्हें गंभीर होने से बचा सके थे। और कोई कारण नहीं था। जितनी गंभीरता बढ़ेगी उतना बोझ बढ़ जायेगा, जितना बोझ बढ़ेगा, तनाव हो जायेगा। जितना तनाव होगा उतना निकास चाहिए। हम पच्चीस साल तक उनको गंभीर होने से बचा सके थे। हमने पच्चीस साल तक उनकी जिंदगी को खेल... न परीक्षाओं की गंभीरता थी, न जिंदगी से लड़ने की गंभीरता थी, न उत्तरदायित्व और रिस्पांसबिलिटी की गंभीरता थी। जिंदगी एक खेल थी जंगल में। उस खेल के बीच सब बहुत आहिस्ता चल रहा था। लकड़ियां काट रहे थे लड़के, जंगल में दौड़ रहे थे, पौधे बना रहे थे, खेती कर रहे थे। कभी घंटा आधा घंटा पढ़ते थे, पढ़ना कोई गंभीर काम नहीं था--फुरसत के क्षण में हुई बातचीत थी, निकट गुरु के बैठ कर थोड़ी बात कर लेते थे। तो पच्चीस साल तक अगर वे काम के बाहर रह जाते थे तो कोई आश्चर्य नहीं। और अगर आज आपके बच्चे चौदह और पंद्रह साल के बाद ही पूरे अडल्ट, पूरे प्रौढ़ और पूरी प्रौढ़ता की कामवासना की मांग कर रहे हैं तो भी कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि आप उन्हें पूरे गंभीर बनाने की योजना किये हुए हैं।
जिस आदमी को अकाम को उपलब्ध होना है उसे जिंदगी से गंभीरता को अलग कर देना चाहिए अन्यथा बोझ हो जायेगा, और बोझ उसे काम में ले जायेगा। कैसे यह होगा? दो-चार काम तो हर आदमी खोज सकता है जब वह गैर-गंभीर है। कभी आप अपने बच्चों के साथ घर में खेलते हैं? आप कहेंगे, कैसी पागलपन की बात कर रहे हैं आप? बच्चों के साथ और खेल! बाप जब भी बेटे से मिलता है तो गंभीर मिलता है। एक तो मिलता ही नहीं, कभी कोई गंभीर मौका आ जाता तो मिलता है। बेटा जब बाप से मिलता है तब गंभीर मिलता है। वह भी बचा रहता है बाप से। बाप को जब कोई उपदेश देना होता है तब बेटे से मिलता है। बेटे को जब कुछ पैसे लेना होता है तब बाप से मिलता है। ऐसे दोनों बच कर निकलते रहते हैं।

नहीं, कभी आप बच्चों के साथ घर में खेलते हैं, इसे जरा प्रयोग करके देखें। वह परिवार परिवार नहीं है जिसके सारे लोग मिलकर एक घंटा खेलते नहीं। और आप हैरान होंगे--एक घंटा आप खेल कर देखें और एक महीने भर में आप फर्क पायेंगे। आपकी सेक्सुअलिटी में फर्क पड़ना शुरू हो गया। एक काम तो मिला गैर-गंभीर होने का। आप घर में बैठ कर करते क्या हैं? अखबार पढ़ते हैं, अखबार बड़ा गंभीर मामला है। करते क्या हैं घर में बैठ कर? छह घंटा दुकान या दफ्तर में बैठने के बाद घर में करते क्या हैं? चित्र बनाते हैं, कभी बैठ कर रंग-तिलका... घर की दीवाल रंगते हैं? कैसी बेहूदगी है कि घर की दीवाल भी रंगने के लिए हमें दूसरे आदमी लाने पड़ते हैं, अपनी दीवाल भी नहीं रंग सकते! कभी दीवाल पर कोई चित्र बनाते हैं? जरूरी नहीं कि वह चित्र कोई बड़े चित्रकार जैसे हों, जरूरी यह है कि वह आपसे निकले।
अब बड़े मजे की बात है कि मेरी दीवाल पर अगर किसी दूसरे चित्रकार का चित्र है तो उसे मेरी दीवाल कहने का मुझे हक भी कहां है? उधार है, बासा है। मेरी दीवाल पर मेरे हाथ का चित्र होना चाहिए। कभी घर में बैठ कर नाचते हैं सबको इकट्ठा करके? घर के लोग नाचने लगते हैं... नहीं, आप कहेंगे, यह कैसी बातें कर रहे हैं?
अगर घर में एक आदमी धार्मिक हो जाये तो सबको बैठा कर वह ऐसा उदासी का
और ऐसा रोने का वातावरण तैयार करवाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन घर में अगर आप घंटे भर नाचते हैं... नाचने के लिए विधि और व्यवस्था की जरूरत नहीं कि आप कत्थक या भरतनाट्यम सीखें और कथकली सीखें। कूद तो सकते हैं! अगर एक घंटे घर में आप मौज से कूदते हैं, नाचते हैं, जो गा सकते हैं गाते हैं, जो बजा सकते हैं बजाते हैं, जो पेंट कर सकते हैं पेंट करते हैं, तो आप पायेंगे आपकी जिंदगी में सेक्सुअलिटी कम होने लगी। जो हजार ब्रह्मचर्य के नियम लेने से कम नहीं होगी वह कम होने लगेगी, क्योंकि आपकी जिंदगी में सृजनात्मक काम शुरू हो गया।
हर आदमी दुनिया में छोटा-मोटा कवि है, और हर आदमी छोटा-मोटा चित्रकार है, और हर आदमी छोटा-मोटा संगीतज्ञ है, और हर आदमी छोटा-मोटा नृत्यकार है। और सबको यह सब होना चाहिए। और जब आप इसमें से गुजरेंगे तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे कि आपकी जो वासना थी, जो बोझ था चित्त पर शक्ति का, वह सृजनात्मक हो गया। एक बार शक्ति सृजनात्मक होनी शुरू हो तो ऊपर बहनी शुरू होती है। इससे उल्टा भी होता है, अगर आपकी शक्ति सृजनात्मक न हो पाये तो विध्वंसात्मक हो जाती है।
यह आपको शायद जानकर हैरानी होगी कि हिटलर चित्रकार होना चाहता था, मां-बाप ने चित्रकार नहीं होने दिया। अब किसी दिन भविष्य की अदालत में शायद यह तय करना मुश्किल होगा कि इस बड़े महायुद्ध के लिए, इतने करोड़ों लोगों के मरने के लिए हिटलर जिम्मेदार है कि उसके मां-बाप जिम्मेदार हैं। क्योंकि हिटलर अगर चित्रकार हो जाता तो कम-से-कम दूसरा महायुद्ध तो नहीं होने वाला था। लेकिन हिटलर चित्रकार नहीं हो पाया। उसके भीतर जो ऊर्जा सृजनात्मक बन सकती थी वह अटक गयी, और विध्वंसक हो गयी। वह कुछ बनाता, वह नहीं बन पाया, उसने कुछ मिटाना शुरू कर दिया। ध्यान रहे अगर आप बनायेंगे नहीं तो आप मिटायेंगे जरूर। अगर आप सृजन नहीं करेंगे तो विध्वंस करेंगे। अगर क्रियेट नहीं करेंगे तो डिस्ट्रक्ट करेंगे। इन दो के बीच उपाय नहीं है। और अगर इन दो के बीच आपको टिकना हो तो फिर आपको ऊर्जाहीन, इंपोटेंसी चाहिए, फिर आपके पास ऊर्जा नहीं होनी चाहिए। अगर ऊर्जा होगी तो ऊर्जा कुछ करेगी, विध्वंस करेगी या निर्माण करेगी, सृजन करेगी या तोड़ेगी या मिटायेगी।
तो आप अपनी जिंदगी में--दूसरा सूत्र अकाम की तरफ--सृजनात्मक हों, टु बी क्रियेटिव। दो चार क्षण खोजें, कुछ भी खोजें और सृजन में लग जाएं। बगीचे में काम कर सकते हैं, नाच सकते हैं, गीत गा सकते हैं। गंभीरता को कुछ देर के लिए अलग कर दें, गैर-गंभीर हो जायें, हल्के हो जायें कुछ देर के लिए। जवान न रह जायें, बूढ़े न रह जायें, बच्चे हो जायें। और जो आदमी बुढ़ापे में भी घंटे भर के लिए बच्चा हो जाये तो उसकी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाती है। उसकी ऊर्जा फिर बचपन की तरह इकट्ठी होने लगती है।
और तीसरी अंतिम बात... ।

एक, पल-पल जीयें; भविष्य और कामना से मुक्त हों; दो, सृजनात्मक बनें; उपयोगिता काफी नहीं है अर्थपूर्ण काम काफी नहीं है, अर्थहीन काम की भी जरूरत है। चरित्र ही बनाने में न लगे रहें। थोड़ी-सी लीला भी जीवन में आने दें। और तीसरी अंतिम बात, जब भी मौका मिल जाए तो होशपूर्वक समस्त इंद्रियों के द्वार बंद करके भीतर देखें।
चौबीस घंटे हम बाहर देखते हैं। जब भीतर देखने का मौका आता है तब हम सो गये होते हैं--तब भीतर देखना नहीं हो पाता। या तो बाहर देखते हैं या नहीं देखते हैं, दो काम हैं हमारी जिंदगी में। दिन भर बाहर देखते हैं, रात में नहीं देखते। या कुछ लोग देखते हैं तो स्वप्न देखते हैं, वह भी बाहर देखना है। वह भी भीतर देखना नहीं है। थोड़ी देर होशपूर्वक चौबीस घंटे में आंख बंद कर के भीतर देखें। क्या मतलब भीतर देखने का? आंख बंद करें और देखने की कोशिश करें। कुछ और मतलब नहीं है। आंख बंद कर लें और देखने की कोशिश करें। सिर्फ कुछ मत करें, आंख बंद कर लें और देखने की कोशिश करें। आंख खोलकर तो हम देख लेते हैं, कोशिश नहीं करनी पड़ती, चीजें दिखाई पड़ जाती हैं। आंख बंद करके कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। अंधेरा दिखाई पड़ेगा तो अंधेरे को ही देखें। बस देखने की कोशिश करें जो भी दिखाई पड़े। हो सकता है कोई चित्र दिखाई पड़े, उसे देखने की कोशिश करें; कोई सपना दिखाई पड़े, उसे देखने की कोशिश करें। भीतर जो भी होता है, इंद्रियों को बंद करके देखने की... ।
पहले आंख से शुरू करें, क्योंकि आंख हमारी सबसे महत्वपूर्ण इंद्रिय
बन गयी है। फिर भीतर सुनने की कोशिश करें, जो भी सुनाई पड़े उसे सुनने की कोशिश करें। फिर भीतर सूंघने की कोशिश करें, फिर भीतर स्वाद लेने की कोशिश करें। इंद्रियों से जो-जो बाहर किया है, वह-वह भीतर करने की कोशिश करें। और आप दंग हो जायेंगे। भीतर के अपने नाद हैं। भीतर की अपनी ध्वनियां हैं। भीतर के अपने रंग हैं। भीतर के अपने स्वाद हैं। भीतर की अपनी सुगंधें हैं। और धीरे-धीरे वह पैदा होनी शुरू हो जायेंगी। और जिस दिन आपके भीतर का रंग आपको दिखाई पड़ेगा, उस दिन बाहर के रंग एकदम अनरिअल मालूम पड़ने लगेंगे। फिर बाहर जाने की इच्छा बंद होने लगेगी। जिस दिन भीतर का संगीत सुनाई पड़ेगा, उस दिन बाहर का संगीत एकदम बेमानी हो जायेगा, शोरगुल मालूम पड़ेगा। जिस दिन भीतर की सुगंध का अनुभव होगा, उस दिन फ्रेंच बाजारों में बनी सारी परफ्यूमें बिल्कुल बेकार मालूम पड़ेंगी। और जिस दिन भीतर के सौंदर्य का बोध होगा, उस दिन बाहर कोई सौंदर्य न रह जायेगा।
तो तीसरा सूत्र, जब भी मौका मिले तो कुछ भीतर करने की कोशिश करें। चौबीस घंटे बाहर ही बाहर न करते रहें। क्योंकि जहां हम करते हैं, ऊर्जा उसी तरफ बहनी शुरू हो जाती है। अगर हम बाहर कुछ करते हैं तो बाहर बहती है। अगर हम भीतर कुछ करते हैं तो भीतर बहती है। जहां काम है, ऊर्जा को वहीं जाना पड़ता है। जहां काम है, ऊर्जा उसी ओर दौड़ पड़ती है। तो भीतर थोड़ा काम करें ताकि ऊर्जा भीतर दौड़ने लगे।
ये तीन सूत्र आप पूरे करें और आप हैरान हो जायेंगे कि जिंदगी से काम चला गया, अकाम उपलब्ध हुआ। ऊर्जा भीतर इकट्ठी होगी, ऊपर उठेगी, अंतस के और द्वार खुलेंगे। अंतस के दूसरे चक्र सक्रिय होंगे और भीतर के रस और भीतर के अमृत झरने लगेंगे। अकाम अंततः अमृत बन जाता है और काम अंततः मृत्यु बन जाता है। काम है मृत्यु की खोज। अकाम है अमृत की खोज।
कल पांचवें और अंतिम सूत्र अप्रमाद पर आप से बात करूंगा। अप्रमाद का अर्थ हैः अमूर्च्छा। अप्रमाद का अर्थ हैः अवेयरनेस। चार दिन जो हमने कहा है, कल उस साधन की हम बात करेंगे जिससे चार दिन हमने जो कहा है वह उपलब्ध हो सकता है। कल साधन की बात है।
क्या करें कि अहिंसा आ जाये? क्या करें कि अचौर्य आ जाये? क्या करें
कि अपरिग्रह आ जाये? क्या करें कि अकाम आ जाये? कौन-सा है मार्ग? कौन-सा है द्वार? कौन-सा है सूत्र?
ये थोड़ी-सी बातें इतने प्रेम और शांति से आपने सुनीं, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
शणमुखानंद हाल, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया पांचवां प्रवचन

अप्रमाद

मेरे प्रिय आत्मन्,
मनुष्य एक सात मंजिला मकान है, ए सेवन-स्टोरी हाउस, लेकिन हम एक मंजिल में ही जीते और मर जाते हैं। पहले उन सात मंजिलों के नाम आपको समझा दूं। जिस मंजिल में हम जीते हैं, उस मंजिल का नाम कांशस, चेतन है। उस मंजिल के ठीक नीचे दूसरी मंजिल है, जो तलघरे में है, जमीन के नीचे है, अंडरग्राउंड है। उस मंजिल का नाम है अनकांशस, अचेतन। उस मंजिल के भी और नीचे पाताल की तरफ तीसरी मंजिल है, उसका नाम है कलेक्टिव अनकांशस, समष्टि अचेतन। और उसके नीचे भी एक चौथी मंजिल है, और भी नीचे, सबसे नीचे, उस मंजिल का नाम है, कॉस्मिक अनकांशस, ब्रह्म-अचेतन। जिस मंजिल पर हम रहते हैं उसके ऊपर भी एक मंजिल है, उस मंजिल का नाम है सुपर-कांशस, अति-चेतन। उसके ऊपर एक मंजिल है जिसको कहें कलेक्टिव कांशस, समष्टि चेतन। और उसके भी ऊपर एक मंजिल है जिसे कहें काॅस्मक कांशस, ब्रह्म-चेतन। जहां हम हैं उसके ऊपर तीन मंजिलें हैं और उसके नीचे भी तीन मंजिलें हैं। यह मनुष्य का सात मंजिलों वाला मकान है। लेकिन हममें से अधिक लोग चेतन मन में ही जीते और मर जाते हैं।
आत्मज्ञान का अर्थ है, इस पूरी सात मंजिल की व्यवस्था से परिचित हो जाना। इसमें कुछ भी अपरिचित न रह जाये, इसमें कुछ भी अनजाना न रह जाये। क्योंकि इसमें यदि कुछ भी अनजाना है तो मनुष्य अपना मालिक, अपना सम्राट कभी भी नहीं हो सकता। जो अनजाना है वही उसकी गुलामी है। वह जो अज्ञात है, वह जो अंधकार पूर्ण है, वही उसका बंधन है। वह जो नहीं जाना गया, वह नहीं जीता गया है। अज्ञान ही हार है और ज्ञान ही विजय की यात्रा है।
इस सात मंजिल के भवन में हम सिर्फ एक मंजिल को जानते हैं जिसमें हम अपने को पाते हैं, जहां हम हैं। इस मंजिल में ही जीते रहने का नाम प्रमाद है। इस मंजिल में ही बने रहने का नाम प्रमाद है। प्रमाद का अर्थ है-- मूर्च्छा। प्रमाद का अर्थ है--बेहोशी। प्रमाद का अर्थ है--निद्रा। प्रमाद का अर्थ है--तंद्रा। प्रमाद का अर्थ है--सम्मोहित अवस्था, हिप्नोसिस। हम इस एक मंजिल से इस तरह हिप्नोटाइज हो गये हैं, हम इस एक मंजिल से इस तरह सम्मोहित हो गये हैं कि हम इधर-उधर देखते ही नहीं। हमें पता भी नहीं चल पाता है कि हमारे व्यक्तित्व में, हमारे जीवन में, हमारे होने में और भी बहुत फैलाव है।
साधना का अर्थ है, इस प्रमाद को तोड़ना, इस मूर्च्छा को तोड़ना। स्वभावतः इसे मूर्च्छा क्यों कहें? इसे प्रमाद क्यों कहें? एक आदमी के पास सात मंजिल का मकान हो और वह एक ही मंजिल में रहता हो और उसे दूसरी मंजिलों का पता न चले तो हम क्या कहेंगे? क्या वह आदमी जागा हुआ है? यदि वह आदमी जागा हुआ है तो उसके बाकी मंजिलों से अपरिचित रहने की संभावना नहीं है। हां, यही हो सकता है कि एक आदमी अपने मकान की एक ही मंजिल से परिचित हो और छह मंजिलों से अपरिचित हो। यह तभी संभव है जब वह एक मंजिल में सोया हुआ हो, अन्यथा उसे पता चलना शुरू हो जायेगा। हम सोये हुए लोग हैं, इसलिए हम जहां हैं वहीं जी लेते हैं। हमें कुछ और पता नहीं चलता।
पश्चिम का मनोविज्ञान अभी तक इतना ही मानता था कि यह जो चेतन मन है, यह
जो कांशस माइंड है, यही मनुष्य है। लेकिन जैसे-जैसे उन्होंने सोच-विचार किया, थोड़ी खोज-बीन की तो फ्रायड को पहली दफा अनुमान आना शुरू हुआ कि नीचे कुछ और भी है। चेतन ही सब कुछ नहीं है, कुछ और नीचे है, और वह ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम हुआ। अनकांशस की खोज फ्रायड ने की। अचेतन की खोज की और पश्चिम के मनोविज्ञान ने दो बातें स्वीकार कर लीं, चेतन-मन और अचेतन-मन। लेकिन फ्रायड की खोज अनुमान है, अनुभव नहीं। अनुभव साधना के बिना नहीं हो सकता। अपनी मंजिल में रहते हुए हमें कभी-कभी शक हो सकता है, नीचे की कुछ आवाज आती है, पता नहीं नीचे भी कुछ हो। कभी-कभी नीचे से धुआं आ जाता है, कभी-कभी नीचे से आग की लपटें आ जाती हैं, और हमें लगता है कि नीचे भी

जरूर कुछ होना चाहिए। लेकिन यह अनुमान है। रहते हम अपनी ही मंजिल में हैं, हम नीचे उतर कर नहीं गये, यह अनुभव नहीं है।
फ्रायड ने पश्चिम में जिस अनकांशस की बात की है वह फ्रायड का अनुभव नहीं है, इनफरेंस है, अनुमान है। इसलिए पश्चिम का मनोविज्ञान अभी भी योग नहीं बन पाया। मनोविज्ञान उस दिन योग बन जायेगा जिस दिन अनुमान अनुभव बनता है। और मजे की बात है कि फ्रायड जैसा खोजी आदमी, जो कहता है कि नीचे कुछ और भी है मनुष्य के, जिसका मनुष्य को पता नहीं, वह भी इस नीचे के मन से उसी तरह प्रभावित होता है, जैसे वे लोग प्रभावित होते हैं जिन्हें पता नहीं है।
अनुमान से कोई बहुत फर्क नहीं पड़ सकता। फ्रायड को उसी तरह क्रोध पकड़ लेता है जैसे उन लोगों को पकड़ता है जिन्हें अचेतन का कोई पता नहीं है। फ्रायड को उसी तरह से चिंताएं पकड़ती हैं जैसे उन्हें पकड़ती हैं जिन्हें अचेतन का कोई पता नहीं है। अचेतन का जो काम है वह फ्रायड के ऊपर उसी भांति जारी है जिस भांति उन पर जारी है जिन्हें अचेतन का कोई ख्याल नहीं है। अनुमान है, लेकिन अनुमान भी बड़ी बात है। फिर फ्रायड के एक सहयोगी ने काम करते-करते अनकांशस के नीचे का भी अनुमान कर लिया। गुस्ताव जुंग ने कलेक्टिव अनकांशस का भी अनुमान कर लिया कि वह जो अचेतन मन है उसके नीचे भी कुछ चीजें मालूम पड़ती हैं। वहीं सब खतम नहीं हो जाता। लेकिन वह भी अनुमान ही है, अनुभव नहीं है। योग अनुभव की यात्रा है। योग स्पेकुलेटिव नहीं है, योग सिर्फ विचार नहीं है, योग अनुभूति है।
यह जो तीन मंजिलें ऊपर फैली हैं और तीन मंजिलें नीचे फैली हैं, इनका हमें तब तक पता नहीं चलेगा जब तक हम अपनी मंजिल में सोये हुए हैं। इसलिए पहले हम अपने सोये हुए होने के तथ्य को ठीक से समझ लें तो जागने की यात्रा शुरू हो सकेगी।
क्या आपने कभी यह ख्याल किया कि आप एक सोये हुए आदमी हैं? शायद नहीं ख्याल किया होगा। क्योंकि सोये हुए आदमी को इतना भी पता चल जाये कि मैं सोया हुआ हूं तो जागने की शुरुआत हो जाती है। असल में इतनी बात का भी पता चलना कि मैं सोया हुआ हूं, जागने की खबर है। नींद में यह भी पता नहीं चलता कि मैं सोया हुआ हूं, यह भी पता जागने में ही चल सकता है। पागल को यह भी पता नहीं चलता कि मैं पागल हूं, यह भी गैर-पागल को ही पता चल सकता है। नींद में आपने कभी नहीं जाना कि आप सोये हैं, जागकर आपको पता चलता है कि अरे! मैं सोया हुआ था। सोये हुए होने का अनुभव भी जागने का अनुभव है, नींद का अनुभव नहीं है।
इसलिए मैं आशा नहीं करता कि आपको पता चला होगा कि आप सोये हुए हैं। लेकिन जो जाग गये हैं, वे कहते हैं कि आप सोये हुए हैं। थोड़ी-सी बातें की जा सकती हैं जिनसे शायद आपको ख्याल आ जाये।
एक आदमी है, क्रोध करता है, गालियां बकता है। सांझ को क्षमा मांगने आता है और कहता है, माफ करें। जो मैं नहीं कहना चाहता था वह कह गया, इनस्पाइट ऑफ मी! वह कहता है, मेरे बावजूद! मैं नहीं चाहता था, और बातें हो गयीं, माफ करें।
क्या उस आदमी से पूछा जा सकता है कि तुम यदि नहीं चाहते थे तो बातें कैसे हो गयीं? क्या तुम जागे हुए थे या सोये हुए थे?
क्या आपने क्रोध करके हर बार यह अनुभव नहीं किया है कि कुछ जो नहीं करना था वह आपने कर लिया? अगर ऐसा अनुभव किया है तो इसका मतलब है कि जो किया गया वह नींद में किया गया होगा, अन्यथा यह बात उसी वक्त पता चल सकती थी कि जो नहीं करना है वह हम कर रहे हैं।
स्वामी आनंद एक रात मेरे साथ रुके थे, तो उन्होंने एक संस्मरण मुझे सुनाया। उन्होंने कहा कि गांधीजी के बिल्कुल प्राथमिक जीवन का... जब वे हिंदुस्तान आये हुए थे और किसी सभा में उन्होंने अंग्रेजों के लिए अपशब्द बोले और गालियां दीं। स्वामी आनंद ने, उन्होंने जो बोला था, उसकी पत्रों में रिपोर्ट की, अखबारों में खबर भेजी, लेकिन स्वामी आनंद ने वे शब्द निकाल दिये जो गांधीजी ने उपयोग किये थे। क्योंकि वे कठोर थे, कटु थे, विषाक्त थे, गालियां थीं, अपशब्द थे, वे अलग कर दिये। और फिर दूसरे दिन स्वामी आनंद गांधीजी के पास वह रिपोर्ट लेकर गये और कहा, मैंने उतनी चीजें

अलग कर दीं। तो गांधीजी ने उनकी पीठ ठोंकी और कहा, बहुत ठीक किया जो अलग कर दिया, क्योंकि जो मुझे नहीं कहना चाहिए था वह मैंने कह दिया। स्वामी आनंद मुझसे बोले कि गांधीजी ने मेरी पीठ ठोंकी और कहा कि तुम ठीक पत्रकार हो। मैंने स्वामी आनंद से कहा, आपने गांधीजी के अहंकार की तृप्ति की और गांधीजी ने आपके अहंकार की तृप्ति कर दी। एक दूसरे की पीठ ठोंक दी। मैंने कहा, एक दूसरा प्रयोग कभी किया कि नहीं? गांधीजी ने गालियां न दी हों और आप अखबार में जोड़ कर लिख आते कि गालियां दीं। फिर वे पीठ ठोंकते तो पता चलता! हालांकि दोनों बातें एक-सी हैं।
रिपोर्टिंग झूठी है। स्वामी आनंद ने जो रिपोर्ट की वह झूठ है। अगर गाली दी गयीं थीं तो दी गयीं थीं उन्हें रिपोर्ट किया जाना चाहिए। लेकिन गांधीजी ने कहा, अच्छा किया तुमने वह निकाल दिया, क्योंकि जो मुझे नहीं कहना चाहिए था वह मैंने कहा था। अगर जो नहीं कहना चाहिए था वह कहा था तो गांधीजी उस वक्त होश में थे, या बेहोश थे?
हम पश्चात्ताप इसीलिए करते हैं कि हम बेहोशी में कुछ कर जाते हैं और फिर जब थोड़ा-सा होश का क्षण आता है तो पछताते हैं। होश से जीने वाले आदमी की जिंदगी में पश्चात्ताप नहीं होता, रिपेंटेंस नहीं होता। क्योंकि वह जो कर रहा है वह पूरी तरह जान कर कर रहा है। पश्चात्ताप का कोई कारण ही नहीं है।
क्या आपकी जिंदगी में ऐसे मौके रोज नहीं आये हैं कि जब आप पछताते हैं? अगर पछताते हैं, तो समझ लेना कि आप सोये हुए आदमी हैं। जो आप करते हैं क्या उसके करने का पूरा कारण आपके होश में होता है? आप किसी के प्रेम में पड़ जाते हैं, अंग्रेजी में अच्छा शब्द है, हम कहते हैं कि फालिंग इन लव! शब्द उपयोग करते हैं, फालिंग; शब्द उपयोग करते हैं, प्रेम में गिर जाना। प्रेम में उठ जाना होना चाहिए। राइजिंग इन लव! लेकिन प्रेम में लोग गिरते हैं। उसका कारण है। शब्द ठीक है। शब्द इसलिए ठीक है कि प्रेम हम करीब-करीब सोयी हुई हालत में करते हैं। मूर्च्छित हो जाते हैं।
इसलिए अक्सर प्रेमी कहते हैं कि यह प्रेम मैंने किया नहीं, हो गया! हो गया का क्या मतलब है? नींद में चीजें होती हैं, जागने में की जाती हैं। आपने प्रेम किया है, या हो गया है? अगर हो गया है तो आप बेहोश आदमी हैं, सोये हुए आदमी हैं। आपका प्रेम आपका नहीं है, किसी अचेतन मार्ग से आया है। जब आप क्रोध करते हैं तो आप करते हैं या हो जाता है? अगर करते हैं तब तो ठीक, लेकिन अगर हो जाता है तो फिर आप जागे हुए आदमी नहीं, सोये हुए आदमी हैं।
हम जो भी कर रहे हैं, उसके हम कर्ता हैं या वह सब हमारे ऊपर घटित हो रहा है? एक पंखे का बटन हम दबाते हैं, पंखा चलता है। अगर पंखा दूसरे पंखों से कहता होगा तो यह नहीं कह सकता कि मैं चलता हूं। वह इतना ही कह सकता है कि चलना मुझ पर घटित होता है। हम मशीन हैं कि मनुष्य? हम पर चीजें घट रही हैं, या सचेतन रूप से हम उन्हें कर रहे हैं? नहीं, हम कर नहीं रहे, यही हमारा प्रमाद है।
बुद्ध साधक अवस्था के पहले एक गांव से गुजरते थे। रास्ते पर थे। किसी भिक्षु से बात करते थे और एक मक्खी उनके गले पर आकर बैठ गयी। बातचीत जारी रखी और मक्खी को उड़ा दिया। जैसा हम सबने उड़ाया होता। बातचीत जारी रखी, मक्खी को उड़ा दिया। फिर ठहर गये और आंखें बंद कर लीं। मक्खी तो उड़ गई थी, पर वह जो भिक्षु साथ था बहुत हैरान हुआ, और बुद्ध उस जगह हाथ ले गये जहां मक्खी बैठी थी, अब नहीं थी, और मक्खी को फिर से उड़ाया। उसी मक्खी को, जो अब वहां नहीं थी। उस भिक्षु ने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं? मक्खी तो अब नहीं है। बुद्ध ने कहा कि नहीं, अब मैं उस तरह उड़ा रहा हूं जैसा मुझे उड़ाना चाहिए था! मैंने बेहोशी में मक्खी उड़ा दी। मैं तुमसे बात करता रहा, हाथ ने यंत्रवत मक्खी को उड़ा दिया। मैं पूरे होश में न था, मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया! उड़ा दिया तब मुझे पता चला कि मैंने उड़ा दिया। जब मैं उड़ा रहा था तब मुझे पता ही नहीं था कि मैं उड़ा रहा हूं। तो बुद्ध ने कहा, "अब मैं उस तरह उड़ा रहा हूं जैसे मुझे उड़ाना चाहिए था। होशपूर्वक, कांशसली।

हम सब सोये हुए लोग हैं, हम जो भी कर रहे हैं वह सोये हुए कर रहे हैं। प्रेम, घृणा, दोस्ती, दुश्मनी, क्रोध, क्षमा, प्रायश्चित, सब सोये हुए हो रहा है। अगर हम अपनी जिंदगी का पूरा हिसाब लगायें तो वह हमें स्वप्न जैसी मालूम पड़ेगी। जिंदगी जैसी नहीं मालूम पड़ेगी। अगर आप लौट कर पीछे की तरफ देखें जितनी जिंदगी आपकी गुजर गयी तो वह ऐसी नहीं लगेगी कि जीये आप, वह ऐसी लगेगी जैसे आपको जीया गया। यू हैव बीन लिव्ड। कुछ आपके ऊपर से गुजरता गया है। एक फिल्म की तरह आपके ऊपर से कोई चीज गुजरती गई है। इस अवस्था का नाम प्रमाद है--मैन एस्लीप। रात की नींद की बात नहीं कर रहा हूं, दिन की नींद की बात कर रहा हूं। हम जागे हुए भी सोये हुए हैं। चौबीस घंटे हम सोये हुए हैं। कभी-कभी किसी खतरे के क्षण में थोड़ी देर को जागरण आता है, अन्यथा नहीं। अगर मैं एक छुरा अचानक आपकी छाती पर रख दूं तो एक क्षण को आप जाग जायेंगे। उस क्षण में आप सोये हुए नहीं होंगे। क्योंकि इमरजेन्सी, संकट का क्षण होगा वह। उस वक्त सोये रहना खतरनाक है। अगर अचानक छाती पर कोई छुरा रख दे तो एक क्षण को कोई चीज आपके भीतर, जो सोयी थी, एकदम जागेगी। तब आप भी न रह जायेंगे, छुरा रखने वाला भी न रह जायेगा, सिर्फ चेतना रह जायेगी जो छुरे के रखने को जान रही है। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं चलेगा, यह बहुत क्षणिक होगा। तत्काल भय पकड़ लेगा, भागने लगेंगे, सब खो जायेगा, फिर आप सो जायेंगे।
कभी किसी खतरे के क्षण में, एकाध क्षण को हम जागते हैं। अगर आम आदमी की जिंदगी में जागने के क्षणों का हिसाब लगाया जाये तो अस्सी वर्ष की उम्र में आठ क्षण भी खोजना कठिन है जब वह जागा हुआ हो। इसलिए हमारे मन में खतरे की भी एक इच्छा पैदा होती है। खतरे में भी थोड़ा रस आने लगता है, क्योंकि खतरे में हम जागते हैं। खतरे की एक अपनी सेंसिटिविटी है।
एक आदमी जुए पर दांव लगा देता है। लाख रुपये लगा दिये उसने। अब एक क्षण को वह जागेगा, जब तक यह तय नहीं होता कि हार गया या जीत गया। क्योंकि इतना संकट का क्षण है कि उसकी श्वास रुक जायेगी, उसकी चेतना ठहर जायेगी, और वह प्रतीक्षा करेगा कि क्या हो रहा है। इतना संकट का क्षण है कि वह सो नहीं सकता। शायद आपको पता नहीं होगा कि जुए का आकर्षण जागने के रस से ही आता है। खतरे का आकर्षण जागने के रस से ही आता है। हम हजार तरह के खतरे चुनते हैं, हजार तरह के जुए चुनते हैं, जिनमें हम क्षण भर को जाग पाते हैं। लेकिन वह इतनी क्षणिक घटना है कि हम जाग भी नहीं पाते हैं और फिर सो जाते हैं। और फिर नींद शुरू हो जाती है। इन आकस्मिक उपायों से कोई कभी पूरी तरह जाग नहीं सकता। लेकिन आपको समझाने के लिए मैं कह रहा हूं कि आपको यह प्रमाद की सोयी हुई अवस्था ख्याल में आ जाये। अगर आपको यह स्मरण आ जाये कि आप सोये हुए आदमी हैं, और ऐसे काम कर रहे हैं जो नहीं करना चाहते; इस तरह जी रहे हैं, जैसे नहीं जीना चाहते; इस तरह बैठ रहे हैं, उठ रहे हैं, जैसे नहीं उठना- बैठना चाहते; इस तरह के आदमी बनते जा रहे हैं, जिस तरह के नहीं बनना चाहते। मार्क ट्वेन ने अपने एक संस्मरण में लिखा है, लिखा है कि मैं एक कहानी लिख रहा था और कहानी में मैंने तय किया था कि कौन-कौन सा पात्र क्या-क्या काम करेगा। लेकिन जब कहानी पूरी हुई तो मैंने देखा कि पात्रों ने वह काम तो किया ही नहीं, पात्रों ने तो दूसरा काम कर डाला है। तब मार्क ट्वेन ने लिखा, ऐसा लगता है कि मेरे द्वारा पात्र जन्मे जरूर, लेकिन धीरे-धीरे वे स्वतंत्र हो गये और कुछ ऐसे काम करने लगे जो कि मैं नहीं चाहता था। नायक से जो करवाना चाहता था वह न करके वह कुछ और करने लगे तो अब नायक कहानी का क्या करेगा और कुछ... ? नहीं, मार्क ट्वेन समझ नहीं पा रहा। असल में मार्क ट्वेन ने जिस वक्त चाहा था कि पात्र यह करे, वह मार्क ट्वेन ही सोया हुआ है। इसलिए पात्र वही कैसे करेंगे। फिर दूसरा सोया हुआ मार्क ट्वेन कुछ और करवा लेगा, तीसरा कुछ और करवा लेगा।
इसलिए कहानी लेखक जो सोचकर कहानी शुरू करता है, वही कहानी कभी पूरी नहीं होती। कहानी कहीं और पूरी होती है। कवि जहां से कविता शुरू करता है, कविता वहीं पूरी नहीं होती। कविता कहीं और पूरी होती है। क्योंकि कांशस आर्ट तो पैदा ही नहीं हुआ। जिसको सचेतन कला कहें वह अभी पैदा नहीं हो पाई। जिसको आब्जेक्टिव आर्ट कहें वह अभी पैदा नहीं हो पाया। अभी तो सोये हुए आदमी कविताएं लिखते हैं। तो कुछ शुरू करते हैं और कुछ हो जाता है। सोये

हुए आदमी चित्र बनाते हैं, कुछ बनाना चाहते हैं कुछ बन जाता है। सोये हुए आदमी कहानियां लिखते हैं, कुछ लिखना चाहते हैं कुछ लिख जाता है। सोये हुए राजनीतिज्ञ दुनिया चलाते हैं, कुछ करना चाहते हैं, कुछ हो जाता है।
सोये हुए आदमी के साथ भरोसा नहीं है। लेकिन कहानी की बात छोड़ दें। जिंदगी में आप जो बनना चाहते थे वह बन पाये? शायद ही दुनिया में एकाध आदमी मिले जो कहे, मैं वही बन गया जो बनना चाहता था। सब आदमी कुछ बनना चाहते हैं।
पहली तो बात यह भी साफ नहीं होती कि क्या बनना चाहते हैं। क्योंकि नींद में कैसे साफ हो सकता है? पता ही नहीं चलता। एक धीमी-सी, सोयी-सी आकांक्षा होती है कि मैं यह बनना चाहता हूं। लेकिन कहीं यह बहुत साफ नहीं होता है कि क्या बनना चाहता हूं। हालांकि यह जरूर पता लगता रहता है कि मैं वह नहीं बन पा रहा हूं जो मैं बनना चाहता था। और जब जिंदगी अंत होती है तो शायद ही कोई आदमी यह कह सके कि मैं वही बनकर जा रहा हूं जो मैं बनना चाहता था। नहीं, सभी आदमी कहीं और पहुंच जाते हैं; जहां वे कभी नहीं पहुंचना चाहते थे। कुछ और बन जाते हैं, जो वे कभी बनना नहीं चाहते थे। जिंदगी कुछ और ही होती है जो कभी नहीं चाहा था उन्होंने कि हो। अगर आप को ऐसा लगे तो समझना कि आप सोये हुए आदमी हैं। मरते वक्त लगे तो फिर बहुत उपाय न रह जायेगा। अभी लगे तो कुछ उपाय हो सकता है। मरते वक्त सभी को लगता है कि जिंदगी बेकार गयी। जो होना चाहते थे वह नहीं हो पाये। हालांकि मरता हुआ आदमी भी साफ-साफ नहीं कह सकता कि क्या होना चाहते थे। लेकिन इतना जरूर उसे लगता है कि कुछ चूक गया कहीं, समथिंग मिसिंग। कुछ खो गया।
आपको भी लग रहा होगा। जिसमें भी थोड़ी बुद्धि है, उसे लगता है कि कोई चीज मिस हो रही है, खो रही है। कोई चीज नहीं हो पा रही है। वही फ्रस्ट्रेशन है, वही दुख है, वही चिंता है, वही पीड़ा है। आदमी की परेशानी यही है, कि प्रेम से वह जो पाना चाहता है, वह पाता है कि वह नहीं मिल पाया। प्रेम में जो करना चाहता है, पाता है कि वह कर ही नहीं पाया। आप तय करके जाते हैं किसी मित्र के घर कि यह-यह बातें करूंगा। जब आप पहुंचते हैं तो आप पाते हैं कि आप कुछ और बातें कर रहे हैं। पति घर लौटता है तो यह तय करके लौटता है कि आज पत्नी से झगड़ा नहीं करना है। सब बातें तय करके लौटता है कि इस तरह व्यवहार करना है, यह कहना है, इस तरह प्रेम प्रकट करना है। पत्नी दिन भर में तय करके रखती है कि अब कल वाली सांझ फिर से न दुहर जाये। वह नहीं करना है, जो कल किया था। फिर अचानक जब वे दोनों आमने-सामने आते हैं तब पता चलता है कि कल की सांझ फिर वापस लौट आयी। जो तय किया था वह खो जाता है, जो नहीं तय किया था वह फिर हो जाता है। यह आदमी सोया हुआ आदमी है कि जागा हुआ आदमी है? नहीं, यह हमारी सोयी हुई अवस्था है।
महावीर ने इसे प्रमाद कहा है। प्रमाद अर्थात सोये हुए होना। यदि यह स्मरण आ जाये कि मैं सोया हुआ हूं तो खोज शुरू हो सकती है। इसलिए अप्रमाद का पहला सूत्र है इस बात की समझ कि मैं सोया हुआ हूं, टु बी अवेयर आफ वन्सस्लीप। वह जो नींद है, उसका पहला बोध। और समझ लें कि जिस दिन आपको यह पता चल जाये कि आप सोये हुए हैं तो फिर सुबह करीब है। क्योंकि यह पता तभी चल सकता है जब नींद टूटने लगे।
नींद को तोड़ने का पहला सूत्र है, नींद को ठीक से पहचान लेना। यह आपसे पहला सूत्र कहता हूं कि आप सोये हुए आदमी हैं, इसे ठीक से समझ लेना। चाहे आप दूकान करते हों तो सोये हुए करते हैं, चाहे मंदिर जाते हों तो सोये हुए जाते हैं, चाहे मित्रता करते हों तो सोये हुए, चाहे शत्रुता करते हों तो सोये हुए। नींद हमारी चौबीस घंटे की स्थिति है।
दूसरी बात, अब इस सोये हुए होने का अनुभव हो जाये, पता चल जाये--और धार्मिक आदमी की शुरुआत इसी बात से होती है कि मैं प्रमादी हूं, इसका उसे अनुभव हो जाये। नहीं, लेकिन कुछ प्रमादी धर्म को भी नींद में साधते रहते हैं। मालाएं फेरते रहते हैं और झपकियां लेते रहते हैं। मंदिर में बैठे रहते हैं और झपकी लेते रहते हैं। व्रत करते रहते हैं और सोये रहते हैं। जैसे वे दूकान करते हैं, वैसे व्रत भी कर लेते हैं। सोये-सोये सब चलता रहता है। धर्म भी सोये-सोये हो जाता है। धर्म सोये-सोये नहीं हो सकता। सोये- सोये सिर्फ अधर्म हो सकता है। इसलिए धर्म के नाम पर भी अधर्म ही होता है।

सोया हुआ आदमी धर्म के नाम पर भी अधर्म ही करता है। वह धर्म कर ही नहीं सकता। यह असंभव है। सोये हुए आदमी से धर्म का कोई संबंध नहीं हो सकता। नींद धर्म में नहीं ले जा सकती, नींद अधर्म में ही ले जाती है।
स्मरण आ जाये कि मैं सोया हुआ हूं तो क्या किया जाये?
पहला सूत्र, सोये हुए होने का स्मरण। दूसरा सूत्र, इस नींद को तोड़ने
के लिए क्या किया जाये? कौन-सा उपाय है?
और ध्यान रहे, जो आदमी अपनी इस मंजिल की नींद को तोड़ दे, वह इसके नीचे
की मंजिल की सीढ़ियों पर पहुंच जाता है, अपने आप। अगर कोई आदमी चेतन मन में जाग जाये तो अचेतन में उतर जाता है। अचेतन में उतरने का सूत्र चेतन मन में जाग जाना है। जैसे कि हम नींद में जाग जायें तो हम जागरण में उतर जाते हैं। चित्त-दशा फौरन बदल जाती है। एक आदमी को नींद में हमने हिला दिया। वह जाग गया तो नींद गयी और जागना शुरू हो गया। दूसरी चित्त-दशा शुरू हो गयी। अगर हम स्वप्न में जाग जायें तो स्वप्न तत्काल टूट जाता है, और हम स्वप्न के बाहर हो जाते हैं। जिस चित्त की अवस्था में हम जी रहे हैं, वह जो कांशस माइंड है हमारा। अगर उसमें हम जाग जायें तो हम अचेतन मन में उतर जाते हैं। अनकांशस में उतर जाते हैं।
और इसके पहले कि मैं समझाऊं कि कैसे जागें, यह भी आपको समझा दूं कि जितने हम नीचे गहरे उतरते हैं, उतने ही हम ऊपर भी उठते जाते हैं। जीवन का नियम ऐसा ही है, जैसा वृक्षों का नियम है। जड़ें नीचे जाती हैं, वृक्ष ऊपर जाता है। साधना नीचे जाती है, सिद्धि ऊपर जाती है। जितनी गहरी जड़ें नीचे उतरने लगती हैं, उतने ही वृक्ष आकाश को छूने ऊपर बढ़ने लगता है। वह जो फूल खिलते हैं आकाश में उनका आधार नीचे पाताल में चली गयी जड़ों में होता है। अगर वृक्ष को ऊपर बढ़ना है तो उसे नीचे भी बढ़ना पड़ता है। उल्टा लगेगा, ऊपर बढ़ने के लिए नीचे भी बढ़ना पड़ता है। साधना सदा नीचे ले जायेगी, गहराइयों में, और सिद्धि सदा ऊपर उपलब्ध होगी, ऊंचाइयों में।
साधना एक डेप्थ है, गहराई है; और सिद्धि एक पीक है, ऊंचाई है। अपने में
ही जो नीचे उतरेगा वह अपने में ही ऊपर जाने की उपलब्धि को पाता चला जाता है। सीधे ऊपर जाने का उपाय नहीं है। सीधे तो नीचे जाना पड़ेगा। कांशस से अनकांशस में, अनकांशस से कलेक्टिव अनकांशस में, कलेक्टिव अनकांशस से कास्मिक अनकांशस में। और प्रतिबार जब आप चेतन से अचेतन में जायेंगे तब अचानक आप पायेंगे कि ऊपर का भी एक दरवाजा खुल गया--सुपर कांशस का, अतिचेतन का दरवाजा खुल गया। जब आप कलेक्टिव अनकांशस में जायेंगे तो पायेंगे, ऊपर का एक दरवाजा और खुल गया--वह जो समष्टिगत चेतन है, उसका दरवाजा खुल गया। जब आप कास्मिक अनकांशस में जायेंगे, ब्रह्म अचेतन में जायेंगे तब अचानक आप पायेंगे कि ब्रह्म चेतन का, कास्मिक कांशस का दरवाजा भी खुल गया। जितने आप गहरे उतरते हैं उतने आप ऊंचे उठते जाते हैं। इसलिए ऊंचाई की फिक्र छोड़ दें, गहराई की फिक्र करें। जिस जगह हम हैं वहां से हम कैसे जागें।
अगर कोई आदमी पूछे कि हम तैरना कैसे सीखें? तो उसे हम क्या कहेंगे? उसे हम कहेंगे, तैरना शुरू करो। वह कहेगा, अभी मैं तैरना जानता ही नहीं तो शुरू कैसे कर सकता हूं? तब एक बड़ी उलझन पैदा होगी।
अगर मैं आपको नदी के किनारे ले जाऊं और कहूं कि मैं आपको तैरना सिखाता हूं तो आप कहेंगे, मैं तब तक पानी में नहीं उतरूंगा जब तक मैं तैरना न सीख लूं। और आपका तर्क सही होगा। सभी सही दिखाई पड़ने वाले तर्क जरूरी रूप से सत्य के निकट ले जाने वाले नहीं होते। आपका तर्क बिल्कुल सही है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं, मैं पानी में कैसे उतरूं? पहले मुझे तैरना सिखा दें, फिर मैं पानी में उतर जाऊंगा। यह बिल्कुल तर्कयुक्त, लॉजिकल दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं आपसे कहूंगा कि जब तक आप पानी में न उतरें तब तक तैरना कैसे सीख सकते हैं? जब आप पानी में उतरेंगे तभी तैरना सीख सकते हैं। अगर पानी में उतरने को राजी नहीं हैं तो तैरना सिखाया नहीं जा सकता। मेरा तर्क भी तर्क है, पूरी तरह सही है। दोनों तर्कयुक्त बातें हैं। लेकिन मेरा तर्क अस्तित्व के निकट है, आपका तर्क सिर्फ विचार का तर्क है। आप विचार में बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि बिना तैरना सीखे मैं पानी में कैसे उतरूं! लेकिन आपको कुछ पता नहीं है कि तैरना सीखने के लिए भी पानी में उतरना पड़ता है। और पहली बार जब कोई पानी में उतरता है तो बिना तैरना सीखे ही उतरता है।

असल में बिना सीखे, तैरने के लिए उतर जाने से ही सीखने की शुरुआत होती है, तैरने की शुरुआत होती है। हां, इतना है कि बहुत गहरे पानी में मत उतरें, उथले पानी में उतरें, इतने पानी में उतरें कि डूब भी न जायें और इतने पानी में उतरें कि तैर भी सकें। यहीं से शुरुआत करनी पड़ेगी।
तो आपसे मैं कोई परम-जागरण की आकांक्षा नहीं रखता हूं। थोड़े से पानी में उतरना शुरू करें। जहां आप सोये हुए हैं उन छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना शुरू करें। रास्ते पर चल रहे हैं, जाग कर भी चल सकते हैं, सो कर भी चल सकते हैं। अधिक लोग सोये हुए चलते हैं। अगर आप किनारे खड़े होकर रास्ते पर चलते लोगों को देखें तो अनेक उनमें से अपने से ही बातचीत करते हुए जाते हुए मालूम पड़ेंगे। कोई हाथ हिला रहा है, किसी को जवाब दे रहा है जो नहीं है; किसी के होंठ कंप रहे हैं, वह किसी से बात कर रहा है जो नहीं है। यह आदमी नींद में है। अगर आप सड़क के किनारे खड़े होकर घंटे भर सड़क पर चलते हुए लोगों को देखें तो आप हैरान हो जायेंगे कि इतने लोग सोये हुए चल कैसे रहे हैं? चलना सिर्फ हैबिट से हो रहा है। चलने के लिए जागने की बहुत जरूरत नहीं है। कभी-कभी कोई हॉर्न बजा देता है तो आदमी चौंक कर हट जाता है। जरा-सा जागता है, बाकी अपने सोये हुए चलता रहता है।
आप अपने घर पर जाकर नहीं पहुंचते। आपके पैर बिल्कुल ही मशीन की भांति अपने घर की तरफ मुड़ जाते हैं। आप अपना दरवाजा चढ़ जाते हैं, घंटी दबा देते हैं। इस सब में कोई जागने की जरूरत नहीं होती। यह सब नींद में हो जाता है। हैबीच्युअल है, यह आदत है। साइकिल का हैंडल अपने आप घूम जाता है ठीक जगह पर। यह सब यंत्रवत हो रहा है और आप भीतर सोये रहते हैं। इसलिए हमें आदतों को दोहराने में आसानी पड़ती है, क्योंकि उनमें जागना नहीं पड़ता। नयी आदतें बनाने में कठिनाई होती है, क्योंकि उनके लिए थोड़ा-सा जागना पड़ेगा। फिर जब आदत बन जायेगी तब आप सो जायेंगे। इसलिए हम पुराने कामों को ही करते चले जाते हैं, बार-बार करते चले जाते हैं। क्योंकि वह नींद में चल रहा है सब। एक आदमी अपनी सिगरेट मुंह में लगा लेता है। माचिस जला कर जला लेता है,
पी लेता है, फेंक देता है। कोई नहीं कहेगा कि यह आदमी सोया हुआ है, क्योंकि हम कहेंगे अगर सोया हुआ होता तो हाथ जल जाता। नहीं, फिर भी सोया हुआ है। हाथ जलने के पहले जरा-सा जागेगा कि हाथ न जल जाये, सिगरेट फेंकेगा और वापस सो जायेगा, हैबीच्युअल है। आदत से पता है कि कब सिगरेट जलने के करीब आ गयी है तो हाथ फेंक देंगे। यह सब नींद में हो रहा है।
इन छोटी-छोटी क्रियाओं के प्रति जागना शुरू करना पड़ेगा। पहले उन क्रियाओं से शुरू करें, जो बहुत इनोसेंट हैं। जिनमें कोई ज्यादा झगड़ा नहीं है, बहुत निर्दोष हैं। रास्ते पर चल रहे हैं, खाना खा रहे हैं, स्नान कर रहे हैं, कपड़े पहन रहे हैं, इन बहुत छोटी क्रियाओं से शुरू करें जिनमें बहुत इनवॉल्वमेंट नहीं है, जिनमें बहुत ग्रसित नहीं हैं। हां क्रोध के प्रति जागना जरा गहरे में जाना होगा। यह उथले में है। अभी कपड़ा पहन रहे हैं, जागे हुए पहनें, बहुत हैरान हो जायेंगे। जागे हुए जूते पहनें, बहुत हैरान हो जायेंगे। अजीब लगेगा कि यह कैसी फीलिंग है, यह कैसा अनुभव है, यह तो कभी नहीं हुआ, जूते तो रोज पहनते हैं।
अभी मुझे सुन रहे हैं, सोये हुए सुन सकते हैं, जागे हुए सुन सकते हैं।
जब मुझे सुन रहे हैं तो सिर्फ मुझे सुनें ही मत, सुन रहे हैं इसे भी जानते रहें। सिर्फ अगर मुझे सुन रहे हैं और उसको भूल गये जो सुन रहा है तो आप सोये हुए हैं। यह जो तीर है चेतना का, डबल ऐरोड होना चाहिए। दोहरे तीर होना चाहिए इसमें। एक तरफ, मेरी तरफ जो मैं बोल रहा हूं और एक अपनी तरफ जो सुन रहा है। अगर आपकी चेतना इस क्षण में भी दोनों तरफ हो जाये--सुने भी और यह भी जाने कि सुन रहे हैं--तो आप फौरन अनुभव करेंगे कि सुनने की क्वालिटी बदल गयी। अभी यहीं अनुभव करेंगे कि सुनने का गुणधर्म बदल गया, तब विचार न सकेंगे। तब सिर्फ सुन सकेंगे, क्योंकि अगर विचारा तो दूसरा तीर खो जायेगा। वह जो आपकी तरफ जाने वाला तीर है। अगर सिर्फ सुन रहे हैं, अगर सिर्फ देख रहे हैं, तो आपकी चेतना में अभी परिवर्तन शुरू हो जायेगा, नींद टूटने लगेगी और जागरण की किरण आने लगेगी।
छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना शुरू कर दें। फिर उन क्रियाओं में जागें जिनके लिए पछताना पड़ता है। क्रोध के लिए, घृणा के लिए, अभद्रता के

लिए, उनके लिए जागना शुरू करें। अगर आप अपने जागने में सुबह से उठ कर सांझ तक जागने का प्रयोग करें तो थोड़े ही दिनों में आप एकदम दूसरे आदमी हो जायेंगे। आपका प्रमाद जागने में टूट जायेगा। और इसका सबूत क्या होगा कि आपका जागने में प्रमाद टूट गया? इसका सबूत यह होगा कि नींद में भी आपका जागरण शुरू हो जायेगा। जिस दिन आपकी जागरण में नींद टूटेगी उसी दिन आप नींद में भी कांशसली, सचेतन प्रवेश कर सकेंगे।
कितने मजे की बात है, हम रोज सोते हैं, हजारों बार सोये हैं, लेकिन हमें यह पता नहीं कि नींद क्या है? कब आती है? आप रोज सोते हैं, कितनी बार सोये हैं; लेकिन आपको पता है, नींद कब आती है? और कैसे आती है? और क्या है? नहीं, कुछ पता नहीं हमको। हमें सिर्फ इतना ही पता है कि कब तक हम जागे थे, बारह बजे रात तक जागे थे। फिर नींद कब आयी, किस क्षण में आयी, कैसे आपके ऊपर छा गयी, कैसे आप उसमें डूब गये, इसका आपको कभी पता हुआ है? इसका कोई पता नहीं। जिंदगी भर सोयेंगे। साठ साल आदमी जीता है तो बीस साल सोता है। इतनी बड़ी घटना जिसको बीस साल करनी पड़ती है, इसका भी हमें कोई परिचय नहीं होता कि सोने का अर्थ क्या है? यह सोना क्या है? यह नींद क्या है? क्या घटना घटती है मेरे भीतर?
नहीं, जो जागने में ही जागा हुआ नहीं है, वह नींद में कैसे जागेगा? पहले जागने में जागना पड़ेगा। और जिस दिन आप जाग जायेंगे उस दिन आप बहुत हैरान होंगे। जैसे मैं इस कमरे में बैठा हूं और अंधेरा घिर जाये तो मुझे दिखाई पड़ता है कि अंधेरा छा रहा है, अंधेरा घना हो गया, अंधेरा पूर्ण हो गया। फिर रोशनी आ जाये तो मुझे दिखाई पड़ता है, रोशनी आयी, रोशनी घनी हुई, रोशनी भर गयी। लेकिन मैं दोनों को जानता हूं। न तो आप जानते हैं कि कब आप सोये, कैसे नींद का अंधेरा आपके ऊपर गिरा और कैसे आप नींद में डूब गये; न आप जानते हैं, सुबह नींद कैसे हटी, कैसे समाप्त हुई, कैसे विदा हो गयी। जिस दिन आप जागरण की घड़ियों में जाग जायेंगे और जागने की क्रियाएं जाग कर करने लगेंगे, जैसे खाना होशपूर्वक खायेंगे, कपड़े होशपूर्वक पहनेंगे, रास्ते पर होशपूर्वक चलेंगे... ।
महावीर से किसी ने पूछा कि हम क्या करें? तो महावीर ने कहा, क्या करने
की उतनी फिक्र मत करो, जो करते हो उसे होशपूर्वक करो।
क्रोध होशपूर्वक करके देखें, लेकिन बहुत कठिनाई होगी। जरा गहरे में
है बात। तो फिर एक उपाय करें, एक्टिंग करें किसी दिन क्रोध की, तब आप उसमें आसानी से जाग सकेंगे। आज आप घर जायें तो तय करके जायें कि टूट पड़ना है किसी के ऊपर--बिल्कुल एक्टिंग--अकारण, तो आप आसानी से जाग सकेंगे। तय करके जायें। कोई कारण नहीं है पत्नी का--ऐसे भी कोई कारण नहीं होता, लेकिन तब आप बेहोश होते हैं--तय करके जायें कि पत्नी का कोई कारण नहीं, अकारण टूट पड़ना है। और पूरी तरह क्रोध करें तो आप देख पायेंगे क्रोध को! इधर क्रोध चलेगा, इधर भीतर आप देख पायेंगे कि यह क्रोध चल रहा है। और अगर एक्टिंग के क्रोध को भी देख लिया तो दुबारा जो क्रोध होगा वह एक्टिंग हो जायेगी। अगर एक बार हम क्रोध का अभिनय कर सकें तो फिर कभी भी क्रोध बिना अभिनय के नहीं होगा। अभिनय ही हो जायेगा। उसके हमसे भीतरी संबंध ही टूट जायेंगे।

तो जो चीजें गहरी हैं उनको एक्टिंग से शुरू करें। जो चीजें गहरी हैं
उन पर होशपूर्वक अभिनय करें तो आप उनमें जाग सकेंगे। और अगर जागने के क्षणों में जागना आ जाये तो फिर नींद के क्षणों में जागना आना शुरू हो जायेगा। जिस दिन आप नींद में जाग जायेंगे, उस दिन आप अनकांशस में प्रवेश करेंगे। कृष्ण ने गीता में उसी की बात कही है कि योगी रात भी जब सब सोते हैं तब जागता है। वह दूसरा चरण है। नींद में अगर आप जाग गये तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे। इतने हैरान होंगे कि आपकी पूरी जिंदगी बदल जायेगी। अगर आप रात में नींद में जागे हुए सो सके जो कि एक मिरेकल है, एक बहुत अदभुत चमत्कारपूर्ण घटना है--जिस दिन आप सोये और जागे। एक साथ भीतर जागे और बाहर सोये रहे, उस दिन सुबह आप इतने ताजे उठेंगे जैसी ताजगी का आपको कभी भी पता नहीं है। उस ताजगी का शरीर से कोई संबंध नहीं है। उस ताजगी का बहुत गहरे में आत्मा से संबंध हो जाता है।

जिस दिन आप जागे हुए सो सकेंगे उस दिन आपके स्वप्न तिरोहित होने लगेंगे, क्योंकि आप स्वप्नों के प्रति जाग जायेंगे। ऐसा नहीं है कि बाद में पता चलेगा कि मुझे स्वप्न आया। जब स्वप्न आ रहा है, तभी आप जानेंगे कि स्वप्न आया।
जैसा मैंने आप से कहा कि चेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागें तो अचेतन
मन में प्रवेश हो जायेगा, फिर अचेतन मन की क्रियाओं के प्रति जागें तो समष्टि अचेतन, कलेक्टिव अनकांशस में प्रवेश हो जायेगा। अचेतन मन की क्रिया है स्वप्न। स्वप्न के प्रति आप जब जागेंगे, तब आप अचानक पायेंगे एक दरवाजा नीचे और खुल गया जो कलेक्टिव अनकांशस का दरवाजा है। वह मेरा अचेतन नहीं है, हम सबका अचेतन है। उस समष्टिगत अचेतन की अपनी क्रियाएं हैं, जिनको धर्मों ने बड़ा महत्व दिया है। बड़े अनुभव हैं, उस अचेतन मन के बड़े गहरे अनुभव हैं, जिनको जुंग ने आर्च-टाइप कहा है, जिनको उसने कहा है धर्म-प्रतीक। उस गहरे अचेतन में, कहें समष्टि अचेतन में ही दुनिया की सारी मायथॉलोजी पैदा हुई। सृष्टि का जन्म, प्रलय की संभावना, परमात्मा के रूप, रंग, आकार, नाद, वे सब उसी में पैदा हुए। वे उसी की क्रियाएं हैं।
तो जो व्यक्ति स्वप्न में जाग जायेगा वह समष्टिगत अचेतन में प्रवेश करेगा और समष्टिगत अचेतन की अपनी क्रियाएं हैं। जिनको लोग धार्मिक अनुभव कहते हैं वे भी धार्मिक अनुभव नहीं हैं, वे भी मानसिक अनुभव हैं समष्टिगत अचेतन के। रंगों का विस्तार, प्रकाशों का उदभव, अभूत-पूर्व सुगंधें, अभूतपूर्व ध्वनियां, वे सब वहां पैदा होंगी। सृष्टि के जन्म और मरण को भी वहां देखा जा सकता है। उस क्षण को भी देखा जा सकता है जब पृथ्वी पैदा हुई और उस क्षण को भी देखा जा सकता है जब पृथ्वी अस्त हो जायेगी। वहीं से दुनिया की सारी मिथ्स ऑफ क्रियेशन पैदा हुई।
इसलिए बड़े मजे की बात है कि दुनिया की सृष्टि के जितने भी सिद्धांत पैदा हुए वह सब समान हैं, एक से हैं। चाहे ईसाई हों या मुसलमान हों, चाहे हिंदू हों, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ा, शब्दों के फर्क पड़े। उसी क्षण में उस चेतना की, उस अवस्था में ही बहुत-सी बातें जानी गयीं जो सारी दुनिया में समान हैं।
जैसे सारी दुनिया में यह एक ख्याल है कि कभी कोई एक महाप्रलय आया। ईसाइयों को भी ख्याल है कि कभी कोई एक महाप्रलय आया। हिंदुओं को भी ख्याल है कि कभी कोई एक महाप्रलय हुआ। सारे जगत के आदिवासियों के पास भी जो कथाएं हैं उनको भी ख्याल है कि कभी कोई महाप्रलय हुआ। और बड़े मजे की बात है, इन सबके बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं रहा। इनके बीच कोई संवाद नहीं रहा। यह संवाद तो अभी पैदा हुआ। लेकिन इनकी कथाएं तो हजारों-लाखों साल पुरानी हैं। जब ये एक दूसरे से बिल्कुल असंबंधित थे। तब भी इनकी कथाएं एक हैं। क्या मामला है? एक ही मामला है। इनका जो कलेक्टिव अनकांशस है, वह एक है हम सबका। इसलिए बहुत गहरे में हम सब एक हैं। इसलिए जो चीजें बहुत गहरे से संबंधित हैं उनमें बहुत फर्क नहीं पड़ता।
जैसे नृत्य कलेक्टिव अनकांशस से पैदा होता है। इसलिए नृत्य को समझने
के लिए दूसरे की भाषा जाननी जरूरी नहीं है। एक अंग्रेज नाचता हो तो एक चीनी समझ सकता है। अंग्रेजी समझना जरूरी नहीं है। एक हिंदू नाचता हो तो मुसलमान समझ सकता है।
चित्र है, पेंटिंग है, पेंटिंग के लिए कोई जरूरत नहीं है, किसी की भी भाषा समझने की। पिकासो की पेंटिंग, जो आदमी फ्रेंच नहीं जानता है वह समझ सकता है। कोई जरूरत नहीं है... क्योंकि यह सब के सब हमारे कलेक्टिव अनकांशस से पैदा होने वाली चीजें हैं। यह हम सब जानते ही हैं। इसके लिए एक-दूसरे की भाषा, एक-दूसरे की संस्कृति, एक-दूसरे की सभ्यता, एक-दूसरे के सिद्धांतों से परिचित होने की कोई जरूरत नहीं है।
इसलिए दुनिया के सारे धर्मों के जो प्रतीक हैं, वह सब समान हैं। कई बात में तो इतनी हैरानी की समानता है कि कहना मुश्किल है। जैसे "ओम" की ध्वनि है वह कलेक्टिव अनकांशस से पैदा होती है। इसलिए "ओम" की ध्वनि सारी दुनिया के धर्मों में है, सिर्फ थोड़े बहुत हेर-फेर हैं, वह समझने के हेर-फेर हैं। हिंदुओं ने उसे पकड़ा है "ओम" की तरह। यह हमारे पकड़ने की बात है, क्योंकि पकड़ेगा तो हमारा चेतन मन। तो हमने "ओम" की तरह पकड़ा है। यहूदियों

ने, ईसाइयों ने, "ओमीन" की तरह पकड़ा है। वह "ओम" का ही उनका रूपांतरण है। इसलिए आज भी प्रार्थना के बाद वह कहेंगे, आमीन। वह ओमीन; "ओम" ओमीन उससे निर्मित हुआ है। अंग्रेजी के शब्द हैं, ओमनीसायंट, ओमनीप्रजेंट, वह सब "ओम" से बने हुए हैं। लेकिन वह निकले हैं बहुत गहरे से। वह संस्कृत से नहीं गये हैं। जैसा कि संस्कृत के ज्ञाताओं को ख्याल होता है कि दुनिया की सारी भाषाएं संस्कृत से पैदा हो गयीं। ऐसा नहीं है। दुनिया की भाषाओं में जो समानता है वह कलेक्टिव अनकांशस की समानता है, दुनिया की भाषाएं किसी एक भाषा से पैदा नहीं हो गयीं।
हमारा एक तल है मन का जो हम सबका इकट्ठा है, जैसे सागर के ऊपर लहरें अलग-अलग हैं; लेकिन नीचे सागर इकट्ठा है। ऐसे लहरों की तरह हम अलग-अलग हैं, लेकिन और गहरे, और गहरे सब इकट्ठा है। वह जो इकट्ठापन है उसकी अपनी क्रियाएं हैं, जिसको कबीर ने अनाहत नाद कहा है। हम एक तरह का नाद जानते हैं, चोट से पैदा होने वाला नाद। अगर मैं ताली बजाऊं तो एक नाद पैदा होगा, लेकिन दो तालियां टकरायेंगी तब। अगर मैं तबले पर चोट मारूं तो आवाज गूंजेगी, लेकिन चोट मारूंगा तब। इसको कहेंगे, आहत नाद। चोट से पैदा हुआ, आहत, चोट खाकर पैदा हुई ध्वनि। कलेक्टिव अनकांशस में ऐसी ध्वनियां हैं, जहां चोट नहीं होती और ध्वनियां हैं। इसलिए उनको अनाहत नाद कहा है। बिना चोट किये पैदा हुई ध्वनियां, एक हाथ से बजाई गयी ताली।
झेन फकीर जापान में अपने साधक से कहता है कि एक हाथ से अगर ताली बजाई जाये तो कैसे बजेगी? इसका पता लगाकर आओ। बड़ा मुश्किल है। एक हाथ से ताली कहीं बज सकती है? एक हाथ से ताली कैसे बज सकती है? कभी वह टेबल पर बजाता है, कभी दीवाल पर बजाता है। और गुरु को आकर कहता है कि मैंने बजाई एक हाथ की ताली। और दीवाल पर बजा कर बताता है। गुरु कहता है, दीवाल दूसरा हाथ बन गयी, नहीं चलेगी। एक हाथ से ताली कैसे बजाई जा सकती है, उसका पता लगाकर आओ। वह तब तक पता नहीं लगा सकता जब तक कि वह अनाहत नाद में न उतर जाये। वह उसी में उतारने के लिए कह रहा है, एक हाथ की ताली कैसे बजती है, उसको खोजो। कलेक्टिव अनकांशस की जो क्रियाएं हैं अगर हम उनके प्रति जाग जायें तो
हम कास्मिक अनकांशस में उतर जाते हैं। तब हम ब्रह्म-अचेतन में उतर जाते हैं, जिसको इस मुल्क में प्रकृति कहा गया है। प्रकृति शब्द को समझ लेना उचित होगा। प्रकृति का मतलब होता है, जब सब बना उसके पहले भी जो था। कृति के भी जो पहले है--प्रिक्रियेशन। अगर अंग्रेजी में बनायें शब्द तो बनेगा प्रिक्रियेशन। सृष्टि के पहले से भी जो है। जिससे सब पैदा हुआ। जो पैदा होने के पहले भी था, उसको कहते हैं प्रकृति! वह जो कास्मिक अनकांशस है, वह प्रकृति है। उससे ही सब आया।
अब इसको ऐसा समझ लें। चेतन मन मेरा है, अचेतन मन भी मेरा है, लेकिन कलेक्टिव अनकांशस "हमारा" है, वह "मेरा" नहीं है। वह आपका नहीं है, वह हमारा है। कास्मिक अनकांशस हमारा भी नहीं है, सबका है। उसमें पत्थर भी सम्मिलित है। पक्षी भी सम्मिलित हैं। नदी भी सम्मिलित है। पहाड़ भी सम्मिलित हैं। वह प्रकृति है। वहां जो उतर जाये उसके आगे उतरने को नहीं रह जाता। वह बाटमलेस एबिस है। उसके नीचे फिर उतरने का कोई उपाय नहीं, वह शून्य खाई है। इसमें उतरने की प्रक्रिया है--अप्रमाद।
जहां आप हैं वहीं जागना शुरू करें। जिस दिन आप वहां जाग जायेंगे, आपको नीचे के दरवाजे की कुंजी मिल जायेगी। फिर वहां जागना शुरू करें। और नीचे की कुंजी मिल जायेगी। और एक दूसरी प्रक्रिया पूरे समय साथ चलेगी। जब तक आप चेतन में हैं, तब तक आप सुपर-कांशस में, अति-चेतन में नहीं जा सकते, ऊपर नहीं बढ़ सकते। आपकी जड़ों को अनकांशस में उतरना पड़ेगा। जिस दिन आपकी जड़ें अचेतन में उतर जायेंगी उसी दिन आपकी शाखाएं सुपर-कांशस में फैल जायेंगी। ऊपर उठ जायेंगी।
फ्रायड और जुंग, सुपर-कांशस में नहीं पहुंच पाते, क्योंकि वे अनुमान
कर रहे हैं। इसलिए वे अनकांशस, कलेक्टिव अनकांशस, इनकी तो बात करते हैं नीचे की, लेकिन ऊपर की उनके पास कोई कल्पना नहीं है।
लेकिन यह जगत सदा एक संतुलन है। यहां जितने नीचे जाने का उपाय है, उतने ही ऊपर जाने का उपाय है। असल में नीचे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, अगर ऊपर का अस्तित्व न हो। ऊपर का और नीचे का अस्तित्व एक साथ ही हो सकता

है। अगर बायां न हो तो दायां नहीं हो सकता है, कि हो सकता है? अगर दायां है तो बायां का अस्तित्व जरूर होगा, चाहे पता हो या न हो। क्या नीचे का अस्तित्व हो सकता है ऊपर के बिना? फिर उसे नीचे कैसे कहियेगा? नीचे का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता ऊपर के बिना। क्या दुख का अस्तित्व हो सकता है सुख के बिना? तो फिर उसे दुख कैसे कहियेगा? दुख का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता सुख के बिना।
जिंदगी सदा ही दोहरी है। जितना ऊपर है, उतना नीचे है। जो जो नीचे है वही वही ऊपर भी है। फर्क इतना ही है, नीचे अंडर-ग्राउंड है, अंधेरे में है; ऊपर खुले आकाश में, सूरज की रोशनी में है। जितना नीचे उतरेंगे उतना ही अंधेरा बढ़ता चला जायेगा। और कास्मिक अनकांशस है, प्रकृति है, वह पूर्ण अंधकार है, विराट अंधकार है, अंधकार ही अंधकार है। जितना ऊपर बढ़ियेगा उतना ही प्रकाश बढ़ता जायेगा और वह जो कास्मिक कांशस है, ब्रह्म है, वह पूर्ण प्रकाश है। प्रकाश ही प्रकाश है। लेकिन ऊपर जाने का रास्ता नीचे होकर जाता है। द पीक इज टु बी अचीव्ड वाया द एबिस, वह जो नीचे खाई है उसके द्वारा चोटी पर पहुंचा जाता है। यही सबसे बड़ी साधना की कठिनाई है। यही समझना सबसे ज्यादा कठिन हो जाता है कि ऊपर जाने के लिए नीचे जाना पड़ेगा।
हम सोचते हैं, सीधे ऊपर चले जायें। लेकिन सीधे हम ऊपर नहीं जा सकते। अगर हम सीधे ऊपर जायेंगे तो स्पेकुलेशन शुरू हो जायेगा। फिर हम ऊपर का दर्शन बना लेंगे। सुपर-कांशस, कलेक्टिव-कांशस, कास्मिक-कांशस, इसके हम सिद्धांत बना सकते हैं। लेकिन यह सिद्धांत सिर्फ सिद्धांत होंगे वैचारिक। जो सीधा ऊपर जायेगा वह फिलासफी में चला जायेगा। दर्शन में चला जायेगा। धर्म में नहीं जा सकेगा। जिसे धर्म के अनुभव में जाना है उसे पहले नीचे उतरना पड़ेगा।
यह बड़े मजे की बात है, जिसे संत होना हो उसे बहुत गहरे अर्थों में पापी होना पड़ता है। और जो व्यक्ति गहरे अर्थों में पापी होने से बच गया, वह गहरे अर्थों में संत नहीं हो सकता। यह लगती है बहुत अजीब-सी बात, लेकिन यह ऐसा ही है, यह तथ्य है। इसका कोई उपाय नहीं। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि बड़े पापी एकदम से बड़े संत हो जाते हैं। और छोटे पापी छोटे ही पापी बने रहते हैं। क्योंकि जो भी जगत में ट्रांसफार्मेशन हैं, रूपांतरण हैं, वे सदा गहराइयों से आते हैं। नीचे उतरना जरूरी है ऊपर जाने के लिए।
नीत्से का एक वचन आपसे कहूं। नीत्से ने कहा है कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो, उस वृक्ष को अपनी जड़ें पाताल तक पहुंचाने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। बहुत घबड़ाने वाली बात है नीचे उतरना, क्योंकि वहां अंधकार है। जब आप चेतन से अचेतन में उतरेंगे तो बहुत अंधकार में उतर जायेंगे। लेकिन जितने अंधकार में उतरने की आप हिम्मत जुटाते हैं, उतने प्रकाश के अधिकारी और पात्र हो जाते हैं। पात्रता आती है अंधेरे में उतरने से। साहस आता है अंधेरे में उतरने से। योग्यता आती है अंधेरे में उतरने से।
इसलिए ऊपर की फिक्र छोड़ दें, नीचे की फिक्र करें और एक-एक कदम पर प्रमाद को तोड़ते चले जायें। कहां से शुरू करेंगे? शुरू सदा वहीं से करना पड़ता है, जहां आप हैं। आप जिस मंजिल में हैं उस मंजिल का नाम चेतन है। उस चेतन मंजिल की क्रियाओं को आप प्रमाद छोड़कर करना शुरू कर दें।
बुद्ध के पास आनंद वर्षों तक रहा। एक दिन उसने पूछा कि बड़ी मुसीबत मालूम पड़ती है। कभी-कभी रात को मुझे नींद नहीं आती तो मैं आपको देखता रहता हूं। आप जिस करवट सोते हैं उसी करवट सोये रहते हैं, हाथ भी नहीं हिलाते, पैर भी नहीं बदलते। जिस आसन में, जिस अवस्था में सांझ सिर रखते हैं वैसा ही रात भर रखे रहते हैं। हैरानी होती है। मुझे तो बहुत करवट बदलनी पड़ती है। मुझे तो बहुत हाथ-पैर हिलाने पड़ते हैं। बुद्ध ने कहा, तुझे पता रहता है कि तू हाथ-पैर हिला रहा है, करवट बदल रहा है? आनंद ने कहा, कुछ पता नहीं रहता। सुबह पता चलता है कि जैसा सोया था वैसा नहीं सोया हूं। सिर कहीं था कहीं पहुंच गया। नींद में कैसे पता चल सकता है? बुद्ध ने कहा, मैं जानता हुआ सोता हूं, मैं जानता हुआ ही सोया रहता हूं। जहां हाथ रखा था वहीं हाथ रहता है, जब तक मैं न हटाऊं। हाथ अपने से हट जाये तो मेरी मालकियत गयी। फिर मैं मालिक नहीं रहा। तो आनंद ने कहा, क्या आप रात में भी जागे हुए सोते हैं?

बुद्ध ने कहा, निश्चित ही। क्योंकि मैं दिन में जागा हुआ जागता हूं इसलिए रात में जागे हुए सोने का अधिकारी हो गया हूं।
जब तक आप दिन में सोये हुए जागेंगे तब तक तो संभावना नहीं है कि आप जागे हुए सो सकें। जब जागने में सोये रहते हैं तो सोने में तो सोये ही रहेंगे।
जागने में जागना शुरू करना पड़ेगा, वहीं से प्रमाद तोड़ें। महावीर अपने भिक्षुओं को निरंतर कहते थे, विवेक से उठो, विवेक से चलो, विवेक से बैठो। इसका मतलब क्या था? शायद उनके अनेक साधु यही समझते हैं कि... । विवेक से उठने का मतलब, विवेक से बैठने का मतलब जो महावीर के साधुओं ने समझा है, वह महावीर का ख्याल नहीं है। महावीर के साधु समझते हैं, "विवेक से चलो"--इसका मतलब है कि किसी के बिछाये हुए बिस्तर पर पैर मत रखना, किसी के बिछाये हुए गलीचे पर मत चलना, सूखी जमीन में चलना, गीली जमीन में मत चलना। "विवेक से खाओ", तो साधु महावीर का हजारों साल से समझ रहा है कि यह खाना और यह मत खाना। विवेक का मतलब लोगों ने समझा है, डिस्क्रिमिनेशन। विवेक का यह मतलब नहीं है महावीर का।
महावीर का विवेक से मतलब है, होश। महावीर का विवेक से मतलब है, अवेयरनेस, डिस्क्रिमिनेशन नहीं। क्योंकि जहां अवेयरनेस है वहां तो डिस्क्रिमिनेशन अपने-आप आ जाता है छाया की तरह। लेकिन जहां डिस्क्रिमिनेशन है वहां अवेयरनेस का आना कोई जरूरी नहीं है।
महावीर कहते हैं, विवेक से चलो। उसका मतलब है, जानते हुए चलो, होश से चलो कि तुम चल रहे हो। अब इस होश में ये सब आ जायेगा। जो गलत है वह नहीं होगा, क्योंकि होशपूर्वक किसी ने कभी कोई गलत काम नहीं किया, कर नहीं सकता। होशपूर्वक जो भी किया जाता है वह सदा ठीक है। होशपूर्वक पुण्य ही किया जा सकता है, होशपूर्वक पाप नहीं किया जा सकता।
इसलिए महावीर जब कहते हैं, होशपूर्वक खाओ, तो उसका मतलब यह नहीं कि यह खाओ और यह मत खाओ। उसका मतलब है, होशपूर्वक खाओ। खाने की क्रिया होशपूर्वक हो। उसमें यह तो आ ही जाता है, क्या छोड़ो क्या न छोड़ो। वह छूट ही जायेगा। उसे छोड़ने के लिए अलग से व्यवस्था, अलग से नियम बनाने की जरूरत नहीं है। और जो आदमी अलग से नियम बनाता है, वह बता रहा है कि उसका होश अभी नहीं जगा। मैं जाकर कसम खाता हूं मंदिर में कि मैं दरवाजे से ही निकलूंगा, कभी दीवाल से नहीं निकलूंगा। तो लोग कहेंगे, आप अंधे तो नहीं हैं? क्योंकि यह कसम सिर्फ अंधे ही खा सकते हैं। और ध्यान रहे, अंधा कितनी ही कसम खाये, कभी- न-कभी दीवाल से टकरायेगा ही। अंधे के बस के बाहर है कसम को पूरा करना। और आंख वाला आदमी कभी कसम नहीं खाता कि मैं दरवाजे से निकलूंगा दीवाल से न निकलूंगा। आंख वाला आदमी दरवाजे से निकलता है और दीवाल से नहीं निकलता। क्योंकि आंख होने का मतलब यह है कि वह बताती है कि दीवाल से सिर फूट जायेगा और दरवाजे से रास्ता है। दीवाल से रास्ता नहीं है।
जो विवेक से जीता है वह गलत को नहीं करता, और गलत नहीं करने की कसम भी कभी नहीं खाता। और जो आदमी गलत को न करने की कसम खाता हो तो जान लेना कि उसे विवेक का अभी कोई पता नहीं चला, वह अंधा आदमी है। व्रत सिर्फ अंधे लेते हैं। आंख वाले लोग व्रत नहीं लेते। आंख वाले लोग जिस ढंग से जीते हैं, वह व्रत है! व्रत लिया नहीं जाता। लेकिन हम सब मंदिरों में व्रत ले रहे हैं। हम कसमें खा रहे हैं कि मैं एक साल ऐसा करूंगा, ऐसा नहीं करूंगा। ऐसा खाऊंगा ऐसा नहीं खाऊंगा, ऐसा नहीं पीऊंगा। इसका मतलब यह है कि आपका चित्त तो पीना चाहता है, आपका चित्त तो खाना चाहता है, उस चित्त को रोकने के लिए आप उल्टी कसम खा रहे हैं। मंदिर में खा रहे हैं जिसमें कि भगवान का थोड़ा डर रहे। लोगों के सामने खा रहे हैं कि लोग जरा देखते रहें कि तुमने कहा था सिगरेट नहीं पीऊंगा, अब तुम पी रहे हो। साधु के सामने कसम खा रहे हैं तो जरा भय रहे कि साधु को वचन दिया है तो पूरा करें। लेकिन एक बात पक्की है कि सिगरेट पीने की इच्छा भीतर मौजूद है। वह आदमी होश में नहीं है, इसलिए वह कसम खा रहा है।
कसम किसके खिलाफ खाई जाती है? अपने खिलाफ! और अपने खिलाफ खाई गयी कसमों को पालना बहुत मुश्किल है। और अगर पाल भी ली जायें तो भी उससे कोई

हित नहीं है। सिर्फ डैडनिंग, सिर्फ व्यक्तित्व की संवेदना क्षीण होती है और कुछ भी नहीं होता।
नहीं, महावीर जब कहते हैं, "विवेक से चलो", तो उसका मतलब है चलने की क्रिया होशपूर्वक हो, अप्रमादी हो। प्रमाद में न हो, मूर्च्छित न हो। पैर उठे तो जानो कि उठा। जमीन पर गिरे तो जानो कि गिरा। सिर घूमे तो जानो कि घूमा। बैठ रहे हो तो जानो कि बैठ रहे हो। कोई भी क्रिया बेहोशी में न हो जाये।
इसलिए महावीर से जब किसी ने पूछा कि आप साधु किसको कहते हैं? तो महावीर ने यह नहीं कहा कि जो मुंह पर पट्टी बांधता हो उसको मैं साधु कहता हूं। अगर महावीर ऐसा कहते तो दो कौड़ी के आदमी हो जाते! मुंह-पट्टी की जितनी कीमत है उतनी ही कीमत होती! महावीर ने ऐसा नहीं कहा कि जो नंगा रहता है उसे मैं साधु कहता हूं। अगर वह ऐसा कहते तो बड़े ना-समझ सिद्ध होते और जो जानने वाले थे, वह अनादि-अनंत समय तक उन पर हंसते। नहीं, महावीर ने जो जवाब दिया बहुत अदभुत था। महावीर ने कहा, जो जागा हुआ है उसे मैं साधु कहता हूं, "असुत्ता मुनि"। जो सोया हुआ नहीं है, उसे मैं मुनि कहता हूं। बड़ी अदभुत परिभाषा महावीर ने दी--जो सोया हुआ नहीं, असुत्ता मुनि, नहीं सोया है जो, उसे मैं साधु कहता हूं। पूछने वालों ने पूछा कि आप असाधु किसे कहते हैं? महावीर को कहना चाहिए था कि जो शराब पीता है। लेकिन ऐसा लगता है, महावीर का शराबखानों से कोई संबंध नहीं था। जिनका शराबखानों से संबंध होता है, वह यही समझाये चले जाते हैं कि जो शराब नहीं पीता, मांस नहीं खाता। महावीर का दिखता है किसी बूचरखाने से कोई संबंध नहीं था। जिनका होता है वह यही समझाये चले जाते हैं कि जो मांस नहीं खाता है वह साधु, सिगरेट नहीं पीता है वह साधु। यह करता है, यह नहीं करता। महावीर ने कहा, "सुत्ता अमुनि", जो सोया हुआ जीता है वह असाधु है। बड़ी हिम्मत की, बड़ी गहरी, बड़ी समझ की बात है। सिर्फ एक छोटे से सूत्र पर सब-कुछ निर्भर होता है। आप जाग कर जी रहे हैं या सो कर जी रहे हैं। अगर आप जाग कर जी रहे हैं, आपकी जिंदगी में साधुता उतर आयेगी। अगर आप सोकर जी रहे हैं, आपकी जिंदगी में असाधुता के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। आप सोये-सोये भी साधु बन सकते हैं, वह बना हुआ साधु होगा। और बने हुए साधु, असाधुओं से भी बदतर हालत में हो जाते हैं। क्योंकि उनको यह भ्रम पैदा हो जाता है कि वह साधु हैं। और जब असाधु को यह भ्रम पैदा हो जाये कि वह साधु है, तब जनम-जनम लग जायेंगे इस भ्रम से छूटने में। अप्रमाद साधना का सूत्र है। अप्रमाद साधना है। चार दिन जो बात मैंने आपसे की। अहिंसा--वह परिणाम है, हिंसा स्थिति है। अपरिग्रह--वह परिणाम है, परिग्रह स्थिति है। अचौर्य--वह परिणाम है, चोरी स्थिति है। अकाम--वह परिणाम है, कामवासना या कामना स्थिति है। इस स्थिति को परिणाम तक बदलने के बीच जो सूत्र है, वह है--अप्रमाद, अवेयरनेस, रिमेंबरिंग, स्मरण।
प्रत्येक क्रिया स्मरणपूर्वक हो और प्रत्येक क्रिया होशपूर्वक हो।
और एक भी क्रिया ऐसी न हो जो कि बेहोशी में हो रही हो। बस, आपकी धर्म-यात्रा शुरू हो जाती है। आप नीचे उतरने लगेंगे और सूत्र वही रहेगा। जब नीचे के दूसरे खंड में पहुंचेंगे तब उसकी क्रियाओं के प्रति फिर अप्रमाद। जब उसकी पूरी क्रियाओं के प्रति जाग जायेंगे तो और नीचे पहुंचेंगे उसके प्रति अप्रमाद। और जितने नीचे पहुंचेंगे उतने ऊपर पहुंचते चले जायेंगे। जिस दिन कोई अपने पाताल की आखिरी पर्त को छू लेता है, उसी दिन अपनी आत्मा की आखिरी अमृत की पर्त उसे उपलब्ध हो जाती है।
जायें पाताल में, ताकि पहुंच सकें मोक्ष में! उतरें गहरे, ताकि छू सकें ऊंचाई को! छुएं नरक को, ताकि उपलब्ध हो सके स्वर्ग! जायें अंधकार में गहरे और गहरे ताकि प्रकाश को पाने की पात्रता मिल सके। अप्रमाद से... और अप्रमाद के अतिरिक्त और किसी बात से यह संभव नहीं होता है। दुनिया में चाहे कहीं भी कुछ भी कहा गया हो, चाहे जिसने कुछ कहा हो--चाहे बुद्ध ने, चाहे महावीर ने, चाहे कृष्ण ने, वह सबका सब, अप्रमाद जैसे छोटे से शब्द में समा जाता है।
कृष्ण कहते हैं, नींद में भी जागो। जीसस कहते हैं, जागे रहो। क्योंकि पता नहीं वह कब आ जाये। ऐसा न हो कि तुम सोये रहो और वह आये परमात्मा, और तुम्हें सोया पाये और लौट जाये। जागो और प्रतीक्षा करो। बी अवेयर एंड

अवेटिंग। जीसस की सारी बातचीत इसी सूत्र पर घूमती है कि जागो और प्रतीक्षा करो। और महावीर की पूरी जिंदगी का प्रवचन एक ही बात को बार-बार दोहराता है--होशपूर्वक, विवेकपूर्वक, अप्रमाद से जीओ, मूर्च्छा में नहीं। दो-तीन सूत्र और अपनी बात मैं पूरी करूं। पहला सूत्र ठीक से समझ लेना
कि आप सोये हुए हैं। समझाने की कोशिश मत करना अपने को कि मैं सोया हुआ नहीं हूं। जस्टीफाई मत करना अपने को कि मैं सोया हुआ नहीं हूं। मन कहेगा कि मैं और सोया हुआ? दूसरे सोये हुए होंगे, मैं तो जागा हुआ आदमी हूं। मैं और सोया हुआ? शास्त्र पढ़ता हूं, सोये हुए कैसे पढ़ सकता हूं? आत्मा, परमात्मा है, ऐसा जानता हूं, सोये हुए कैसे जान सकता हूं? नहीं, मैं सोया हुआ नहीं हूं। दूसरे सोये हुए हैं। सोया हुआ आदमी सदा दूसरे सोये हुए पर टाल कर अपने को जागा हुआ मान लेता है। यह नींद को बचाने का उपाय है, यह सेफ्टी-मेजर है नींद का, और नींद के अपने उपाय हैं बचने के।
ध्यान रखना, नींद टूटने से बचना चाहती है। नींद सब तरह का इंतजाम करती
है कि टूट न जाये। अगर आप रात को भूखे सो गये हैं तो नींद भोजन देती है आपको, अपने को बचाने के लिए स्वप्न में। अगर स्वप्न में भोजन न मिले तो नींद टूट जायेगी। तो नींद इंतजाम करती है कि भोजन ले लो--झूठा सही, क्योंकि नींद झूठी चीजें दे सकती है। नींद सच्ची चीजें नहीं दे सकती। भूखे आदमी को स्वप्न में निमंत्रण दिलवा देती है नींद कि सम्राट के घर आज भोज है और आपको निमंत्रण मिला है। और जो आदमी ने अपनी जिंदगी में कभी न खाया वह नींद उसके सामने रख देती है। यह नींद अपने को बचा रही है। आपको पेशाब लगी है नींद में, तो नींद कहेगी बाथरूम में चले जाओ। नींद में ही चले जाओ, उठने की कोई जरूरत नहीं। उठने से नींद टूट जायेगी। आपने अलार्म रखा है चार बजे उठने का, अलार्म की घंटी बजती है। नींद कहती है, अलार्म की घंटी नहीं, मंदिर का घंटा बज रहा है, आराम से सो जाओ!
नींद अपने सेफ्टी-मेजर बनाये हुए है। नींद ने इंतजाम किया हुआ है कि टूट न जाये। तो आपके जागने में भी एक नींद का इंतजाम है। वह इंतजाम यह कि वह आपसे कहेगा, तुम तो जागे हुए हो बाकी लोग सोये हुए हैं। तुम इन्हें जगाने की कोशिश करो तो अच्छा, तुम तो जागे हुए ही हो। अगर आपका मन आपसे कहे कि जागे हुए ही हो तो नींद की इस सुरक्षा से बचना! इस धोखे में मत पड़ जाना। एक, जिस दिन पता चल जाये कि मैं सोया हुआ हूं, एहसास हो जाये। और कल की कोई जरूरत नहीं, अभी, यहीं, एहसास हो सकता है कि आप सोये हुए हैं। तो फिर जागने का उपाय शुरू करना। छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना और जो गहरी क्रियाएं हैं उनका अभिनय करके जागने की कोशिश करना।

अगर संकल्पपूर्वक नींद की तरकीबों से बचते हुए जागने का प्रयास किया जाये तो जो महावीर को संभव हुआ, जो बुद्ध को संभव हुआ, वह आपको भी संभव हो सकता है। पोटेंशियली, बीज रूप से, आपकी वही संभावना है जो किसी की भी है। आप भी वही हो सकते हैं जो जगत में कोई भी कभी हुआ है।
तो जागने की कोशिश करना और जागने की कोशिश जब गहरी हो जाये तो रुक मत जाना, अन्यथा दूसरे चरण पर नींद पकड़ लेगी। दूसरी मंजिल में ही रह जायेंगे। फिर वहां जागने की कोशिश करना। लंबी है यह यात्रा, असंभव नहीं। कठिन है यह यात्रा पर असंभव नहीं। और जो करता है वह कर ही पाता है। और नीचे-नीचे उतरते जाना, ऊपर की फिक्र छोड़ देना। ऊपर के फल अपने से आने लगेंगे। जितने आप नीचे उतरेंगे, उतने ऊपर फूल खिलने लगेंगे। उनकी सुगंध, उनका प्रकाश, उनका आनंद, झरने लगेगा। जैसे-जैसे नीचे जायेंगे वैसे-वैसे ऊपर जाने लगेंगे। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपनी गहराई से गहराई को छू लेता है, द अल्टीमेट डेप्थ, जिस दिन परम गहराई को छू लेता है, उसी दिन परम ऊंचाई को छू लेता है। और जिस दिन दोनों छू लेता है, उस दिन गहराई और ऊंचाई एक हो जाती है। दो नहीं रह जाती। उस दिन सब एक हो जाता है।
सात मंजिल का यह मकान जिस दिन पूरा जान लिया जाता है, उस दिन एक हो जाता है। उस दिन फिर इसमें सात मंजिलें भी नहीं रह जातीं। सब बीच के परदे गिर जाते हैं। दीवालें हट जाती हैं। और एक भवन रह जाता है। उस एक का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही मोक्ष का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही अद्वैत का अनुभव है! उस एक का अनुभव ही समाधि का अनुभव है!

इन पांच दिनों में यह थोड़ी-सी बातें मैंने आपसे कहीं। इसलिए नहीं कि मुझे कहने में कुछ मजा आता है, इसलिए नहीं कि आपको सुनने में थोड़ा मनोरंजन हो, बल्कि इसलिए कि शायद कहीं चोट लग जाये! वीणा का कोई तार आपके भीतर कंप जाये! और कोई यात्रा शुरू हो जाये।
अंत में परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप अपने को बिना जाने समाप्त न हो जायें। आपकी जानने की, आपकी खोजने की, स्वयं से पूरी तरह परिचित होने की, यात्रा शुरू हो। लेकिन अकेली परमात्मा से की गयी प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं हो सकता। आप से भी मैं प्रार्थना करता हूं कि परमात्मा को थोड़ा सहयोग दें कि आपकी यात्रा पूरी हो सके।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
शणमुखानंद हाल, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया छठवां प्रवचन

अहिंसा (प्रश्नोत्तर)

ओशो, शणमुखानंद हाल में हुए एक प्रवचन में आपने कहा है कि हिंसा- वृत्ति एक बीमारी है और उसे उसके समस्त रूपों में पहचान लेना अहिंसक होने की पहली शर्त है। तो कृपया हिंसा-वृत्ति के जीव-रासायनिक (बायोकेमिकल) तथा साइकिक संरचना पर प्रकाश डालें, ताकि हिंसा को हम अधिक गहराई से पहचान सकें।

मनुष्य के लिए हिंसा एक बीमारी है, लेकिन पशु के लिए नहीं। पशु के लिए हिंसा स्वभाव है। पशु के तल पर अहिंसा की कोई संभावना नहीं है, इसलिए हिंसा का उसे कोई बोध भी नहीं है। हिंसा पशु के लिए स्वाभाविक है--अहिंसा असंभव है। मनुष्य के लिए हिंसा पशु से मिला हुआ संस्कार है। लेकिन उसकी विकसित चेतना के लिए रोकने वाली बीमारी है। चेतना जैसे ही विकसित होती है, वैसे ही उसका अतीत भी उसके लिए जंजीरें बन जाता है। जो विकासमान है, उसके लिए रोज ही उसका "कल" बंधन बन जाता है।
इसलिए जिसे विकास करना है, उसे रोज अपने कल को तोड़कर आगे बढ़ जाना पड़ता है। जो अपने अतीत को मिटाने के लिए राजी नहीं है, वह विकसित होने से इनकार कर रहा है। मैं जो कल था, अगर आज भी वही रहूं तो मेरा आज व्यर्थ गया। और यदि मुझे आज विकसित होना है, तो मेरे लिए कल के पार जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है; द पास्ट मस्ट बी ट्रांसेंडेड। वह जो अतीत है, उसे अतिक्रमण करना ही होगा। अतीत का अतिक्रमण ही विकास है।
मनुष्य का अतीत है, उसकी पशुता; उसका भविष्य है, उसका परमात्मा होना। लेकिन जो पशु को अतिक्रमण न कर पाये, तो वह परमात्मा के मंदिर में प्रवेश भी नहीं कर सकता। और जिसे भविष्य को उपलब्ध करना है, उसे रोज अतीत के प्रति मरना होता है--डाइंग टु द पास्ट। और जो अतीत के प्रति नहीं मर पाता है, वह रुग्ण हो जाता है, वह बीमार हो जाता है। वह रुग्णता वैसी ही है, जैसे एक छोटे बच्चे को पहनाये गये कपड़े, और वह बच्चा जवान होने पर भी उन कपड़ों को शरीर से उतारने से इनकार करे, तो शरीर रुग्ण हो जाये! शरीर के विकसित होने के साथ ही साथ कपड़ों की बदलाहट जरूरी है। बच्चे के कपड़े बच्चे के लिए स्वाभाविक, युवा के लिए अस्वाभाविक, पीड़ादायी कारागृह बन जाते हैं। बच्चे की वे रक्षा करते रहे होंगे, जवानों के लिए उन कपड़ों से ही अपनी रक्षा करनी जरूरी हो जाती है।
पशुता मनुष्य का अतीत है। हम सभी उस यात्रा से गुजरे हैं जहां हम पशु थे। वैज्ञानिक भी कहते हैं, और जो आध्यात्मिक हैं, वे भी कहते हैं। डार्विन ने तो अभी-अभी थोड़े ही समय पहले ही घोषणा की कि मनुष्य पशु से आया है। लेकिन महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने तो हजारों वर्ष पहले यह घोषणा की थी कि मनुष्य की आत्मा पशु से विकसित हुई है। मनुष्य की पिछली कड़ी पशु की थी। और अगली कड़ी पर कदम रखने के पहले उसे पिछली कड़ी को तोड़ देना पड़ेगा। मनुष्य एक संक्रमण है; एक बीज का सेतु है--जहां से पशु परमात्मा में संक्रमित और रूपांतरित होता है। लेकिन अतीत बहुत वजनी होता है, क्योंकि परिचित होता है। उससे छूटना इतना आसान नहीं है। उससे मुक्त होना इतना आसान नहीं है। क्योंकि ऐसा मालूम होने लगता है कि हमारा अतीत ही हम हैं। लाखों साल बीत गये जब कभी आदमी गुहा- मानव था, पहाड़ों की कंदराओं में रहता था--जहां न आग थी, न रोशनी का कोई उपाय था--उस वक्त रात के अंधकार से जो भय मनुष्य के मन में समा गया था, वह आज भी उसका पीछा कर रहा है।
अब, न आज अंधकार से कोई भय है, न अंधकार किसी गुहा के बाहर घिरा है, न अंधकार में जंगली पशु आदमियों पर हमला करेंगे। लेकिन अंधकार अभी भी भय का कारण है! लाखों-लाखों वर्ष पहले मनुष्य के मस्तिष्क ने अंधकार से जो भय का संस्कार अर्जित किया था, वह पीछा नहीं छोड़ रहा है, वह उसके साथ ही जुड़ा हुआ है। यह उदारहण के लिए मैंने कहा।

हिंसा भी मनुष्य का पशु जीवन में ग्रहण किया गया संस्कार है। पशु जी नहीं सकता बिना हिंसा के और हम हिंसा के साथ न जी सकेंगे। पशु नहीं जी सकता बिना हिंसा के और आदमी पैदा ही नहीं होता हिंसा के साथ। इसलिए आदमी दस हजार साल से सिवाय लड़ने के और कुछ भी नहीं कर रहा है; जी नहीं रहा है, सिर्फ लड़ रहा है। अगर हम ऐसा कहें कि आदमी सिर्फ लड़ने के लिए ही जी रहा है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।
पिछले तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध लड़े गए। और ये युद्ध तो बड़े पैमाने की बात है, चौबीस घंटे भी हम लड़ रहे हैं। चौबीस घंटों में ऐसे क्षण खोजने कठिन हैं, जब हम किसी तरह की लड़ाई में संलग्न न हों। कभी हम धन के लिए लड़ रहे हैं। कभी हम यश के लिए लड़ रहे हैं। कभी हम पद के लिए लड़ रहे हैं। कभी हम शत्रुओं से लड़ रहे हैं। कभी मित्रों से लड़ रहे हैं। और हमारी लड़ाई राजनीति बन जाती है। और कभी हम धन के लिए लड़ रहे हैं और हमारी लोलुपता शोषण बन जाती है। और कभी हम अकारण भी लड़ रहे हैं, क्योंकि लड़ने की वह जो आदत है, वह मांग करती है कि लड़ो।
एक आदमी शिकार करने जा रहा है, वह अकारण लड़ रहा है। खेल में लड़ रहा है। अगर कुछ न हो तो हम ऐसे खेल विकसित करेंगे, जिनसे लड़ने की वृत्ति तृप्त हो। हमारे सब खेल लड़ने के मिनिएचर हैं, वह लड़ने के छोटे-छोटे रूप हैं। खेल हमारी लड़ाइयां हैं--व्यर्थ की लड़ाइयां। जहां कोई कारण नहीं है। और जब लड़ने के लिए कोई कारण न मिले, तो भी हम अकारण लड़ना चाहेंगे। अगर युद्ध में न लड़ सकें, तो शतरंज की गोटियां बिठाकर युद्ध करना चाहेंगे। शतरंज में भी तलवारें खिच जाती हैं, तो बहुत आश्चर्य नहीं है। शतरंज भी, बहुत गहरे में दूसरे को हराने की आकांक्षा है, और दूसरों से लड़ने का रस है।
हमारे सारे खेल युद्ध के रूप हैं। या तो ऐसा कहें कि हमारे सारे खेल युद्ध के रूप हैं या ऐसा भी कह सकते हैं कि युद्ध भी हमारा सबसे भयंकर खेल है। लेकिन आदमी लड़ रहा है। जिन्हें हम संबंध कहते हैं, रिलेशनशिप कहते हैं, वे भी हमारी लड़ाइयां हैं। पति और पत्नी को अगर कोई मंगल ग्रह का यात्री आकर चौबीस घंटे देखता रहे, तो वह यह न मान सकेगा कि ये दोनों आदमी साथ रहने के लिए राजी हुए हैं। वह इतना ही समझ पायेगा कि ये दोनों आदमी इस बात के लिए राजी हुए हैं कि हम चौबीस घंटे लड़ते रहेंगे। शायद जिसे हम परिवार कहते हैं, वह उन लोगों की संस्था है, जिन्होंने यह तय किया हुआ है कि लड़ेंगे भी और हटेंगे भी नहीं! दूर भी न होंगे!
जीवन चारों तरफ हिंसा है। यह हिंसा रोग है मनुष्य के लिए। यह हिंसा अब अनिवार्य नहीं है, पशु के लिए रही होगी।
और साथ में स्मरण रखें, जैसे ही विकास का नया चरण उठाया जाता है, नई जिम्मेदारियों और नए दायित्वों में भी चरण उठ जाता है। एवरी स्टेप आफ इवोल्यूशन इज ए स्टेप इन ग्रेटर रिस्पांसिबिलिटी। वह तो बड़े दायित्व में ले ही जायेगा। जिस दिन से पशु को छोड़कर मनुष्य मनुष्य हुआ है, उसी दिन से अहिंसा उसके दायित्व का हिस्सा हो गई। क्योंकि मनुष्य का फूल खिल ही नहीं सकता हिंसा के बीच, वह प्रेम के बीच ही उसका पूरा फूल खिल सकता है। इसलिए मैंने कहा कि अहिंसा स्वास्थ्य है, हिंसा रोग है। हिंसा से बड़ा शायद और कोई रोग नहीं है।
और हमारे हजार-हजार रोग शायद हिंसा से ही पैदा होते हैं। अगर पागलखाने में जायें तो सौ पागलों में से निन्यान्बे पागल सिर्फ इसलिए पागल हुए मिलेंगे कि साधारण रहकर हिंसा करनी उन्हें असंभव हो गई थी। हिंसा करने के लिए उन्हें पागल होने की स्वतंत्रता जरूरी थी; इसलिए पागल हो जाना पड़ा। अगर हम अपने मानसिक चिकित्सालयों में जायें और मानसिक चिकित्सकों से पूछें तो पता चलेगा कि वह भीतर इकट्ठी हुई हिंसा जब जोर से एक्सप्लोड हो जाती है, जब उसका विस्फोट होता है, तो मन के सारे तंतु बिखर जाते हैं और आदमी विक्षिप्त और रुग्ण हो जाता है।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो मानसिक रूप से बीमार न हो। मानसिक रूप
से जिन्हें हम नार्मल कहते हैं, स्वस्थ कहते हैं, उसका केवल मतलब इतना ही है--उसका मतलब स्वास्थ्य नहीं है--उसका इतना ही मतलब है कि वह नार्मल पागलपन है। उसका कुल मतलब इतना है कि उतने पागल बाकी लोग भी हैं। वह एवरेज पागलपन है। जिसको हम पागल कहते हैं, वह एबनार्मल है। वह जरा एवरेज से आगे

चला गया है। उसने जरा छलांग लगा ली है। शायद हम नब्बे डिग्री पर उबलते हुए पागल हैं, और जिन्हें हम पागल कहते हैं, वे सौ डिग्री पर भाप बन गए पागल हैं। हमारे उनके बीच गुण का कोई अंतर नहीं है, मात्रा का ही भेद है। पागलखानों में और पागलखानों के बाहर जो लोग हैं, उनके बीच कदमों का ही फासला है। बड़ी दीवालें हम कितनी ही उठायें पागलखानों के चारों तरफ, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। हमारे और पागलों के बीच बहुत ही थोड़े से कदमों का फासला है। और वह फासला भी ऐसा नहीं है, जिसकी तरफ हमारी पीठ हो। वह फासला ऐसा है, जिसकी तरफ हमारा मुंह है। और वह फासला भी ऐसा नहीं है कि हम खड़े हों। वह फासला भी ऐसा है कि हम प्रतिपल उसकी तरफ बढ़ रहे हैं और फासले को कम कर रहे हैं।
जो मनुष्य के मन को देखने में समर्थ हैं, वे कहते हैं कि शायद पूरी मनुष्यता धीरे-धीरे एक पागलखाना होती जा रही है। जिन्हें हम शरीर के रोग कहते हैं, वे भी नब्बे प्रतिशत से ज्यादा मन के रोगों से निर्मित होते हैं और शरीर तक फैलते हैं। और मन का बुनियादी रोग हिंसा है।
हिंसा का क्या मतलब है, वह मैं ख्याल दे दूं, तो यह रोग ख्याल में आ जाये।
हिंसा का मतलब है ऐसा चित्त, जो लड़ने को आतुर है; ऐसा चित्त, जिसका रस लड़ने में है; ऐसा चित्त, जो बिना लड़े बेचैन हो जाएगा; ऐसा चित्त, जो बिना किसी को चोट पहुंचाए, बिना किसी को दुख पहुंचाए सुख अनुभव न कर सकेगा। स्वभावतः जो चित्त दूसरे को दुख पहुंचाने को आतुर है, या जिस चित्त का दूसरे को दुख पहुंचाना ही एकमात्र सुख बन गया है, ऐसा चित्त सुखी नहीं हो सकता। ऐसा चित्त भीतर गहरे में दुखी होगा।
एक बहुत गहरा नियम है कि हम दूसरे को वही देते हैं जो हमारे पास होता है; अन्यथा हम दे भी नहीं सकते। जब मैं दूसरे को दुख देने को आतुर होता हूं, तो उसका इतना ही अर्थ है कि दुख मेरे भीतर भरा है और उसे मैं किसी पर उलीच देना चाहता हूं। जैसे, बादल जब पानी से भर जाते हैं, तो पानी को छोड़ देते हैं जमीन पर; ऐसे ही, जब हम दुख से भीतर भर जाते हैं, तो हम दूसरों पर दुख फेंकना शुरू कर देते हैं।
जो कांटे हम दूसरों को चुभाना चाहते हैं, उन्हें पहले अपनी आत्मा में जन्माना होता है; उन कांटों को हम लाएंगे कहां से? और जो पीड़ाएं हम दूसरों को देना चाहते हैं, उन्हें जन्म देने की प्रसव-पीड़ा बहुत पहले स्वयं को ही झेल लेनी पड़ती है। और जो अंधकार हम दूसरों के घरों तक पहुंचाना चाहते हैं, वह अपने दीये को बुझाए बिना पहुंचाना असंभव है।
अगर मेरा दीया जलता हो और मैं आपके घर अंधकार पहुंचाने जाऊं, तो उलटा
हो जायेगा--मेरे साथ आपके घर में रोशनी ही पहुंचेगी, अंधकार नहीं पहुंच सकता!
जो व्यक्ति हिंसा में उत्सुक है, उसने अपने साथ भी हिंसा कर ली है--वह
कर चुका है हिंसा। इसलिए एक सूत्र और आपसे कहना चाहूंगा, और वह यह कि हिंसा आत्महिंसा का विकास है। भीतर जब हम अपने साथ हिंसा कर रहे होते हैं, तब वही हिंसा ओवरफ्लो होकर, बाढ़ की तरह फैलकर, किनारे तोड़कर स्वयं से दूसरे तक पहुंच जाती है। इसलिए हिंसक कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता, भीतर अस्वस्थ होगा ही। उसके भीतर हार्मनी, सामंजस्य, संतुलन, संगीत नहीं हो सकता। उसके भीतर विसंगीत, द्वंद्व, कान्फ्लिक्ट, संघर्ष होगा ही। वह अनिवार्यता है। जो दूसरे के साथ हिंसा करना चाहता है, उसे अपने साथ बहुत पहले हिंसा कर ही लेनी पड़ेगी। वह पूर्व तैयारी है।
इसलिए, हिंसा मेरे लिए अंतर्द्वंद्व है। दूसरे पर फैलकर दूसरों का दुख बनती है और अपने भीतर जब उसका बीज अंकुरित होता है और फैलता है, तो स्वयं के लिए द्वंद्व और अंतर-संघर्ष, और अंतर-पीड़ा बनती है। हिंसा अंतर-संघर्ष, अंतर-असामंजस्य, अंतर- विग्रह, अंतर-कलह की स्थिति है। हिंसा दूसरे से बाद में लड़ती है, पहले स्वयं से ही लड़ती और बढ़ती है। प्रत्येक हिंसक व्यक्ति अपने से लड़ रहा है।
और जो अपने से लड़ रहा है, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ का अर्थ ही है, हार्मनी। स्वस्थ का अर्थ है, जो अपने भीतर एक समस्वरता को, एकरसता को, एक लयबद्धता को, एक रिदम को उपलब्ध हो गया है।

महावीर या बुद्ध के चेहरों पर संगीत की जो छाप है, वह वीणा लिए बैठे संगीतज्ञों के चेहरों पर भी नहीं है। वह महावीर के वीणा-रहित हाथों में है। वह संगीत किसी वीणा से पैदा होने वाला संगीत नहीं, वह भीतर की आत्मा से फैला हुआ समस्वरता का बाहर तक बिखर जाना है। बुद्ध के चलने में वह जो लयबद्धता है--वह जो बुद्ध के उठने और बैठने में--वह जो बुद्ध की आंखों में एक समस्वरता है, वह समस्वरता किन्हीं कड़ियों के बीच बंधे हुए गीत की नहीं, किन्हीं वाद्यों पर पैदा किये गये स्वरों की नहीं--वह आत्मा के भीतर से सब द्वंद्व के विसर्जन से उत्पन्न हुई है।
अहिंसा एक अंतर-संगीत है। और जब भीतर प्राण संगीत से भर जाते हैं, तो जीवन स्वास्थ्य से भर जाता है; और जब भीतर प्राण विसंगीत से भर जाते हैं, तो जीवन रुग्णता से, डिसीज से भर जाता है।
यह अंग्रेजी का शब्द "डिसीज" बहुत महत्वपूर्ण है। वह डिस ई.ज से बना है। जब भीतर विश्राम खो जाता है, ई.ज खो जाती है; जब भीतर सब संतुलन डगमगा जाते हैं, और सब लयें टूट जाती हैं, और काव्य की सब कड़ियां बिखर जाती हैं, और सितार के सब तार टूट जाते हैं, तब भीतर जो स्थिति होती है, वह डिसीज है। और जब भीतर कोई चित्त रुग्ण हो जाता है, तो शरीर बहुत दिन तक स्वस्थ नहीं रह सकता है। शरीर छाया की तरह प्राणों का अनुगमन करता है।
इसलिए मैंने कहा कि हिंसा एक रोग है, एक डिसीज है; और अहिंसा रोगमुक्ति है, और अहिंसा स्वास्थ्य है।
जैसे मैंने कहा, अंग्रेजी का शब्द डिसीज महत्वपूर्ण है, वैसा हिंदी
का शब्द "स्वास्थ्य" महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य का मतलब सिर्फ हेल्थ नहीं होता, जैसे डिसीज का मतलब सिर्फ बीमारी नहीं होती। स्वास्थ्य का मतलब होता हैः स्वयं में जो स्थित हो गया है। स्वयं में जो ठहर गया है। स्वयं में जो खड़ा हो गया है। स्वयं में जो लीन हो गया है और डूब गया है। स्वयं हो गया है जो। जो अपनी स्वयंता को उपलब्ध हो गया है। जहां अब कोई परता नहीं, कोई दूसरा नहीं कि जिससे संघर्ष भी हो सके; कोई भिन्न स्वर नहीं, सब स्वर स्वयं बन गए--ऐसी स्थिति का नाम "स्वास्थ्य" है।
अहिंसा इस अर्थ में स्वास्थ्य है, हिंसा रोग है।
और पूछा है कि बायोकेमिकली, जीव-रसायन की दृष्टि से मैं क्या कहना चाहूंगा।
जीव-रसायन की दृष्टि से भी, बायोकेमिकल दृष्टि से भी हिंसा रुग्णता है। जैसे ही चित्त हिंसा से भरता है, शरीर विषाक्त द्रव्यों से भर जाता है। जैसे ही चित्त हिंसा से भरता है, वैसे ही सारे शरीर में विषयुक्त द्रव्य दौड़ने शुरू हो जाते हैं। शरीर में ग्रंथियां हैं जो पाय.जन को इकट्ठा करती हैं, शरीर में ग्रंथियां हैं जो जहरों को अर्जित करके इकट्ठा रखती हैं, समय पर जरूरत पड़े, उसकी सुरक्षा में।
जब आप क्रोध से भरते हैं, तो आपके पास वही खून नहीं रह जाता, जो क्रोध
के पहले था। आपका खून पायजन्ड हो जाता है। आपके खून में वे गं्रथियां उन जहरों को छोड़ देती हैं, जो आपको लड़ने और मरने का पागलपन दे सकें। इसलिए क्रोध की हालत में आप इतना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं, जो आपने अक्रोध की हालत में कभी नहीं उठाया था--नहीं उठा सकते थे। क्रोध की स्थिति में आप अपने से ताकतवर आदमी को उठाकर फेंक सकते हैं, जो कि आप शांत स्थिति में कभी सोच भी नहीं सकते थे। आपके शरीर में केमिकल परिवर्तन हो गए। आपका शरीर वही नहीं है। शरीर ने इकट्ठे किए हुए विष छोड़ दिए खून में। अब आप होश में नहीं हैं। क्रोध टेम्पररी मैडनेस है। क्रोध अस्थायी पागलपन है। और इसलिए आदमी क्रोध में ऐसे काम कर लेता है, जो उसने स्वयं कभी भी न किए होते। इसलिए क्रोध में आदमियों ने हत्याएं की हैं और पीछे जीवन भर रोए हैं, पछताए हैं। और जिंदगी भर कहा है कि यह मैंने कैसे कर लिया? यह मेरे बावजूद हो गया। यह मैंने नहीं किया। यह कैसे हो गया?
क्रोध में हम सब ने वह किया है, जो हमने करना नहीं चाहा था। फिर वह किसने किया है? निश्चित किया हमने ही है, लेकिन वैसे ही किया है जैसे शराब पीकर कोई कर लेता है। लेकिन यह शराब हमारे खून में भीतरी स्रोतों से आती है, इसलिए पता नहीं चलता; शराब हम बाहर की बोतलों से ले जाते हैं तो पता चल जाता है, यह शराब भीतरी स्रोतों से आती है तो पता नहीं चलता।

मनुष्य के शरीर ने लाखों-करोड़ों वर्षों की यात्रा में विषग्रंथियां इकट्ठी की हैं जो कि इमरजेंसी के लिए जरूरी रही हैं; जब वह जानवर था, पशु था, तब बहुत जरूरी रही हैं। एक शेर हमला कर दे किसी पर, तो उसके पास दौड़ने की अमानवीय क्षमता तत्काल पैदा होनी चाहिए। ऐसा नहीं कि वह दौड़ने का अब अभ्यास करेगा, और दौड़ना सीखेगा, और तब भाग सकेगा। नहीं, यह इमरजेंसी है, तत्काल उसके शरीर में इतना पागलपन आ जाना चाहिए कि वह होश छोड़कर भाग सके। क्योंकि अगर होश रखा तो शायद बचना मुश्किल होगा। इसलिए शरीर ने लाखों वर्षों की यात्रा में विषग्रंथियां विकसित की हैं, जो कि इमरजेंसी की हालत में खून में तत्काल, आटोमेटिकली छूट जाती हैं, और आप विक्षिप्त होकर दौड़ सकते हैं।
भय में आदमी कांप रहा है। यह कंपन रासायनिक परिवर्तन है। काम की वृत्ति से पीड़ित हुए आदमी के भीतर अनेक तरह के रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। अगर जानवरों को काम की, सेक्स की उन्माद-स्थिति में देखें तो एक अनुभव होगा, जो कुछ मनुष्यों में अभी भी शेष है। उनके शरीर से विभिन्न प्रकार की दुर्गंधें या गंधें निकलनी शुरू हो जाती हैं। असल में पशु पहचानते ही तब हैं कि उनकी मादा तत्पर है संभोग के लिए, जब एक विशेष गंध उसके शरीर से निकलनी शुरू हो जाती है। संभोग के क्षण में मनुष्य के शरीर से भी, स्त्रियों के शरीर से भी विशेष गंधें निकलनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि शरीर एक रासायनिक परिवर्तन से गुजर रहा है।
मनुष्य के चित्त में जो होता है, तत्काल उसके शरीर की केमिस्ट्री उसका पीछा करती है। जब आप भोजन लेते हैं, तब आपका शरीर उन द्रव्यों को छोड़ देता है, जो भोजन के पचाने के लिए जरूरी हैं। और जब आप हिंसा से भरते हैं, तो शरीर उन द्रव्यों को छोड़ देता है, जो हिंसा करने में सहयोगी हो सकते हैं।
इसलिए हिंसा केवल मानसिक तथ्य नहीं है, बायोकेमिकल तथ्य भी है। लेकिन, रासायनिक तत्व भी है, जब मैं यह कहता हूं, तो मैं यह नहीं कहता हूं कि केवल रासायनिक तत्व है। वैसा कहनेवाले रसायनविद भी आज मौजूद हैं, जो कहते हैं कि अब आदमी को अहिंसा की शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं। हम कुछ ग्रंथियों को काटकर अलग कर देते हैं, फिर आदमी हिंसा करने में असमर्थ हो जायेगा! वे ठीक कहते हैं थोड़ी दूर तक; लेकिन वे जो सुझाव दे रहे हैं, वे हिंसा करने से भी खतरनाक सुझाव हैं। यह संभव है कि हम आदमियों की कुछ ग्रंथियों को काट दें!
हमने देखा है एक बैल को भी और एक सांड़ को भी। बैल और सांड़ में सिर्फ एक ग्रंथि के कट जाने के फर्क के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन कहां बैल की दीनता और कहां सांड़ का गौरव! बैल की आत्मा विकसित नहीं हुई, सिर्फ शरीर दीन हो गया है।
आदमी के शरीर से भी आज नहीं कल वैज्ञानिक उन ग्रंथियों को अलग करने का सुझाव देगा--दे रहा है--दिया जा चुका है; और कोई आश्चर्य नहीं है कि चीन और रूस की तानाशाही सरकारें उस सुझाव पर बहुत जल्दी अमल भी शुरू कर दें! आदमी के शरीर से भी कुछ ग्रंथियां काटी जा सकती हैं, तब वह हिंसा प्रकट नहीं कर सकेगा--लेकिन अहिंसक नहीं हो जायेगा। ये दोनों अलग बातें हैं। तब वह शरीर से सिर्फ दीन हो जायेगा। वह वैसा ही होगा, जैसे एक बूढ़ा आदमी कामवासना से तो पीड़ित होता है, लेकिन काम की दुनिया में प्रवेश करने में असमर्थ हो जाता है।
नहीं, वह आदमी का विकास नहीं होगा। और वैसा आदमी जिस दिन हम पैदा कर लेंगे, वैसा आदमी विद्रोह नहीं करेगा, बगावत नहीं करेगा। गुलामी उसकी आत्मा बन जायेगी। वह नान रिबेलियस हो जाएगा। सरकारें जरूर चाहेंगी कि आदमी को रासायनिक ढंग से गैर-हिंसक बनाया जा सके। बनाया जा सकता है; लेकिन उससे आदमी पशु से भी नीचे गिर जायेगा, आदमी से ऊपर नहीं जा सकता है।
इसलिए यह भी मैं आपसे कहना चाहूंगा इस संदर्भ में, कि आदमी को बहुत जल्दी सारी दुनिया में इसके खिलाफ भी आवाज उठानी पड़ेगी--कि जीव रसायनविद जो सुझाव दे रहे हैं, वे मनुष्य की आत्मा के बहुत विपरीत और खतरनाक हैं। उन सुझावों से ज्यादा बड़ी गुलामी न तो कभी आई थी न कभी आ सकती है।

एक बड़ी केमिकल-रिवोल्यूशन, एक रासायनिक-क्रांति निकट है। उसके प्राथमिक चरण पर काम होना शुरू हो गया है। मैं कहूंगा कि निश्चित ही हिंसा के लिए शरीर में कुछ तत्व जरूरी हैं। लेकिन उन तत्वों के अलग होने से आदमी की आत्मा अहिंसक नहीं होती, सिर्फ इंपोटेंटली वायलेंट रह जाती है; सिर्फ नपुंसक रूप से हिंसक रह जाती है। हिंसा तो भीतर घुमड़ेगी; आत्मा में डिसीज होगी; आत्मा संगीतरहित होगी, लेकिन उस संगीतरहितता को दूसरे तक पहुंचाने के लिए शरीर असमर्थ हो जायेगा। तब दूसरे तक पहुंचने की असमर्थता हो जायेगी। हम यह बल्ब तोड़ दे सकते हैं, लेकिन बल्ब के तोड़ने से उसमें बहनेवाली बिजली नहीं टूट जाती, लेकिन दिखाई पड़नी बंद हो जाती है। बल्ब से बिजली प्रकट होती है, पर बल्ब बिजली नहीं है। गं्रथियों से शरीर की हिंसा प्रकट होती है, पर गं्रथियां हिंसा नहीं हैं।
और दूसरा भी ख्याल ले लेना जरूरी है कि जब व्यक्ति के चित्त से हिंसा विदा हो जाती है, तो ये ग्रंथियां जिन्होंने हिंसा को सहयोग दिया था; ये ग्रंथियां जिनके विष और मादक- तत्व फैलकर मनुष्य को विक्षिप्त करते रहे थे; इनके संग्रहीत-स्रोत मनुष्य के जीवन में नई तरह की रासायनिक क्रांति लानी शुरू कर देते हैं।
महावीर के संबंध में कहा जाता है कि उनके पसीने से दुर्गंध नहीं आती थी। यह बात कहानी मालूम होगी। लेकिन बहुत अवैज्ञानिक बात नहीं है। यह संभव है। महावीर के शरीर से सुगंध आती रही हो, न आती रही हो; लेकिन आज नहीं कल मनुष्य के शरीर से सुगंध आ सकती है। क्योंकि जहां से भी दुर्गंध आ सकती है, वहां से सुगंध आ सकती है। सब सुगंधें, दुर्गंधों का रूपांतरण हैं--इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। खाद डाल देते हैं बगीचे में, और फूल सुगंधों से भर जाते हैं। और आज हजारों तरह की जो सुगंधें बाजार में बिकती हैं, अगर उनके बनाने के कारखाने में जायें तो पता चलेगा कि सुगंध, दुर्गंध का ही रूपांतरण है।
अगर शरीर दुर्गंध फेंक सकता है विशेष स्थितियों में, तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि विशेष स्थितियों में सुगंध क्यों नहीं फेंक सकेगा! मैं आपको कहता हूं कि महावीर की कथा, कथा नहीं है। शरीर ने सुगंध बहुत बार फेंकी है, आज भी फेंक सकता है। अगर चित्त पूरा रूपांतरित हो जाये और शरीर में इकट्ठे ये जो विषाक्त संग्रह हैं, अगर इनका उपयोग बंद हो जाये; ये बढ़ते चले जायें और इनका उपयोग बंद हो जाये, तो एक बड़ी मजे की घटना घटती है, क्वांटिटेटिव चेंज टर्न्स इनटू क्वालिटेटिव चेंज। जैसे ही परिमाण का अंतर पड़ता है, वैसे ही गुण का अंतर शुरू हो जाता है। निन्यान्बे डिग्री और सौ डिग्री में कोई फर्क नहीं है, सिर्फ मात्रा का फर्क है। लेकिन निन्यान्बे डिग्री तक पानी पानी होता है, सौ डिग्री पर भाप बन जाता है। फर्क क्वांटिटी का है, लेकिन अंततः क्वालिटी का हो जाता है।
सब क्वालिटेटिव चेंज, सब गुणात्मक परिवर्तन मूलतः मात्रा के परिवर्तन हैं। अगर शरीर में ये जो विषाक्त द्रव्य अब तक दुर्गंध फैलाने का काम करते रहे हैं, यदि एक मात्रा से ज्यादा मात्रा में इकट्ठे हो जायें, तो रूपांतरित हो जाते हैं, और शरीर से सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। अहिंसा की अपनी सुगंध है; हिंसा की अपनी दुर्गंध है। प्रेम की अपनी सुगंध है; काम की अपनी दुर्गंध है। सत्य की अपनी सुगंध है; असत्य की अपनी दुर्गंध है। इसलिए मैं बायोकेमिकली आदमी को अहिंसक बनाने के पक्ष में नहीं हूं। आध्यात्मिक अर्थों में मनुष्य अहिंसक बने, तो उसकी बायोलाजी भी और उसकी बाडी केमिस्ट्री भी रूपांतरित होती है और जिनसे सदा दुर्गंध मिली थी, उनसे सुगंध की सौरभ भी फैलनी शुरू हो जाती है।
एक और बात पूछी है। पूछा है कि साइकिक एनोटामी, मनस-संरचना की दृष्टि
से हिंसा को रोग कहने का क्या अर्थ हो सकता है?
मानसिक संरचना की दृष्टि से हिंसा, मन का खंड-खंड में टूट जाना है; डिसइंटीग्रेशन है। अहिंसा, इंटीग्रेशन है; मन का अखंड हो जाना है।
हमारे पास भी मन है, लेकिन शायद एक वचन में बोलना ठीक नहीं है। कहना चाहिए, हमारे पास मन हैं--मन है नहीं। हम पोली साइकिक हैं, यूनी साइकिक नहीं। हमारे पास एक मन नहीं है, हमारे पास बहु-मन हैं। एक-एक आदमी के पास बहुतेरे मन हैं।

साधारणतः हम सोचते हैं कि एक ही मन है हमारे पास, गलत सोचते हैं। अभी
तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जुंग कहता है और दूसरे मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं कि मनुष्य पोली साइकिक है, बहुचित्तवान है। लेकिन यह जानकर हैरानी होगी कि महावीर ने बहुचित्तता का पहली बार प्रयोग किया था पच्चीस सौ साल पहले। महावीर ने कहा था, मनुष्य बहुचित्तवान है, पोली साइकिक है।
एक चित्त नहीं है आदमी के भीतर, बहुत चित्त हैं। इसीलिए तो सांझ आप तय करते हैं कि कल क्रोध नहीं करूंगा और कल क्रोध करते हैं। आप सोचते हैं, मैं कैसा हूं? कल मैंने तय किया और आज फिर क्रोध करता हूं! संध्या पछताता हूं, सुबह फिर क्रोध करता हूं!
आदमी रोज नई-नई भूलें नहीं करता, वही-वही भूलें बार-बार करता है जिनके लिए हजार बार पछता चुका है, पश्चात्ताप कर चुका है। कारण क्या है? असल में, जो चित्त क्रोध करता है और जो चित्त निर्णय करता है, वे दो चित्त हैं। उन्हें एक दूसरे की खबर भी नहीं मिलती है। उनके बीच कम्यूनिकेशन भी नहीं है।
जब आप तय करते हैं कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा, तो यह चित का एक खंड है
जो तय कर रहा है। समझ लें "अ" तय कर रहा है, और कल सुबह जब उठकर पत्नी पर आप टूट पड़ते हैं, तो यह "ब" क्रोध कर रहा है। "ब" के हटते ही "अ" फिर लौट आता है और पश्चात्ताप करता है कि तय किया था, क्रोध नहीं करूंगा, फिर क्रोध क्यों किया? फिर सांझ को पैर पर जरा जूता लग जाता है किसी का, बस "ब" सामने आ जाता है और फिर क्रोध प्रगट करता है, "अ" पीछे हट जाता है। जैसे कि साइकिल के चक्के पर स्पोक ऊपर-नीचे घूमते रहते हैं, ऐसे ही प्रतिपल आपके भीतर चित्तों का परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि बहुत चित्त हैं आपके भीतर। गुरजिएफ कहा करता था कि मैंने एक ऐसे घर के संबंध में सुना है, जिसका मालिक कहीं दूर यात्रा पर गया था; बहुत बड़ा भवन था, बहुत नौकर थे। वर्षों बीत गए, मालिक की खबर नहीं मिली। मालिक लौटा भी नहीं, संदेश भी नहीं आया। धीरे-धीरे नौकर यह भूल ही गए कि कोई मालिक था भी। भूलना भी चाहते हैं नौकर कि कोई मालिक है, वे भी भूल गये! जब कभी कोई यात्री उस महल के सामने से गुजरता और कोई नौकर सामने मिल जाता, तो वह उससे पूछता, कौन है इस भवन का मालिक? तो वह नौकर कहता, मैं। लेकिन आस-पास के लोग बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि कभी द्वार पर कोई और मिलता और कभी कोई, बहुत नौकर थे और हरेक कहता कि मालिक मैं हूं। जब भी कोई पूछता कि कौन है मालिक इस भवन का? तो नौकर कहता, मैं। जो मिल जाता वही कहता, मैं। आस-पास के लोग बड़े चिंतित हुए कि कितने मालिक हैं इस भवन के!
फिर एक दिन गांव के सारे लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने पता लगाया, और सारे घर के नौकर इकट्ठे किये तो मालूम हुआ कि वहां कई मालिक थे। तब बड़ी कठिनाई खड़ी हुई, सभी नौकर लड़ने लगे। सभी कहने लगे, मालिक मैं हूं! और जब बात बहुत बढ़ गई तब किसी एक बूढ़े नौकर ने कहा, क्षमा करें, हम व्यर्थ विवाद में पड़े हैं। मालिक घर के बाहर गया है और हम सब नौकर हैं। मालिक लौटा नहीं बहुत दिन हो गए, और हम भूल गए। और अब कोई जरूरत भी नहीं रही याद रखने की, क्योंकि शायद वह कभी लौटेगा भी नहीं।
फिर मालिक एक दिन लौट आया। तो उस घर के पच्चीस मालिक तत्काल विदा हो गए--वे तत्काल नौकर हो गए!
गुरजिएफ कहा करता था, यह आदमी के चित्त की कहानी है।
जब तक भीतर की आत्मा जागती नहीं, तब तक चित्त का एक-एक टुकड़ा, एक-एक नौकर कहता है, मैं हूं मालिक। जब क्रोध करनेवाला टुकड़ा सामने होता है, तो वह कहता है, मैं हूं मालिक। और वह मालिक बन जाता है कुछ देर के लिए और पूरा शरीर उसके पीछे चलता है। शरीर को कुछ पता नहीं है। वह मालिक के पीछे चलता है। फिर पश्चात्ताप करने वाला आ जाता है और वह कहता है, मैं हूं मालिक। और तब शरीर रोता है। वही शरीर जिसने तलवार उठा ली थी, वही आंसू बहाता है। उसको कुछ भी पता नहीं, वह किसी भी मालिक का अनुगमन करता है। जो भी जोर से कहता है, आई एम द मास्टर--शरीर तत्काल उसके पीछे खड़ा हो जाता है। वही मन कहता है, ब्रह्मचर्य, तो शरीर कहता है, बड़ी पवित्र बात है, तैयार हूं। दूसरा खंड कहता है, भोग, तो मन कहता है, बिल्कुल राजी हूं। मैं तो मालिक के पीछे चलता हूं।

पोली-साइकिक है आदमी। साइकिक संरचना, उसकी जो मनस की संरचना है, वह कई खंडों की है। मन बहुत खंडों में बंटा है। और जब तक बंटा रहेगा, जब तक अखंड आत्मा बीच में जाग न जाये... हिंसा इन खंडों की आपस की लड़ाई है; इन नौकरों के सबके अपने दावों की, कि मैं मालिक हूं। ये अगर आमने-सामने पड़ जाते हैं तो मन बड़े द्वंद्व में पड़ जाता है। मन चौबीस घंटे लड़ता रहता है कि मालिक कौन है? और ये जो मन के लड़ते हुए खंड हैं, इनकी लड़ाई से जो द्वंद्व और जो पीड़ा और दुख पैदा होता है, वही आदमी दूसरों से भी लड़कर निपटाता रहता है।
यह बहुत मजे की बात है कि अक्सर हम अपनी लड़ाई को बाहर प्रोजेक्ट करते हैं, प्रक्षेप करते हैं! आपके भीतर एक चोर है। आप उस चोर से लड़ रहे हैं। आप उसको दबाए हुए हैं कि चोरी न करने देंगे। अगर आपके पड़ोस में चोरी हो जाये और चोर पकड़ लिया जाये, तो आप सबसे ज्यादा उस चोर की पिटाई करेंगे। क्योंकि आप अपने भीतर एक चोर को दबाए हुए हैं, जिसकी पिटाई आपने बहुत बार करनी चाही है, लेकिन कर नहीं पाये हैं। अब, जब एक चोर बाहर मिल गया है, तो आपके भीतर का चोर प्रोजेक्ट हो जायेगा और आप उसकी पिटाई करेंगे।
चोर की पिटाई के लिए चोर जरूरी है। कोई साधु चोर की पिटाई नहीं कर सकता है; क्योंकि प्रोजेक्शन का उपाय नहीं। इसलिए जितने चोर हैं, वे चोरों के खिलाफ दिन-रात बातचीत करते रहेंगे; जितने बदमाश हैं, वे बदमाशों की निंदा करते रहेंगे; जितने कामातुर हैं, वे काम की निंदा करते रहेंगे। जो भीतर भरा है, हम उसे बाहर प्रोजेक्ट करते हैं।
बर्टें्रड रसेल ने कहीं कहा है, कि जब कोई आदमी बहुत जोर से चिल्लाये
कि वह जा रहा है चोर, पकड़ो, पकड़ो, चोरी हो गई, बहुत बुरा हो गया, तो पहले उस आदमी को पकड़ लेना; क्योंकि यह आदमी आज नहीं तो कल चोरी करेगा।
हम अक्सर अपनी बीमारियों को, अपने चित्त के रोगों को दूसरे पर आरोपित
कर लेते हैं। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक आदमी किसी दूसरे आदमी की निंदा करता हो, तो जिसकी निंदा करता है उसके संबंध में बहुत कुछ नहीं बता पाता है, अपने संबंध में बहुत कुछ बता देता है। उसकी निंदा खबर देती है कि वह क्या प्रोजेक्ट कर रहा है। उसके भीतर कोई लड़ाई जारी है, जिस लड़ाई को वह किसी पर रोप देता है। अगर भीतर कोई लड़ाई जारी न रहे, तो बाहर रोपने का उपाय बंद हो जाता है। बाहर कोई उपाय नहीं है रोपने का।
मनुष्य का चित्त खंडित है। यह उसकी कुंठा का जन्म है। और मनुष्य का चित्त यदि अहिंसक होने लगे, तो अखंड होगा, एक हो जायेगा। और जब चित्त एक हो जाता है, उसमें जब भिन्न स्वर नहीं रह जाते हैं, तो मनुष्य के जीवन में जो आनंद का नृत्य शुरू होता है, जो आनंद की बांसुरी बजती है, उसी बांसुरी के रास्ते लोग परमात्मा तक पहुंच जाते हैं। किसी और रास्ते से न पहुंचे हैं, न पहुंच सकते हैं।

ओशो, इसी सिलसिले में आगे एक छोटा-सा प्रश्न है कि हिंसा की स्थिति में और अहिंसा की स्थिति में जीवन-ऊर्जा, लाइफ फोर्स की अवस्था में क्या फर्क हो जाता है?

पहाड़ों से बहता हुआ पानी भागता है नीचे की तरफ; खड्ड खोजता है, खाई खोजता है, झील खोजता है; पानी अधोगमन करता है, नीचे की तरफ भागता है। फिर यही पानी उत्तप्त होकर भाप बन जाता है। तब आकाश की तरफ दौड़ने लगता है। यही पानी ऊंचाइयां खोजने लगता है, बादलों की छातियों पर सवार होने लगता है, सूरज की यात्रा करने लगता है। पानी वही है, ऊर्जा वही है, एनर्जी वही है, लेकिन रूपांतरण हो गया, क्रांति घटित हो गयी।
हिंसक-चित्त खाई-खड्डे खोजता है, नीचे की तरफ बहता है। अहिंसक-चित्त वाष्पीभूत हो जाता है, पर्वत-शिखर खोजने लगता है, आकाश की यात्रा शुरू हो जाती है, ऊपर की उड़ान शुरू हो जाती है, सूर्य की यात्रा पर निकल जाता है, मोक्ष और परमात्मा की दिशा में उन्मुख हो जाता है।
हिंसक-चित्त सदा दूसरे को खोजता है; दूसरा ही खाई है, द अदर इज द एबिस। अहिंसक-चित्त अपने को खोजता है। स्वयं को खोजना ही ऊंचाई है। क्योंकि दूसरे को जब भी हम खोजेंगे, तभी हम नीचे की तरफ चल पड़े। जब भी हम दूसरे को खोजेंगे, तभी हम नीचे की तरफ चल चुके। क्यों? क्यों मैं कहता हूं कि दूसरा

ही खाई है, दूसरा ही अधोगमन है, दूसरा ही नर्क है? वह दूसरा ही क्यों नीचे की तरफ ले जाने का मार्ग है? क्यों? क्योंकि जब हम दूसरे को खोजते हैं, तो एक बात तो पक्की हो गयी कि अपने साथ कोई आनंद नहीं है, स्वयं के साथ कोई आनंद नहीं है।
आदमी जितना दुखी अपने साथ हो जाता है, उतना दुखी अपने दुश्मन के साथ
भी नहीं होता। आदमी जितना अपने से ऊब जाता है, उतना कितना ही बोरिंग आदमी हो, उसके साथ भी नहीं ऊबता। आदमी अपने साथ बिल्कुल राजी नहीं है, इसका अर्थ क्या है? कोई आदमी खुद को कम्पेनियन नहीं बनाना चाहता--यह बड़े मजे की बात है--और जब कोई दूसरा उसे कम्पेनियन नहीं बनाना चाहता, तो बड़ा दुखी होता है। हालांकि वह खुद रिजेक्ट कर चुका है अपने को! वह खुद कह चुका है कि अपने से दोस्ती नहीं चलेगी! आप घंटे भर भी अपने साथ अकेले में बैठने को राजी नहीं होते। अगर दिन भर अकेले में बैठना पड़े, तो घबड़ा जाते हैं कि आत्महत्या कर लेंगे, कि क्या कर लेंगे। अगर वर्ष भर अकेला रहना पड़े तो क्या जी सकेंगे? अपने साथ जीना बड़ा कठिन है। क्योंकि अपने साथ केवल वही जी सकता है, जो भीतर आनंद को उपलब्ध है। दूसरे के साथ जीने की आकांक्षा उसी की है, जो भीतर दुख से भरा है। और मैंने कहा कि हिंसा अंतर-दुख है, इसलिए हिंसक-चित्त सदा दूसरे को खोजता है; कभी मित्र के नाम से खोजता है, कभी शत्रु के नाम से खोजता है; लेकिन दूसरे को खोजता है। और इसमें भी बहुत देर नहीं लगती कि जो मित्र था वह शत्रु बन जाता है और जो शत्रु था वह मित्र बन जाता है। असल में किसी को शत्रु बनाना हो, तो उसे भी पहले मित्र तो बनाना ही पड़ता है। मित्र बनाये बिना तो शत्रु बनाना बहुत मुश्किल है--सिर्फ संबंधियों को छोड़कर। क्योंकि संबंधी पहले से ही शत्रु होते हैं! बाकी तो किसी को भी शत्रु बनाना हो, तो पहले मित्र बनाना पड़ता है।
आदमी दूसरे को खोज रहा है क्योंकि अपने से बचना चाहता है। इसलिए मैं कहता हूं, दूसरा खाई है। जो अपने से बचना चाहता है, वह किसी ऊंची यात्रा पर नहीं निकल सकेगा; क्योंकि जो अपने तक ही पहुंचने को राजी नहीं है, वह किस परमात्मा तक पहुंचने की हिम्मत जुटा सकता है? जो अपने ही शिखर छूने को राजी नहीं है, वह किस अस्तित्व के ऊंचे शिखरों की यात्रा पर निकल सकता है? इसलिए हम दूसरे को खोज रहे हैं। और जब भी हम दूसरे को खोज रहे हैं, तब हमसे हिंसा होगी ही।
एक तो उस आदमी का भी साथ है जो अपने साथ जीता है। वह भी दूसरों के साथ
जी सकता है, लेकिन दूसरों की उसे जरूरत नहीं है, दूसरे उसकी नेसेसिटी नहीं हैं, दूसरे उसकी अनिवार्यता नहीं हैं। दूसरे उसके पास हो सकते हैं, उसके आनंद में भागीदार बन सकते हैं, लेकिन वह दूसरों पर निर्भर नहीं है, वह कोई डिपेंडेंट नहीं है। दूसरे नहीं होंगे, तो भी वह इतने ही आनंद में होगा। अगर बुद्ध के पास कोई भी न जाये, तो बुद्ध के आनंद में कोई भी अंतर नहीं पड़ेगा। बुद्ध के पास लाखों लोग जायें, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा। लेकिन हमसे एक आदमी एक दिन मुंह फेर ले और न आये, तो बस एकदम हम नर्क में उतर जाते हैं। जिस आदमी की इतनी निर्भरता दूसरे पर हो, वह दूसरे के लिए जंजीरें बनायेगा--कहीं दूसरा फिर न जाये, मुड़ न जाये। वह दूसरे को बांधेगा। वह दूसरे के पैरों में बेड़ियां डालेगा; कभी पत्नी बनायेगा; कभी पति बनायेगा; कभी बेटा बनायेगा; कभी बाप बनायेगा; हजार तरह की बेड़ियों में दूसरे को कसेगा। और जब भी कोई दूसरे को बेड़ियों में कसेगा, तो हिंसा शुरू हो जायेगी। क्योंकि स्वतंत्र करती है अहिंसा; परतंत्र करती है हिंसा। हिंसा दूसरे को गुलाम बनाती है।
गुलामियां बहुत तरह की हैं। मीठी गुलामियां भी हैं, जो कि कड़वी गुलामियों से सदा बदतर होती हैं। क्योंकि कड़वी गुलामियों में एक आनेस्टी, एक सिंसियरिटी होती है, साफपन होता है! मीठी गुलामियां बड़ी खतरनाक होती हैं, शुगर कोटेड होती हैं; भीतर जहर ही होता है, ऊपर से शक्क्र चढ़ी होती है। हम अपने सारे संबंधों में शक्कर चढ़ाए हुए हैं, भीतर तो जहर ही है। जरा सी पर्त हटती है और जहर बाहर निकल आता है। फिर लीप-पोत कर, पर्त को ठीक करके किसी तरह काम चलाते रहते हैं।
लेकिन हमारा यह दूसरे को खोजना एक बात का पक्का सबूत है कि हम अपने साथ होने के आनंद को नहीं पा रहे हैं। फिर हिंसा शुरू होगी। और तब हम दूसरे

को खोजते हैं कि उसके बिना जी नहीं सकेंगे। जिसके बिना हम जी नहीं सकेंगे, उसे हम गुलाम बनायेंगे ही, उसे हम पजेस करेंगे ही, उसकी हम मालकियत करेंगे ही, हम उसके मालिक बनेंगे ही। और जिसके भी हम मालिक बनेंगे, उसे हम मिटायेंगे, उसे हम नष्ट करेंगे। क्योंकि मालकियत किसी भी तरह की हो, सब तरह की मालकियत मिटाती है और नष्ट करती है। मालकियत बहुत सटल वायलेंस है, मालकियत बहुत सटल मर्डर है। मालकियत जो है, वह हत्या है किसी की, बहुत धीमे-धीमे। सिकंदर भी गुलाम बनाकर मारता है, हिटलर भी गुलाम बनाकर मारता है। धर्मगुरु भी किसी को गुलाम बनाकर मार डाल सकता है। सब तरह की गुलामियां हैं।
जब भी हम दूसरे को जकड़ लेते हैं, और उसकी गर्दन को पकड़ लेते हैं, और उस
पर निर्भर हो जाते हैं, तभी हम उसकी गर्दन में पत्थर की तरह लटक जाते हैं। और यह लटकना नीचे की यात्रा है। इस यात्रा का कोई अंत नहीं है। यह फैलती जाएगी। एक से मन न भरेगा, दूसरा चाहिए, तीसरा चाहिए, हजार चाहिए। राजनीतिज्ञ को लाखों-करोड़ों चाहिए। जब तक वह राष्ट्रपति बन कर सारे मुल्क की गर्दन में न लटक जाये, तब तक उसको तृप्ति नहीं मिल सकती। सबकी गर्दन में लटक जाना चाहिए। सबके लिए वह पत्थर हो जाये बोझीला।
यह जो हमारा चित्त है, जो दूसरे को खोजता है, यह चित्त नीचे की तरफ जा रहा है। इसकी हिंसा बढ़ती चली जायेगी। यह अनेक रूप लेगा। इसके हजार चेहरे होंगे, हजार विधियां होंगी। लेकिन यह दूसरे को दबायेगा, सतायेगा, टार्चर करेगा।
टार्चर करने के बड़े अच्छे ढंग भी हो सकते हैं। बाप अपने बेटे को टार्चर कर सकता है, बेटा बाप को कर सकता है; मां अपने बेटे को कर सकती है, बेटा मां को कर सकता है। और मनस-शास्त्री कहते हैं कि आदमी अब भी कर वही रहा है; एक दूसरे को सता रहा है। लेकिन यह हमें ख्याल में नहीं आता।
यह तब तक जारी रहेगा, जब तक कि कोई आदमी अपने साथ आनंदित नहीं है, जब तक कोई आदमी अपने साथ होने को राजी नहीं है। जैसे ही कोई आदमी अपने साथ होने को राजी हुआ, उसकी यात्रा दूसरे से हटकर, बाहर से हटकर... क्योंकि दूसरा सदा बाहर है, द अदर इज आलवेज द आउटर, द अदर इज आलवेज द विदाउट। वह तो बाहर होगा ही। जब तक दूसरे की तरफ खोज जारी रहेगी--वह चाहे पत्नी की हो, चाहे प्रेमिका की, चाहे प्रेमी की और चाहे परमात्मा की--अगर परमात्मा को कोई दूसरे की तरह देख रहा है, तो उसमें हिंसा जारी रहेगी; उसमें हिंसा से मुक्ति नहीं हो सकती।
इसलिए महावीर ने बाहर के परमात्मा को इनकार कर दिया; क्योंकि महावीर
को लगा कि अगर गाड इज द अदर, तो हिंसा का रास्ता बन जायेगा। इसलिए बहुत कम लोग समझ पाए महावीर की इस बात को कि वे ईश्वर को क्यों इनकार कर रहे हैं। नासमझों ने समझा कि शायद नास्तिक हैं। नासमझों ने समझा कि शायद ईश्वर नहीं है, इसलिए।
महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है सिवा तुम्हारे। और उसका कुल कारण इतना है कि अगर कोई भी परमात्मा है--दूसरे की तरह, तो वह जो हिंसक-चित्त है, वह उस परमात्मा को भी बाहर जाने का और नीचे जाने का रास्ता बना लेगा। महावीर ने कहा, बाहर कोई परमात्मा ही नहीं है। चलो अपनी तरफ, भीतर। वह आत्मा ही परमात्मा है। और जैसे ही कोई भीतर गया, वैसे ही ऊंचाइयों के शिखर शुरू हुए।
भीतर बड़ी ऊंचाइयां हैं, बाहर बड़ी नीचाइयां हैं। भीतर बड़े गौरीशंकर के शिखर हैं, बाहर बड़े प्रशांत-महासागर की गहराइयां हैं। बाहर कोई उतरता जाये, तो अतल गहराइयों में गिरता जायेगा, जहां अंधकार होगा, जहां दुख होगा, जहां मृत्यु होगी, जहां पीड़ा होगी, जहां नर्क होगा। और कोई भीतर की तरफ बढ़े, स्वयं की तरफ, तो बड़ी ऊंचाइयां होंगी; कैलाश के शिखर होंगे; स्वर्ण-मंदिरों के शिखर होंगे; मुक्ति होगी, मोक्ष होगा, स्वर्ग होगा! वह भीतर की यात्रा है।
जीवन-ऊर्जा जब हिंसा बनती है, तो पतित होती है। और जीवन-ऊर्जा जब अहिंसा बनती है, तो ऊर्ध्वगमन करती है। वह लाइफ-एनर्जी तो एक ही है, जीवन-ऊर्जा तो वही है। कभी बाहर की तरफ जाती है, तो दुख देती है और दुख लाती है; और कभी भीतर की तरफ जाती है, तो सुख देती है और सुख लाती है।

किन्हीं भी क्षणों में, जब भी कभी आपने आनंद को जाना हो, तब आपने पाया होगा, आप एकदम अकेले हैं। किन्हीं भी क्षणों में, जब आनंद की पुलक आप में फैली हो, तब आपने पाया होगा, आप अपने भीतर हैं। किन्हीं भी क्षणों में, जब आनंद की वर्षा की एक बूंद भी आपके भीतर उस अमृत की टपकी हो, तब आपने पाया होगा, कोई नहीं, मैं ही हूं। और सब दुख सदा दूसरे से बंधे हुए पाए गये और सब सुख सदा स्वयं के भीतर ही पाए गये।
हां, ऐसे सुख हैं, जो दूसरों से मिलते हुए मालूम पड़ते हैं, पर मिलते कभी भी नहीं। ऐसे सुख हैं, जो वहम देते हैं कि दूसरों से मिलेंगे, लेकिन जब मिलते हैं, और आंख खुलती है, तो पता चलता है कि खोजा था सुख, पाया है दुख। ऐसे सुख हैं, जो बुलाते हैं दूसरों की तरफ से कि आओ, मैं यहां हूं, और जब हम पास पहुंचते हैं, तो पाया जाता है कि बुलाहट सुख की थी, लेकिन धोखा हो गया। जैसे राम स्वर्ण-मृग के पीछे चले गए थे। और सभी जानते हैं कि स्वर्ण-मृग कहीं होते नहीं। कम से कम राम को तो यह जानना ही चाहिए था कि स्वर्ण-मृग कहीं होते नहीं!
लेकिन वह कथा मीठी है। कथा अर्थपूर्ण है। हम सभी स्वर्ण-मृग के पीछे चले जाते हैं! सब जानते हैं कि नहीं होते हैं और चले जाते हैं। राम चले गए स्वर्ण-मृग को खोजने! कौन होगा पागल, जो राजी होगा कि सोने का और हिरण होगा! होगा कैसे? लेकिन राम भी चले जाते हैं! हमारे भीतर का राम भी चला जाता है! और तब आखिर में हम पाते हैं कि कुछ मिलता नहीं! क्योंकि स्वर्ण-मृग के पीछे जाकर कुछ मिल सकता है?
सुख स्वर्ण-मृग है। जब दूसरे से मिलता हुआ मालूम पड़े, तो समझना कि राम चले अब स्वर्ण-मृग को खोजने, अब सीता की चोरी होकर रहेगी। और जब आप दूसरे के पीछे खोजने चले जाते हैं, तो आपके भीतर की जो अंतरात्मा है--कहिए उसे सीता--उसकी चोरी हो जाती है। हो जाते हैं पतित। फिर लंबा युद्ध है। फिर रावण से संघर्ष है। फिर हत्याएं हैं, फिर खून है। वह एक स्वर्ण-मृग के पीछे जाने से राम की पूरे उपद्रव और हिंसा की दुनिया शुरू हुई। एक स्वर्ण-मृग से यात्रा शुरू हुई उपद्रव की, और फिर जब तक कि पूरी हिंसा नहीं हो गई तब तक वह चली। मेरी दृष्टि में यह एक प्रतीक कथा है, एक पैरेबल है।
हम भी, जब दूसरे में सुख देखकर भागते हैं, तब हम चले स्वर्ण-मृग के पीछे। तब पतन होगा ऊर्जा का। पतन हो गया उसी क्षण, जब हमने माना कि स्वर्ण के मृग होते हैं। पतन हो गया उसी क्षण, जब हमने माना कि दूसरा सुख दे सकेगा। पतन हो गया उसी क्षण, जब हमने माना कि बाहर सुख हो सकता है। और जिंदगी-भर का अनुभव है कि बाहर सिवाय दुख के कभी कुछ मिला नहीं। दूसरे से सिवाय दुख के सुख कब पाया है? हां, ख्याल में रहा है कि मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा; मिला कभी नहीं है। वह सदा भविष्य में लगता है कि मिलेगा। अतीत में लौटकर देखें, कब मिला है? किसने किसी दूसरे से सुख पाया है? सच तो यह है कि जिससे जितना सोचा था ज्यादा सुख मिलेगा, उससे उतना ज्यादा दुख ही मिला। इसलिए मां-बाप जिस लड़के का विवाह कर देते हैं, वह पत्नी से उतना दुख नहीं पाता, जितना वह लड़का पा लेता है जो प्रेम-विवाह करता है। प्रेम-विवाह के चट्टान से टकराने की संभावना ज्यादा हो गई, क्योंकि सुख की आकांक्षा ज्यादा हो गई। पोथी-पत्री देखकर जिसका विवाह किया गया, उसने सुख की कभी बहुत आकांक्षा ही नहीं बांधी। इसलिए नाव टकराने के उपाय जरा कम हैं। दुख तो मिलेगा, उसी मात्रा में मिलेगा, जितना पोथी-पत्री से, जन्म-कुंडली देखने से सुख की आशा बंधती होगी, उतना ही मिलेगा। उतना ही दुख मिलता है जीवन में, जितनी सुख की आशा हम बांधते हैं। ज्यादा सुख की आशा बांधनेवाले ज्यादा दुख से भर जाते हैं। जो सुख की आशा नहीं बांधता, उसे दुख देने का उपाय नहीं है।
जीवन-ऊर्जा जब दूसरे की तरफ बहती है, तो हिंसक है। और वह दुख की तरफ बहती है, नर्क की तरफ बहती है। हम सब अपने-अपने नर्क खोज रहे हैं। कुछ लोग कभी-कभी पीछे लौटकर स्वर्ग खोज लेते हैं। जीवन-ऊर्जा जब पीछे, अंदर की तरफ यात्रा करती है, तो ऊर्ध्वगामी है। वह एक ही ऊर्जा है।
जगत में शक्तियां भिन्न नहीं हैं, सिर्फ दिशाएं भिन्न हैं। जगत में शक्तियां अलग-अलग नहीं हैं, सिर्फ ऊर्ध्वगमन और अधोगमन के फासले हैं। आप नीचे उतर रहे हैं मंदिर की सीढ़ियों से, या ऊपर चढ़ रहे हैं मंदिर की सीढ़ियों

से? और यह भी हो सकता है कि एक ही सीढ़ी पर आप खड़े हैं और आपका चेहरा नीचे की तरफ है; और दूसरा आपका मित्र भी खड़ा है उसी सीढ़ी पर और उसका चेहरा ऊपर की तरफ है। तो उस एक ही सीढ़ी पर स्वर्ग और नर्क दोनों घटित हो जायेंगे। आपका पड़ोसी, जिसका चेहरा ऊपर की तरफ है, उसी सीढ़ी पर स्वर्ग में होगा। और आपका चेहरा, जिसका नीचे की तरफ है, उसी सीढ़ी पर, आन द सेम स्टेप, आप नर्क में होंगे।
ऐसे नर्क और स्वर्ग की कोई भौगोलिक अवस्थाएं नहीं हैं, चित्त के रुख किस तरफ देख रहे हैं, इस पर सब निर्भर करता है।
हिंसा अधोगमन है जीवन-ऊर्जा का, अहिंसा ऊर्ध्वगमन है।

ओशो, पिछले प्रवचन में आपने कहा था कि अहिंसा मनुष्य का स्वभाव है और हिंसा मनुष्य की निर्मित है। कृपया इसे पुनः स्पष्ट करेंगे और बताएंगे कि क्या हिंसा प्रकृति-प्रदत्त तथ्य नहीं है?

हिंसा प्रकृति-प्रदत्त तथ्य है, लेकिन मनुष्य का स्वभाव नहीं, पशु का स्वभाव है। और मनुष्य उस स्वभाव से गुजरा है, इसलिए पशु-जीवन के सारे अनुभव अपने साथ ले आया है। हिंसा ऐसे ही है, जैसे कोई आदमी राह से गुजरे और धूल के कण उसके शरीर पर छा जायें, और जब वह महल के भीतर प्रवेश करे, तब भी उन धूल-कणों को उतारने से इनकार कर दे। और कहे कि वे मेरे साथ ही आ रहे हैं; वह मैं ही हूं।
वे धूल-कण हैं, जो पशु की यात्रा पर, मनुष्य की आत्मा पर चिपक गए हैं, जुड़ गए हैं; स्वभाव नहीं है। पशु के लिए स्वभाव है, क्योंकि पशु के लिए कोई चुनाव ही नहीं है। मनुष्य के लिए स्वभाव नहीं है, क्योंकि मनुष्य के लिए चुनाव है।
असल में मनुष्यता शुरू होती है च्वायस से, चुनाव से। मनुष्य शुरू होता है निर्णय से, डिसीजन से। मनुष्य शुरू होता है संकल्प से। मनुष्य चौराहे पर खड़ा है, कोई पशु चौराहे पर नहीं खड़ा है। सब पशु वन डायमेंशनल रास्ते पर होते हैं; एक ही रास्ता होता है, जिसमें कोई चुनाव नहीं है। मनुष्य चौराहे पर खड़ा है। मनुष्य चाहे तो हिंसक हो सकता है, चाहे तो अहिंसक हो सकता है। यह स्वतंत्रता है उसकी। पशु की यह स्वतंत्रता नहीं है। पशु की यह मजबूरी है कि वह जो हो सकता है, वही है
यह भी समझने जैसा मजा है कि पशु वही है, जो हो सकता है। इसलिए पशु के स्वभाव में और पशु के तथ्य में कोई फर्क नहीं होता। पशु के भविष्य में और पशु के अतीत में कोई डिस्टेंस, कोई फासला नहीं होता। पशु के होने में और हो सकने की संभावना में, कोई फर्क नहीं होता। पशु जो हो सकता है, वह है। दैट व्हिच इज पॉसिबल, इज ऐक्चुअल। पशु की ऐक्चुअलिटी और पॉसिबिलिटी में कोई फर्क नहीं है। आदमी का मामला एकदम बदल गया। आदमी जो है, उससे भिन्न हो सकता है। आदमी की एक्चुअलिटी, उसकी पॉसिबिलिटी नहीं है। जो आदमी वास्तविक आज है, कल उससे और कुछ हो सकता है।
इसलिए किसी कुत्ते से हम नहीं कह सकते कि तुम कुछ कम कुत्ते हो; लेकिन आदमी से कह सकते हैं कि तुम कुछ कम आदमी मालूम पड़ते हो। किसी कुत्ते से यदि हम कहेंगे कि तुम कुछ कम कुत्ते हो, तो यह बिल्कुल एबसर्ड स्टेटमेंट होगा। इसका कोई मतलब नहीं होगा। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं। कमजोर हो सकते हैं, ताकतवर हो सकते हैं, बीमार हो सकते हैं, स्वस्थ हो सकते हैं-- लेकिन कुत्तेपन में कोई फर्क नहीं होगा।
लेकिन आदमियत की मात्राओं में फर्क है। किसी कृष्ण को हम नहीं कह सकते कि तुममें और हिटलर में आदमियत का कोई फर्क नहीं है। किसी बुद्ध को हम नहीं कह सकते कि तुममें और रावण में आदमियत का कोई फर्क नहीं है।
नहीं, किसी से कहना पड़ता है कि आदमियत बहुत कम मालूम पड़ती है। किसी से कहना पड़ता है, आदमियत इतनी ज्यादा है कि भगवान शब्द खोजना पड़ता है। जिन-जिन के लिए हमने भगवान शब्द खोजा, उसका कुल मतलब इतना है कि आदमियत इतनी ज्यादा थी कि आदमी कहना काफी नहीं मालूम पड़ा, ना काफी मालूम पड़ा।
आदमी जो है, वही सब-कुछ नहीं है, बहुत-कुछ हो सकता है। आदमी जो है, उसमें उसका अतीत, पशु की यात्रा उसमें जुड़ी है, वह हिंसा है। आदमी जो हो

सकता है, वह उसकी अहिंसा है। आदमी का स्वभाव वह है, जो जब वह अपनी पूर्णता में प्रगट हो, तब होगा। आदमी का तथ्य वह है, जो उसने अपनी यात्रा में अब तक अर्जित किया है।
इसलिए मैं कहता हूं, हिंसा अर्जित है, अहिंसा स्वभाव है। इसलिए हिंसा छोड़ी जा सकती है; अहिंसा सिर्फ पाई जा सकती है, छोड़ी नहीं जा सकती। यह फर्क भी समझ लेना जरूरी है। हिंसा छोड़ी जा सकती है, अहिंसा पाई जा सकती है। और अहिंसा अगर पा ली जाये, तो छोड़ना असंभव है। और आदमी कितना ही हिंसक हो जाये, छोड़ना सदा संभव है; क्योंकि वह स्वभाव नहीं है।
प्रत्येक पापी का भविष्य है; और प्रत्येक पापी का भविष्य एक संत का भविष्य है। हम प्रत्येक पापी से सार्थक रूप से कह सकते हैं कि तुम भविष्य के संत हो। प्रत्येक संत का एक अतीत है; और प्रत्येक संत का अतीत पापी का अतीत है। और हम प्रत्येक संत से सार्थक रूप से कह सकते हैं कि तुम अतीत के पापी हो। लेकिन संत का फिर आगे कोई भविष्य नहीं है।
संत का अर्थ है, जो पूर्ण स्वभाव को उपलब्ध हो गया; जो वही हो गया है,
जो हो सकता था। फूल पूरा खिल गया। कली का भविष्य है। कली चाहे तो कली भी रह सकती है और चाहे तो फूल भी बन सकती है। लेकिन फूल फिर लौटकर कली नहीं बन सकता। चाहे, तो भी। फूल फिर फूल हो गया। तो जब हम कली से कहते हैं कि फूल होना तेरा स्वभाव है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि हम तथ्य की या फैक्ट की बात कह रहे हैं; हम संभावना की, पोटेंशियलिटी की बात कह रहे हैं। हम कली से कहते हैं कि तेरा फूल होना स्वभाव है; अर्थात तू फूल होना चाहे तो हो सकती है।
लेकिन अगर कोई कली, कली ही बनी रहे, और वह कहे कि तथ्य तो यही है कि मैं कली हूं। इसलिए मैं कली ही रहूंगी; क्योंकि कली होना मेरा स्वभाव है, क्योंकि मैं कली हूं... आदमी अगर कहे कि हिंसा मेरा स्वभाव है, तो वह ऐसी ही बात कह रहा है, जैसी यह भ्रांत कली कह रही है।
आदमी का स्वभाव नहीं है हिंसा, उसके अतीत का अर्जन है, उसके अतीत के संस्कार हैं। हिंसा आदमी की कंडीशनिंग है, जो कि पशु से निकलते वक्त अनिवार्य थी। जैसे कि कोई काजल की कोठरी से निकले और काजल उसके शरीर पर लग जाये, उसके कपड़ों पर लग जाये, जो कि अनिवार्य था। पशु क्षम्य है। अनिवार्य है हिंसा उसके जीवन में होनी। आदमी को क्षमा नहीं किया जा सकता। हिंसा अब उसकी पसंद है, अब अनिवार्य नहीं। अब वह चुन रहा है, इसलिए हिंसा।
अगर कली जिद कर ले कली रहने की, तो रह सकती है। लेकिन यह उसकी अनिवार्यता नहीं; यह उसकी नियति, उसकी डेस्टिनी नहीं है। यह उसका अपना ही भ्रांत निर्णय है। और तब इसकी जिम्मेवार वह स्वयं ही होगी। और किसी परमात्मा के समक्ष पहुंचकर वह यह नहीं कह सकेगी कि मुझे कली ही क्यों रखा? क्योंकि कली के भीतर फूल होने की संभावना परमात्मा ने पूरी दे दी थी। वह फूल हो सकती थी। कली होने की जिम्मेवारी हमारी होगी।
हिंसा, पशु के लिए अनिवार्यता, हमारे लिए जिम्मेवारी है; पशु के लिए तथ्य, हमारे लिए सिर्फ ऐतिहासिक याददाश्त है; पशु का वर्तमान, हमारा अतीत है। चुनाव सामने है। आदमी अहिंसक होने का निर्णय भी ले सकता है और हिंसक होने का भी निर्णय ले सकता है।
इसलिए जब कोई आदमी हिंसक होने का निर्णय लेता है, तो कोई पशु उसका मुकाबला नहीं कर सकता। असल में कोई पशु इतना हिंसक नहीं हो सकता, जितना आदमी हो सकता है। क्योंकि पशु सहज ही हिंसक हैं; और आदमी हिंसक आयोजना से होता है। इसलिए हम चंगेज खां, और तैमूर, और नादिर, और हिटलर, और माओ, और स्टैलिन जैसे हिंसक पशुओं में खोजकर नहीं ला सकते। स्टैलिन के पैरेलल, या चंगेज के समानांतर, अगर हम पशुओं के इतिहास से पूछें कि कोई एकाध पशु हुआ, जो हमारे चंगेज खां के मुकाबले हो? तो पशु कहेंगे, हम बहुत दरिद्र हैं। इस मामले में हमारे पास कोई याददाश्त नहीं है।
एक बड़े मजे की बात है कि कोई भी जानवर सजातीय के प्रति हिंसक नहीं होता, सिवाय आदमी को छोड़कर! कोई जानवर अपनी जाति के जानवर को नहीं मारता, हिंसा नहीं करता। इतनी पहचान पशु की हिंसा में भी है। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है, जो आदमी को मारता है।

यह भी बड़े मजे की बात है कि हिंदुस्तानी भेड़िये को भी अगर पाकिस्तानी भेड़िये के पास छोड़ दिया जाये, तो नहीं मारेगा। लेकिन हिंदुस्तानी आदमी को पाकिस्तानी आदमी के पास छोड़ना जोखिम से भरा काम है!
भाषाशास्त्री कहते हैं कि शायद भाषा ने गड़बड़ की है। हो सकता है। जो लिंगविस्ट हैं, उनका ख्याल सही मालूम होता है। वे यह कहते हैं, चूंकि दोनों भेड़िये भाषा नहीं बोलते--न पाकिस्तानी भेड़िया उर्दू बोलता है, न हिंदुस्तानी भेड़िया हिंदी बोलता है-- इसलिए दोनों पहचान नहीं पाते कि हम फारेनर हैं! और कोई कारण नहीं। लेकिन आदमी एक जिले से दूसरे जिले में फारेनर हो जाता है। गुजराती मराठी के लिए फारेनर है, हिंदी बोलनेवाला तमिल बोलनेवाले के लिए फारेनर है। अगर यही सच है, जो भाषाशास्त्री कहते हैं--और मुझे लगता है इसमें सचाई है--तो क्या ऐसा न करना पड़े किसी दिन कि आदमी को मौन हो जाना पड़े, तभी आदमी आदमी हो सके। शायद, मौन हुए बिना इस पृथ्वी पर आदमियत का पैदा होना कठिन होगा।
लेकिन यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि कोई पशु अपनी जाति के पशु
पर हमला नहीं करता, पर आदमी करता है! और कोई पशु अकारण कभी नहीं मारता है-- यह भी मजे की बात है--सिर्फ आदमी को छोड़कर। अकारण नहीं मारता, अगर कभी मारता भी है, तो उसकी जरूरत होगी। भूख होती है, तो मारता है। रक्षा करनी होती है, तो मारता है। आदमी बेजरूरत मारता है! कोई जरूरत नहीं होती है, तब भी मारता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मारना होता है, इसलिए जरूरत पैदा करता है! बिना मारे नहीं रह सकता, इसलिए जरूरत पैदा कर लेता है। कभी वियतनाम में जरूरत पैदा करता है, कभी कोरिया में जरूरत पैदा करता है, कभी कश्मीर में जरूरत पैदा करता है।
कोई जरूरत नहीं है। न कश्मीर में कोई जरूरत है, न किसी वियतनाम में, न
ही किसी कम्बोडिया में। कहीं कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आदमी जरूरत पैदा करता है, क्योंकि बिना जरूरत मारेगा, तो जरा ठीक नहीं लगेगा!
आदमी रेशनल है सिर्फ एक अर्थों में कि वह अपनी बेवकूफियों को भी रेशनलाइज करता है, और किसी अर्थ में रेशनल नहीं है। अरस्तू ने जरूर कहा था कि आदमी एक बुद्धिमान प्राणी है, लेकिन आदमी का अब तक का इतिहास सिद्ध नहीं करता। अरस्तू को इतिहास ने गलत सिद्ध किया है। आदमी सिर्फ बुद्धिमानी एक बात में दिखाता है कि अपनी बेवकूफियों को बुद्धिमानी सिद्ध करने की कोशिश करता है। मारता है, तो भी रेशनलाइज कर लेता है। कहता है कि मारना ही पड़ेगा, क्योंकि यह मुसलमान है! मारना ही पड़ेगा, क्योंकि यह हिंदू है! मारना ही पड़ेगा, क्योंकि यह हिंदुस्तानी नहीं, पाकिस्तानी है! जैसे कि किसी का पाकिस्तानी होना मारने के लिए काफी कारण है! काफी हो गई बात कि एक आदमी मुसलमान है, मारो! आदमी कारण खोजता है। यह आदमी पूंजीपति है, मारना पड़ेगा; यह आदमी कम्युनिस्ट है, मारना पड़ेगा! पुराने कारण जरा पिट जाते हैं, बासे हो जाते हैं, तो नये कारण खोजता चला जाता है। नये कारण ईजाद करता है कि अब चलो, पुराना कारण बेकार हुआ, वह खेल बंद करो, नया खेल खेलो! अभी तक बहुत मारे हिंदू-मुसलमान, चलो अब हिंदू-जैन में हो जाये! हिंदू-जैन का न चले तो चलो गरीब-अमीर में हो जाये। आदमी मारना चाहता है, तो कारण खोज लेता है। पशु बिना कारण कभी नहीं मारते।
मैं यह कह रहा हूं कि अगर हम आदमी की हिंसा को समझें, तो हम पायेंगे कि अगर आदमी हिंसक होता है, तो यह उसका चुनाव है। और इसलिए आदमी इतना हिंसक हो सकता है, जितना कोई पशु नहीं हो सकता। क्योंकि पशु का हिंसक होना सिर्फ स्वभाव है--वह उसका चुनाव नहीं है--इसलिए नादिरशाह उसमें पैदा नहीं हो सकता। इसलिए उसमें महावीर भी पैदा नहीं हो सकते। क्योंकि अहिंसा का भी उसे कोई चुनाव नहीं है। आदमी को अहिंसा का भी चुनाव है।
हमने अगर नादिरशाह, स्टैलिन और माओ की खाइयां देखी हैं, तो हमने महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट की ऊंचाइयां भी देखी हैं। वे दोनों हमारी संभावनाएं हैं। खाइयां, हमारे अतीत का स्मरण है; ऊंचाइयां, हमारे भविष्य की आकांक्षाएं हैं। और शेष अब कल बात करेंगे!
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

[illegible] [illegible], [illegible]

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया सातवां प्रवचन

ब्रह्मचर्य (प्रश्नोत्तर)

ओशो, आपने कहा है कि आत्म-अज्ञान ही हिंसा का स्रोत है और कल आपने कहा
कि हिंसा-वृत्ति के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है, तो क्या आत्म-अज्ञान के लिए भी मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है? क्यों और कैसे, इसे स्पष्ट करें।

अंधेरी रात हो अमावस की, और कोई अपनी गुहा में बैठा हो अंधकार में डूबा हुआ, तो आंखें बंद रखे या आंखें खुली रखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। आंखें बंद हों, तो भी अंधकार होगा; और आंखें खुली हों, तो भी अंधकार होगा। लेकिन फिर सुबह हो जाये, सूर्य निकल आये, सूर्य की किरणों का जाल उस गुहा के द्वार पर फैल जाये, पक्षी गीत गाने लगें; और फिर भी वह आदमी अपनी आंखें बंद किए बैठा रहे, तो फर्क पड़ता है।
रात के अंधकार में आंखें बंद थीं या खुली थीं, इससे कोई अंतर न पड़ता था। और रात के अंधकार की कोई भी जिम्मेवारी उस गुहा में बैठे हुए आदमी की न थी। अंधकार था; वह स्थिति थी। लेकिन सुबह जब सूरज निकल आया हो, तब भी अगर वह आदमी आंखें बंद किए बैठा रहे, तो जो अंधकार उसे दिखायी पड़ेगा, वह उसकी अपनी जिम्मेवारी होगी। वह चाहे तो आंख खोल सकता है और अंधकार से मुक्त हो सकता है।
पशु का जीवन, अमावस की अंधेरी रात जैसा जीवन है। आत्म-ज्ञान की वहां संभावना नहीं है। पशु को कोई बोध नहीं है, स्वयं के होने का; और कोई विकल्प भी नहीं है, कोई स्वतंत्रता भी नहीं है कि वह स्वयं को जान सके। वह संभावना ही नहीं है। इसलिए पशु को आत्म-अज्ञान के लिए जिम्मेवार नहीं कहा जा सकता। वह अंधेरी रात में है और अंधेरे के लिए जिम्मेवार नहीं है।
इसलिए पशु अगर आत्म-ज्ञान न खोजे, तो उसे दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन आदमी पशु की यात्रा से उस जगह प्रवेश कर गया है, चेतना के उस लोक में जहां सूर्य का प्रकाश है। और अब भी अगर कोई आदमी अंधेरे में है, तो उसकी जिम्मेवारी सिवाय उसके और किसी पर नहीं हो सकती।
हम यदि आत्म-अज्ञानी हैं, तो अपनी आंखें बंद रखने के कारण हैं; वह हमारी स्थिति नहीं है, वह हमारा चुनाव है। प्रकाश चारों तरफ मौजूद है। आदमी उस जगह खड़ा हो गया है विकास के दौर में, जहां से वह स्वयं को जान सकता है। अगर नहीं जानता है, तो स्वयं के अतिरिक्त और कौन जिम्मेवार होगा? इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कह रहा हूं, वह आत्म-अज्ञान का पैदा करनेवाला है। नहीं, आत्म-अज्ञान तो है; लेकिन आदमी उसका विध्वंस नहीं कर रहा है, तो भी जिम्मेवारी उसकी है। वह आत्म-अज्ञान को पैदा करनेवाला नहीं है, लेकिन विध्वंस करनेवाला बन सकता है और नहीं बन रहा है। इसलिए रिस्पांसबिलिटि, जिम्मेवारी आदमी की है।
आदमी आत्म-अज्ञानी हो तो यह उसका अपना ही निर्णय है। आंख उसने ही बंद रखी है। रोशनी की अब कोई कमी नहीं है।
सार्त्र का एक बहुत प्रसिद्ध वचन मुझे स्मरण आता है, प्रसिद्ध भी और अनूठा भी। सार्त्र का वचन हैः मैन इज कंडेम्ड टु बी फ्री, आदमी स्वतंत्र होने को विवश है; मजबूर है। सिर्फ एक स्वतंत्रता आदमी को नहीं है, बाकी सब स्वतंत्रताएं उसे हैं। चुनाव करने के लिए आदमी मजबूर है। सिर्फ एक चुनाव आदमी नहीं कर सकता। वह इतना भर नहीं चुन सकता कि "चुनाव न करना" चुन ले। यह भर नहीं चुन सकता। ही कैन नाट चूज नाट टु चूज, बाकी तो उसे सब चुनाव करना ही पड़ेगा। इसलिए "न करने" की बात नहीं चुन सकता, क्योंकि यह भी चुनाव ही होगा। आदमी को प्रतिपल चुनना ही पड़ेगा; क्योंकि आदमी चुनाव की एक यात्रा है, पशु चुनाव की यात्रा नहीं है। पशु जो है, वह है। और अगर पशु जैसा भी है उसकी जिम्मेवारी किसी पर होगी तो परमात्मा पर होगी। आदमी परमात्मा की जिम्मेवारी के बाहर है। पशु के होने की जिम्मेवारी परमात्मा पर होगी। पशु जैसा है, है। वृक्ष जैसे हैं, हैं। उनको हम दोषी नहीं ठहरा सकते और न ही हम

उन्हें प्रशंसा के पात्र बना सकते हैं। पर आदमी बाहर हो गया है उस वर्तुल के, जहां से वह चुनाव के लिए स्वतंत्र है।
अब अगर मैं आत्म-अज्ञानी हूं, तो यह मेरा चुनाव है; और आत्म-ज्ञानी हूं, तो यह मेरा चुनाव है। अब अगर मैं दुखी हूं, तो यह मेरा चुनाव है; और आनंदित हूं, तो यह मेरा चुनाव है। आंखें खुली रखूं या बंद, यह मेरा चुनाव है। चारों ओर प्रकाश मौजूद है। अब अंधकार में रहना मेरे हाथ की बात है, और प्रकाश में रहना भी मेरे हाथ की बात है।
इसलिए मैंने कहा कि आत्म-अज्ञान के लिए भी मनुष्य जिम्मेवार है। अब मनुष्य अपनी जिम्मेवारी से मुक्त नहीं हो सकता। अब वह प्रतिपल ज्यादा से ज्यादा जिम्मेवार होता चला जायेगा। मनुष्य की यह जिम्मेवारी ही, उसकी गरिमा और गौरव भी है; यही उसकी मनुष्यता भी है। यहीं से वह पशुता के बाहर निकलता है।
इसलिए यह भी मैं आपसे कहना चाहूंगा कि जिन चीजों में हम बिना चुनाव किये बहते हैं, उन चीजों में हम पशु के तुल्य ही होते हैं।
यह भी बहुत मजे की बात है कि हिंसा आमतौर से हम चुनते नहीं, अतीत की आदत के कारण करते चले जाते हैं। अहिंसा चुननी पड़ती है। इसलिए अहिंसा एक उत्तरदायित्व है और हिंसा एक पशुता है। अहिंसा मनुष्यता की यात्रा पर एक मंजिल है, हिंसा सिर्फ पुरानी आदत का प्रभाव है।
मैंने निश्चित ही कहा है कि हिंसा आत्म-अज्ञान से पैदा होती है। और इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। आत्म-अज्ञान भी हमारा चुनाव है, हिंसा भी हमारा चुनाव है। हम होना चाहें अहिंसक, तो अब कोई हमें रोक नहीं सकता। मनुष्य जो भी होना चाहे, हो सकता है। मनुष्य का विचार ही उसका व्यक्तित्व है; उसका निर्णय ही, उसकी नियति है; उसकी आकांक्षा ही, उसकी अभीप्सा ही, उसका आत्मसृजन है।
इसलिए अब कोई आदमी अपने मन में यह कभी भूल कर भी न सोचे कि वह जो है, उसमें वह क्या कर सकता है? क्रोध है, तो क्या कर सकता है? हिंसा है, तो क्या कर सकता है? अज्ञान है, तो क्या कर सकता है? आदमी को यह कहने का हक नहीं है। जैसे ही आदमी कहता है कि मैं क्या कर सकता हूं, वह यह खबर दे रहा है कि कर सकता है, और अपने को समझाने की कोशिश कर रहा है कि क्या कर सकता हूं! कोई पशु नहीं कहता कि मैं क्या कर सकता हूं? यह सवाल ही नहीं है।
आदमी जिस दिन कहता है, मजबूरी है, मैं क्या कर सकता हूं? हिंसक मुझे होना ही पड़ेगा! उस दिन वह यह कह रहा है कि मैं चुन भी रहा हूं और चुनाव की जिम्मेवारी भी छोड़ रहा हूं। मैं हिंसक हो भी रहा हूं और हिंसक होने का दोष किसी और के कंधों पर--प्रकृति के, परमात्मा के कंधों पर छा.ेड रहा हूं। जिस आदमी ने अपनी आदमियत का बोझ किसी और पर छोड़ा, वह पशुता की दुनिया में वापस गिर जाता है। असल में वह आदमी होने से इनकार कर रहा है। जो आदमी चुनने से इनकार कर रहा है, वह आदमी होने से इनकार कर रहा है। वह यह कह रहा है कि नहीं, हम पशु बेहतर--जहां न कोई चुनाव है, न कोई जिम्मेवारी है, न कोई निर्णय है, न कोई परेशानी है। जो है, वह है। हम वापस लौटते हैं।
शराब पीकर आदमी पशु में वापस लौट जाता है। हिंसा करके आदमी पशु में वापस लौट जाता है। क्रोध करके आदमी पशु में वापस लौट जाता है।
इसलिए क्रोध से भरे व्यक्ति को अगर देखें तो उसमें सिर्फ आदमियत की रूपरेखा भर दिखाई पड़ती है, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। हिंसा से भरी हुई आंखें देखें, तो उसमें आदमी की आंखें नहीं दिखाई पड़तीं, तत्काल आंखों में एक मेटामार्फोसिस हो जाती है। आंखें बदल जाती हैं। भीतर से कोई छिपा हुआ पशु तत्काल प्रगट हो जाता है। इसलिए क्रोध में, हिंसा में आदमी पशु जैसा व्यवहार करता है; काटता है, चीखता है, नोचता है।
आदमी के नाखून छोटे पड़ गए हैं, क्योंकि उनकी बहुत जरूरत नहीं रह गई है। जंगली जानवर के पास नाखून हैं, जो आपकी हड्डियों तक के मांस को बाहर खींच लायें। लाखों वर्षों से आदमी को अब किसी की हड्डियों तक के मांस को खींचने की जरूरत नहीं रह गई, तो नाखून छोटे हो गए हैं। तो फिर आदमी को छुरी, भाले, बर्छियां बनानी पड़ी हैं। वे सब्स्टीट्यूट हैं, जिनसे वह जानवर का काम ले लेता है। क्योंकि नाखून उसके पास छोटे पड़ गये हैं। दांत उसके अब

ऐसे नहीं रहे कि वे किसी के मांस को काटकर बाहर निकाल लें, तो उसने हथियार, औजार बनाए; गोलियां बनाई हैं जो आदमी की छाती में धंस जायें।
आदमी ने जितने अस्त्र-शस्त्र खोजे हैं, वह अपनी खो गई पशुता को सब्स्टीट्यूट करने के लिए, परिपूरक करने के लिए खोजे हैं। जो जानवरों के पास है वह हमारे पास नहीं है, तो हमें बनाना पड़ा है।
निश्चित ही, जब हमने बनाया है तो जानवरों से बेहतर बना लिया है।
किस जानवर के पास एटम-बम है? किस जानवर के पास सैकड़ों मील दूर बम फेंकने के उपाय हैं? नहीं, जानवर के पास बड़े प्रकृति-प्रदत्त साधन हैं। और आदमी ने अपनी सारी बुद्धिमत्ता का उपयोग करके--करोड़ों जानवरों को इकट्ठा करके भी जो न हो सके, वह एक आदमी कर सकता है। यह आदमी का अपना चुनाव है। जिस दिन किसी आदमी को यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ जाती है कि जो भी मैं हूं, उसकी जिम्मेवारी मेरी है, उसी दिन से परिवर्तन और रूपांतरण शुरू हो जाता है। जिस आदमी की जिंदगी में अभी यह ख्याल है कि जो मैं हूं, हूं; उसमें मेरा कोई वश नहीं, उस आदमी की जिंदगी में धर्म के मंदिर का द्वार कभी भी नहीं खुल सकता।
उत्तरदायित्व मेरा है, और मैं ही निर्णायक हूं अपनी नियति का, इस बात
का बोध मनुष्य की जिंदगी को परिवर्तित करता है।
इसलिए मैंने कहा कि आत्म-अज्ञान के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेवार है। जिम्मेवार इन अर्थों में कि वह तोड़ सकता है, और नहीं तोड़ रहा है; मिटा सकता है, और नहीं मिटा रहा है; मुक्त हो सकता है, और नहीं मुक्त हो रहा है।

ओशो, कृपया समझाएं कि ध्यान-साधना में हिंसक-वृत्तियों का विसर्जन और उदात्तीकरण अर्थात डिजोल्यूशन और सब्लीमेशन किस प्रकार घटित होता है?

हिंसा की वृत्ति अकेली वृत्ति ही नहीं है, हिंसा की वृत्ति के साथ हिंसा के अनेक वेगों का दमन भी संयुक्त है, सप्रेशन भी संयुक्त है। हिंसा की वृत्ति तो है ही, हिंसा करने की आकांक्षा भी है। लेकिन हजार मौकों पर हिंसा करने का उपाय नहीं होता है। हिंसा करना चाहते हैं और नहीं कर पाते हैं। क्योंकि संस्कृति है, सभ्यता है, जीवन की व्यवस्था है, परिस्थितियां हैं, प्रतिकूलताएं हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने किसी क्षण में किसी दूसरे को मार डालने का विचार न किया हो! ऐसा आदमी भी खोजना मुश्किल है, जिसने किसी क्षण में अपने को ही मार डालने का विचार न किया हो! दिन में न किया होगा, तो रात सपने में किया होगा। लेकिन सभी आदमी दूसरों को मार नहीं डालते, और सभी आदमी आत्महत्याएं नहीं कर लेते। सोचते हैं, प्रतिकूलताएं हैं... संभव नहीं हो पाता।
और जब एक बार हिंसा का भाव मन में उठ जाये और प्रगट न हो पाए, तो हिंसा
की वृत्ति तो रहती ही है, हिंसा के भाव का वेग भी दमित हो जाता है। यह भी इकट्ठा होने लगता है। हिंसा की वृत्ति तो भीतर बनी ही रहती है, और न की गई हिंसा की, की गई भावनाएं भी संग्रहीत होती चली जाती हैं। एक जन्म की नहीं, अनेक जन्मों की भी इकट्ठी हो जाती हैं। उस संग्रह को भी हम अपने साथ लेकर चल रहे हैं। वृत्ति तो साथ है ही, दबाए हुए वेग भी साथ हैं। इधर वृत्ति रोज नये वेग पैदा करती है और उधर पुराने वेगों का संग्रह बढ़ता चला जाता है। और किसी भी क्षण विस्फोट हो सकता है।
इसलिए हिंसा की वृत्ति से जो मुक्ति है, उस मुक्ति के लिए दो बातें समझ लेनी जरूरी हैः हिंसा की वृत्ति का तो विसर्जन होना ही चाहिए, हिंसा के दबे हुए, दबाए गए वेगों का विसर्जन भी जरूरी है। हिंसा की वृत्ति मिटेगी, तो मैं आने वाले भविष्य में हिंसा के वेगों को पैदा नहीं करूंगा, लेकिन मैंने जो अतीत में वेग दबाये हैं, उनका विसर्जन, उनका रेचन, उनकी कैथार्सिस भी होनी जरूरी है।
महावीर ने बहुत सुंदर शब्द कैथार्सिस के लिए प्रयोग किया है। पश्चिम में मनसशास्त्री जिसे कैथार्सिस कहते हैं, रेचन कहते हैं, महावीर ने उसे "निर्जरा" कहा है। वह बहुत अदभुत शब्द है।

निर्जरा का अर्थ है, विदरिंग अवे। निर्जरा का अर्थ है, किसी चीज का झड़ जाना। कोई चीज जो इकट्ठी है, उसका बिखर जाना। निर्जरा का अर्थ है, अगर ऊपर धूल इकट्ठी हो गई है, तो धूल के कणों को फेंककर अलग कर देना।
बहुत वेग हमारे भीतर इकट्ठे हैं। ध्यान में इनकी निर्जरा, इनकी कैथार्सिस की जा सकती है; और सिर्फ ध्यान में ही की जा सकती है। और कोई उपाय मनुष्य के दबे हुए वेगों की निर्जरा का नहीं है।
ध्यान में कैसे की जा सकती है?
जब आपके मन में किसी को घूंसा मारने की इच्छा पैदा होती है, तब आप एक छोटा सा प्रयोग करके देखेंगे और बहुत हैरान होंगे और यह प्रयोग मैं मजाक में नहीं कह रहा हूं। अमेरिका में एक बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला इस प्रयोग को आज कर रही है।
केलिफोर्निया में एक संस्था है, इसालेन इंस्टीट्यूट। शायद अमेरिका में एक बहुत कीमती ऋषि आज मौजूद है। उसका नाम है, पर्ल्स। वह जिन लोगों के मन में बड़ी हिंसा है, उनकी आंखों पर पट्टियां बंधवा देता है, तकिए उनके सामने रख देता है, और कहता है, मारो घूंसे और समझो कि दुश्मन सामने है। जिसे तुम्हें मारना है, उसी को मारो!
पहले तो आदमी हंसता है कि तकिए को कैसे मारें! लेकिन किसी दूसरे आदमी
को मारने में और तकिए को मारने में हाथ को कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। और किसी आदमी को मारने में और किसी तकिए को मारने में, खून में जो विष पैदा हो गया है, उसके निकलने में भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। दूसरा आदमी भी तकिए से ज्यादा और क्या है?
तो पर्ल्स अपने हिंसक मरीज को कहेगा कि मारो तकिए को!
पहले मरीज हंसेगा, लेकिन पर्ल्स कहेगा, हंसो मत, मारो! मरीज कहेगा, आप
भी क्या मजाक करते हैं! लेकिन पर्ल्स कहेगा, थोड़ा मजाक ही सही, लेकिन मारो! मरीज तकिए को मारना शुरू करेगा और थोड़ी ही देर में आस-पास खड़े लोग देखकर हैरान होंगे कि न केवल मारने में उसकी गति आ गई, न केवल वह तकिए से जूझने लगा, न केवल तकिए से वह दुश्मनी निकाल रहा है, बल्कि वह तकिए को चीरेगा, फाड़ेगा, मुंह से काट डालेगा; तकिए के टुकड़े-टुकड़े कर देगा! और जिन लोगों को भी इन प्रयोगों से गुजरना पड़ा है, वे प्रयोग के बाद कहते हैं कि मन बहुत हल्का हो गया है। इतना हल्का कभी भी नहीं था।
ये पर्ल्स क्या कह रहा है? ये यह कह रहा है कि तुमने अब तक हिंसा सकारण निकाली है, किसी पर निकाली है। अब तुम हवा में निकाल लो, किसी पर मत निकालो; क्योंकि जब भी किसी पर निकाली जायेगी, तो उसकी प्रतिक्रियाएं होंगी।
अगर मैं किसी को घूंसा मारूंगा, तो यह घूंसा आकाश में खो नहीं जायेगा, अंतरिक्ष इसको एबजार्ब नहीं कर लेगा। जिसको घूंसा मारूंगा, वह इसका उत्तर देगा। आज देगा, कल देगा, परसों देगा--प्रतीक्षा करेगा, लेकिन उत्तर देगा। और जब मैं किसी को घूंसा मारूंगा, तो हो सकता है वह बुद्ध जैसा, महावीर जैसा कोई आदमी हो, और उत्तर न भी दे, तो भी जैसे ही मैं किसी को घूंसा मारूंगा, तो मेरे मन में भी प्रतिक्रिया और पश्चाताप होगा।
और ध्यान रहे! क्रोध ही बुरा नहीं है, पश्चात्ताप भी उतना ही बुरा है। क्योंकि पश्चात्ताप उल्टा हो गया क्रोध है, पश्चात्ताप शीर्षासन करता हुआ क्रोध है। पश्चात्ताप भी उतना ही बुरा है। असल में पश्चात्ताप करके आदमी फिर से क्रोध करने की तैयारी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करता है। जब एक आदमी रिपेंट करता है और कहता है, बहुत बुरा हुआ कि मैंने क्रोध किया, तब वह अपने मन को यह समझा रहा है कि मैं इतना बुरा आदमी नहीं हूं, एक बुरा काम हो गया है, यह दूसरी बात है।
पश्चात्ताप करके वह अपने अच्छे आदमी को वापस पुनर्स्थापित कर रहा है।
वह रीइस्टेबलिश कर रहा है अपनी पुरानी इज्जत को, अपनी ही आंखों में। और जैसे ही वह पुनर्स्थापित हो जायेगा, कल फिर घूंसा मारने के लिए तैयार हो जायेगा। परसों फिर पश्चात्ताप, फिर घूंसा। क्रोध और पश्चात्ताप का एक दुष्ट-चक्र घूमता रहेगा।
और जब हम किसी व्यक्ति को घूंसा मारते हैं, तो न केवल पश्चात्ताप होता है, बल्कि वह घूंसे का उत्तर देगा, इसकी पुनः तैयारी भी शुरू हो जाती है।

इसलिए हिंसा फिर एक दुष्ट-चक्र बन जाती है, जिसके बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है।
लेकिन तकिए को अगर एक आदमी घूंसा मार रहा है, तो ऐसा कुछ भी नहीं घटता। तकिए को घूंसा मारने में निर्जरा हो रही है। पर्ल्स तकिए को घूंसा मारने को कह रहा है, क्योंकि जिस दुनिया में हम रह रहे हैं, वह बहुत आब्जेक्टिव हो गई है। महावीर पच्चीस सौ साल पहले थे। वे कहते, हवा में ही घूंसा मार दो, तकिए की क्या जरूरत है? लेकिन हम कहेंगे, हवा में घूंसा? तकिए को तो फिर भी मारने जैसा लगता है। वह कम से कम आदमी की पीठ जैसा लगता है, पेट जैसा लगता है! तकिए को घूंसा छुयेगा तो ऐसा ही लगेगा कि किसी को छुआ, थोड़ा-सा तो तकिया भी उत्तर देगा।
दुनिया पच्चीस सौ साल में महावीर के बाद वस्तुगत हो गई है। महावीर ने जिस ध्यान की बात की है, उस ध्यान में तकिए की भी कोई जरूरत नहीं है। मैं भी जिस ध्यान की बात करता हूं, उसमें भी तकिए की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन शायद अमेरिका में तकिए के बिना घूंसा मारना और भी मुश्किल हो जायेगा। वस्तुगत कुछ तो होना ही चाहिए। आदमी न सही, तो तकिया ही सही।
महावीर तो तकिए को भी मारने को मना करेंगे। वे तो कहेंगे... पर्ल्स को
वे तो कहेंगे, इसमें भी थोड़ी-सी हिंसा हो रही है। यह आदमी तकिए में अपने दुश्मन को प्रोजेक्ट कर रहा है। कोई दुश्मन नहीं है, जिसको चोट पहुंच रही है, लेकिन इस आदमी को किसी को मारने का मजा और रस आ रहा है। यह रस भी हिंसा की धारा को थोड़ा-बहुत जारी रखेगा। इससे हिंसा की पूर्ण निर्जरा नहीं हो जायेगी।
इसलिए पर्ल्स की लेबोरेटरी से गए लोग दो-चार-छह महीने बाद फिर वापस आ जाएंगे और कहेंगे कि हिंसा फिर मन में इकट्ठी हो गई। अब फिर उनको तकिया चाहिए और फिर उनको मारना पड़ेगा।
ध्यान की प्रक्रिया कहती है कि आप किसी की फिक्र छोड़ दें, सब्जेक्टिव वायलेंस कर लें। सब्जेक्टिव वायलेंस का मतलब अपने साथ हिंसा करना नहीं है। सब्जेक्टिव वायलेंस का मतलब है, सिर्फ हिंसा को हो जाने दें--बिना किसी आब्जेक्ट के, बिना किसी विषय के, बिना किसी वस्तु के।
एक आदमी अगर ध्यान में चीख मारकर चिल्लाये, घूंसे मारे, नाचे, कूदे, तो उसके भीतर जो हिंसा के दबे हुए वेग हैं, उनकी निर्जरा होती है। वे गिर जाते हैं। एक घंटे भर के किसी भी दिन के प्रयोग के बाद आप इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि आपके भीतर के दबे हुए वेग उड़ गए, आप हल्के होकर कमरे के बाहर आ गए। उस दिन दिनभर आप क्रोध न कर पायेंगे, उतनी आसानी से जितनी आसानी से कल किया था। उतनी आसानी से किसी को घूंसा न बांध पायेंगे, जितनी आसानी से सदा बांधा था। वे ही कारण, जो कल आपकी आंखों को लाल खून से भर देते, आज आपकी आंखों को झील की तरह नीला ही छोड़ जायेंगे। और एक हंसी भी अपने पर आनी शुरू होगी कि जिस हिंसा की ऐसे ही निर्जरा हो सकती थी, उसके लिए अकारण ही मैंने दूसरों को पीड़ा देकर दुष्ट-चक्र निर्मित किये, विसीयस सर्किल बनाए। महावीर एक गांव के पास खड़े थे और कुछ लोगों ने आकर उन्हें बहुत पीटा। किसी ने उनके कान में खीलें ठोंक दीं। वे खड़े देखते रहे। पीछे किसी ने उनसे पूछा, आपने कुछ भी न कहा? आप कुछ तो बोलते, इतना तो कहते कि अकारण मुझे क्यों मार रहे हो?
तो महावीर ने कहा, अकारण वे नहीं मार रहे थे। उनके भीतर मारने की बात
का जरूर ही कोई कारण रहा होगा। हो सकता है, मुझसे संबंधित न हो कारण, लेकिन उनके भीतर तो कारण रहा ही होगा। और फिर मैंने सोचा कि वे मुझे ही मार लें तो बेहतर है, वे किसी दूसरे को मारेंगे, तो बिना मार का उत्तर पाए वापस न लौटेंगे। उनकी हिंसा की निर्जरा हो जाये। तो मुझसे बेहतर आदमी उन्हें खोजना मुश्किल है।
महावीर तकिए की तरह ही व्यवहार किये उन लोगों के साथ।
ध्यान में, दबे हुए समस्त-वेगों की निर्जरा होती है--वे चाहे हिंसा के हों, चाहे क्रोध के हों, चाहे काम के हों, चाहे लोभ के हों--ध्यान में समस्त दबे वेगों की निर्जरा होती है। और जब वेगों की निर्जरा हो जाये, जब सप्रेस्ड, दबी हुई शक्तियां बिखर जायें, तो वृत्ति से छुटकारा पाने में बड़ी आसानी हो जाती है। जब किसी के घर की तिजोरी का सारा धन फिंक जाये, तो

तिजोरी को फेंकने में बहुत देर नहीं लगती। तिजोरी को तो आदमी बचाता ही इसलिए है कि उसके भीतर जो धन इकट्ठा है। अगर तिजोरी का सारा धन बांट दिया गया हो, तो तिजोरी को दान करने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ती।
हिंसा की वृत्ति से छुटकारा पाना उतना कठिन नहीं पड़ेगा। हिंसा के वेग, जो हिंसा की वृत्ति को तिजोरी बनाकर बैठ गए हैं, उनसे छुटकारा पाना ही पहला सवाल है। और जिस दिन सारे वेग मुक्त हो जाते हैं, उस दिन हिंसा अपनी नग्नता में, अपनी टोटल नेकेडनेस में दिखाई पड़ती है। और जब कोई व्यक्ति हिंसा को उसकी पूरी नग्नता में देखने में समर्थ हो जाता है, तो वह एक क्षण भी हिंसक नहीं रह सकता। क्योंकि हिंसा को उसकी पूरी नग्नता में देखना, उससे मुक्त हो जाना है। वह इतनी पीड़ा है, वह इतनी कुरूपता है, वह इतनी गंदगी है, कि उसमें कोई एक क्षण भी रुकने को राजी नहीं होगा। वह ऐसा ही है हिंसा को उसकी पूरी नग्नता में देखना, जैसे किसी के घर में आग लग गई हो, और लपटों में घर घिर जाए, और फिर कोई आदमी जब लपटों को देख ले, तो एक क्षण भी उस घर में रुकना संभव न हो। वह छलांग लगाये और बाहर निकल जाये। ठीक ऐसे ही हिंसा की लपटों में घिरा आदमी बाहर कूद पड़ता है।
लेकिन हिंसा की लपटें दिखाई नहीं पड़तीं, क्योंकि हिंसा की वृत्ति और स्वयं के बीच में न-मालूम कितनी पर्तें हैं दबे हुए वेगों की। उन वेगों के कारण हिंसा की वृत्ति का दर्शन नहीं हो पाता। उसके कारण नेकेड वायलेंस दिखाई नहीं पड़ती। उसके कारण हमेशा ही हमें यही दिखाई पड़ता है कि हिंसा भी हमारी मित्र है, क्योंकि हिंसा का हमें उपयोग करना है। कल कोई दुश्मन होगा, कल कोई हमला करेगा, तो जवाब कैसे देंगे? वे जो बीच में दबे हुए वेग हैं, उनकी लंबी धुएं की पर्तों के कारण हिंसा की नग्नता दिखाई नहीं पड़ती। ध्यान, वेगों से मुक्ति दिलाकर हिंसा का आमना-सामना, एनकाउंटर करा देता है। और जिस आदमी ने भी हिंसा को देख लिया, वह अहिंसक हो गया। जिस आदमी ने भी हिंसा को पहचान लिया, उसके हिंसक होने के फिर उपाय नहीं रह जाते। क्योंकि कोई भी आदमी जान कर नर्क में उतरने को कभी राजी नहीं होता है। और अगर कभी कोई नर्क में उतरता है, तो वह नर्क को स्वर्ग समझकर ही उतरता है। कोई आदमी कभी आग की लपटों में नहीं उतरता और अगर उतरता है तो आग की लपटों को स्वर्ग का द्वार समझकर ही उतरता है।
ध्यान विसर्जन है, निर्जरा है, कैथार्सिस है। ध्यान का अर्थ हैः आपके भीतर जो हो रहा है, उसे अकारण प्रकट हो जाने दें--किसी पर नहीं, शून्य में। उसे शून्य को समर्पित कर दें।
अब जब क्रोध आये, तो एक छोटा-सा प्रयोग करके देख लें। जब क्रोध आये, तो द्वार बंद कर लें और खाली कमरे में क्रोधित हो जायें। पूरा क्रोध कर लें खाली कमरे में। बहुत हंसी आयेगी, क्योंकि बड़ा अजीब मालूम पड़ेगा, एबसर्ड मालूम पड़ेगा। सदा क्रोध दूसरों पर किया है, लेकिन एक बार अकेले में करके देख लें और तब दूसरे पर करना मुश्किल होता जायेगा। पहली दफे अकेले में हंसी आयेगी और दूसरी दफे से दूसरे पर करने में हंसी आने लगेगी। क्योंकि जो पागलपन आप अकेले में भी नहीं कर सकते, वह पागलपन आप सबके सामने कैसे कर सकते हैं? और जो पागलपन अकेले में भी हंसी लाता है, वह चार आदमियों के सामने करके लोगों के मन में आपकी क्या तस्वीर बनाता होगा? इसकी कल्पना कमरे में आईना रखकर और दिल खोलकर क्रोध कर के देख लें। तोड़ना ही हो, तो आईने को तोड़ देना। और उस सारे विध्वंस के बीच खड़े होकर देखना कि आपके भीतर किस तरह के जहर हैं! इनकी निर्जरा होगी। इनकी कैथार्सिस होगी। ये गिर जायेंगे। और इनके गिरने के बाद आप अपनी हिंसा को देखने में समर्थ हो सकेंगे।
हिंसा से मुक्ति के लिए हिंसा का दर्शन अनिवार्य है।

ओशो, आपने कहा है कि काम-क्रीड़ा में सूक्ष्म हिंसा है। लेकिन क्या संभोग दो व्यक्तियों के परस्पर संपर्क से बायोलाजिकल सुख पैदा करने का आयोजन नहीं है? क्योंकि इस घटना के सुख में दोनों भागीदार होते हैं, इसलिए क्या इसमें म्युचुअल, परस्पर सहानुभूति और प्रेम आधार नहीं है?

ऋषभ से लेकर पार्श्व तक, धर्म को चार सूत्र दिए गए थे। कहें कि धर्म का
रथ चार पहियोंवाला था। या कहें कि धर्म के पास चार पैर थे। चतुर्यान था धर्म। महावीर ने एक पांचवां सूत्र जोड़ा--ब्रह्मचर्य। महावीर के पहले पार्श्व तक किसी ने ब्रह्मचर्य को धर्म का सूत्र नहीं बताया था।
यह बड़े मजे की बात है और काफी समझ लेने की। यह आश्चर्यजनक मालूम होगा
कि ऋषभ से लेकर पार्श्व तक के चिंतकों ने, अनुभवियों ने ब्रह्मचर्य को धर्म का सूत्र नहीं बताया। क्योंकि पार्श्व तक यही समझा जाता रहा कि जो अहिंसा को पा लेगा, उसके जीवन में ब्रह्मचर्य अनायास ही उतर जायेगा। क्योंकि काम अपने आप में एक गहरी हिंसा है, सेक्स अपने आप में एक गहरी हिंसा है।
काम को हिंसा क्यों कहा जा सकता है, इस संबंध में दो-चार सूत्र समझ लेने उपयोगी हैं। और महावीर ने क्यों ब्रह्मचर्य को अलग सूत्र दिया, यह भी थोड़ा सोच लेना उचित होगा।
महावीर का नाम अहिंसा के साथ गहराई से जुड़ा है; इतना कोई दूसरा नाम नहीं जुड़ा है। लेकिन आश्चर्य होगा आपको यह जानकर कि महावीर को अहिंसा से ब्रह्मचर्य को अलग कर देना पड़ा। और अलग कर देने का कुल कारण इतना है कि महावीर जिन लोगों के बीच बात कर रहे थे, वे बहुत गहरी अहिंसा समझने में असमर्थ थे, वे बहुत ही उथली अहिंसा समझ पाते थे। इतनी उथली अहिंसा में काम नहीं आता। अहिंसा जब बहुत गहरी होती है, तभी पता चलता है कि काम-वासना भी हिंसा का एक रूप है। लेकिन पार्श्व तक चर्चा नहीं करनी पड़ी, क्योंकि अहिंसा बड़े गहरे अर्थों में ली जाती रही। क्यों? दो तीन बातें हैं।
एक तो जैसा मैंने कहा कि जैसे ही किसी व्यक्ति को दूसरे की चाह पैदा होती है, वह आदमी दुखी है, इसका सबूत हो गया। जैसे ही कोई व्यक्ति कहता है कि मेरा सुख दूसरे से मिलेगा, वैसे ही वह व्यक्ति दुखी है, यह तय हो गया। और जो अपने से भी सुख नहीं पा सका, वह दूसरे से सुख पा सकेगा, यह असंभव है। भ्रम पा सकता है, सुख नहीं पा सकता; धोखा पा सकता है, सत्य नहीं पा सकता; सपने देख सकता है, लेकिन जाग-जागकर रोयेगा।
दूसरे की आकांक्षा ही इस बात का सबूत है कि अभी सुख का सूत्र नहीं मिला। और दूसरे की आकांक्षा के बिना तो काम नहीं हो सकता, सेक्स नहीं हो सकता! वह दूसरे की आकांक्षा में छिपा है। इसलिए भी काम हिंसा है। और इसलिए भी, कि एक व्यक्ति के पास जो वीर्य-कण हैं, वे जीवित हैं।
आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोगों की संख्या है। एक साधारण व्यक्ति के जीवन में जितने वीर्य-कण बनते हैं, उतने वीर्य-कणों से इतनी संख्या पैदा हो सकती है, सारी पृथ्वी की। और एक व्यक्ति जीवन भर इन वीर्य-कणों का काम के लिए उपयोग करता रहता है। संभोग के दो घंटे के भीतर... जितने वीर्य-कण शरीर से बाहर जाते हैं, वे दो घंटे के भीतर मर जाते हैं। अगर एकाध वीर्य-कण स्त्री के अंडे तक पहुंच गया, तो वह नए जीवन की यात्रा पर निकल जाता है, और शेष वीर्य-कण दो घंटे के भीतर मर जाते हैं। एक संभोग में लाखों वीर्य-कण मरते हैं। ये वीर्य-कण बीज-रूप में जीवन हैं। इनमें से प्रत्येक वीर्य-कण एक मनुष्य बन सकता है। इसलिए एक संभोग में लाखों व्यक्तियों की हत्या तो हो ही रही है। यह लाखों व्यक्तियों की हत्या हिंसा है।
तीसरी बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। जिस एक व्यक्ति के पैदा होने की संभावना है, अहिंसा को जिन्होंने बहुत गहरे जाना है, वे कहेंगे कि जिसको तुमने जन्म दिया, उसे तुमने मरने के लिए पैदा किया है। असल में जन्म, मरने की शुरुआत है। जन्म एक छोर है, मौत दूसरा छोर होगी।
यदि पिता जन्म के लिए ही जिम्मेवार है, तो आधी जिम्मेवारी ही ले रहा है। मरने की जिम्मेवारी किसकी होगी? मां अगर जन्म देने की ही जिम्मेवारी ले रही है, तो आधी जिम्मेवारी ले रही है। मरने की जिम्मेवारी किसकी होगी? यह तो बड़ा बेईमानी का सौदा हुआ कि जन्म की जिम्मेवारी मां ले ले, पिता ले ले, और मरने की... ?
असल में जन्म एक छोर है, मौत उसी का ही दूसरा छोर है। इसलिए पूर्ण-अहिंसक चित्त पिता और मां बनने की जिम्मेवारी लेने में असमर्थ होता है। उसका गहरा कारण है। वह किसी की मृत्यु का कारण नहीं बन सकता। जन्म देना, किसी की मृत्यु का कारण बनना है। भले ही सत्तर साल बाद वह मृत्यु हो। इस

टाइम गैप से कोई फर्क नहीं पड़ता। समय के अंतराल से कोई फर्क नहीं पड़ता है। तो काम-क्रीड़ा में जो वीर्य-कण दो घंटे बाद मर जायेंगे, वे तो मर ही जायेंगे, जो वीर्य-कण बचेगा, वह भी सत्तर वर्ष बाद, अस्सी वर्ष बाद मर जायेगा।
काम-क्रीड़ा जन्म के रूप में मृत्यु को ही जन्माती चली जाती है। लेकिन जीवन का सारा धोखा यही है कि पहले दरवाजे पर लिखा होता है--जन्म, और पिछले दरवाजे पर लिखा होता है--मृत्यु। जब आप भीतर प्रवेश करते हैं, तो जन्म का दरवाजा देखकर प्रवेश करते हैं; और जब बाहर निकाले जाते हैं, तब मृत्यु के दरवाजे से निकाले जाते हैं। जीवन का धोखा यही है कि पहले दरवाजे पर, एंटें्रस पर लिखा होता है, सुख। और पीछे के दरवाजे पर लिखा होता है, दुख। जब प्रवेश करते हैं, तब सुख की आकांक्षा में, और जब बाहर निकलते हैं, तो फ्रस्ट्रेटेड, दुख से विक्षिप्त और पागल।
मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है कि न्यूयार्क में एक आदमी ने बहुत-सी अजीब चीजें इकट्ठी कर ली थीं और एक अजायबघर बना रखा था। लेकिन चीजें इतनी अजीब थीं कि जो भी आदमी अजायबघर में देखने आते थे, वे देखते ही रहते थे, निकलने को राजी नहीं होते थे! और जब तक वे न निकल जायें, तब तक दूसरे लोग टिकट ले कर द्वार पर खड़े रहते, उनके भीतर आने का सवाल न होता। तो बड़ी मुश्किल हो गई थी। आखिर भीतर के लोगों को बाहर निकालना ही पड़ेगा, क्योंकि दरवाजे पर दूसरे लोग दस्तक दे रहे हैं कि उनको भी भीतर आने दिया जाये! और जो भीतर आता वह बाहर निकलता ही नहीं।
तो उन अजीब चीजों को संग्रहीत करनेवाले आदमी ने एक कारीगिरी, एक कुशलता की। शायद वह कुशलता उसने प्रकृति से ही सीखी होगी! कोई दस-बारह कमरे थे उस अजायबघर में। एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने की तख्ती लगी थी और तीर बना था। पहले कमरे पर तीर लगा होता था--और भी अदभुत चीजें हैं--और तीर अगले कमरे में ले जाता था। और बारहवें कमरे पर सबसे बड़ा तीर लगा था और उस पर लिखा था--और भी सबसे अधिक अदभुत चीजें हैं, जो न कभी देखी हैं, न कभी सुनी हैं! और जब आदमी उस कमरे में से निकलता, तो सीधा सड़क पर पहुंच जाता! और पीछे लौटने का उपाय नहीं था। दरवाजे पर संतरी खड़ा था। फिर लौटना हो, तो टिकट लेकर पहले दरवाजे से ही वापस लौटना पड़ता था। जिस दिन से यह तख्ती लगायी गई, उस दिन से उस म्यूजियम में कभी भीड़ नहीं हुई, क्योंकि वह "और भी अदभुत चीजें" देखने आदमी सड़क पर पहुंच जाता!
जन्म की तख्ती सामने के द्वार पर है, मृत्यु की तख्ती पीछे के द्वार
पर है। अहिंसा को जिन्होंने गहरे जीया है, जिन्होंने जाना है, वे यह भी कहेंगे कि जन्म देना भी हिंसा है।
इन तीन कारणों से काम-क्रीड़ा हिंसा का ही एक रूप है। और दुखी मनुष्य-- जैसा मैंने पहले कहा--दूसरे से सुख पाना चाहता है। लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि वह दूसरा आदमी जो आपसे काम-क्रीड़ा में संलग्न हो रहा है, वह भी दुखी है, और आपसे सुख पाना चाहता है! ये दो भिखमंगे एक दूसरे से भीख मांग रहे हैं।
मैंने सुना है कि एक गांव में दो ज्योतिषी थे। वे रोज सुबह अपना ज्योतिष का काम करने बाजार जाते थे। और रास्ते में जब भी मिल जाते, तो एक दूसरे को अपना हाथ दिखा लेते थे कि क्या ख्याल है, आज धंधा कैसा चलेगा?
हम सारी जिंदगी ऐसा ही कर रहे हैं। सब दुखी हैं और एक दूसरे से सुख मांग रहे हैं। जिससे मैं सुख मांगने गया हूं, वह मुझसे सुख मांगने आया है! स्वभावतः, इन दो दुखी आदमियों का अंतिम परिणाम दुगुना दुख होगा, सुख नहीं। दुख दुगुना हो जायेगा। बल्कि दुगुना कहना ठीक नहीं, क्योंकि जिंदगी में जोड़ नहीं होते, गुणनफल होते हैं। यहां चीजें ज.ुडती नहीं, गुणित हो जाती हैं। यहां चार और चार मिलकर आठ नहीं होते, सोलह हो जाते हैं। जिंदगी में जब दो दुखी आदमी मिलते हैं, तो उनका दुख सिर्फ जुड़ नहीं जाता, उनका दुख कई गुना हो जाता है।
मैं दूसरे को दुख देने का कारण बनूं--हिंसा है। और जब तक मैं दुखी हूं,
तब तक मेरे सभी संबंध--जो मैं निर्मित करूंगा--दुख देनेवाले ही होंगे। इसलिए अहिंसक कहेगा, जब तक हिंसा है चित्त में, दुख है चित्त में, तब तक संग ही मत बनाओ, संबंध ही मत बनाओ, क्योंकि सब संबंध दुख को ही फैलायेंगे। असंग

हो जाओ, संबंध के बाहर हो जाओ! जिस दिन आनंद भर जाये, उस दिन संबंधित हो जाना!
लेकिन कठिनाई यही है जिंदगी की कि जो दुखी हैं, वे संबंधित होना चाहते हैं; और जो आनंदित हैं, उन्हें संबंध का पता ही नहीं रह जाता! ऐसा नहीं कि वे संबंधित नहीं होते, लेकिन उन्हें पता नहीं रह जाता; कोई आकांक्षा नहीं रह जाती। अगर उनसे लोगों के संबंध भी बनते हैं, तो सदा वन वे ट्रैफिक होते हैं। दूसरे लोग ही उनसे संबंधित होते हैं। वे तो असंग, अनरिलेटेड खड़े रह जाते हैं। दूसरे ही उन्हें छूते हैं, वे दूसरों को नहीं छू पाते। हां, उनका आनंद जरूर जो उनके निकट आता है उन पर बरसता रहता है। वह वैसे ही बरसता रहता है, जैसे सूरज की किरणें बरसती हैं। वह वैसे ही बरसता रहता है, जैसे वृक्षों में खिले हुए फूल बरसते रहते हैं। किसी के लिए नहीं, वृक्ष के पास बहुत हो गए हैं इसलिए ओवर फ्लोइंग है। चीजें बाढ़ में आ गयी हैं और बरसती रहती हैं।
दुखी आदमी संबंध खोजता है, और जिनसे संबंध खोजता है, सिर्फ उन्हें दुखी छोड़ पाता है। किस आदमी ने संबंध बनाकर सुख पाया? किस आदमी ने संबंधित होकर किसी को सुख दिया? कोई नहीं दे पाता है। यह सारी पृथ्वी दुखी लोगों की पृथ्वी है। और यह सारी पृथ्वी दुखी लोगों के प्रयास से--सुख पाने के और सुख देने के प्रयास से--करोड़-गुना दुखी होकर नर्क बन गई है।
काम-क्रीड़ा हिंसा का एक रूप है, क्योंकि दुखी चित्त की खोज है। अहिंसा आनंदित चित्त का बहाव है। हिंसा दुखी चित्त का, विक्षिप्त रोगों का दूसरों में संक्रमण, इनसैक्सन है। इसलिए पार्श्व तक ब्रह्मचर्य को अलग सूत्र ही नहीं गिना।
महावीर को गिनना पड़ा। क्योंकि महावीर जिस समाज में पैदा हुए, वह एक डेकाडेंट सोसाइटी थी। वह एक मरता हुआ समाज था। महावीर जिस समाज में पैदा हुये वह भारत में उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ समाज था और जब उन्नति के शिखर पर कोई समाज पहुंच जाता है, तो पतन शुरू हो जाता है। सब शिखर पर पहुंचे हुए समाज, पतित होते हुए समाज होते हैं। जैसे अमरीका आज एक डेकाडेंट सोसाइटी है। उसने एक शिखर छू लिया है। अब पतन होगा। सब चीजों में बिखराव होगा। जहां-जहां शिखर छू लिया जायेगा, वहां-वहां बिखराव होगा। महावीर जिस समय भारत में पैदा हुए, उस समय, विशेषकर बिहार अपनी उन्नति
के स्वर्ण-शिखर पर था। सब तरफ स्वर्ण था। सब तरफ उन्नति ऊंचाई पर थी। सब चीजें सड़ रही थीं और गिर रही थीं। इस समाज के बीच महावीर जैसे व्यक्ति को अहिंसा की बात करनी पड़ी। इस बात को बहुत गहरे तक ले जाना मुश्किल था, क्योंकि जो कान थे, वे बहरे थे।
ऋषभ को जो लोग मिले थे वे सीधे-सरल लोग थे। विकासमान समाज था-- डिकाडेंट नहीं। इवाल्व हो रहा था। विकसित हो रहा था। लोग बच्चों की तरह भोले थे, सरल थे, सीधे थे। उनसे बहुत गहरी बात की जा सकती थी और वे गहरी बात सुन सकते थे। अभी वे बहरे नहीं हो गए थे। अभी सभ्यता और संस्कृति के शोर ने उनके कानों को फोड़ नहीं डाला था। अभी उनकी आत्माओं में बच्चों की सरलता और ताजगी थी। अभी वहां गीत पहुंच सकते थे। अभी वहां स्वर पहुंच सकते थे। इसलिए उन्होंने ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं की। क्योंकि अहिंसा में ही ब्रह्मचर्य अपने आप समाविष्ट हो जाता था।
लेकिन महावीर को सूत्र पांच कर देने पड़े। चार की जगह एक सूत्र और बढ़ाना पड़ा। क्योंकि उन लोगों को यह समझाना मुश्किल हुआ कि अहिंसा इतनी गहरी हो सकती है कि काम, सेक्स भी हिंसा हो जाये। और इसीलिए तो महावीर के आधार पर जो विचार की परंपरा चली, वह परंपरा अहिंसा की उन गहराइयों को नहीं छू पाई, जो ऋषभ और पार्श्व के मन में थीं। महावीर के आधार पर जो विचार चला, वह विचार--चींटी मत मारो, पानी छान कर पीयो, हिंसा मत करो, किसी को मारो मत, दुख मत दो, मांस मत खाओ--इस तरह की ऊपरी अहिंसा बनकर रह गई।
इसके जिम्मेवार महावीर नहीं हैं। महावीर के आस-पास जो लोग थे, जिनसे उन्हें बात करनी थी, वे लोग जिम्मेवार हैं। इसलिए वह परंपरा बहुत साधारण होकर रह गई।
सोचें, कैसे अदभुत लोग रहे होंगे ऋषभ और पार्श्व, जिन्होंने ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं की! क्योंकि उन्होंने कहा, अहिंसक हो जाओ, तो

ब्रह्मचर्य तो आ ही जायेगा। उसकी कोई अलग से व्यवस्था देने की जरूरत नहीं थी।
कनफ्यूसियस एक बार लाओत्से के पास गया और लाओत्से से उसने कहा, लोगों
को धर्म सिखाना पड़ेगा। तो लाओत्से ने कहा कि तुम्हें पता है वह जमाना, जब लोग इतने धार्मिक थे कि धर्म की कोई बात ही नहीं करता था?
धर्म की बात सिर्फ अधार्मिक समाज में करनी पड़ती है। धार्मिक समाज में धर्म की बात करने की कोई भी जरूरत नहीं है। लाओत्से ने कहा, जमाना था जब लोग धार्मिक थे, तब धर्म की बात करनी व्यर्थ थी। क्योंकि जब लोग धार्मिक हों, तो धर्म की बात नहीं करनी पड़ती। बीमार आदमी के सिवाय स्वास्थ्य की चर्चा और कोई भी नहीं करता। बीमार आदमी चौबीस घंटे स्वास्थ्य की चर्चा करता है। अकसर बीमार आदमी खुद ही धीरे-धीरे डाक्टर हो जाते हैं--स्वास्थ्य की चर्चा करते-करते! बीमार आदमी स्वास्थ्य की पत्रिकाएं पढ़ते हैं, नेचरोपैथी की किताबें पढ़ते हैं! बीमार आदमी स्वास्थ्य की बहुत चर्चा करता है, क्योंकि उस बेचारे को बीमारी इतना सचेतन बनाए रखती है कि स्वास्थ्य की चर्चा से मन को भुलाए रखता है। अनैतिक समाज नीति की चर्चाएं करते हैं, कामुक समाज ब्रह्मचर्य की चर्चाएं करते हैं, पतित समाज उत्थान की चर्चाएं करते हैं, गरीब समाज धन की चर्चा करते हैं। जो नहीं होता, हम उसकी ही चर्चा करते हैं।
महावीर के वक्त में हिंसा बहुत थी, अहिंसा बहुत गहरे नहीं जा सकती थी, इसलिए ब्रह्मचर्य की चर्चा अलग करनी पड़ी। ऋषभ को अहिंसा की चर्चा ही काफी हुई। और शायद ऋषभ के पहले अहिंसा की चर्चा की भी जरूरत न रही हो। क्योंकि अहिंसा की चर्चा भी तभी शुरू होती है, जब हिंसा जोर से चित्त को पकड़ लेती है।
इसलिए मैंने कहा कि काम भी हिंसा का एक रूप है, और अकाम अहिंसा का खिल जाना है।

ओशो, हम एक बड़ी मुसीबत में पड़ गए हैं! और वह मुसीबत हमारे लिए यह है कि अभी तक हमारी यह धारणा रही थी कि सहानुभूति, सिंपैथी ही अहिंसा का एक अंग है। और हम बहुत दिनों से बराबर इसे मानते रहे थे। लेकिन पंच-महाव्रत प्रवचनमाला के अंतर्गत आपने अहिंसा के संदर्भ में बताया कि सहानुभूति में हिंसा छिपी है, क्योंकि इसमें दूसरा मौजूद है। फिर आपने इसको और आगे बढ़ाया और आपने समानुभूति का उदाहरण देते हुए परमहंस स्वामी रामकृष्ण का जिक्र किया। और जिसमें आपने यह भी बताया कि एक किसान पर जब कोड़े लग रहे थे, उस समय उन कोड़ों के निशान स्वामी रामकृष्ण परमहंस की पीठ पर भी दिखाई पड़ रहे थे।
तो ये सहानुभूति और समानुभूति--ये दो चीजें हिंसा-वृत्ति के संदर्भ में क्या इनमें सूक्ष्म भिन्नता है, यह बताने की कृपा करें। और साथ ही साथ यह बताने की कृपा भी करें कि जिसे आपने समानुभूति का नाम दिया है, क्या वह मानसिक तल की घटना है या आध्यात्मिक तल की बात है?

सहानुभूति, सिंपैथी साधारणतः बड़ी मूल्यवान और कीमती चीज समझी जाती रही है--है नहीं। सहानुभूति का अर्थ है, कोई आदमी दुखी है और आप उसके दुख में दुख प्रकट करते हैं; दुखी होते हैं। सहानुभूति का अर्थ है, सह-अनुभूति; दूसरे के साथ-साथ अनुभव करना। लेकिन जो आदमी दूसरे के दुख में दुख अनुभव करता है, वह आदमी दूसरे के सुख में कभी सुख अनुभव नहीं कर पाता! अगर किसी के बड़े मकान में आग लग जाये, तो आप दुख प्रगट करते हैं; लेकिन किसी का बड़ा मकान बन जाये, तो सुख नहीं प्रगट कर पाते!
इस बात को समझ लेना जरूरी है। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि सहानुभूति एक धोखा है। सहानुभूति तभी सच्ची हो सकती है, जब दूसरे के दुख में दुख अनुभव हो और दूसरे के सुख में सुख अनुभव हो।
लेकिन दुख में तो दुख अनुभव हम कर पाते हैं या दिखा पाते हैं, सुख में सुख अनुभव नहीं कर पाते। इसलिए, कर पाते हैं, कहना ठीक नहीं होगा, दिखा पाते हैं, कहना ठीक होगा। जब दूसरा दुखी होता है, तो हम दुख प्रगट कर पाते हैं। अगर हम दूसरे के सुख में भी सुखी हो पायें, तब तो हमारा दुख प्रगट

करना वास्तविक होगा। अन्यथा दूसरे के दुख में भी हमें थोड़ा-सा रस आता है; दूसरे के दुख में भी हमें थोड़ा मजा आता है; दूसरे के दुख में भी हम रस भोर होते हैं।
इसलिए जब आप किसी दूसरे के दुख में दुख प्रगट करने जायें, तब जरा अपने भीतर टटोलकर देखना कि कहीं आपको मजा तो नहीं आ रहा है! एक तो मजा यह आता है कि हम सहानुभूति प्रगट करनेवाले हैं और दूसरा आदमी सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ गया है। जब कोई दूसरा आदमी सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ जाता है, तो याचक हो जाता है और आप मुफ्त में दाता हो जाते हैं। दूसरा आदमी जब सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ जाता है, तो आप विशेष और वह दीन हो जाता है। और अपने भीतर आप खोजेंगे, तो अपने दुख प्रकट करने में भी आपको एक रस की उपस्थिति मिलेगी। मिलेगी ही! इसलिए मिलेगी, कि अगर न मिले तो आप दूसरे के सुख में भी पूरी तरह सुखी हो पायेंगे।
लेकिन दूसरे के सुख में तो ईर्ष्या भर जाती है, जेलसी भर जाती है, जलन
भर जाती है!
दूसरा पहलू इस बात की खबर देता है कि दूसरे के दुख में हम दुखी नहीं हो सकते, लेकिन इसी को हम सहानुभूति कहते रहे हैं। इसी को मैं सहानुभूति कहकर बात कर रहा हूं। इसलिए मैंने दूसरा शब्द चुनना उचित समझा, वह है-- समानुभूति, एंपैथी।
सहानुभूति एक तो झूठी होती है, वंचना होती है, और अगर हम यह भी समझ लें
कि किसी आदमी की सहानुभूति सच्ची ही हो; वह दूसरे के दुख में दुख अनुभव करे और दूसरे के सुख में सुख अनुभव करे, तो भी हिंसा ही रहती है; अहिंसा नहीं हो पाती। झूठी हो, तब तो निश्चित ही हिंसा होती है; सच्ची हो, तब भी हिंसा ही होती है; अहिंसा नहीं हो पाती। क्योंकि जब तक दूसरा मौजूद है, तब तक अहिंसा फलित नहीं होती। अहिंसा अद्वैत की अनुभूति है। अहिंसा इस बात का अनुभव है कि वहां दूसरा नहीं, मैं ही हूं।
जब दूसरा दुखी हो रहा है, तब ऐसा अनुभव हो कि दूसरा दुखी हो रहा है और मैं भी दुख अनुभव कर रहा हूं--यह अगर झूठा है, तब तो हिंसा होगी ही--अगर सच्चा ही है, तो भी मैं मैं हूं और दूसरा दूसरा है; दोनों के बीच का सेतु नहीं टूट गया है; और जहां तक दूसरा दूसरा है, वहां तक अहिंसा संभव नहीं है। दूसरे को दूसरा जानना भी हिंसा है। क्यों? क्योंकि जब तक मैं दूसरे को दूसरा जान रहा हूं, तब तक मैं अज्ञान में जी रहा हूं; दूसरा, दूसरा है नहीं। समानुभूति का अर्थ है कि दूसरे को दुख हो रहा है, ऐसा नहीं--मैं ही दुखी हो गया हूं। दूसरा सुखी हो गया है, ऐसा नहीं--मैं ही सुखी हो गया हूं। ऐसा नहीं कि आकाश में चांद प्रकाशित हो रहा है--मैं ही प्रकाशित हो गया हूं। ऐसा नहीं कि सूरज निकला है-- बल्कि मैं ही निकल आया हूं। ऐसा नहीं कि फूल खिले हैं--बल्कि मैं ही खिल गया हूं।
एंपैथी का अर्थ है, अद्वैत। समानुभूति का अर्थ है, एकत्व। अहिंसा, एकत्व है।
तो ये तीन स्थितियां हुईंः झूठी सहानुभूति, फाल्स सिंपैथी--जो हिंसा है। सच्ची सहानुभूति--जो हिंसा का बहुत सूक्ष्मतम रूप है। और समानुभूति-- जो अहिंसा है।
हिंसा हो या हिंसा का सूक्ष्म रूप हो, सच्ची सहानुभूति हो, झूठी सहानुभूति हो, वे सब मानसिक तल की घटनाएं हैं। समानुभूति, एंपैथी आध्यात्मिक तल की घटना है।
मन के तल पर हम कभी एक नहीं हो सकते। मेरा मन अलग है, आपका मन अलग है। मेरा शरीर अलग है, आपका शरीर अलग है। शरीर और मन के तल पर ऐक्य असंभव है--हो नहीं सकता। सिर्फ आत्मा के तल पर ऐक्य संभव है; क्योंकि आत्मा के तल पर हम एक हैं ही।
जैसे एक घड़े को हम पानी में डुबा दें, भर जाये घड़े में पानी, तो घड़े के भीतर पानी और घड़े के बाहर पानी एक ही है। सिर्फ बीच में एक घड़े की मिट्टी की दीवाल है, जो टूट जाये, तो पानी एक हो जाये।
मन और शरीर की एक दीवाल है, जो दूसरे से मिलने से रोकती है, जो दूसरे के साथ एक नहीं होने देती। हम सब घड़े हैं मिट्टी के, चेतना के बड़े सागर में। घड़े तो अलग होंगे, लेकिन घड़े के जो भीतर है, वह अलग नहीं है। और जो अहिंसा

को अनुभव करता है, या जो आत्मा को अनुभव करता है, वह अनुभव कर लेता है कि घड़े कितने ही अलग हों, घड़े के भीतर एक ही विराजमान है।
इस एक का अनुभव अहिंसा है। इसलिए इसमें सहानुभूति नहीं हो सकती।
सहानुभूति में दूसरा जरूरी है। इसमें समानुभूति हो सकती है। दूसरा इसमें नहीं बचा है।
समानुभूति, चित्त और मन के पार है। वह बियांड माइंड है। वह मन के भीतर
और मन के नीचे नहीं--मन के ऊपर और मन के पार है।
यह जो मन के पार घटना घटती है, यही अध्यात्म है। सिर्फ आध्यामिक कह सकता है, वही जो तुम हो, वही मैं हूं। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि सूरज में जो जल रही है ज्योति, वही इस छोटे-से मिट्टी के दीए में भी जल रही है। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि कण में जो है वही विराट में भी है। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि बूंद और सागर एक ही चीज के दो नाम हैं। समानुभूति का अर्थ है--बूंद और सागर एक हैं। और जिसने एक बूंद को भी पूरा जान लिया, उसे सागर में जानने को कुछ बाकी नहीं रह जाता। एक बूंद जान ली तो पूरा सागर जान लिया। जिसने अपने भीतर की बूंद जान ली, उसने सबके भीतर के सागर को भी जान लिया। फिर वह मरता नहीं। कैसे मरेगा, क्योंकि वह बचा नहीं। फिर वह अहंकार, वह "मैं" विदा हो गया, क्योंकि कोई "तू" नहीं मिला कहीं। जब तक "तू" मिले, तभी तक "मैं" बच सकता है। जब "तू" न मिले तो "मैं" भी नहीं बच सकता। वह "तू" और "मैं" की जोड़ी साथ-साथ है।
मार्टिन बूवर ने आई ऐण्ड दाऊ, एक किताब लिखी है। कीमती किताब है। मैं
और तू। मार्टिन बूवर के ख्याल से जीवन के सारे संबंध मैं और तू के संबंध हैं। लेकिन एक और जगत भी है, जो मैं और तू के बाहर है, बियांड आई ऐण्ड दाऊ। एक और जगत है, वास्तविक जीवन का--संबंधों का नहीं--जीवन-ऊर्जा का, परमात्मा का, जहां मैं और तू नहीं हैं।
बंगाली में एक छोटा-सा नाटक है, जिसमें कथा है कि एक यात्री वृंदावन गया है। रास्ते में, उसके पास जो सामान था, सब चोरी हो गया। पर सोचा उसने, अच्छा ही है कृष्ण के पास खाली हाथ जाऊं, यही उचित है। क्योंकि भरे हाथ को वे भी कैसे भर पायेंगे! अगर कृष्ण से भरना है, तो खाली हाथ ही लेकर जाऊं, यही उचित है। शायद कृष्ण ने ही चोर भेजे होंगे! उसने धन्यवाद दिया और आगे बढ़ गया।
फिर वह मंदिर के द्वार पर पहुंचा, लेकिन द्वारपाल ने उसे रोक लिया और कहा, भीतर न जा सकोगे। पहले सामान बाहर रख दो। तो उसने कहा, अब तो सामान बचा भी नहीं, वह तो कृष्ण के चोर पहले ही छीन चुके।
नहीं, द्वारपाल ने कहा, पहले सामान बाहर रख दो, फिर भीतर जा सकते हो।
यहां तो सिर्फ खाली हाथ ही जा सकते हो।
उस आदमी ने अपने हाथ देखे, वे खाली थे। उसने द्वारपाल के सामने हाथ किए, वे खाली थे। द्वारपाल ने कहा, नहीं, भरे हाथ नहीं जा सकते हो।
पर आदमी ने कहा कि मैं तो अब बिल्कुल खाली हाथ ही हूं!
उस द्वारपाल ने कहा, जब तक तुम हो, तब तक कैसे खाली हाथ हो सकते हो? जब
तक तुम कहते हो, मैं तो बिल्कुल खाली हाथ हूं, तब तक तुम खाली हाथ कैसे हो सकते हो? कम से कम "मैं" तो तुम्हारे हाथों में भरा ही है। इस "मैं" को बाहर छोड़ दो।
मैं को बाहर छोड़े बिना कोई परमात्मा के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकता। मैं को छोड़कर जो जीता है, वह एंपैथी को, समानुभूति को उपलब्ध होता है। जिसका मैं मर जाता है, उसके लिए, दूसरों को जो हो रहा है वह भी उसे ही हो रहा है। या उसे का भी सवाल नहीं है, बस हो रहा है। कहीं भी कांटा गड़ता है, तो उसकी पीड़ा उसे भी पहुंच जाती है। कहीं आनंद की बांसुरी बजती है, तो वे भी उसके अपने ही स्वर हो जाते हैं। अब कुछ भी पराया नहीं, अब कुछ भी अजनबी नहीं, अब कुछ भी दूसरा नहीं।
समानुभूति अध्यात्म की श्रेष्ठतम ऊंचाई है। सहानुभूति हमारी कामचलाऊ दुनिया की व्यवहारिकता है। उस सहानुभूति में अक्सर तो निन्यान्बे प्रतिशत झूठी होती है सहानुभूति। हम सिर्फ धोखा देते हैं-- दूसरों को ही नहीं, अपने को भी। कभी एक प्रतिशत सच होती है, तब भी मैं और तू कायम रह जाते हैं, घड़े मौजूद रहते हैं। शायद झांककर एक घड़े से दूसरे घड़े

में हम देख लेते हैं, लेकिन फिर भी दोनों के बीच एक ही है, एक ही प्रवाहित है--इसका कोई पता नहीं चल पाता है।
समानुभूति मैंने उस तत्व को कहा है, जहां एक ही शेष रह जाता है, जहां दूसरा नहीं है। अद्वैत कहें, ब्रह्म कहें, परमात्मा कहें, और कोई नाम दें; अस्तित्व कहें, एक्जिस्टेंस कहें, कोई और नाम दें; एक ही जहां रह जाता है, वहां जीवन अपनी परम ऊंचाइयों पर, अपने पीक एक्सपीरिएंस पर परम अनुभूति को उपलब्ध होता है। गिराना होता है तू को और मैं को।
उस दिन मैंने यह भी कहा कि मैं और तू का संबंध ही हिंसा है। कठिन होगा थोड़ा, क्योंकि मैं और तू के अतिरिक्त हम कोई भी क्षण नहीं जानते। लेकिन थोड़ा प्रयोग करें, तो शायद क्षणों की झलक मिल जाये।
कभी रेत में, नदी के किनारे बैठकर। लेट जायें, दोनों हाथ-पैर पसार कर। छाती में भर लें रेत को। बंद कर लें आंखें। छिपा लें अपने चेहरे को भी रेत में। भूल जायें यह कि आप हैं और रेत है। तोड़ दें वह बीच की जगह, वह फासला जो रेत को आपसे अलग करता है। रेत की ठंडक को प्रवेश कर जाने दें स्वयं में। स्वयं की गर्मी को प्रवेश कर जाने दें रेत में। अनुभव करें कि फैल गए हैं और एक हो गए हैं उस रेत से।
कभी खुले आकाश में हाथ फैलाकर खड़े हो जायें। आलिंगन कर लें खुले आकाश
का, शून्य का। कभी घड़ी भर मौन रह जायें खुले आकाश के साथ। छोड़ दें यह ख्याल कि शरीर की सीमा पर मैं समाप्त हो जाता हूं। बढ़ायें अपनी सीमा को। हो जाने दें इतनी ही बड़ी, जितनी आकाश की है।
कभी रात के तारों के साथ, लेट जायें जमीन पर। और रात के तारों को आने दें अपने तक। और जाने दें अपने को तारों तक। और भूल जायें कि वहां तारे हैं और यहां आप हैं। तारे और आपके बीच जो लेन-देन रहे, वही बाकी रह जाये। वह जो कम्युनिकेशन हो, वह जो संवाद हो, वही बाकी रह जाये।
तो बहुत जल्दी, बहुत शीघ्र धीरे-धीरे, अचानक जीवन में एक्सप्लोजन होने लगेंगे। और एहसास होने लगेगा कि न तो उस तरफ कोई तू है और न ही इस तरफ कोई मैं है। शायद एक ही है दोनों तरफ। एक के ही बायें और दायें हाथ दो छोरों पर हैं। एक ही हवा की लहर, जो इधर आई थी, उधर चली गई है।
आप जो श्वास ले रहे हैं, मेरे पास आ जाती है, फिर मेरी हो जाती है। और मैं ले भी नहीं पाता कि निकल जाती है और आपकी हो जाती है। अभी वृक्ष लेता था उसे, अभी पृथ्वी लेती थी उसे, अभी आपने लिया था उसे, अभी मैंने लिया उसे! जीवन एक सतत प्रवाह है, जीवन एक अखंड धारा है। जीवन एक है, लेकिन हम उस एकता का अनुभव नहीं कर पाते; क्योंकि हम सब ने अपने आसपास परकोटे खींचे हैं, हमने अपनी दीवालें बनायी हैं, हमने सब तरफ से अपने को रोका है और सब तरफ सीमाएं बनायी हैं। ये सीमाएं हमारी कल्पित बनाई गई सीमाएं हैं, ये सीमाएं कहीं हैं नहीं। ये सीमाएं हमने बना रखी हैं, ये सीमायें कामचलाऊ हैं, इन सीमाओं का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है।
अगर एक वैज्ञानिक से पूछें, तो वह भी कहेगा, नहीं है; और अगर एक आध्यात्मिक से पूछें, तो वह भी कहेगा, नहीं है। आध्यात्मिक इसलिए कहेगा कि आत्मा के फैलाव को देखा है उसने। और वैज्ञानिक इसलिए कहेगा कि सब सीमाएं खोजीं और सीमाओं को कहीं पाया नहीं उसने।
वैज्ञानिक से पूछें कि आपका शरीर कहां समाप्त होता है? तो वह कहेगा, कहना मुश्किल है। हड्डियों पर समाप्त होता है? हड्डियों पर समाप्त नहीं होता, क्योंकि हड्डियों पर मांस है। मांस पर समाप्त होता है? मांस पर समाप्त नहीं होता, क्योंकि मांस पर चमड़े की पर्त है। चमड़े की पर्त पर समाप्त होता है? चमड़े की पर्त पर समाप्त नहीं होता, क्योंकि बाहर हवा की अनिवार्य पर्त जरूरी है। अगर वह न रह जाये, तो न हड्डी होगी, न मांस होगा। हवा की पर्त पर समाप्त होता है? नहीं, हवा की पर्त तो दो सौ मील पृथ्वी के पूरे होने पर समाप्त हो जाती है। लेकिन अगर सूरज की किरणें इस हवा के पर्त को न मिलती रहें, तो यह हवा की पर्त भी न रह जायेगी। सूरज तो दस करोड़ मील दूर है। तो मेरा शरीर सूरज पर समाप्त होता है? दस करोड़ मील दूर? तो सूरज भी ठंडा पड़ जायेगा अगर महासूर्यों से उसे प्रकाश की किरण निरंतर न मिलती रहे। तो मेरा शरीर समाप्त कहां होता है?

वैज्ञानिक कहता है, सब सीमाएं खोजीं और सीमाओं को नहीं पाया। आध्यात्मिक कहता है, भीतर देखा और असीम को पाया। आध्यात्मिक कहता है, असीम को पाया; वैज्ञानिक कहता है, सीमाओं को नहीं पाया। वैज्ञानिक नकार की भाषा बोलता है, निगेटिव की। वह कहता है, सीमा नहीं है। आध्यात्मिक पाजिटिव की, विधेय की भाषा बोलता है; वह कहता है, असीम है। लेकिन उन दोनों बातों का मतलब एक है। और आज विज्ञान और धर्म बड़े निकट आकर खड़े हो गए हैं। उनकी सारी घोषणाएं निकट आकर खड़ी हो गई हैं। आज वैज्ञानिक नहीं कह सकता कि आपका शरीर कहां समाप्त होता है। यह शरीर वहीं समाप्त होता है, जहां ब्रह्मांड समाप्त होता होगा। इसके पहले समाप्त नहीं होता।
इस अनुभव को मैं समानुभूति कहता हूं, जब तारे दूर नहीं रह जाते, मेरे भीतर घूमने लगते हैं; जब मैं तारों से दूर नहीं रह जाता और उनकी किरणों पर नाचने लगता हूं; और जब सागर की लहरें दूर नहीं रह जातीं, मेरी ही लहरें हो जाती हैं; और जब मैं दूर नहीं रह जाता, सागर की लहरों पर झाग बन जाता हूं; और जब वृक्षों पर खिले फूल मेरे ही फूल होते हैं, और वृक्षों से गिरे सूखे पत्ते मेरे ही सूखे पत्ते होते हैं; तब मैं अलग नहीं रह जाता हूं।
अलग हम हैं भी नहीं। अलग होने से ज्यादा कोई भ्रम नहीं है। सेप्रेटनेस, अलग होने का ख्याल सबसे बड़ा इलूजन है, सबसे बड़ा भ्रम है; लेकिन उसे हम पालकर जीते हैं। उपयोगी है, अगर उसे हम न पालें, तो कठिनाई होगी। आपका धन है, तो उसे मैं मेरा नहीं कह सकता। आपके कपड़े हैं, और उन्हें मैं उतार कर मेरे नहीं बना सकता। जीवन के व्यवहार में आपकी दुकान है, वह मेरी नहीं है; और आपका मकान है, वह मेरा नहीं है। हालांकि आपके घर मेहमान होता हूं तो आप कहते हैं, सब आपका ही है! लेकिन उसको गंभीरता से लेने की कोई भी जरूरत नहीं है।
जीवन के व्यवहार में सीमाएं काम करती मालूम पड़ती हैं, लेकिन जीवन सिर्फ व्यवहार का नाम नहीं है। जीवन सिर्फ दूकान नहीं है; मकान और कपड़े नहीं है। जीवन केवल आजीविका के उपाय नहीं है। जीवन तिजोरियों में नहीं है, वस्त्रों में नहीं है। जीवन बड़ी बात है। जीवन सिर्फ उपयोगिता, युटीलिटी नहीं है। जीवन आनंद भी है। जीवन लीला भी है, जीवन अपार रहस्य भी है। इसलिए जो उपयोगिता को सब मान लेगा, वह मुश्किल में पड़ जायेगा। उपयोगिता में हम बहुत झूठी बातें करते हैं, पर उनसे काम चलता है, चल जाता है; क्योंकि सारी उपयोगिता माने हुए सत्यों पर चलती है।
मैं किसी के घर रुकता हूं, और कहता हूं, पानी का एक गिलास ले आयें। और
वह गिलास में पानी ले आता है! अब तक कोई "पानी का गिलास" लाता हुआ मिला नहीं। काम चल जाता है, पर झूठ है बिल्कुल। पानी का गिलास लाइएगा भी कैसे? पानी का गिलास लाया नहीं जा सकता। लेकिन समझें, हम दोनों समझ गए। वह पानी का गिलास तो नहीं लाता--गिलास तो कांच का लाता है, तांबे का लाता है, पीतल का लाता है--उसमें पानी ले आता है। न तो मैं उससे झगड़ा करता हूं कि आपने मेरी बात मानी नहीं, न वह मुझसे झगड़ा करता है कि आप बड़ी आध्यात्मिक भाषा बोल रहे हैं। काम चल जाता है।
लेकिन जिंदगी कामचलाऊ नहीं है, जिंदगी कामचलाऊपन से ऊपर है। हमारी सब भाषा कामचलाऊ है, उससे इशारे हो जाते हैं, गैस्चर्स हैं; और काम चल जाये, बात पूरी हो जाती है। लेकिन जिसने कामचलाऊपन को, व्यवहार को जिंदगी समझ लिया, वह आदमी जिंदगी के बड़े रहस्यों से वंचित रह जाता है। उसके लिए जिंदगी के परम रहस्य के द्वार खुल ही नहीं पाते। उसके लिए जीवन-वीणा का संगीत बज ही नहीं पाता। उसके लिए परमात्मा पुकारता रहता है, उसे उसकी पुकार सुनायी ही नहीं पड़ती।
यह जो अद्वैत, यह जो असीम-अनंत जीवन है, उपयोगिता में उसे खो मत देना। उसे उपयोगिता के बाहर खोजते ही रहना। उसे मेरे-तेरे के बाहर अन्वेषण करते ही रहना। उसे उस दिन तक खोजना है, जब तक वह मिल ही नहीं जाता है। उसके मिलन को मैंने समानुभूति कहा है। वही अहिंसा है, वही प्रेम है, वही अद्वैत है, वही मुक्ति है।
एक आखिरी सवाल और पूछ लें।

ओशो, हिंसा और सामाजिक न्याय का क्या संबंध है? कभी ऐसी चर्चा की जाती
है कि अहिंसा और हिंसा दोनों सामाजिक न्याय की रीति ही हैं और माओ, स्टैलिन, हिटलर वगैरह ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। आपका इस पर क्या मंतव्य है?

अहिंसा सामाजिक नीति और नियम नहीं है। और अगर अहिंसा सामाजिक नीति और नियम है, तो हिंसा से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। अहिंसा आध्यात्मिक नियम है, सामाजिक नहीं; सोशल नहीं, स्प्रिचुअल।
अगर सामाजिक नियम बनायें हम अहिंसा को, तब तो फिर कभी हिंसा भी जरूरी मालूम होगी। और ऐसा उपद्रव है कि कभी तो अहिंसा की रक्षा के लिए भी हिंसा जरूरी हो जायेगी। एक आदमी अगर किसी पर हिंसा कर रहा है, तो अदालत उस आदमी पर हिंसा करेगी; क्योंकि वह हिंसा कर रहा था। एक राष्ट्र अगर दूसरे के साथ हिंसा करेगा, तो वह राष्ट्र उसे हिंसा से उत्तर देगा; क्योंकि हिंसा का उत्तर देना न्यायसंगत है; हिंसा को झेलना अन्याय है, और अन्याय को झेलना उचित नहीं है।
अहिंसा के जिस सूत्र की मैं बात कर रहा हूं, वह आध्यात्मिक नियम है।
और अगर सामाजिक अहिंसा की हम बात करना चाहें, तो सामाजिक अहिंसा का सदा सापेक्ष, रिलेटिव नियम होगा। उसमें हिंसा-अहिंसा दोनों की जगह होगी।
उसमें हिंसा भी चलेगी, अहिंसा भी चलेगी। उसमें वे दोनों मिश्रित होंगी।
वह मिक्स्ड इकानामी होगी। उसमें अहिंसा और हिंसा एक दूसरे के साथ ही खड़ी रहेंगी, और पहलू बदलते रहेंगे।
समाज के तल पर पूर्ण अहिंसा अभी नहीं पायी जा सकती; अभी तो एक-एक व्यक्ति के तल पर ही पूर्ण अहिंसा पायी जा सकती है। समाज के तल पर कभी हम पा सकेंगे, इसकी आशा भी शायद करनी उचित नहीं है। यह वैसे ही उचित नहीं है, जैसे कि आत्मज्ञान हम किसी दिन समाज के तल पर पा सकेंगे, यह आशा करनी उचित नहीं है।
किसी दिन सारे मनुष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जायेंगे, ऐसी आशा करना
भी उचित नहीं है। क्योंकि चुनाव है, और कोई अगर आत्म-अज्ञानी रहना चाहेगा तो उसे आत्मज्ञान के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। आत्मज्ञान की सदा ही स्वतंत्रता रहेगी, चुनाव रहेगा, कोई होना चाहेगा... । हां, हम यह आशा कर सकते हैं कि धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा लोग आत्मज्ञान को उपलब्ध होते जायेंगे।
लेकिन एक और खतरा है, वह भी मैं आप से कहूं। कि जो व्यक्ति भी आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, वह हमारे इस समाज में वापस लौटना बंद हो जाता है। वह वापस नहीं लौटता। उसके नए जन्म असंभव हो जाते हैं। क्योंकि नए जन्म के लिए आकांक्षा और तृष्णा और कामना जरूरी है। वही लौटता है नए जन्म के लिए, जिसकी कोई कामना शेष रह गई है, और जिसे वह पूरा करना चाहता है। अगर महावीर और बुद्ध भी लौटते हैं एक-एक जन्मों में, तो वे भी इसीलिए लौटते हैं कि कम से कम एक कामना उनकी शेष रह गई कि उन्होंने जो जाना है, उसे वे दूसरों से कहना चाहते हैं। वह भी काफी वासना है! अगर मेरे पास कुछ है, और मैं दूसरों को कहना चाहता हूं, तो भी लौट आऊंगा। लेकिन वह भी वासना है--आखिरी वासना है। वह भी तिरोहित हो जाती है, फिर लौटना कैसे होगा?
जो आत्मज्ञान को उपलब्ध होते हैं, वे तिरोहित हो जाते हैं अंतरिक्ष में। वे किसी विराट कास्मास में, किसी विराट चेतना के साथ एक हो जाते हैं। जो नहीं उपलब्ध होते, वे वापस लौटते चले आते हैं।
इसलिए समाज कभी-कभी आत्मज्ञान के फूल को खिलाता है। लेकिन वह फूल खिला, मुर्झाया कि उसकी सुगंध आकाश में खो जाती है। और फिर समाज चलता रहता है।
समाज आत्मज्ञानी नहीं हो सकेगा, समाज आत्म-अज्ञानी ही बना रहेगा। लेकिन इस आत्म-अज्ञानी समाज में आत्मज्ञानी व्यक्ति का फूल खिलता रहेगा, खिलता रह सकता है, खिलता रहना चाहिए।
समाज के तल पर अहिंसा कभी पूर्ण सत्य नहीं हो सकती। इसलिए जिन लोगों
ने सामाजिक तल पर अहिंसा की बात की है, वे हिंसा को भी स्वीकृति देते हैं; और देनी ही पड़ेगी। हिंसा जारी रहेगी। तब हिंसा-अहिंसा दो पहलू होंगे समाज

के, जब जो जरूरी हो। जब अहिंसा से काम चले, तो अहिंसा; और जब हिंसा से काम चले, तो हिंसा; जिससे भी काम चल जाये।
हिंदुस्तान में आजादी की लड़ाई चलती थी, तो आजादी की लड़ाई लड़नेवाला अहिंसक था। फिर वही सत्ताधिकारी बना तो हिंसक हो गया। आजादी की लड़ाई अहिंसा से चल सकती थी, क्योंकि हिंसा से चलने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता था। तो उसने आजादी की लड़ाई अहिंसा से चला ली। लेकिन सत्ता में आने के बाद उसने नहीं सोचा कि अब सत्ता अहिंसा से चलाई जाये। अब सत्ता हिंसा से चल रही है। अंग्रेजों ने इतनी गोली कभी नहीं चलायी थी इस मुल्क में, जितनी उन लोगों ने चलाई, जो अहिंसक हैं।
तो जो अहिंसा को नीति समझता है, समाज की एक कनवीनिएंस समझता है, एक सुविधा समझता है, जरूरत पड़ने पर हिंसक हो जायेगा। हिंसक-अहिंसक होना उसकी सुविधा की बात होगी। लेकिन महावीर को किसी भी भांति हिंसक नहीं बनाया जा सकता। उनके लिए अहिंसा सामाजिक नीति-नियम नहीं, आध्यात्मिक सत्य है। वह कनवीनिएंस नहीं है। वह कोई सुविधा की बात नहीं है कि हम कुछ भी हो जायें। वह उनकी परम नियति है, वह उनकी डेस्टिनी है।
अहिंसा के लिए सब खोया जा सकता है--स्वयं को भी खोया जा सकता है। अहिंसा किसी के लिए नहीं खोयी जा सकती। पर ऐसा अहिंसक होना व्यक्ति के लिए ही संभव है। और अगर कभी किसी समाज ने ऐसे अहिंसक होने की भूल की, तो वह सिर्फ कायर हो जायेगा, अहिंसक नहीं हो पायेगा। और ऐसा हुआ भी।
महावीर की अहिंसा को समाज ने समझा कि हम अपनी अहिंसा बना लेंगे, तो अहिंसक समाज पैदा हो गये! अहिंसक समाज हो नहीं सकता। महावीर की अहिंसा का समाज नहीं हो सकता। महावीर की अहिंसा के सिर्फ इंडिविजुअल व्यक्ति हो सकते हैं। इसलिए जो समाज महावीर की अहिंसा को मानकर अहिंसक होने की कोशिश करेगा, वह सिर्फ कायर, कावर्ड हो जायेगा और कुछ भी नहीं हो सकेगा। लेकिन वह अपनी कायरता को अहिंसा कहेगा। हिंसा न करने की हिम्मत को वह अहिंसा कहे चला जायेगा। लेकिन उसकी भी चमड़ी को जरा उखाड़ें, तो भीतर हिंसा के झरने फूटते हुए मिल जायेंगे। कायर भी बड़ा हिंसक होता है, लेकिन मन ही मन में होता है। समाज अभी अहिंसक नहीं हो सकता--कभी हो सकता है, ऐसा भी मैं नहीं कहता। बहुत मुश्किल है; असंभव ही है। व्यक्ति ही अहिंसक हो सकता है। जिस अहिंसा की मैं बात कर रहा हूं, वह अहिंसा सामाजिक सत्य नहीं, व्यक्तिगत उपलब्धि है।
और दूसरी बात पूछी है कि "क्या हिटलर, मुसोलिनी, स्टैलिन या माओ सामाजिक अनिवार्यताएं हैं?"
अगर वे सामाजिक अनिवार्यताएं हैं, तो वे व्यक्ति नहीं हैं। व्यक्ति
है ही वही, जो समाज की अनिवार्यता के ऊपर उठता है; जो समाज की विवशता के ऊपर उठता है; जो स्वतंत्र है; जो चुनाव करता है; जो निर्णय करता है। लेकिन, अगर वे सोशल इनएवीटेबिलीटीज हैं, सामाजिक अनिवार्यताएं हैं, मजबूरी हैं समाज की, तब फिर वे व्यक्ति नहीं हैं। और समाज जिस भांति हिंसक होता है, उस भांति वे भी हिंसक होंगे। और अगर वे व्यक्ति नहीं हैं, तो वे मनुष्य के तल पर नहीं होंगे, वे पशु के तल पर वापस गिर जाते हैं।
मनुष्य के तल पर होने के लिए सामाजिक अनिवार्यता से ऊपर उठना जरूरी है। सिर्फ वही व्यक्ति मनुष्य है, जिसके पास व्यक्तित्व है। जो यह कह सकता है कि जो भी मैं हूं, वह मेरा निर्णय है, समाज का नहीं। जो भी मैं कर रहा हूं, वह मैं कर रहा हूं, समाज मुझसे करवा नहीं रहा है।
लेकिन कम्युनिज्म ऐसा मानता है कि व्यक्ति तो है ही नहीं, समाज ही है। कम्युनिज्म ऐसा मानता है कि व्यक्ति इतिहास निर्मित नहीं करते हैं, इतिहास व्यक्तियों को निर्मित करता है। कम्युनिज्म ऐसा मानता है कि इट इज नाट द कांशसनेस व्हिच डिटरमिंस सोशल कंडीशंस, बट आन द कंट्रेरी, सोशल कंडीशंस आर द बेस व्हिच डिटरमिंस कांशसनेस। समाज की स्थितियां ही चेतना को निर्धारित करती हैं, चेतना समाज की स्थितियों को निर्धारित नहीं करती। तो कम्युनिज्म के हिसाब से तो व्यक्ति है ही नहीं। माओ नहीं है, हिटलर नहीं है, मुसोलिनी नहीं है, महावीर नहीं हैं, बुद्ध नहीं हैं। लेकिन पता नहीं कम्युनिज्म किस तरह की अवैज्ञानिक बातें विज्ञान के नाम पर कहे चला जाता है! कोई सामाजिक परिस्थिति महावीर को पैदा नहीं कर सकती। और अगर

सामाजिक परिस्थिति महावीर को पैदा करती है, तो यह सामाजिक परिस्थिति महावीर के लिए, अकेले के लिए परिस्थिति थी? बिहार में और लाखों लोग थे। यह सामाजिक परिस्थिति ही अगर महावीर को पैदा करती, तो और पचासों महावीर क्यों पैदा नहीं करती? अगर रूस की परिस्थिति लेनिन को पैदा करती है, तो कितने लेनिन पैदा करती है?
नहीं, सामाजिक परिस्थितियां व्यक्तियों को पैदा नहीं करतीं। और करती हों, तो वे व्यक्ति नहीं हैं, सिर्फ सामाजिक घटनाएं हैं। और सामाजिक घटनाएं अहिंसक नहीं हो सकतीं, हिंसक होंगी; क्योंकि वह पशु के तल पर वापस लौट गई बात है।
व्यक्ति चुनाव है। मैं भी इतने से राजी हो जाऊंगा कि माओ या स्टैलिन मनुष्य के तल पर बहुत ऊपर नहीं उठते, पशु के तल पर बहुत नीचे चले जाते हैं। लेकिन आप कहेंगे, "मनुष्य के कल्याण के लिए ही वे हिंसा कर रहे हैं!"
सदा हिंसाएं जब भी की गई हैं, तो कल्याण के लिए ही की गई हैं। मध्य-युग में ईसाई पादरियों ने लाखों लोगों को जलवा डाला--मनुष्य के कल्याण के लिए। मुसलमान हिंदू को मारता है--मनुष्य के कल्याण के लिए! हिंदू को मुसलमान इसलिए नहीं मारता कि हिंदू से उसकी कुछ दुश्मनी है, इसलिए मारता है कि हिंदू बेचारा काफिर है, भटका हुआ है, उसे रास्ते पर लाना है! और न आता हो रास्ते पर तो कम से कम मारकर उसकी आत्मा को अगले जन्म में रास्ते पर लगा दें। हिंदू मुसलमान को इसलिए नहीं मारता कि उसका कुछ बुरा सोचता है; बल्कि इसलिए मारता है कि भटका हुआ है, रास्ते पर लाना है! जैसे गाय को और दूसरे पशुओं को, घोड़ों को, यज्ञों में चढ़ाया जाता रहा--कि यज्ञ में चढ़ाने से ये घोड़े, ये गायें स्वर्ग चली जायेंगी। ऐसे ही, धर्म की बलिवेदी पर, एक-दूसरे के धर्मों के लोगों को लोग चढ़ाते रहते हैं--उनके ही कल्याण के लिए! कम्युनिज्म लाखों लोगों को काट डालता है--उनके ही कल्याण के लिए। फासिज्म लाखों लोगों को काट डालता है--उनके ही कल्याण के लिए।
हिंसा जब प्रखर-रूप से फैलना चाहती है, तो आपके ही कल्याण का मुखौटा पहनकर आती है। चालाक है, साधारण भी नहीं है; कनिंग है। साधारण हिंसा कहती है कि मैं आपको अपने हित में मारना चाहती हूं; और चालाक हिंसा कहती है, आपके ही हित में आपको मारना चाहती हूं।
हर बार आदमी बहाने बदल लेता है। अब इस्लाम और हिंदू और कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट ये सब पुराने बहाने हो गए हैं तो कम्युनिज्म, सोशलिज्म नए बहाने हैं। कुछ दिनों में वे भी पुराने हो जायेंगे, फिर आदमी और नए बहाने खोज लेगा। आदमी को हिंसा करनी है, उसके लिए बहाने खोजता है। बहाने हैं, इसलिए हिंसा नहीं करता है।
अगर हम माओ या स्टैलिन के चित्त का विश्लेषण करें, तो हम उनके भीतर एक विक्षिप्त आदमी को पायेंगे। लेकिन वह विक्षिप्त आदमी बड़ा होशियार है, वह रेशनलाइज करता है। क्रांति, समाज-क्रांति, ऊटोपिया, भविष्य के स्वर्ण-युग--इनको लाने के लिए लाखों-लाखों लोगों को काट डाला जाता है।
लेकिन वे स्वर्ण-युग कभी नहीं आये, और आदमी सदा से काटा जा रहा है। न
तो रूस में आया वह स्वर्ण युग, न चीन में आया; न वह जर्मनी में आया, न वह इटली में आया। सारी दुनिया में कितनी क्रांतियां हो चुकीं, कितने खून हो चुके, पर वह स्वर्ण-युग आता ही नहीं! पुरानी क्रांतियां खत्म हो जाती हैं, नई क्रांतियां फिर खून करने लगती हैं, पर वह स्वर्ण-युग नहीं आता है! हजारों साल का अनुभव यह कहता है कि आदमी हिंसा करना चाहता है, इसलिए हिंसा के लिए फिलासफीज खोज लेता है, दर्शन खोज लेता है। यह इतिहास की अनिवार्यताएं नहीं, यह व्यक्तियों के भीतर हिंसा की अनिवार्यताएं हैं, जिनके लिए वह इतिहास को मोड़ देता रहता है और इतिहास को भी आधार बना लेता है अपनी हिंसा का।
मेरे लिए अनिवार्यता को स्वीकार करना ही मनुष्य की गरिमा को खो देना है। जो यह कहता है कि कोई अनिवार्यता है जिसे मुझे जीना ही पड़ेगा, वह आदमी गुलाम है, उसने अपनी आत्मा को खो दिया है। जो आदमी कहता है कि कोई अनिवार्यता नहीं है जिसे मुझे मजबूरी में कुछ करना पड़ेगा, जो भी मैं करूंगा वह मेरा चुनाव है, वह आदमी आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। निर्णय, डिसीजन ही मनुष्य के भीतर संकल्प और आत्मा का जन्म है।

[illegible]
[illegible], [illegible]

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया आठवां प्रवचन

अपरिग्रह (प्रश्नोत्तर)

ओशो, आप बहुत बार कहते हैं कि भौतिक संपन्नता आध्यात्मिक विकास का आधार है; लेकिन अपरिग्रह पर हुए पिछले प्रवचन में आपने कहा कि कम चीजें हों तो व्यक्ति कम गुलाम होता है, और चीजें अधिक हों तो व्यक्ति अधिक गुलाम हो जाता है। कृपया संपन्नता व अपरिग्रह के इस मौलिक विरोधाभास को स्पष्ट करें, और साथ ही समझायें कि अधिक चीजें व्यक्ति को अधिक गुलाम कैसे बनाती हैं? और पजेसर कैसे पजेस्ड हो जाता है?

संपन्नता आध्यात्मिक जीवन का आधार है, लेकिन आधार से ही कोई भवन निर्मित नहीं हो जाता। आधार भी हो, और भवन न उठाया जाये, यह हो सकता है। भवन तो बिना आधार के कभी नहीं होता, लेकिन आधार बिना भवन के हो सकते हैं। कोई नींव को भरकर ही छोड़ दे तो भवन तो नहीं उठेगा, पर आधार जरूर होंगे। लेकिन भवन हो तो बिना आधार के नहीं होता है।
संपन्नता वीतरागता का आधार है। संपन्न हुए बिना कभी कोई नहीं जान पाता कि संपन्नता व्यर्थ है। धन पाए बिना कभी कोई नहीं जान पाता कि धन से कुछ भी नहीं मिलता है। धन की जो सबसे बड़ी देन है, वह धन नहीं है। धन की सबसे बड़ी देन, धन के भ्रम का टूट जाना है, डिसइल्यूजनमेंट है। धन न मिले, तो धन की व्यर्थता का कभी भी पता नहीं चलता। विपन्न, दीन, दरिद्र, धन से मुक्त होने में बड़ी कठिनाई पायेगा। जो है ही नहीं, उससे मुक्त हुआ भी कैसे जा सकता है? मुक्त होने के लिए होना भी चाहिए। और जो हमें मिल जाता है, केवल उसी से हम मुक्त हो सकते हैं।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि संपन्न समाज ही धार्मिक हो पाता है, संपन्नता ही व्यक्ति को धन के ऊपर, अतिक्रमण में ले जाती है।
लेकिन पिछली अपरिग्रह की चर्चा में जब मैंने यह कहा कि थोड़ी चीजें कम बांधती हैं, ज्यादा चीजें ज्यादा बांध लेती हैं, तो हो सकता है--जैसा कि प्रश्न में पूछा गया है--अनेक मित्रों को लगा हो कि इन दोनों में कोई विरोधाभास है। विरोधाभास नहीं है। कम गुलामी से छूटना बहुत मुश्किल है, ज्यादा गुलामी से छूटना ही संभव हो पाता है। जंजीरें बहुत कम हों तो आदमी सह लेता है; जंजीरें बहुत ज्यादा हों, तो बगावत हो जाती है। गरीब आदमी की जंजीरें इतनी कम होती हैं कि उनको तोड़ने का ख्याल भी पैदा नहीं होता। अमीर आदमी की जंजीरें बढ़ जाती हैं, तो तोड़ने का ख्याल भी पैदा होता है।
इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। वस्तुओं के बढ़ जाने पर ही पता चलता है कि मैंने व्यर्थ का बोझ इकट्ठा कर लिया है। और ऐसा बोझ, जो मैंने सोचा था कि मुझे मुक्ति देगा; पर मुक्ति उससे नहीं मिली, सिर्फ मैं दब गया। ऐसा बोझ, जिससे मैंने सोचा था कि कोई उड़ान भर सकूंगा; उड़ान नहीं हुई, केवल मेरे पैर चलने में असमर्थ हो गए।
अधिक गुलामी स्वतंत्रता के निकट पहुंचा देती है। और जैसे सुबह होने
के पहले अंधेरा बढ़ जाता है, वैसे ही स्वतंत्रता की संभावना के पहले दासता बढ़ जाती है। संपन्न व्यक्ति गहरी गुलामी में है, इसलिए गुलामी का बोध भी होता है। छोटी-मोटी गुलामी के लिए हम एडजेस्ट हो जाते हैं, समायोजित हो जाते हैं। छोटी-मोटी गुलामी को हम पी लेते हैं और सह लेते हैं। पर जितनी बड़ी गुलामी हो, उतना ही सहना मुश्किल होता चला जाता है। और छोटी गुलामी को हम इस आशा में भी सह लेते हैं कि शायद कल गुलामी कम हो जाये।
तो गरीब के पास जो भी कुछ है, उसे छोड़ने का ख्याल उसे पैदा नहीं होता; क्योंकि उसकी जिंदगी में तो जो नहीं है, उसको पाने की दौड़ जारी रहती है। अमीर आदमी के पास वह सब हो जाता है जिसे पाने की दौड़ थी, और अब पाने को कुछ भी नहीं रह जाता, फिर भी वह पाता है कि पाया कुछ भी नहीं गया है। पाने को कुछ शेष नहीं रहा, और पाया कुछ भी नहीं गया है, बाहर सब इकट्ठा हो गया और भीतर पूरी रिक्तता खड़ी है। ये क्षण ही संपन्न आदमी के जीवन में आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत करते हैं। यह उसकी पहली किरण है।

लेकिन मैं ऐसा नहीं कहता हूं कि सभी संपन्न आदमी इस क्रांति को उपलब्ध हो जाते हैं। अधिकतर संपन्न आदमी सिर्फ आधार बनाकर ही रह जाते हैं। उनके जीवन में क्रांति का भवन कभी निर्मित नहीं हो पाता। लेकिन उसके भी कारण हैं। और ऐसा भी नहीं है कि गरीब आदमी कभी आध्यात्मिक नहीं हो पाता। गरीब आदमी भी आध्यात्मिक हो जाता है। लेकिन उसके भी कारण हैं। पहली बात तो यह ठीक से स्मरण में ले लेनी चाहिए कि अनुभव के अतिरिक्त
और कोई ज्ञान नहीं है। अनुभव ही ज्ञान है। धन का अनुभव ही धन से मुक्ति लाता है। और अगर एक व्यक्ति इस जीवन में अपनी गरीबी में भी आध्यात्मिक हो गया है, तो उसके किसी न किसी जन्म की यात्रा में धन के अनुभव का कारण मौजूद होगा ही। अन्यथा अनुभव के बिना ज्ञान नहीं है। धन के अनुभव के बिना धन से कोई मुक्त नहीं हो सकता। जिसे हमने जाना नहीं, वह व्यर्थ है, इसे भी हम कैसे जान सकेंगे? जिस दुख को हमने पाया नहीं, वह छोड़ने योग्य है, इस निष्कर्ष पर भी हम कैसे पहुंच सकेंगे? जो अपरिचित है, वह शत्रु है, इसकी पहचान की भी तो कोई संभावना नहीं है।
शत्रु को भी पहचानना हो, तो परिचित हो जाना जरूरी है। और गलत को भी जानना हो, तो गलत से गुजरना पड़ता है। और राह के गड्ढे उन्हीं को पता होते हैं, जो राह के गड्ढों में गिरते हैं और भटकते हैं। इसके अतिरिक्त जीवन में कोई उपाय भी नहीं है।
हां, यह हो सकता है--जिसे हम जीवन कहते हैं, वह बहुत छोटा है, पर जीवन की यात्रा बहुत लंबी है--एक आदमी अपने पिछले जन्मों में धन के अनुभव से इतना सेचुरेट, इतना पूरा हो चुका हो कि इस जन्म में गरीबी से भी उसकी अध्यात्म में छलांग संभव हो जाये। अन्यथा और कोई कारण नहीं हो सकता। और अगर इस जन्म में भी कोई आदमी धन को पूरी तरह पाकर भी दीन और दरिद्र बना रहता है, धन को पूरी तरह पाकर भी धन से मुक्त नहीं होता, तो मैं कहना चाहूंगा कि जो धन से मुक्त होता है, उसी ने धन को पूरी तरह पाया है, इसका प्रमाण देता है।
धनी वही है, जो धन को छोड़ पाता है। अगर नहीं छोड़ पाता है, तो उसके भीतर दीन और दरिद्र बैठा हुआ है। अगर इस जन्म में कोई पूरी तरह धन को पाकर भी धर्म की प्यास को जगाने में असमर्थ है, तो इसका एक ही अर्थ है कि उसके बहुत से पिछले जन्म इतनी दीनता और दरिद्रता में कटे हैं कि इतना धन भी उसकी दीनता के अनुभव को नहीं काट पा रहा है। उसके भीतर की दरिद्रता खड़ी ही रह गई है। वह अभी भी भीतर दरिद्र है। धन का अनुभव अभी नया है। अभी वह अनुभव ज्ञान नहीं बन पाया है।
बहुत बार अनुभव से गुजरने पर ज्ञान बनता है। ज्ञान बहुत से अनुभवों
का सार-संक्षिप्त है। ज्ञान बहुत से अनुभव के फूलों का इत्र है। इस आदमी के लिए धन का अनुभव पहला है। अभी धन का अनुभव उसका ज्ञान नहीं बन पाया है। जैसे ही धन का अनुभव ज्ञान बनता है, वैसे ही व्यक्ति धन से मुक्त होने लगता है।
मेरी दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं, उनमें कोई विरोध नहीं है।
ऐसे ही मैं निरंतर कहता हूं कि जिसने कभी शास्त्र नहीं जाने, वह कभी शास्त्र से मुक्त न हो सकेगा। जिसने शास्त्रों को जाना, वह शास्त्रों से मुक्त हो जाता है।
ऐसे ही मैं कहता हूं कि जिसने क्रोध नहीं जाना, वह क्रोध से मुक्त न हो सकेगा। लेकिन जिसने क्रोध की पूरी पीड़ा और अग्नि जानी है, वह क्रोध से मुक्त हो जाता है।
ऐसे ही मैं कहता हूं कि जिसने काम नहीं जाना, वासना नहीं जानी, वह कभी काम- वासना से मुक्त न हो सकेगा। जो कामवासना को जान जाता है, वह उसकी परिधि के बाहर हो जाता है।
अनुभव मुक्ति है क्योंकि अनुभव ज्ञान है। धन का अनुभव ही धन के बाहर
ले जाता है।

ओशो, इसी संदर्भ में विरोधाभास पर प्रश्न कर रहा हूं। आप निरंतर कहते हैं और अभी आपने कहा है कि भोग की पूरी गहराइयों में उतर कर ही व्यक्ति कामना और वासनाओं का अतिक्रमण कर पाता है, उनसे मुक्त हो जाता है, लेकिन अपरिग्रह के पिछले प्रवचन में आपने कहा था कि वासनाएं, कामनाएं वृत्ताकार

हैं, सर्कुलर हैं, वे कहीं भी तृप्ति नहीं बनतीं। कृपया इस विरोधाभास को स्पष्ट करें।

वासनाओं के अनुभव से ही व्यक्ति वासनाओं से मुक्त होता है; क्योंकि अनुभव के अतिरिक्त कोई मार्ग ही मुक्ति का नहीं है। संसार ही द्वार है मोक्ष का; और नर्क ही द्वार है स्वर्ग का; और कारागृह ही द्वार है मुक्ति का। जितनी पीड़ा अनुभव होती है संसार में, वही पीड़ा संसार के पार ले जाने के लिए मार्ग बन जाती है--ऐसा मैं निरंतर कहता हूं। यह भी मैंने कहा कि वृत्तियां कभी तृप्त नहीं होती हैं। वे वर्तुलाकार हैं; सर्कुलर हैं। उनमें दौड़ते जाइए, कहीं अंत नहीं आता। कितना भी दौड़िए, आगे रेखा सदा शेष रह जाती है। और भी दौड़िए--रेखा शेष रह जाती है। जैसे कोई व्यक्ति गोल घेरे में दौड़े तो गोल घेरा कहीं समाप्त नहीं होता, वैसे ही वृत्तियां कहीं समाप्त नहीं होतीं; कोई वृत्ति कभी पूरी तरह तृप्त नहीं होती। लेकिन दूसरी तरफ मैं कहता हूं कि वृत्ति के गहरे अनुभव से ही व्यक्ति मुक्त होता है। ये दोनों बातें विरोधी दिखायी पड़ती हैं--विरोधी हैं नहीं।
व्यक्ति तृप्त नहीं होता गहरे अनुभव से, गहरे अनुभव से मुक्त होता है। तृप्त हो जाये, तब तो मुक्ति की कोई जरूरत ही नहीं है। तृप्त नहीं होता है--यही तो मुक्ति में ले जाने का कारण बनता है। हजार बार दौड़ चुका है एक ही गोल घेरे में--पाता है, वहीं-वहीं दौड़ता है; कोल्हू के बैल की तरह दौड़ता है, पर तृप्ति नहीं होती।
यह अनुभव ही वृत्ति का गहरा अनुभव है कि दौड़ता हूं बहुत, खोजता हूं बहुत, पा भी लेता हूं, फिर भी खाली हाथ रह जाता हूं। और एक बार नहीं, अनेक बार इस अनुभव की गहराई में जो उतर जाता है, ऐसा नहीं है कि उसकी वृत्ति तृप्त हो जाती है, बल्कि ऐसा कि वह दौड़ना बंद करके खड़ा हो जाता है। क्योंकि वह कहता है कि बहुत दौड़ चुका इसी राह पर, कहीं कभी पहुंचा नहीं हूं; वहीं- वहीं वर्तुलाकार दौड़ रहा हूं, कहीं पहुंचता नहीं हूं। यह अनुभव की गहराई है। और अगर उसे लगता है कि दो कदम और दौड़ लूं, तो शायद पहुंच जाऊं, तो समझिए कि अभी अनुभव उसका इतना गहरा नहीं हुआ कि दौड़ने से मुक्ति हो जाये। अगर वह कहे कि एक चक्कर और लगा लूं, शायद अब तक जो नहीं मिला, अब मिल जाये, तो समझना कि अभी भी उसका अनुभव पूरा नहीं हुआ है।
अनुभव के पूरे होने का अर्थ, वृत्ति का तृप्त हो जाना नहीं। अनुभव के पूरे होने का अर्थ, दौड़ का तृप्त हो जाना है। अब दौड़ नहीं रही। जाना बहुत बार है, दौड़े बहुत बार हैं, लेकिन पहुंचे कहीं भी नहीं। अब वह आदमी खड़ा हो जाता है। अब आप उससे कितना ही कहें कि एक कदम पर सोने की खदान है, तो वह कहता है, मैंने हजार कदम चलकर देख लिया, सोने की खदान सिर्फ दिखायी पड़ती है, है नहीं। आप कितना ही कहें कि जरा आगे बढ़ो और सब मिल जायेगा जो चाहा है, तो वह आदमी कहता है, जो-जो मैंने चाहा, वह-वह मैंने कभी नहीं पाया। अब मैं इतना जान गया हूं कि चाहना, पाने का मार्ग नहीं है।
यह अनुभव की गहराई है। वह यह कहता है कि मैं दौड़ा बहुत, पर मंजिल नहीं मिली। आप कहें कि जरा तेजी से दौड़ो तो मंजिल मिल सकती है, वह आदमी कहता है, मैंने बहुत तेजी से दौड़ कर भी देख लिया, मैंने हांफ कर देख लिया, अब मैं पसीने-पसीने हो गया हूं; जन्मों से दौड़ रहा हूं; अब मैं एक बात जान गया हूं कि मंजिल दौड़कर नहीं मिलती। अब मैं खड़े होकर मंजिल पाने की कोशिश और कर लेता हूं।
चाह से मुक्ति, चाह की तृप्ति नहीं है। चाह से मुक्ति, चाह का टोटल, चाह का संपूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाना है। संपूर्ण रूप से व्यर्थ हो जाना, मैं कह रहा हूं। अगर आंशिक रूप से चाह व्यर्थ हुई है, तो नई चाह पकड़ लेगी। संपूर्ण रूप से चाह व्यर्थ हो गई है, तो फिर चाह नहीं पकड़ सकेगी।
ऐसी जो चित्त की दशा है--जहां चाह ही व्यर्थ हो गई है--यह फ्रस्ट्रेशन
की दशा नहीं है, यह अतृप्ति की दशा नहीं है। क्योंकि जहां फ्रस्ट्रेशन है, वहां अभी चाह व्यर्थ है यह पता नहीं चला। फ्रस्ट्रेशन का मतलब है, विषाद का मतलब है, एक चाह पूरी करनी चाही थी, वह पूरी नहीं हुई; लेकिन आशा मन में अभी है कि वह पूरी हो सकती थी। सफल मैंने होना चाहा था, असफल हुआ; लेकिन आशा मन में है कि और कुछ उपाय किए जाते, तो सफल हो सकता था।

वही आदमी विषाद को, चित्त के दुख को, फ्रस्ट्रेशन को उपलब्ध होता है, जिसकी आशा नहीं मरती सिर्फ असफलता आती है। लेकिन जिसकी असफलता ही नहीं, आशा भी मर जाती है, वह अब विषाद को उपलब्ध नहीं होता। वह अचाह को, डिजायरलेसनेस को उपलब्ध हो जाता है। वह खड़ा हो जाता है। वह कहता है, दौड़ना व्यर्थ है। दौड़कर बहुत खोजा, अब खड़े होकर पा लूं।
और मजे की बात है कि जो दौड़कर कभी नहीं मिला, वह खड़े होते ही मिल जाता है। क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं, वह हमारे भीतर है; क्योंकि जिसे हम खोज रहे हैं, वह हमारे साथ है; जिसे हम खोज रहे हैं, वह हमें सदा से ही मिला हुआ है।
इसलिए जितना दौड़ते हैं, उतना ही उससे चूक जाते हैं, जो कि मिला ही हुआ है।
अपने घर में देखने के लिए बाहर दौड़ना बंद करना पड़ेगा। अपने भीतर देखने के लिए बाहर की यात्रा छोड़नी पड़ेगी। जो निकट है, उसे देखने के लिए दूर से आंख लौटानी पड़ेगी। जो हाथ में है, उसे खोजने के लिए, दूसरे की मुट्ठियों को खोलना बंद करना पड़ेगा।
अनुभव की गहराई, वासना की तृप्ति का नाम नहीं है। अगर वासना ही तृप्त
हो सकती, तब तो महावीर नासमझ हैं। अगर वासना तृप्त हो सकती, तो बुद्ध पागल हैं। अगर वासना तृप्त हो सकती, तो जीसस की मनस-चिकित्सा होनी चाहिए, साइकोएनालिसिस होनी चाहिए। वासना तृप्त नहीं हो सकती है। बुद्ध ने कहा है, कामना दुष्पूर है। वह कभी पूरी नहीं हो सकती। लेकिन यह अनुभव वासना के बाहर ले जाता है। और जो वासना से नहीं मिला था वह निर्वासना में मिल जाता है।
अनुभव की पूर्णता, वृत्ति की वासना की पूर्ण विफलता का नाम है। और तब अपरिग्रह का फूल खिलता है। जिसकी वृत्तियां गिर गईं, जिसकी चाहें गिर गईं, उसके भीतर अपरिग्रह का फूल खिलता है। तब वह दौड़ता नहीं, ठहर जाता है; खड़ा हो जाता है। तब मंजिल दूर नहीं होती, पैरों के नीचे हो जाती है। तब पाने को कुछ बाहर नहीं होता, तब पाने वाला ही अपने पाने का अंतिम, अपनी दौड़ का अंतिम लक्ष्य बन जाता है। पानेवाला ही, खोजनेवाला ही खोज हो जाता है। द सीकर बिकम्स द सीकिंग, द सीकर बिकम्स द साट।
वह भीतर जो खोज रहा है, वह पाता है कि मैं अपने को ही खोज रहा था। लेकिन शायद दर्पणों में खोज रहा था। बहुत दर्पणों में खोजा, नहीं मिला। अब वह दर्पणों को छोड़कर अपने को देखता है; और पाता है कि दर्पण में मैं कभी मिल भी नहीं सकता था। क्योंकि दर्पण में सिर्फ रिफ्लेक्शन था; दर्पण में मैं ही प्रतिबिंबित हो रहा था; दर्पण में कोई था नहीं सिर्फ भ्रम था, एक वर्चुअल स्पेस का, एक झूठे आकाश का भ्रम था। दर्पण में जो दिखायी पड़ा था, वह कहीं था नहीं, दर्पण में कहीं भी न था। और अगर था तो दर्पण के बाहर था। लेकिन अगर दर्पण में ही कोई खोजने निकल पड़े... !
हम सब दर्पण में खोज रहे हैं--जब तक हम वासना में खोज रहे हैं। जिस दिन बहुत दर्पणों को तोड़कर, और सिर को तोड़कर, दर्पणों से टकराकर, लहूलुहान होकर, एक दिन आदमी दर्पण की तरफ पीठ फेर कर खड़ा हो जाता है, और कहता हैः दर्पणों में बहुत खोज चुका, अब दर्पणों में नहीं खोजूंगा, उसी दिन उसे पता चलता है कि जिसे वह खोज रहा था, वह उसका ही प्रतिबिंब था।
वासनाओं के दर्पण में हमने अपने ही चेहरे पकड़े हुए हैं। वासनाओं के दर्पण में हम अपने को ही खोज रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को खोज रहा है। लेकिन वहां खोज रहा है, जहां प्रतिफलन है, रिफ्लेक्शन है। वहां नहीं, जहां सत्य है। सत्य यहां है--खोज रहा है वहां। सत्य अभी है--खोज रहा है कभी। सत्य प्रतिपल है--खोज रहा है भविष्य में। सत्य भीतर है--खोज रहा है बाहर। इस प्रतीति का हो जाना अनुभव की गहराई है।
वासनाएं वृत्ताकार हैं, वे कभी पूरी नहीं होतीं; लेकिन दौड़ने वाला दौड़-दौड़ कर अनुभव को उपलब्ध हो जाता है; और खड़ा हो जाता है। वृत्त को छोड़ देता है। वृत्ताकार, सर्कुलर, वासनाओं से हटकर खड़ा हो जाता है।
और जिस दिन कोई व्यक्ति अचाह में, डिजायरलेसनेस में खड़ा हो जाता है,
उस दिन उसको पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। वह सभी कुछ पा लेता है।

ओशो, पहले प्रश्न में एक चीज और समझनी है कि वस्तुएं, पजेशंस, अपने मालिक को, पजेसर को कैसे सम्मोहित, पजेस्ड कर लेती हैं? इसके क्या कारण हैं?

मालिक बनने की आकांक्षा में ही गुलामी के बीज छिपे हैं; क्योंकि जिसके हम मालिक बनेंगे, उसका हमें अनजाने में गुलाम भी बन जाना पड़ता है। गुलाम इसलिए बन जाना पड़ता है, क्योंकि जिसके हम मालिक बनते हैं, हमारी मालकियत उस पर निर्भर हो जाती है। उसके बिना हमारी मालकियत नहीं हो सकती। और जब मालकियत किसी पर निर्भर होती है तो हम अपनी मालकियत के मालिक कैसे हो सकते हैं? मालिक तो वह हो गया, जिस पर वह निर्भर है।
अगर दस गुलाम मेरे पास हैं, तो मैं दस गुलामों का मालिक हूं; लेकिन मेरी मालकियत दस गुलामों के होने पर निर्भर है। अगर ये दस गुलाम खो जायें, तो मेरी मालकियत भी खो जायेगी, उनके साथ ही खो जायेगी। उस मालकियत की कुंजी मेरे पास नहीं है, इन दस गुलामों के पास है। ये दस गुलाम बहुत गहरे में मेरे मालिक हो गये हैं, क्योंकि इनके बिना मैं मालिक न हो सकूंगा। और जिनके बिना हम मालिक न हो सकें, उनके हम मालिक कैसे हो सकते हैं? जिनके बिना हमारी मालकियत गिर जायेगी, जाने-अनजाने उनके हम गुलाम हो गए! हम उनसे बंध गए!
और मजे की बात यह है कि गुलाम तो मुक्त भी होना चाहेगा; क्योंकि गुलामी में कोई रहना नहीं चाहता। इसलिए अगर मालिक मर जाये, तो गुलाम प्रसन्न होंगे; लेकिन अगर गुलाम मर जायें, तो मालिक रोयेगा। अब हमें सोचना चाहिए कि गुलाम इन दोनों में कौन था? जो रोता है, या जो हंसते हैं? मालकियत की आकांक्षा ही गुलाम बना देती है। सिर्फ वही आदमी इस दुनिया में मालिक है, जो किसी का मालिक नहीं होना चाहता है। सिर्फ वही आदमी मालिक हो सकता है, जिसने किसी को गुलाम नहीं बनाया है; क्योंकि उसकी मालकियत को खत्म नहीं किया जा सकता। उसकी मालकियत स्वतंत्र है। और मालकियत अगर स्वतंत्र न हो तो मालकियत कैसे हो सकती है?
वस्तुएं भी हमारी छाती पर बैठ जाती हैं। वस्तुएं भी हमारे ऊपर हो जाती हैं। द पजेसर बिकम्स द पजेस्ड। वह जो वस्तुओं को संभाले हुए है, वह धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि वस्तुएं उसकी सेवा के लिए थीं। और उसने कब वस्तुओं की सेवा करनी शुरू कर दी, इसका उसे पता भी नहीं चलता!
नहीं चलेगा पता। नहीं चलेगा इसलिए कि वस्तुएं इस आदमी के पास नहीं आई हैं, यह आदमी वस्तुओं के पास गया है। गुलाम ही जाते हैं, मालिक कभी नहीं जाते। आप जिसके पास जायेंगे, मालकियत उसी को मिल जायेगी।
वस्तुएं आपके पास कभी नहीं आतीं, आप वस्तुओं के पास जाते हैं। आदमी वस्तुओं को खोजता है, वस्तुएं आदमी को नहीं खोजती हैं। तो जिसे आप खोजते हैं, जिसके लिए आप श्रम उठाते हैं, जिसके लिए आप कष्ट झेलते हैं, जिसे आप बामुश्किल से पा पाते हैं, अगर उसे आप छाती पर रखकर संभालें, और उसके नीचे दब जायें, तो बहुत आश्चर्य नहीं; क्योंकि सदा डर है कि वह खो न जाये!
मैंने सुना है कि रयोकान नाम के एक झेन फकीर के घर में एक रात चोर घुस गया। तो रयोकान उस चोर के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने कहा, माफ करना, बड़ी गलत जगह आ गए हो। आठ-दस मील की यात्रा करके भी आए हो और इस गरीब के झोपड़े में तो कुछ भी नहीं है! बस, यह कंबल है एक, इसे तुम ले जाओ।
उसने चोर को वह कंबल दे दिया। रयोकान नंगा हो गया; क्योंकि उसके पास सिर्फ कंबल ही था, और ठंडी रात थी। उस चोर ने बहुत कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं! आपके पास कुछ भी नहीं है, फिर भी आप यह कंबल दे रहे हैं!
तो रयोकान ने कहा कि याद रखना! आज तू एक मालिक के घर में घुस गया है। अब
तक तू गुलामों के घर में घुसा था। वे कोई भी एक चीज तुझे नहीं दे सकते थे। जिनको तू सोचता है, जिनके पास बहुत है, वे तुझे एक चीज न दे सकते थे। लेकिन अब तू याद रखना कि ऐसे मालिक भी हैं, जिनके पास कुछ नहीं है। असल में वे मालिक इसीलिए हैं कि उनके पास कुछ नहीं है। यह कंबल तू ले जा।
वह चोर कंबल लेकर चला गया। जैसे आज चांद निकला है, ऐसे ही उस रात भी निकला हुआ था। रयोकान अपने दरवाजे पर बैठ गया। सर्द रात! चांद की किरणें! ठंडी हवाएं! वह कांपने लगा।

अगर रयोकान गुलाम आदमी रहा होता, तो उसने कहा होता कि बहुत बुरा हुआ
कि कंबल चोरी चला गया, या मैंने कंबल दे दिया। लेकिन वह एक मालिक था। उसके मन में उस लगती हुई सर्दी को देखकर यह ख्याल भी नहीं आया कि कंबल चला गया तो बहुत बुरा हुआ।
उसने एक गीत लिखा उस रात। उसने लिखा कि काश, यह चांद भी मैं चोर को भेंट कर सकता! बेचारा चोर, चोरी के चक्कर में है। चांद ऊपर है, इसे देख भी नहीं पा रहा है!
उस रात उसने एक गीत लिखा, काश! आज मैं चांद भी चोर को भेंट कर सकता... ! बेचारा चोर... ! चोरी के चक्कर में चांद को देख ही नहीं पा रहा है!
यह एक मालिक की बात है।
आप कंबल को ओढ़े हुए दिखाई पड़ते हैं, इस भूल में मत पड़ना। अक्सर कंबल ही आपको ओढ़े रहता है। आप हीरे-जवाहरात गले में पहने हुए दिखाई पड़ते हैं, इस भूल में मत रहना। अक्सर हीरे-जवाहरात ही आपके गले को पहने रहते हैं। आप बड़े मकान में रहते हैं, इस भूल में मत रहना कि आप बड़े मकान में रहते हैं। मकान आपस में चर्चा करते हैं, तो वे आपस में कहते हैं कि मैं भी किस आदमी के भीतर रह रहा हूं! मकान के भीतर आप रहते हों, यह संभव नहीं है; मकान इतना भीतर आपके रहता है कि आप मकान के भीतर कैसे रह सकते हैं!
द पजेसर बिकम्स द पजेस्ड। वह जो वस्तुओं का मालिक है, वस्तुओं का गुलाम हो जाता है। लेकिन इसमें वस्तुओं का कोई कसूर है, ऐसा मत समझ लेना। वस्तुओं का कोई हाथ ही नहीं है, यह बिल्कुल इकतरफा लेन-देन है। यह आप ही हैं, जो गुलाम बन जाते हैं। यह आपकी ही दृष्टि और सोचने का ढंग है, जो गुलामी ले आता है। वस्तुओं का इसमें कोई भी हाथ नहीं है। वस्तुएं किसी को क्या गुलाम बनायेंगी? वस्तुओं को तो पता ही नहीं चलता कि किस आदमी को मालिक होने का भ्रम था और किस आदमी को गुलाम होने का भ्रम था। हम ही, आदमी ही अपनी दृष्टियों से घिरता और बंधता है। हाथ में पड़ी हुई जंजीरों के बीच भी कोई आदमी मुक्त हो सकता है, और सोने के आभूषणों में बैठा हुआ आदमी भी कारागृह में हो सकता है।
जिंदगी बड़ी अदभुत है। और आदमी से ज्यादा इरछी-तिरछी चाल चलनेवाला कोई
भी प्राणी नहीं है। वह अजीब काम करता रहता है। गुलामियों के नाम बदलकर मालकियत रख लेता है, जंजीरों के नाम बदलकर आभूषण रख लेता है! और कारागृह के भीतर भी अगर हो, तो दीवालों को इतना सजा लेता है कि मालूम पड़ता है कि अपने घर में ही बैठा है!
हम सब अपने-अपने कारागृह की दीवालों को सजाए हुए बैठे हैं। हमने उन्हें बड़े अच्छे नाम दिए हैं। अच्छे नामों में हम खो गए हैं। लेकिन नाम देकर सत्यों को बदला नहीं जा सकता। सत्य सत्य है। और धर्म की शुरुआत सत्यों को उनकी सचाई में जानने से ही शुरू होती है।
अपरिग्रह, धर्म का बुनियादी तत्व है। अपरिग्रह का अर्थ हैः इस सत्य
को जान लेना कि जब तक मेरे मन में वस्तुओं की चाह है, तब तक मैं वस्तुओं का मालिक नहीं हो सकता हूं। जब तक मैं वस्तुओं को चाहता हूं, तब तक मैं वस्तुओं की गुलामी में रहूंगा ही। मैं उसी दिन वस्तुओं का मालिक हो सकता हूं, जिस दिन वस्तुओं की चाह मेरे भीतर से चली गई।
सुना है मैंने, सुना होगा आपने भी कि एक संन्यासी एक राजमहल में एक रात आया था। उसके गुरु ने उसे भेजा था कि वह जाये और सम्राट के दरबार में जाकर ज्ञान सीख आये। उसका गुरु परेशान हो गया था, नहीं सिखा सका था। तो उस संन्यासी ने कहा कि जब आपके आश्रम में नहीं सीख सका, तपश्चर्या की दुनिया में, तो सम्राट के महल में कैसे सीख सकूंगा? लेकिन गुरु ने कहा, बात मत करो, जाओ! वहीं पूछना।
जब वह दरबार में पहुंचा, तो उसने देखा कि वहां तो शराब के प्याले ढाले
जा रहे हैं, और वेश्याएं नाच रही हैं! उसने कहा, मैं भी पागल कहां फंस गया हूं! उस गुरु ने भी खूब मजाक किया है। दिखता है छुटकारा पाना चाहता है मुझसे! लेकिन रात? अब लौटना तो उचित भी नहीं। और उस सम्राट ने संन्यासी की बहुत आवभगत की और कहा, आज रात तो रुक ही जाओ। संन्यासी ने कहा, लेकिन रुकना बेकार है। तो सम्राट ने कहा, कल सुबह स्नान करके भोजन करके वापिस लौट जाना।

रात भर उस संन्यासी को नींद न आ सकी। सोचा, कैसा पागलपन है। जहां शराब ढाली जा रही हो, और जहां वेश्याएं नाचती हों, और जहां धन ही धन चारों तरफ बरसता हो, वहां इस भोग-विलास में कहां ज्ञान मिलेगा? और ब्रह्मज्ञान का मैं खोजी, आज की रात मैंने व्यर्थ गंवाई! सुबह उठा तो सम्राट ने कहा कि चलें, हम महल के पीछे नदी में स्नान कर आयें। दोनों स्नान करने गए।
वे स्नान कर ही रहे थे कि तभी महल से जोर-जोर से आवाजें गूंजने लगीः महल में आग लग गई, महल में आग लग गई। नदी के तट से ही महल से उठी आग की लपटें आकाश में उठती हुई दिखाई पड़ने लगीं।
सम्राट ने संन्यासी से कहा, देखते हैं?
संन्यासी भागा! उसने कहा, क्या खाक देखते हैं? मेरे कपड़े घाट पर रखे हैं! कहीं आग न लग जाये!
लेकिन घाट पर पहुंचते-पहुंचते उसे ख्याल आया कि सम्राट के महल में आग लगी है और वह अब भी पानी में खड़ा है, और मेरी तो सिर्फ लंगोटी ही घाट पर रखी है, जिसे बचाने के लिए मैं दौड़ पड़ा हूं! अभी वहां आग पहुंची भी नहीं है! लग सकती है, महल की आग बढ़ जाये और घाट तक आ जाये।
वह वापस लौट कर, खड़े हुए हंसते सम्राट के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा
कि मैं समझ नहीं पा रहा, आपके महल में आग लग गई है और आप यहीं खड़े हैं? सम्राट ने कहा, उस महल को अगर मैंने कभी अपना समझा होता, तो खड़ा नहीं
रह सकता था। महल महल है, मैं मैं हूं। मेरा महल कैसे हो सकता है? मैं नहीं था, तब भी महल था; मैं नहीं रहूंगा, तब भी महल होगा। मेरा कैसे हो सकता है? लंगोटी थी आपकी, महल मेरा नहीं है!
नहीं, सवाल वस्तुओं का नहीं है कि वस्तुएं किसी को पकड़ लेती हैं। सवाल आदमी के रुख, आदमी के ढंग, एटीट्यूड, उसके सोचने की विधि और जीवन की व्यवस्था का है। वह कैसे जी रहा है, इस पर सब निर्भर करता है। अगर वह वस्तुओं की चाह से भरा है, तो इससे फर्क नहीं पड़ता है कि वह वस्तु महल है या लंगोटी। अगर वह वस्तुओं की चाह से नहीं भरा है, तो फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि पास में लंगोटी है या महल।
आदमी अपने ही कारणों से गुलाम होता है; और आदमी ही इन्हीं कारणों को तोड़कर मुक्त भी हो जाता है।

ओशो, आपने अपरिग्रह के तीसरे प्रवचन में कहा है कि महावीर संन्यास के जीवन में आकर बादशाह हो गए, लेकिन उनके बड़े भाई संपन्नता के बीच रहकर भी विपन्न और गुलाम ही रहे। महावीर का आत्मिक समृद्धि उपलब्ध करना, लेकिन भौतिक समृद्धि से परे रहना अर्थात परिग्रह से मुक्त हो जाना, क्या एकांगी व एक-पक्षीय जीवन नहीं है? वे अंतर और बाह्य दोनों समृद्धियों को एक साथ क्यों नहीं स्वीकार कर पाते?

महावीर सब छा.ेडकर चले गए, इसलिए नहीं कि वह समृद्धि थी; बल्कि इसीलिए
कि वह समृद्धि नहीं थी। महावीर सब छोड़ कर चले गए, इसलिए नहीं कि वहां कुछ छोड़ने योग्य था; बल्कि इसीलिए कि वहां कुछ भी पकड़ने योग्य न था।
लेकिन हमें दिखाई पड़ता है कि उन्होंने महल छोड़ा; हमें दिखाई पड़ता है, हीरे- जवाहरात छोड़े; हमें दिखाई पड़ता है, धन-दौलत छोड़ी! यह हमें दिखाई पड़ता है। महावीर ने तो कंकड़-पत्थरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं छोड़ा। हीरे- जवाहरात हमें दिखाई पड़ते हैं। महावीर को हीरे-जवाहरात में कंकड़-पत्थर दिखाई पड़ गये।
ऐसे हीरे-जवाहरात में कंकड़-पत्थरों के अतिरिक्त कुछ है भी नहीं! हां, जिन्होंने महावीर की कथा लिखी है, उन्होंने लिखा है कि इतने हीरे, इतने जवाहरात, इतने माणिक, इतने मोती छोड़े। अगर कोई महावीर से पूछे, तो वे कहेंगे, बड़े पागल हो, कंकड़-पत्थरों के भी अलग-अलग नाम रख लिये हैं? हां, अगर महावीर ने कंकड़-पत्थर छोड़े होते, तो हम भी नहीं कहते कि कंकड़-पत्थर छोड़ रहे हैं! हम सबने छोड़े हैं।
सभी बच्चे कंकड़-पत्थर इकट्ठे करते हैं। और फिर एक दिन बच्चे नहीं रह जाते, कंकड़-पत्थर छोड़ देते हैं। लेकिन किसी बच्चे की जिंदगी में हम नहीं लिखते कि इस बच्चे ने कंकड़-पत्थर छोड़े; क्योंकि हम जानते हैं कि वे कंकड़-
116

पत्थर हैं। जिस दिन हम जानेंगे कि महावीर ने कंकड़-पत्थर ही छोड़े, उस दिन हम न कहेंगे कि उन्होंने कुछ छोड़ा।
नहीं, आश्चर्य यह नहीं है कि महावीर ने क्यों छोड़ा? आश्चर्य यह है कि दूसरे क्यों नहीं छोड़ पाते हैं! महावीर से कोई पूछे, तो वे नहीं कहेंगे कि मैंने कुछ त्यागा; क्योंकि त्यागी तो वह चीज जाती है, जिसमें कोई मूल्य हो। महावीर कहेंगे कि मैंने कुछ भी नहीं त्यागा; क्योंकि जिसमें कोई मूल्य ही नहीं था, उसके त्याग की बात करनी ही व्यर्थ है।
आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक देते हैं तो अखबार में खबर नहीं छपाते कि आज इतना कचरा त्यागा। महावीर के लिए जो कचरा हो गया है, उसे त्यागने का हक तो उन्हें देना चाहिए न! कि इतना भी हक उन्हें देने को हम राजी नहीं हैं?
हां, हमें दिक्कत है, क्योंकि हमें वह कचरा नहीं दिखाई पड़ता। एक बच्चे
से उसका कंकड़-पत्थर छीन लें, तब आपको पता चल जायेगा। वह रातभर रो सकता है, सपने में चीख सकता है। उसकी सारी संपत्ति छीन ली आपने, जो वह नदी के किनारे से इकट्ठी कर लाया था! आप कहेंगे, पागल है तू! क्योंकि कंकड़-पत्थर ही थे। आपको लगते होंगे कंकड़-पत्थर, बच्चे को सब रंगीन पत्थर हीरे-मोती से ज्यादा कीमती लगते हैं।
असल में बच्चे की चेतना के तल और आपकी चेतना के तल में जो फर्क है, वही कठिनाई है। आपको पत्थर दिखाई पड़ रहे हैं, बच्चे को बहुमूल्य दिखाई पड़ रहे हैं। आप फेंकने का आग्रह करते हैं, बच्चा बचाने का आग्रह करता है। महावीर और हमारे बीच भी वही बच्चे और प्रौढ़ वाला फासला है। फिर एक और नई चेतना भी है, जो महावीर को मिली है। यहां इस जगत में हमें जो भी दिखाई पड़ता है, वह महावीर के लिए निर्मूल्य हो गया है, उसका सारा मूल्य खो गया है।
महावीर कुछ छोड़ते नहीं हैं, चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गई हैं, उन्हें ढोना असंभव है। महावीर छोड़कर नहीं जाते हैं। वे जाते हैं, और चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गया है उसे साथ ढोना संभव नहीं है।
महावीर के बड़े भाई घर रह गए हैं। महावीर के बड़े भाई दुखी हैं कि उनके छोटे भाई ने भूल की; हीरे-जवाहरात, धन-दौलत, यश, सुख-सुविधा, सब छोड़कर चला गया है। इन दोनों के बीच प्रौढ़ और बच्चे के मन का फासला है। महावीर के बड़े भाई दुखी हैं कि दुख उठाने जा रहा है यह! और महावीर तो दुख उठाने नहीं जा रहे, महावीर तो इतने आनंद से भर गए हैं कि अब दुख का कोई उपाय ही नहीं रह गया है।
लेकिन पूछा जा सकता है कि वे वहीं घर पर भी तो रह सकते थे? जैसा मैंने अभी उस सम्राट की बात कही, जो महल में था, लेकिन महल जिसमें नहीं था। महावीर वहां भी रह सकते थे, लेकिन यह व्यक्ति-व्यक्ति के टाइप और प्रकार की बात है।
महावीर नहीं रह सकते थे, कृष्ण रह सकते हैं। जनक रह सकते हैं, बुद्ध नहीं रह सकते। यह व्यक्तियों की बात है; और व्यक्ति परम स्वतंत्रता है। और नियम एक-दूसरे पर नहीं थोपे जा सकते। महावीर के लिए जो संभव था, वह संभव हुआ। महावीर के भीतर जो फूल खिल सकता था, वह खिला। लेकिन इस फूल के खिलने के भी अपने आनंद हैं। महल में, महल के न होकर रहने का अपना आनंद है। महल के बाहर, वृक्ष के नीचे रहने का अपना आनंद है। और दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती, कोई कंपेरिजन नहीं हो सकता। यह व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। महावीर जब सब छोड़कर चले गये... और वृक्षों के नीचे बैठना, सोना और भिक्षापात्र लेकर गांव-गांव भटकने में कौन-सा आनंद होगा? इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि अपरिग्रह के तत्व में यह बड़ी कीमती और बड़ी गहरी बात है।
महावीर की समझ ऐसी है कि जब श्वास मैं नहीं लेता, और जन्म मैं नहीं लेता--जन्म अपने से आता है, श्वास अपने से आती है, मृत्यु अपने से आती है-- तो जीवन की व्यवस्था भी मैं अपने ऊपर क्यों लूं? उसे भी परमात्मा पर छोड़ देते हैं कि वही करेगा व्यवस्था। यह परम आस्तिकता का लक्षण है। यह परम आस्तिकता है, व्यवस्था भी क्यों... !
कल सुबह होगी, सूरज निकलेगा नहीं निकलेगा, तो हमने क्या व्यवस्था की है? कल अगर सुबह सूरज नहीं निकला और रात उसने रेजिगनेशन भेज दिया, इस्तीफा

दे दिया, या कल सुबह हड़ताल पर चला गया, स्ट्राइक पर चला गया और कल सुबह नहीं निकला, तो हमारे पास क्या उपाय है, हम क्या करेंगे? और कल हवाओं से अगर आक्सीजन विदा हो जाये, और कल अगर जिंदगी असंभव हो जाये, तो हम क्या करेंगे? हमने क्या सुरक्षा की है? क्या व्यवस्था की है? कल अगर पृथ्वी ठंडी हो जाये, या कल अगर पृथ्वी टूट जाये और बिखर जाये--अनेक पृथ्वियां बिखर चुकी हैं, अनेक बिखर रही हैं; अनेक सूरज ठंडे हो चुके हैं, अनेक ठंडे हो रहे हैं-- कल अगर यह हो जाये, तो हमने क्या व्यवस्था की है?
महावीर कहते हैं कि इतने बड़े कॉस्मास में, इतने अनंत ब्रह्मांड में, जहां हमारे हाथ में कुछ भी व्यवस्था नहीं है, वहां यह महावीर नाम का आदमी अपने आसपास एक घर की व्यवस्था भी करे, इस नास्तिकता में पड़ने का क्या अर्थ है? महावीर कहते हैं, यह व्यवस्था भी क्यों? जब इतनी अव्यवस्थाएं भी झेलनी पड़ सकती हैं, तो इतनी-सी अव्यवस्था वे और जोड़ देते हैं। इतनी कॉस्मिक अव्यवस्था में, इतनी ब्रह्मांड की असुरक्षा में, मैं बैंक-बैलेंस रखकर भी क्या व्यवस्था कर पाऊंगा?
तो महावीर कहते हैं, यह व्यर्थ का बोझ मैं छोड़ देता हूं। छोड़ देता हूं
कि जहां से श्वास आती है, जहां से कल की सुबह आयेगी, जहां से आज का सूरज आया था, और जहां से आज का चांद आया है, और जहां से कल सुबह जड़ों को रस मिलेगा, और जहां से कल वृक्षों में फूल खिलेंगे, और जहां से पक्षी गीत गायेंगे, वहीं से अगर इस परम सत्ता की कोई आकांक्षा इस शरीर को भी जिंदा रखने की है, तो वह रख लेगी; और नहीं रखने की है, तो महावीर की अपनी अब कोई इच्छा शेष नहीं रह गई है।
यह महावीर की इस बात की घोषणा है सब को छोड़कर जाना कि अब मैं अपने लिए नहीं जी रहा हूं। अगर परमात्मा जिलाना चाहता है, तो वह जाने। अब मैं अपनी तरफ से नहीं जी रहा हूं।
इसलिए महावीर की जिंदगी में एक छोटा-सा नियम था, जो मैं आपसे कहूं, जो बड़ा अदभुत है। शायद दुनिया के किसी संन्यासी ने वैसे नियम का उपयोग नहीं किया है। सच तो यह है कि महावीर जैसा संन्यासी खोजना बहुत मुश्किल है। महावीर का एक नियम था कि सुबह जब भीख मांगने निकलते थे, तो वे अपने मन में सुबह के ध्यान में सोच लेते थे कि आज इस शर्त पर भीख मिलेगी तो स्वीकार करूंगा, नहीं तो नहीं करूंगा!
अब भिखारी कभी शर्त नहीं लगाते। भिखारियों की भी कोई कंडिशंस हो सकती हैं? भिखारी बेशर्त मांगते हैं। और महावीर शर्त लगाकर मांगते हैं, क्योंकि वे कोई भिखारी नहीं है। और शर्त भी ऐसी कि दूसरे आदमी को बतायी भी नहीं गई है कि वह कोई इंतजाम न कर ले। शर्त सिर्फ उन्हीं को पता है।
जैसे, वह सुबह शर्त लेकर निकले अपने मन में कि अगर आज काले कपड़े पहने हुए, एक आंख वाली एक गोरी स्त्री मुझे भिक्षा देगी, तो ले लूंगा, अन्यथा नहीं लूंगा।
अब इस गांव का उन्हें कुछ भी पता नहीं है, रात ही इस गांव में आकर वे ठहरे हैं। अब एक आंख वाली गोरी स्त्री काले कपड़े पहने हुए उनको भिक्षा देगी, तो वे स्वीकार कर लेंगे, अन्यथा वह गांव में घूमकर वापस लौट आयेंगे। वे कहेंगे, परमात्मा की मर्जी नहीं थी तो जाने दो, क्योंकि अपनी अब कोई मर्जी जीवन की नहीं है। न मरने की कोई मर्जी है, न जीने की कोई मर्जी है। अपनी तरफ से, वह जो जिजीविषा है, वह जो लस्ट फार लाइफ है, वह अब नहीं है। अब परमात्मा की मर्जी हो तो रखे, मर्जी हो तो उठा ले।
एक बार ऐसा हुआ कि महावीर महीनों तक गांव में जाते रहे और भिक्षा न मिल सकी, क्योंकि उन्होंने एक शर्त ले ली। अब वह शर्त तो बताई नहीं जाती थी, नहीं तो कोई इंतजाम हो जाता। गांव बहुत से उपाय करता, लेकिन वह शर्त पूरी न होती। अब बड़ी मुश्किल हो गई कि महावीर के मन में क्या है। महावीर ने एक शर्त ले ली कि एक राजकुमारी, जो जंजीरों में बंधी हो, जिसका एक पैर मकान के भीतर और एक पैर मकान के बाहर हो, जिसकी आंखों में आंसू हों और ओंठ पर मुस्कुराहट हो, अगर वह भिक्षा देगी, तो ले लेंगे।
तो फिर महीनों भिक्षा नहीं मिली। नहीं मिली, तो भी वे रोज आनंदित गांव जाते और आनंदित वापस लौट आते। सारा गांव दुखी और पीड़ित है, और सारा गांव रो

रहा है, गांव भर में भोजन मुश्किल हो गया है। लोग हाथ-पैर जोड़ते हैं और कहते हैं कि स्वीकार करें। लेकिन महावीर कहते हैं, उसकी मर्जी।
महीनों बीत गए। पर एक दिन यह भी हो गया। कारागृह में बंद एक राजकुमारी
ने भिक्षा दी। उसकी आंखों में आंसू थे, अपने कारागृह में होने के कारण। ओंठों पर मुस्कुराहट थी, क्योंकि महावीर ने उसकी भिक्षा स्वीकार कर ली थी। वह हंस रही थी। महावीर उसके द्वार पर रुक गए। आंखों में आंसू थे, ओंठ पर मुस्कुराहट थी, एक पैर जंजीरों से बंधा हुआ पीछे था, एक बाहर निकाल पायी थी, क्योंकि एक ही पैर खुला था। महावीर भिक्षा लेकर लौट गए। लेकिन इस भिक्षा के लिए परमात्मा कभी उनको जिम्मेवार नहीं ठहरा सकेगा। अगर कोई जिम्मेवार होगा, तो परमात्मा ही होगा।
यह परम सत्ता में समर्पण है, यह संन्यास का... यह संन्यास की परम अंतिम अवस्था है--जहां व्यक्ति एक श्वास भी अपनी तरफ से नहीं लेता। इसलिए महावीर कह सकते हैं कि मेरे कर्मों का अब कोई फल मेरे लिए नहीं है; और मेरे कर्मों का कोई परिणाम अब मुझसे नहीं बंधा है। अब मैं कुछ कर ही नहीं रहा हूं। अब जो हो रहा है, हो रहा है। करना मेरे हाथ में नहीं है। कर मैं नहीं रहा हूं। अब मेरी कोई इच्छा नहीं है।
लेकिन महावीर का यह अपना व्यक्तित्व है। और हम से भूल हो जाती है, जब
हम दो व्यक्तियों में तुलना करने लगते हैं। अगर हम जनक और महावीर की तुलना करें, तो कठिनाई हो जायेगी। जनक का अपना आनंद है। महावीर कहते हैं, परमात्मा को रखना होगा, तो रख लेगा किसी भी हाल में। जनक कहते हैं, परमात्मा ने महल दिया है, तो मैं छोड़नेवाला कौन हूं? जनक कहते हैं, परमात्मा ने राज्य दिया, तो मैं छोड़ने की झंझट में भी क्यों पडूं?
कौन ठीक है, कौन गलत है? दोनों का अपना ढंग है परमात्मा को देखने का। दोनों ही ठीक हैं। हजार तरह के लोग हैं। जीसस अपनी तरह के आदमी हैं; बुद्ध अपनी तरह के, महावीर अपनी तरह के, कृष्ण अपनी तरह के। हमने जब भी उनकी तुलना की है, तब भूल हो जाती है। क्योंकि तुलना में हम किसी एक आदमी की तरफ झुक जाते हैं, जिसकी तरफ हमारे व्यक्तित्व का टाइप झुकता है। और तब हम दूसरे को गलत देखने लगते हैं।
नहीं, कोई कारण नहीं है। इस पृथ्वी पर लाख तरह के व्यक्तित्व खिल गए हैं, लाख तरह के व्यक्तित्वों के खिलने की संभावना है। तुलना की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन गहरे में अगर देखें, तो बात एक ही है। जनक महल में हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि जब परमात्मा ने महल दिया, तो मैं क्यों छोडूं? महावीर जंगल में हैं; लेकिन बात एक ही है। वे कहते हैं, अगर उसको रखना है, तो जंगल में भी महल की तरह रख लेगा। मैं क्यों फिक्र करूं? दोनों एक ही बात कहते हैं; लेकिन दोनों के व्यक्तित्वों के ढंग अलग हैं। वह एक बात ही इन दो व्यक्तियों में अलग-अलग गीत बन जाती है। वह एक बात ही इन दोनों व्यक्तियों में अलग-अलग स्वर ले लेती है। वह एक बात ही इन दोनों व्यक्तियों में अलग-अलग अर्थ बन जाती है। लेकिन वह बात एक ही है।
वह परमात्मा में समर्पण की बात है। यह हमें ख्याल में आ जाये, तो तुलना बंद कर देनी चाहिए। यह हमारे ख्याल में आ जाये, तो प्रत्येक को, वह जैसा है वैसा ही, उसकी पूर्णता में समझ लेने की कोशिश कर लेनी चाहिए, बिना कंपेरीजन के। और तब एक दिन हम समझ पायेंगे कि हजार फूल हों, लेकिन सौंदर्य एक है; और हजार ढंग के दीये हों, लेकिन ज्योति एक है; और हजार ढंग के सागर हों, लेकिन सभी सागरों का पानी एक-सा खारा है। जिस दिन यह दिखाई पड़ना शुरू होता है, उस दिन व्यक्ति विदा हो जाते हैं और वह जो मौलिक आधारभूत सत्य है, उसका दर्शन हो जाता है।

ओशो, आज एक और मुश्किल पैदा हो गई है। और वह मुश्किल यह है कि जिस ऊंचाई से अपरिग्रह के बारे में जो प्रश्न पूछे गए हैं, उनका उत्तर आपने उसी ऊंचाई से दिया है, उसी संदर्भ में यह बात सामने आती है कि अपरिग्रह को आप अचाह की संज्ञा देते हैं, डिजायरलेसनेस बताते हैं। सुनने में यह बात बड़ी सार्थक, पाजिटिव लगती है; लेकिन लोग इसे नकारात्मक अर्थों में ले सकते हैं। तब तो सारी वैज्ञानिक खोज और कर्म करने की प्रेरणा ही समाप्त हो जायेगी, सारी प्रगति गतिरुद्ध हो जायेगी। कृपया इसे स्पष्ट करें। साथ ही

एक बात और कि महावीर महावीर थे; बुद्ध बुद्ध थे; क्राइस्ट काइस्ट थे; लेकिन उनके अनुयायी उस ऊंचाई को नहीं पा सके कभी भी। और उनके अनुयायियों में एक निष्क्रियता भी पैदा हो गई। नतीजा यह हुआ कि आध्यात्मिक रूप से ऊंचाई को तो नहीं छू सके वे, भौतिक दृष्टि में भी बड़े फीके पड़ गए। ऐसी स्थिति में आपका क्या कहना है?

अपरिग्रह की बात दरिद्रता का बचाव बन सकती है। अपरिग्रह की बात प्रगति का विरोध बन सकती है। अपरिग्रह की बात जीवन की संपन्नता की खोज में बाधा बन सकती है। सभी बातें गलत ढंग से लिए जाने पर विपरीत परिणाम लाती हैं। सभी बातें उलटे ढंग से पकड़े जाने पर जीवन को लाभ नहीं, हानि पहुंचाती हैं। और आदमी जैसा है, उससे गलत ढंग से पकड़े जाने की सदा संभावना है।
एक छोटी-सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूंगा।
एक गांव है, और उस गांव में एक बहुत बड़ा धनपति है, और जैसे कि धनपति होते हैं, वैसा ही धनपति है--कंजूस। एक पैसा उससे छूट नहीं पाता है। और तो और जो नए भिखारी भी गांव में आते हैं, तो पुराने भिखारी उनसे कह देते हैं कि उस दरवाजे पर मत जाना! उस घर से कभी किसी को कुछ नहीं मिला है!
गांव में एक नया मंदिर बन रहा है। गांव के गरीब से गरीब आदमी ने भी उस मंदिर के लिए कुछ न कुछ दिया है; किसी ने हजार दिया है, किसी ने दस हजार दिए हैं; किसी ने पांच दिए हैं, किसी ने एक ही दिया है। गांव के लोगों ने एक फेहरिस्त बना ली। जिस-जिस आदमी ने जो-जो दिया है, उसकी एक फेहरिस्त बना ली। उन्होंने सोचा कि एक भी आदमी गांव में ऐसा न बचे, जिसने कुछ न दिया हो। फेहरिस्त लेकर गांव के सौ-पचास खास आदमी उस करोड़पति के द्वार पर भी गए। सोचा उन्होंने कि आज तो हम कुछ लेकर ही लौटेंगे; क्योंकि वह फेहरिस्त देखकर भी प्रभावित न होगा? न प्रभावित हो, तो कम से कम संकोच से तो भर जाता है आदमी!
जब वे फेहरिस्त सुनाने लगे कि फलां ने दस हजार दिए हैं; जिसकी कुछ भी हैसियत नहीं है, उसने दस हजार दिए हैं! जो बिल्कुल ही दीन-हीन है, उसने भी हजार दिए हैं! जो रोज ही रोटी कमाता है, उसने भी पांच रुपए दिए हैं! वे फेहरिस्त सुनाते जाते और अमीर की तरफ बीच-बीच में देखते जाते कि उस पर क्या परिणाम हो रहा है! अमीर बहुत उत्सुक होता जाता दिखायी पड़ा, वह प्रभावित होता दिखायी पड़ा। तब तो गांव के लोगों को लगा कि आज काम बन जायेगा। लेकिन पूरी फेहरिस्त सुनने के बाद वह अमीर तो एकदम खड़ा हो गया! उसने कहा, मैं बहुत प्रभावित हो गया हूं! तो गांव के लोगों ने सोचा कि आज हम लोग निष्फल नहीं लौटेंगे। तब उन्होंने कहा, फिर आप भी कुछ दें! जब आप इतने प्रभावित हो गए हैं!
उस अमीर आदमी ने कहा, तुम मेरे प्रभावित होने का मतलब गलत समझे। मैं इसलिए प्रभावित हो गया हूं कि कल से मैं भी गांव में दान मांगना शुरू करने की योजना बनाऊंगा! जिस गांव में सब लोग देने को राजी हों, उस गांव में दान न मांगना बड़ी गलती है। मैं बहुत प्रभावित हो गया हूं!
आदमी ऐसे ही प्रभावित होता रहा है। महावीर महल छोड़कर सड़क पर आ गए। होना तो यह चाहिए था कि जिनके पास महल थे, उन्हें पता चलना चाहिए था कि वे जरूर किसी व्यर्थ दौड़ में लगे हैं। क्योंकि जिसके पास महल था, वह छोड़कर सड़क पर खड़ा हो गया है।
नहीं, यह नहीं हुआ। हुआ यह कि जो झोपड़ों में थे, उन्होंने सोचा कि जब महलवाला ही छोड़कर आ रहा है, तब हमें अपने झोपड़े को महल बनाने की कोशिश क्यों करनी चाहिए? और गरीब अगर अपनी गरीबी में राजी हो जाये, तो कभी भी उस स्थिति को उपलब्ध नहीं हो पाता, जो धन के अनुभव के बाद में मिलती है। वह गरीब ही रह जाता है।
महावीर को भिक्षा मांगते देखकर सम्राटों को शर्म आनी चाहिए थी; सोचना चाहिए था कि जो आदमी सम्राट होकर कुछ न पा सका, वह भिक्षा मांगकर कुछ पा रहा है! नहीं, सम्राटों ने यह नहीं सोचा, भिखारियों ने यह सोचा कि हम बड़े गौरववान हैं। क्योंकि देखो! महलों में नहीं मिला तो अब भीख मांगने आए। हम तो पहले से ही भीख मांग रहे हैं। हम पर परमात्मा की कुछ ज्यादा ही कृपा है।

आदमी... आदमी ऐसा सोचता है। और इसलिए इस बात में सच्चाई है कि भारत की दीनता को बचाने में महावीर से प्रभावित लोगों का हाथ है--पर महावीर का नहीं। भारत की दीनता में, भारत की अवैज्ञानिकता में, भारत की अप्रगति में बुद्ध और महावीर से प्रभावित लोगों का हाथ है--बुद्ध और महावीर का नहीं। लेकिन बड़ी कठिनाई है! महावीर पर दोष कैसे थोपा जा सकता है? आग है, घर में चूल्हा भी जला देती है और रात अंधेरे में रोशनी भी कर देती है। और किसी के मकान में आग लगानी हो, तो भी काम में आ जाती है। जिसने आग को खोजा था, उस आविष्कारक को कैसे दोष दिया जा सकता है?
ऐटम बम है, जिन वैज्ञानिकों ने बनाया, क्या उनको हिरोशिमा के लिए दोषी ठहराया जा सकता है? नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि अणु की ऊर्जा से तो खेत में हजार गुनी फसल भी आ सकती है। अणु की ऊर्जा से सारी दुनिया के यंत्र चल सकते हैं; आदमी काम से मुक्त हो सकता है। अणु की ऊर्जा से दीनता, दरिद्रता मिट सकती है, सदा के लिए। अणु की ऊर्जा से आदमी की उम्र लंबी हो सकती है। अणु की ऊर्जा से आदमी की संघातक बीमारियां समाप्त हो सकती हैं।
लेकिन आदमी ने यह कुछ भी नहीं किया! आदमी भूखों मर रहे हैं, खेत में फसल न बढ़ी। आदमी कैंसर से मर रहे हैं, कैंसर का इलाज अणु की ऊर्जा से न खोजा गया। बच्चे असमय मर जाते हैं, उनके बचाने की कोई संभावना अणु की ऊर्जा से न खोजी गई। अणु गिराया गया हिरोशिमा पर, कि लाखों आदमी राख हो जायें। क्या किया जा सकता है!
अरब में एक कहावत है कि जब भी कोई नया आविष्कार होता है, तो शैतान सबसे पहले उस पर कब्जा कर लेता है। महावीर का बड़ा आविष्कार है, शैतान ने सबसे पहले कब्जा कर लिया। आइंस्टीन का बड़ा आविष्कार है, शैतान ने सबसे पहले कब्जा कर लिया।
दो ही रास्ते हैंः या तो ये आविष्कार न किए जायें; शैतान के डर से दुनिया में अच्छी चीजें न बनायी जायें; गलत प्रभाव की वजह से दान न मांगा जाये; गलत प्रभाव की वजह से कोई अच्छा काम न हो--क्योंकि गलत प्रभाव पड़ सकते हैं। लेकिन तब भी तो बुरा परिणाम होगा। क्योंकि अगर जो अच्छा न हो पाये, तो भी तो बुरा शेष रह जायेगा।
इसलिए खतरे मोल लेने पड़ते हैं। आदमी गलत लेता है, लेने दें। जो ठीक है, उसे किये ही जाना होगा। आज नहीं कल, आदमी अपनी गलती को, अपने दुख और पीड़ा को समझेगा। और समझेगा कि उसने जिससे स्वर्ग बन सकता था, उससे नर्क बना लिया है।
महावीर गरीबी के समर्थक नहीं हैं, महावीर सिर्फ अमीरी की व्यर्थता के उदघोषक हैं। लेकिन ये दोनों बड़ी अलग बातें हैं।
और दूसरी बात पूछी है। साथ में पूछा है कि महावीर के अनुयायी तो कभी महावीर की ऊंचाई को न पा सके! क्राइस्ट की ऊंचाई को ईसाई नहीं पा सके! बुद्ध की ऊंचाई को बुद्धिस्ट नहीं पा सके!
नहीं पा सके उसका कारण है। क्योंकि अनुयायी कभी ऊंचाई पा ही नहीं सकता; क्योंकि जो आदमी दूसरे के पीछे चलता है, वह अपनी आत्मा को गंवाने का काम करता है। दूसरे के पीछे चलने के लिए अपनी हत्या तो करनी ही पड़ती है। दूसरे का अनुसरण करने के लिए स्वयं के विवेक को तो काटना ही पड़ता है। दूसरे के वस्त्र पहनने के लिए अपने शरीर को छोटा और बड़ा करना ही पड़ता है। दूसरे की आत्मा ओढ़ने के लिए अपनी आत्मा को दबाना ही पड़ता है। अनुयायी कभी ऊंचाई नहीं पा सकता, क्योंकि जिसने अनुयायी होने का तय किया है, उसने सुसाइडल निर्णय लिया है, आत्मघाती निर्णय लिया है।
मैं नहीं कहता कि महावीर के अनुयायी बनें। मैं नहीं कहता कि जीसस के अनुयायी बनें। महावीर को समझ लें, इतना काफी है, और छोड़ दें; जीसस को समझ लें, इतना काफी है, और छोड़ दें। बनें तो सदा आप आप ही बनें, महावीर बनने का आपके लिए कोई उपाय नहीं है; जीसस बनने का कोई उपाय नहीं है।
इसका मतलब यह नहीं है कि जीसस जिस ऊंचाई पर पहुंचे उस तक आप न पहुंच सकेंगे। आप भी पहुंच सकेंगे; लेकिन आप ही होकर पहुंच सकते हैं, जीसस की नकल करके नहीं पहुंच सकते।
अनुकरण नकल है। और ध्यान रहे! कार्बन-कापी जो आदमी बनने की कोशिश करता है, वह मूल-कापी की स्पष्टता नहीं पा सकेगा। और फिर हिंदुस्तानी कार्बन हो

तब तो और भी मुश्किल है! फिर तो कुछ समझ में भी आ जाये, यह भी मुश्किल है कि पीछे क्या है। और फिर सेकेंड कापी हो, तब भी ठीक! महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गए, पच्चीस सौ साल में हजारों कापियों के बाद आप खड़े हैं! लाखों कापियां गुजर चुकीं, उस कार्बन पर बहुत कापियां हो चुकीं! अब कुछ भी समझ में नहीं आता। लेकिन समझे चले जा रहे हैं, अनुकरण किए चले जा रहे हैं! अनुयायी कभी भी धार्मिक नहीं होता है। असल में अनुयायी यह कह रहा है
कि मैं अपने होने की जिम्मेवारी छोड़ना चाहता हूं। मैं किसी के पीछे चलना चाहता हूं। मैं अंधा होने के लिए तैयार हूं। मैं किसी का हाथ पकड़कर चलूंगा। मुझे कोई कहीं पहुंचा दे। मैं अपने चलने की जिम्मेवारी से इनकार करता हूं।
जिस आदमी ने अपनी आंखों से इनकार किया, और जिस आदमी ने अपने पैरों से इनकार किया, और जिस आदमी ने अपने विवेक की जिम्मेवारी लेने से इनकार किया, वह आदमी कभी भी विकसित नहीं हो सकता। उसने अविकास के सारे उपकरण चुन लिये। लेकिन सदा हमें यहीं समझाया जाता रहा है कि किसी का अनुकरण करो, किसी जैसे बनो। यह बड़ी खतरनाक शिक्षा है। दुनिया में कोई कभी "किसी जैसे" नहीं बन सकता है। आज तक बना नहीं, उदाहरण नहीं है। महावीर के पीछे बहुत लोग चले, लेकिन कौन महावीर बन सका है? ऐसा नहीं कि चलनेवालों ने कुछ कम कोशिश की है। यह दोष नहीं थोपा जा सकता। बड़ी कोशिश की है। कई बार तो ऐसा लगता है कि महावीर के पीछे चलनेवालों ने महावीर से भी ज्यादा कोशिश की है। सच तो यह है कि महावीर को महावीर होने में कोई कोशिश नहीं करनी पड़ती। वह स्पांटेनियस है। प्रत्येक को स्वयं होने में कभी बहुत कोशिश नहीं करनी पड़ती, दूसरा होने में ही कोशिश करनी पड़ती है। एफर्ट जो है, कोशिश जो है, वह दूसरा होने में ही करनी पड़ती है।
राम की सीता चोरी चली गई, तो राम को रोने में कोशिश नहीं करनी पड़ी। लेकिन रामलीला में जो राम होता है, उसको करनी पड़ती है, आंसू तो आते नहीं। हो सकता है स्टेज के पीछे से पानी लगाकर आता हो! हो सकता है हाथ में मिर्च लगाए रहता हो! जब सीता खोती हो तो जल्दी आंख मीचने लगता हो, क्योंकि जल्दी आंसू लाने पड़ते हैं। और इतना आसान नहीं है रामलीला में आंसू लाना, आंसू लाने पड़ते हैं। क्या राम को भी आंसू लाने का ऐसा उपाय करना पड़ा होगा? नहीं, राम के लिए जो है वह स्पांटेनियस है, वह सहज है। राम की वह अंतर-अवस्था है। महावीर का त्याग, महावीर की नग्नता, महावीर के लिए सहजता है। दूसरा आदमी नग्न होने की व्यवस्था से नग्न हो सकता है। लेकिन तब उसकी नग्नता सर्कस की नग्नता होगी, संन्यासी की नग्नता नहीं हो सकती। वह सिर्फ उधार, बारोड, दूसरे का थोपा हुआ होगा। वह ज्यादा से ज्यादा महावीर का ऐक्ट कर सकता है। महावीर नहीं हो सकता।
जीसस, या बुद्ध, या कृष्ण, या राम इनके पीछे चलनेवाले लोग अभिनय कर रहे हैं। इन्होंने आथेंटिक, प्रामाणिक आत्मा को इनकार कर दिया है।
एक बात ध्यान रखनी जरूरी है कि परमात्मा ने प्रत्येक को स्वयं के होने का हक दिया है। और जो आदमी अपने इस हक को छोड़ता है, वह परमात्मा की सबसे बड़ी देन को छोड़ता है। ऐसा आदमी नास्तिक है। ऐसा आदमी यह कह रहा है कि तुमने हम पर बहुत बड़ी जिम्मेवारी दे दी। हम इस योग्य न थे। हमें तो किसी के पीछे चला दो। हम इंजन नहीं हो सकते, हम तो सिर्फ डिब्बे होने लायक हैं जो इंजन के पीछे लगे रहें और उनकी सेंटिंग इधर से उधर होती रहे। तो वह अपनी जिंदगी गुजार लेगा।
नहीं, प्रत्येक आदमी स्वयं होने को पैदा हुआ है--बेजोड़, यूनीक। उस जैसा कोई आदमी इस पृथ्वी पर न पहले हुआ है और न पीछे होगा। परमात्मा कोई मिडियाकर क्रियेटर नहीं है। वह कोई मध्यम-वर्गीय या साधारण कोटि का स्रष्टा नहीं है कि एक ही आदमी को फिर दोबारा पैदा करे। वह रोज नए आदमी को पैदा कर देता है!
मैंने सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है कि पिकासो का एक चित्र किसी आदमी ने खरीदा, कोई दस लाख रुपए में। पिकासो की पत्नी से उसने पूछा कि यह चित्र प्रामाणिक तो है न? आथेंटिक तो है न? पिकासो का ही है न?
पिकासो की पत्नी ने कहा, बिल्कुल निश्चिंत होकर आप खरीद लें; क्योंकि
यह चित्र मेरे सामने ही पिकासो ने बनाया है।

चित्र खरीद लिया गया। वह आदमी पिकासो को यह खबर देने गया। उसने कहा जाकर पिकासो से कि मैंने दस लाख रुपए में आपका एक चित्र खरीदा है। वह चित्र भी साथ ले गया था। पिकासो ने उस चित्र को देखा और कहा कि यह असली नहीं है, आथेंटिक नहीं है।
वह आदमी तो होश खोने लगा। दस लाख रुपए लगाये उसने और पिकासो ने कह दिया कि नहीं, यह प्रामाणिक नहीं है! तो उस आदमी ने कहा, आप कैसी बात कर रहे हैं? आपकी पत्नी ने गवाही दी है कि यह चित्र उसके सामने बना है।
उसकी पत्नी मौजूद थी। उसने भी कहा, आप कैसी बात कर रहे हैं? भूल गए हैं क्या? यह चित्र आपने बनाया है। मैं मौजूद थी।
पिकासो ने कहा, मैंने बनाया जरूर, लेकिन यह आथेंटिक नहीं है।
तब तो और मुश्किल हो गई। अगर पिकासो ने ही बनाया है, तो फिर प्रामाणिक क्यों नहीं है? तब तो उस खरीददार ने कहा, आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं? पिकासो ने कहा, मैं मजाक नहीं कर रहा हूं। यह चित्र बनाया तो मैंने ही है, लेकिन यह चित्र मैं एक दफा पहले और बना चुका हूं। अब यह सिर्फ उसकी कापी है। और यह कापी कोई दूसरा करे तो भी प्रामाणिक नहीं है, और मैं खुद करूं तो भी प्रामाणिक नहीं है। यह कापी है, ओरिजनल नहीं है। यह ख्याल मैं एक दफा पहले प्रगट कर चुका हूं।
लेकिन परमात्मा जो ख्याल एक दफे प्रगट कर चुका, दोबारा करता ही नहीं। बुद्ध एक दफा पैदा कर दिए, बात खत्म हो गई। महावीर एक दफा पैदा किये, बात खत्म हो गई। इस पृथ्वी पर खोजने से एक कंकड़ भी आप दूसरे कंकड़ जैसा न खोज पायेंगे, आदमी तो बहुत बड़ी बात है। आप झाड़ का एक पत्ता तोड़ लें तो उसी झाड़ पर दूसरा पत्ता वैसा न खोज पायेंगे, आदमी तो बहुत बड़ी बात है; आदमी तो बहुत ही जटिल चेतना का विकास है।
यहां प्रत्येक आदमी एक शिखर है। और किसी आदमी को यह हक नहीं कि वह किसी का अनुसरण करे। इसका यह मतलब नहीं है कि वह महावीर को समझे न। सच तो यह है कि अनुयायी ही नहीं समझता कभी भी, अनुयायी को समझने की जरूरत ही नहीं होती। असल में जिसको पीछा करना है, वह समझने से बचने के लिए ही पीछा करता है। वह समझने की झंझट में नहीं पड़ता। समझना तो उसे पड़ेगा, जिसे किसी का पीछा नहीं करना है। पीछा तो अपना ही करना है, लेकिन दूसरों ने भी अनुभव लिए हैं। दूसरों की जिंदगी में भी संगीत प्रगट हुआ है। दूसरों ने भी छुआ है जीवन का तार। और दूसरों ने भी जलाए हैं दीये ज्ञान के, प्रज्ञा के। और दूसरों की जिंदगी में भी सुवास उठी है आत्मा की। और दूसरों की जिंदगी में भी नृत्य घटा है परमात्मा का। उनको वह समझने जा रहा है।
इसलिए नहीं कि उनका वह अनुकरण करेगा, बल्कि इसलिए कि शायद इन सब विकसित फूलों को देखकर उसकी कली भी प्यास से भर जाये और फूल बनने को आतुर हो जाये। इसलिए कि शायद दूसरी वीणाओं को सुनकर उसकी वीणा के तार भी झनझना उठें और उसकी वीणा भी गीत गाने को आतुर हो उठे। इसलिए कि शायद दूसरे के पैरों में बंधे घुंघरुओं की आवाज उसके सोये हुए घुंघरुओं की चुनौती बन जाये, वह भी नाच सके।
लेकिन किसी का अनुकरण करने के लिए समझने की जरूरत नहीं है। किसी का अनुकरण करने के लिये समझने की जरूरत ही नहीं है। आंख पर पट्टी बांधिये और चल पड़िये। अनुकरण के लिए अंधा होना बड़ी से बड़ी योग्यता, क्वालिफिकेशन है। समझ बड़ी और बात है।
अपनी जिंदगी को अगर सच्चाई की ओर ले जाना हो, स्वयं को अगर विकसित करना हो, तो भूलकर किसी के अनुयायी मत बनना। और न भूलकर किसी को अनुयायी ही बनाना। दोनों ही खतरनाक बातें हैं। समझना दूसरों को, और अगर जिंदगी में कभी आपका भी फूल खिल जाये, तो रख देना बाजार के बीच सड़क पर कि दूसरे उसे देख लें। शायद उनकी कली को भी चुनौती मिल जाये।
लेकिन उनकी कली जब खिलेगी, तो वह फूल उनके जैसा होगा, आप जैसा नहीं होगा। और उनकी वीणा जब बजेगी, तो संगीत उन जैसा होगा, आप जैसा नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा के द्वार पर अपने ही प्राणों का नैवेद्य लेकर पहुंचना होता है। और प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा के द्वार पर अपनी ही आत्मा को लेकर पहुंचना होता है। उधार आत्माएं लेकर परमात्मा के द्वार पर कभी कोई प्रविष्ट हुआ हो, ऐसी खबर सदियों में कभी भी

नहीं सुनी गई है। वहां तो पूछा यही जायेगा कि प्रामाणिक है? आथेंटिक है? अपने को ही लेकर आए हो? किसी और का चेहरा लगाकर तो नहीं आ गए?
उस दरवाजे पर धोखा नहीं दिया जा सकेगा। हो सकता है इस पृथ्वी पर धोखा
भी हो जाये। हो सकता है इस पृथ्वी पर नंगा खड़ा हुआ कोई आदमी ठीक महावीर जैसा दिखाई पड़ने लगे। हो सकता है इस पृथ्वी पर कोई पीत-वस्त्र पहने हुए व्यक्ति ठीक बुद्ध जैसा दिखाई पड़ने लगे। हो सकता है इस पृथ्वी पर धोखा हो जाये। लेकिन परमात्मा के सामने सब वस्त्र गिर जायेंगे, और परमात्मा के सामने सब खोलें उघड़ जायेंगी। परमात्मा के सामने जब सब नग्न खड़ा हो जायेगा और परमात्मा के दर्पण में जब अपनी पूरी नग्नता दिखायी पड़ेगी, तो वहां सिवाए उसके कोई भी नहीं मिलेगा, जो आप थे। वहां वह नहीं मिलेगा जो आपने ओढ़ा; वह नहीं मिलेगा जो आपने संभाला; वह नहीं मिलेगा जो आपने अभ्यास किया; वहां तो वही दर्शित होगा, जो आप हैं। उस दिन बड़ा दुख होगा, बड़ी पीड़ा होगी कि कितने जन्म व्यर्थ ही नकल में गंवा दिए, नाटक में गंवा दिए।
जिंदगी दूसरे का अनुसरण नहीं, जिंदगी स्वयं का उदघाटन है। जिंदगी दूसरे जैसे होने की प्रक्रिया नहीं, स्वयं जैसे होने का आयोजन है। और जो इस स्वयं होने की चुनौती को स्वीकार करता है, वह महावीर का अनुयायी नहीं बनेगा, लेकिन वहीं पहुंच सकता है; उसी ऊंचाई पर, जहां महावीर पहुंचे हैं; पहुंच सकता है वहीं, जहां जीसस पहुंचे हैं; पहुंच सकता है वहीं, जहां बुद्ध की समाधि उन्हें ले गई है। उसी निर्वाण में, उसी मोक्ष में, उसी स्वर्ग में, उसी प्रभु के राज्य में प्रत्येक का प्रवेश हो सकता है।
मैं फिर से दोहराता हूं अंतिम बातः परमात्मा की वेदी पर अपने ही प्राणों के खिले फूल का नैवेद्य चढ़ाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।
आज के लिए इतना ही। शेष कल।
क्रास मैदान, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया नौवां प्रवचन

अचौर्य (प्रश्नोत्तर)

ओशो, अचौर्य पर आपने कहा है कि शरीर, भाव या मन के तल पर किसी दूसरे की नकल या किसी दूसरे का अनुगमन चोरी है। लेकिन जीवन अंतर्संबंधों का एक जाल है; यहां सब जुड़े हुए हैं। तब व्यक्ति अपनी शुद्धतम मौलिकता तथा बाहर से आने वाली सूक्ष्म तरंगों के प्रभाव अथवा आरोपण को किस प्रकार पृथक करे? और वह उससे कैसे बचे?

जीवन अंतर-संबंधों का जाल है, लेकिन जीवन सिर्फ अंतर-संबंध ही नहीं है। अंतर संबंधित होने के लिए भी व्यक्ति चाहिए, अंतर-संबंध भी दो व्यक्तियों के बीच संबंध है; लेकिन दो व्यक्ति भी चाहिए, जिनके बीच संबंध हो सके। तो जीवन, जो हमें बाहर दिखायी पड़ता है वह तो अंतर-संबंध है, लेकिन एक और भी जीवन है भीतर, जो अंतर-संबंधित होता है। वह व्यक्ति अगर न हो, तो अंतर-संबंध सब झूठ हो जाते हैं। जुड़ेगा कौन?
प्रेम एक संबंध है; लेकिन प्रेमी का व्यक्तित्व भी चाहिए। और वह व्यक्तित्व यदि उधार है, तो व्यक्तित्व नहीं है। व्यक्तित्व सदा अपना ही होता है, उधार नहीं। जो उधार है, वह व्यक्तित्व ही नहीं है। वह सिर्फ धोखा है। वह चेहरा है, जो हमने दूसरों को दिखाने के लिए ओढ़ लिया है। उस चेहरे के भीतर कोई भी नहीं है। प्राणवान, निजता लिये हुए, इंडीविजुअलिटी लिये हुए कोई भी नहीं है। जिसे हम साधारणतया व्यक्ति कहते हैं, वह इंडीविजुअल नहीं है, सिर्फ पर्सनैलिटी है। जिसे हम साधारणतया व्यक्ति कहते हैं, वह निजता नहीं है, बल्कि ओढ़े हुए वस्त्रों का समूह है। जैसे प्याज है। प्याज के छिलके को अगर कोई उतारता चला जाये, तो ऐसा लगेगा कि अब इस छिलके के बाद प्याज मिलेगी, अब इस छिलके के बाद प्याज मिलेगी! छिलकों को उतारता चला जाये तो छिलके ही मिलते हैं, प्याज कभी मिलती नहीं। ऐसे ही हम भी एक गठरी हैं, जिसमें सब उधार इकट्ठा होता चला गया है। लेकिन अगर इस उधार व्यक्तित्व के पीछे उतरते चले जायें, तो पीछे शून्य ही हाथ लगेगा। और पीछे यदि आत्मा न हो, निजता न हो, तो सारा जीवन झूठा हो जाता है।
जीवन की गहरी से गहरी चोरी अनुकरण, नकल, अनुसरण है। जब भी कोई व्यक्ति किसी और जैसा बनने की चेष्टा में रत होता है तभी गहरे में चोर हो जाता है। जब भी कोई व्यक्ति किसी और को अपने ऊपर ओढ़ लेता है, तो नकली हो जाता है, असली नहीं रह जाता। आथेंटिक, प्रामाणिक निजता उसकी खो जाती है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरों से आई हुई तरंगें हम ग्रहण न करें। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरों से हम संबंधित न हों। दूसरों से हम जरूर ही संबंधित हों, लेकिन स्व को बचाते हुए। क्योंकि फिर संबंधित कौन होगा, अगर स्व भी खो गया। दूसरों से तरंगें आयेंगी, उन्हें लेना भी पड़ेगा; उन्हें लें जरूर, लेकिन वे तरंगें ही न बन जायें। उन्हें लें भी, दें भी; लेकिन उनके पार भी आप बचे रहें; उनसे अछूता भी पीछे कोई खड़ा रहे; उस सारे लेन-देन के बाद भी कोई बच जाये, जो लेन-देन के बाहर है।
अंग्रेजी में एक शब्द है--एक्सटेसी। हमारे पास एक शब्द है--समाधि। समाधि को जो लोग अंग्रेजी में रूपांतरित करते हैं, वे एक्सटेसी करते हैं। एक्सटेसी बड़ा अदभुत शब्द है। एक्सटेसी का मतलब है, बाहर खड़े होना, टु स्टैंड आउट साइड। एक्सटेसी का मतलब है, जीवन की सारी धारा में होते हुए भी हर पल बाहर खड़े होना। जीवन में बहते हुए, जीवन के बाहर भी हमारे भीतर कुछ रह जाये, वही हमारी निजता है, वही हमारा होना है। अगर हम जीवन में पूरी तरह खो गए हैं और हमारे पास हमारे संबंधों के अतिरिक्त कुछ भी न बचा, तो हमने अपनी आत्मा खो दी है।
आत्मा का और कोई अर्थ नहीं है। आत्मा का अर्थ ही यही है कि सब हो फिर
भी भीतर, कुछ अछूता, अस्पर्शित, अनटच्ड, बाहर रह जाये। रास्ते पर चल रहे हैं; लेकिन चलते समय भी कुछ आपके भीतर होना चाहिए, जो नहीं चल रहा है। क्रोध से भरे हैं; लेकिन क्रोध से भरे क्षण में भी कोई आपके भीतर होना

चाहिए, जो आपके क्रोध को भी देख रहा है। भोजन कर रहे हैं; भोजन करते समय भी कोई आपके भीतर होना चाहिए जो भोजन नहीं कर रहा है, बल्कि जो यह भी जान रहा है कि भोजन किया जा रहा है।
अगर प्रतिपल जीवन के अंतरजाल में हम अपने भीतर किसी को बचा पाते हैं,
तो वह जो बचा हुआ है, जो शेष है, द रिमेनिंग, वही हमारी निजता है। उस निजता का जिसके पास अस्तित्व नहीं है, वह आदमी आदमी कहे जाने का हकदार नहीं रह जाता। उसके पास कोई आत्मा नहीं है। उसने अपनी आत्मा खो दी है।
हममें से बहुत कम लोगों के पास इस अर्थों में आत्मा है... बहुत कम लोगों के पास! हम वही हैं--छिलकों का जोड़; वस्त्रों का जोड़; उसके पीछे और कुछ भी नहीं है। इसे भी मैं चोरी कहता हूं। यह चोरी है। किसी का धन चुरा लेना बहुत बड़ी चोरी नहीं है, लेकिन किसी का व्यक्तित्व ओढ़ लेना बहुत बड़ी चोरी है। किसी के वस्त्र चुरा लेना बहुत बड़ी चोरी नहीं है, लेकिन किसी के जैसे बनने की चेष्टा में अपने को खो देना बहुत बड़ी चोरी है। किसी के मकान पर कब्जा कर लेना उतनी बड़ी चोरी नहीं है--चोरी है, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वह चोरी नहीं है--पर उतनी बड़ी चोरी नहीं है, जितनी अपनी आत्मा को खोकर किसी आत्मा की छाया बन जाना बड़ी चोरी है।
सुना है मैंने कि एक आदमी की जिंदगी में कुछ देवता नाराज हो गए थे और उन्होंने उसे अभिशाप दे दिया था। वह अभिशाप बड़ा अजीब था। उन्होंने अभिशाप दे दिया था कि आज से तेरी छाया खो जायेगी! वह आदमी हंसा। उसने देवताओं से कहा, छाया से मुझे प्रयोजन भी क्या है? अगर मैं बच गया, तो छाया न होने से मुझे क्या कमी पड़नेवाली है? छाया पड़ती है मेरी या नहीं पड़ती है, इसकी मैंने आज तक न चिंता की, न फिक्र की। तुम पागल तो नहीं हो गए हो? अगर नाराज ही हो गए हो, तो यह अभिशाप कोई बड़े काम का मालूम नहीं पड़ता। लेकिन देवता हंसे, क्योंकि देवता उस आदमी से ज्यादा जानते थे।
वह आदमी अपने गांव में लौटा हंसता हुआ कि देवता भी पागल हो गए मालूम होते हैं। छाया खोने से मेरा क्या खो जायेगा! लेकिन गांव में आकर उसको पता चला कि देवता पागल नहीं हैं, वही मुश्किल में पड़ गया है। जिस आदमी ने भी देखा कि उसकी छाया नहीं पड़ती है, वह उसे देखकर भागा। पत्नी ने द्वार बंद कर लिया। पिता ने कहा, हट जाओ, मेरी आंख के सामने दुबारा मत आना। तुम भूत हो, प्रेत हो--क्या हो? मित्रों ने दरवाजे बंद कर लिए। ग्राहक उसकी दूकान पर आने बंद हो गए। रास्ते से निकलता तो लोग अपने मकानों में अपने बच्चों को बुला लेते कि भीतर आ जाओ, वह आदमी निकल रहा है जिसकी छाया नहीं है। उस आदमी का गांव में जीना मुश्किल हो गया।
अंततः गांव के लोगों ने निर्णय किया कि इस आदमी को गांव के बाहर कर दें। यह आदमी खतरनाक है। ऐसा कभी सुना नहीं कि छाया रहित आदमी हो। और अंततः उस गांव के लोगों ने उस आदमी को बाहर निकाल दिया। तब उस आदमी को पता चला कि छाया खोकर बहुत कुछ खो गया है।
लेकिन उस आदमी को तो हम छोड़ें, हम सिर्फ छाया हैं, आत्मा हमने खो दी है। हमारा कितना खो गया है उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। हम सिर्फ शैडोज हैं, हम सिर्फ छायाएं हैं। उस आदमी की सिर्फ छाया खो गई थी तो वह इतनी मुश्किल में पड़ गया और हमारी तो आत्मा भी खो गई है, तो हम कितनी मुश्किल में न होंगे? लेकिन चूंकि सभी की खो गई है, इसलिए हमें कोई गांव के बाहर नहीं कर देता है। और अगर छाया खो जाए, तो दूसरे को पता भी चल जाता है, लेकिन आत्मा खो जाए, तो सिर्फ स्वयं को ही पता चल सकता है, किसी दूसरे को पता नहीं चल सकता। क्योंकि आत्मा कोई बाह्य घटना नहीं है।
इसलिए अचौर्य की बात समझते समय एक प्रश्न निरंतर अपने से पूछना चाहिए, कुछ भी मेरे पास है जिसे मैं कह सकूं कि मेरी निजता है? जो मैं जन्म के साथ लाया था? जो मैंने जीवन में नहीं सीखा? कुछ भी मेरे पास है, जो जन्म के पहले भी मेरा था?
यदि ऐसा कुछ भी आपको स्मरण आता हो कि आपके पास है, जो जन्म के पहले भी आपके पास था, तो आप आश्वस्त हो सकते हैं कि आप जब मरेंगे, तब भी आपके पास कुछ बच रहेगा। लेकिन अगर जन्म के बाद का ही सब पाया हुआ है, तो मृत्यु उस सब को छीन लेगी। जन्म के पहले का अगर आपके पास कुछ भी है और ऐसा लगता है कि जिसे आपने जीवन से नहीं सीखा, जीवन से नहीं लिया, जीवन से नहीं पाया; जिसे

लेकर ही आप आए हैं; जो आपका स्वभाव है; तो मृत्यु से डरने का कोई कारण फिर आपके लिए नहीं है। क्योंकि जो आपने जीवन से नहीं पाया, उसे मृत्यु नहीं छीन पाती।
लेकिन हम सब डरते हैं मरने से। हम डरते हैं इसीलिए--इसलिए नहीं कि मृत्यु दुखदायी है। आज तक किसी ने नहीं कहा कि मृत्यु दुखदायी है--मृत्यु दुखदायी है इसलिए नहीं डरते, बल्कि इसलिए डरते हैं कि जीवन जिसे हम कहते हैं, उसमें हमारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मृत्यु से बचकर हमारे पास बच सके। वह सब छीन लिया जायेगा। जो भी हमने दूसरों से पाया है, उसे हम कभी मृत्यु के पार नहीं ले जा सकते हैं। चाहे वह धन हो, चाहे वह यश हो, चाहे वह ज्ञान हो, चाहे वह व्यक्तित्व हो, वह कुछ भी हो; जो हमने दूसरों से पाया है, वह मेरा नहीं है।
तो हम चोर हैं। वह जो दूसरों से हमने इकट्ठा कर लिया है, वही हमारी चोरी है। यह बहुत गहरी चोरी है, जिसे अदालत नहीं पकड़ेगी। यह बहुत गहरी चोरी है, जिसका कानून से कोई संबंध नहीं है। यह चोरी एक और बहुत बड़े कानून से संबंधित है, जिस कानून का नाम धर्म है। यह चोरी भी किसी अदालत में पकड़ी जाती है, लेकिन वह अदालत परमात्मा की अदालत है।
क्या हमारे पास कुछ भी हमारा है? जिसे मैं कह सकूं कि सीखा नहीं, अनलर्न्ड; कह सकूं, किसी से लिया हुआ नहीं; कह सकूं कि मैं ही हूं। अगर ऐसा कुछ भी नहीं है, तो हम जिस जीवन को जी रहे हैं, वह चोरी का जीवन है। और ऐसा नहीं है। लेकिन एक बार भी यह स्मरण आ जाये कि मेरे पास ऐसी कोई संपदा नहीं जो मेरी हो, मेरे पास ऐसी कोई निजता नहीं जो मेरी हो, तो जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।
इसलिए आप यह मत सोचना कि आपने कौड़ी नहीं चुराई। आप यह मत सोचना कि आपने किसी के घर से सामान नहीं चुराया। उस चोरी से धर्म का क्या लेना-देना है! उस चोरी से तो आदमी का कानून ही निपट लेता है। धर्म का तो किसी और चोरी से प्रयोजन है, जो कानून की पकड़ में नहीं आती; जिसका अदालतें निर्णय नहीं कर सकतीं; जो न्यायाधीश की सीमा के बाहर है।
धर्म का उस चोरी से संबंध है, जो प्रभावों की चोरी है, व्यक्तित्वों
की चोरी है, चेहरों की चोरी है। और हम सब चुराए हुए से जी रहे हैं। हम सब ऐसे जी रहे हैं, जैसे हम कोई और हों। हम हम नहीं हैं। मैं मैं नहीं हूं, किसी और की तरह जी रहा हूं।
इस अर्थ में मैंने कहा था कि अचौर्य मनुष्य की आत्मा में निजता की उपलब्धि का मार्ग है, और चोरी मनुष्य की आत्मा के खोने की विधि है। यह भाव के तल पर हो सकती है, विचार के तल पर हो सकती है, शरीर के तल पर हो सकती है। हम चलते तक नहीं अपने जैसे! हम चलना भी दूसरों से सीख लेते हैं। हम विचार भी नहीं करते अपने जैसा; हम विचार भी दूसरों से सीख लेते हैं! हम भाव भी नहीं करते अपने जैसा; हम भाव भी दूसरों से सीख लेते हैं! सुबह आदमी अखबार पढ़ लेता है और फिर दिन भर अखबार में पढ़ी बातों की चर्चा लोगों से करता रहता है! और उसे कभी ख्याल नहीं आता कि वह जो बोल रहा है उसमें उसका अपना कुछ भी नहीं है। गीता पढ़ लेता है, फिर जिंदगी भर दोहराये चला जाता है, और कभी नहीं पूछता लौटकर कि मैं जो बोल रहा हूं, उसमें मेरा कुछ भी नहीं! सब बोलना, सोचना, उठना, बैठना सब सीखा हुआ है। तो ऐसी जिंदगी में आनंद
की वर्षा नहीं हो सकती। ऐसी जिंदगी में अमृत की झलक नहीं मिल सकती। ऐसा आदमी रूखा मरुस्थल होगा। क्योंकि झरने सदा प्राणों से बहते हैं, जिनमें हरियाली पैदा होती है। और जो उधार झरने में जीता है, वह उस आदमी की तरह है जो दूसरे के मकानों को गिनकर सोचता है कि मेरे हैं; जो दूसरों की आंखों को गिनकर सोचता है कि मेरी हैं; जो दूसरों के विचारों को गिनकर सोचता है कि मैं विवेकवान हो गया; जो शास्त्रों को संग्रहीत करके समझता है कि ज्ञान आ गया!
ऐसा आदमी इतनी बुनियादी भ्रांति में जीता है कि अपने पूरे जीवन को व्यर्थ गंवा सकता है। और हम गंवा देते हैं। लेकिन एक बार यह सवाल हमारे सामने उठ जाये, तो यह सवाल हमारा पीछा करेगा कि मैं चोर तो नहीं हूं? और अगर यह सवाल हमारा पीछा करने लगे, तो हमें घड़ी-घड़ी दिखायी पड़ने लगेगा कि अभी जो मैं हंस रहा था, वह हंसी मैंने किसी और के होंठों से सीखी है; कि अभी

मैं जो रो रहा था, वे आंसू सच्चे न थे; अभी जो मैंने नमस्कार किया, उस नमस्कार में मेरे प्राणों की कोई आहट न थी; कि अभी जो मैंने प्रेम किया, उसमें प्रेम बिल्कुल न था, वह मैंने किसी ड्रामा में पढ़ा था; कि अभी जो मैंने बात कही अपने प्रेमी से, वह मेरा किसी फिल्म में सुना हुआ डायलाग था।
काश! आदमी की जिंदगी में यह सवाल उठ जाये, तो आदमी आज नहीं कल, चोरी से मुक्त होने लगता है; उसकी निजता उभरने लगती है; फिर वह अपने ढंग से हंसता है, जीता है। यह दुनिया बहुत सुंदर हो सकती है। यहां अगर लोग हंसते अपने ढंग से हों, रोते अपने ढंग से हों, सोचते अपने ढंग से हों, तो यह दुनिया बहुत प्राणवान और जीवंत हो सकती है।
अभी यह दुनिया जीवंत नहीं है; मुर्दों का एक बहुत बड़ा संग्रह है, जहां
सब मरे हुए जी रहे हैं। यद्यपि हमें पता नहीं चलता, क्योंकि हमारे चारों तरफ भी हमारे जैसे ही मुर्दे हैं। हमने भी सुबह अखबार पढ़ा है, पड़ोसी ने भी अखबार पढ़ा है। वह भी अखबार से बोल रहा है, हम भी अखबार से बोल रहे हैं। हमने भी कुरान पढ़ी है, उसने भी कुरान पढ़ी है; वह भी कुरान से बोल रहा है, हम भी कुरान से बोल रहे हैं। उसने भी वहीं से सीखा है, जहां से हमने सीखा है। हमारी बातें तालमेल खाती हैं और ऐसा लगता है कि सब ठीक चल रहा है, लेकिन ठीक कुछ भी नहीं चल रहा है।
इतना दुख नहीं हो सकता, अगर जिंदगी ठीक चलती हो। और जो आदमी अपने को पा ले, उस आदमी की जिंदगी में चाहे और कुछ भी न रहे, अपना होना ही इतना काफी होता है कि कुछ भी न हो, तो भी उसके आनंद को नहीं छीना जा सकता है। उससे सब छीन लिया जाये, लेकिन उसके आनंद को नहीं छीना जा सकता। क्योंकि निजता से बड़ा कोई भी आनंद नहीं है।
जब एक फूल खिलता है अपनी पूर्णता में, तब आनंद की सुगंध चारों तरफ बह उठती है। बस, फूल का पूरा खिल जाना ही उसका आनंद है। आदमी की भी निजता का फूल, इंडीविजुअलिटी का फूल, जब पूरा खिल जाता है, तो जीवन आनंद से भर जाता है। फुलफिलमेंट, आप्त हो जाता है, सब भर जाता है। फिर कुछ भी न हो--धन न हो, यश न हो, पद न हो--तो भी सब कुछ होता है। और यदि यह निजता न हो, तो पद हों बड़े, धन हो बहुत, यश हो काफी, तब भी कुछ नहीं होता, भीतर सब खाली होता है।
आज पश्चिम में एक शब्द की बहुत जोर से चर्चा है। वह शब्द है-- एंपटीनेस। आज पश्चिम में जितने बड़े विचारक हैं--चाहे सार्त्र हो, चाहे कामू हो, चाहे मार्सेल हो, और चाहे हाइडेगेर हो--आज पश्चिम के जितने चिंतनशील लोग हैं, वे सब कहते हैं कि हम बड़े रिक्त मालूम हो रहे हैं, हम बिल्कुल खाली-खाली हैं। ऐसा लगता है कि हमारे भीतर कुछ भी नहीं है; हम सिर्फ कंटेनर रह गए हैं, कंटेंट बिल्कुल नहीं है। हम सिर्फ डब्बा हैं, जिसके भीतर कुछ भी नहीं बचा है। भीतर सब रिक्त है और खाली है।
पश्चिम में आज रिक्तता की बड़ी जोर से चर्चा है; होनी नहीं चाहिए। क्योंकि आज उनके पास धन है बहुत, जितना पृथ्वी पर कभी भी नहीं था। उनके पास महल हैं आकाश को छूते हुए, जिन महलों के सामने अशोक और अकबर के महल झोपड़े हो जाते हैं। उनके पास चांद तक पहुंचने की शक्ति है। उनके पास सारी पृथ्वी को घड़ी आध घड़ी में विनष्ट कर देने का विराट आयोजन है। फिर रिक्तता क्यों है? फिर एंपटीनेस क्यों है? फिर क्या कारण है कि भीतर सब खाली है?
कारण है। बाहर सब है, भीतर कुछ भी नहीं है; आत्मा नहीं है, निजता नहीं है। सब है, सिर्फ आदमी नहीं है। सब है, चांद पर पहुंचने की ताकत है, पर अपने तक पहुंचने की सामर्थ्य नहीं है। धन है बहुत, स्वयं का होना बिल्कुल नहीं है। महल हैं बहुत बड़े, पर उसमें रहनेवाला बहुत छोटा, न के बराबर, शून्य! चोरी का यह परिणाम है। पश्चिम को अचौर्य सीखना पड़ेगा, तो रिक्तता मिटेगी, तो एंपटीनेस मिटेगी। मार्सेल को, कामू को, सार्त्र को निजता, इंडीविजुअलिटी को जगाने के नियम सीखने पड़ेंगे, खोजने पड़ेंगे।
सब जब हो जाये, तभी पता चलता है कि मैं नहीं हूं। और तब जो पीड़ा मन को पकड़ लेती है, वह दुनिया की कोई दरिद्रता नहीं पकड़ा सकती। यह जो अचौर्य है, यह निजता को पाने का सूत्र है; और चोरी स्वयं को खोने का सूत्र है।

ओशो, आपने कहा है कि हिंदू होना, जैन होना, ईसाई होना, यह सब किसी व्यक्ति के पीछे अनुगमन है, इसलिए यह सब चोरियां हैं। लेकिन हिंदू, जैन, ईसाई, बौद्ध--क्या ये सब उधार व्यक्तित्व हैं? और क्या ये शाश्वत नियमों पर आधारित विभिन्न संस्कृतियां नहीं हैं? क्या इन विभिन्न संस्कृतियों के बीच जीवन का शुभ फलित नहीं हो सकता है? इसमें आप चोरी कैसे देखते हैं?

महावीर चोर नहीं हैं, उनसे ज्यादा अचोर व्यक्ति खोजना मुश्किल है; लेकिन महावीर जैन नहीं हैं, महावीर जिन हैं। और जिन और जैन के अंतर को थोड़ा समझ लेना उचित है। जिन वह है, जिसने अपने को जीता; जैन वह है, जो जीतनेवाले के पीछे चलता है। गौतम बुद्ध चोर नहीं हैं, उनसे ज्यादा अचोर व्यक्ति खोजना मुश्किल है; लेकिन गौतम बुद्ध बुद्ध हैं, बौद्ध नहीं हैं। बुद्ध वह है, जो जागा है; बौद्ध वह है, जो जागे हुए के पीछे चलता है।
ऐसे ही, जीसस चोर नहीं हैं, लेकिन जीसस, क्राइस्ट हैं। क्राइस्ट का मतलब, जिसने अपने को सूली दे दी और उसे पा लिया, जो स्वयं को मिटाने से उपलब्ध होता है। लेकिन जीसस क्रिश्चियन नहीं हैं। क्रिश्चियन वह है जो सूली पर लटके हुए आदमी के पीछे चलता है। और फर्क बहुत पड़ जाते हैं। जीसस की गर्दन सूली पर लटकती है और ईसाई की गर्दन में छोटा-सा क्रास लटका रहता है। गर्दनों में क्रास नहीं लटकते, क्रासों पर गर्दनें लटकती हैं। जीसस सूली पर चढ़ते हैं, वे क्राइस्ट हैं; क्रिश्चियन अपने गले में एक सोने की सूली लटका लेता है! एक तो सोने के क्रास नहीं होते, सोने की सूलियां नहीं होती; अगर सोने की सूलियां होंगी, तो सिंहासन किस चीज का बनाइएगा? और सूलियां गलों में नहीं लटकाई जातीं, गले सूलियों पर लटकाये जाते हैं। क्रिश्चियन चोर हैं।
मुहम्मद बात और है, मुसलमान बात और है। मुहम्मद दुनिया में हों, यह सुखद है, सुंदर है; मुसलमान दुनिया में हों, यह खतरनाक है। महावीर दुनिया में हों, स्वागत के योग्य हैं; लेकिन जैन दुनिया में हों, खतरनाक है। बुद्ध बात और है, सुगंध और है; बुद्ध को माननेवाला दुर्गंध है, सुगंध नहीं है। इसके कारण हैं।
पहला कारण तो यह कि जैसे ही किसी व्यक्ति ने यह तय किया कि मैं किसी दूसरे के पीछे चलूंगा, वैसे ही वह अपनी आत्मा को खोने वाला हो जाता है। दूसरे के पीछे चलने का उपाय ही नहीं है। असल में दूसरे के पीछे चलने का मतलब यह है कि यह आदमी जीवन की वास्तविक यात्रा से बचना चाहता है। जो जिन नहीं होना चाहता, वह जैन हो जाता है। जो बुद्ध नहीं होना चाहता है, वह बौद्ध हो जाता है। जो क्राइस्ट होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, वह क्रिश्चियन हो जाता है। यह समझौता है। क्रिश्चियन होने में कुछ भी नहीं करना पड़ता है। क्राइस्ट होना, जिंदगी को जोखम में डालना है। जैन होने में क्या करना पड़ता है? जिन होना बड़ी तपश्चर्या है। जैन होने में सिर्फ जिनों की पूजा करनी पड़ती है। पूजा खेल है। जिन होने में पूजा नहीं करनी पड़ती, साधना करनी पड़ती है। साधना संकट है; साधना श्रम है; साधना संकल्प है।
असल में जो व्यक्ति अपनी आत्मा को पाने का श्रम नहीं उठाना चाहता, वह किसी तरह की पूजा करके अपने मन के लिए खेल पैदा कर लेता है। जो व्यक्ति स्वयं को नहीं पाना चाहता, वह किसी दूसरे के पीछे चलने का खेल खेलने लगता है। और दूसरे के पीछे चलकर कोई कभी अपने को पा नहीं सका है। क्योंकि दूसरा सदा बाहर है और मैं कितना ही दूसरे के पीछे चलूं, सारी पृथ्वी घूम आऊं, तो भी मैं भीतर नहीं पहुंच जाऊंगा। अगर मुझे भीतर पहुंचना है, तो बाहर चलना बंद करना पड़ेगा। और अनुगमन सदा बाहर चलना है। अनुगमन में सदा बाहर चलना ही होगा; दूसरा बाहर है, उसके पीछे बाहर ही जाना पड़ेगा।
महावीर किसी के पीछे नहीं जाते, जीसस किसी के पीछे नहीं जाते, कृष्ण किसी के पीछे नहीं जाते। यह बड़े मजे की बात है कि जो लोग किसी के पीछे नहीं गए, उनके पीछे कितने लोग चले जाते हैं! बुद्ध किसी के पीछे नहीं जाते, लेकिन बुद्ध के पीछे बहुत लोग चले जाते हैं। अगर बुद्ध से ही कुछ सीखना है तो कम से कम एक बात तो सीख ही लेनी चाहिए कि किसी के पीछे नहीं जाना है। अगर महावीर से ही कुछ सीखना है, तो एक बात सीख लेनी चाहिए कि किसी की पूजा से कुछ भी होनेवाला नहीं है; क्योंकि महावीर किसी की पूजा में नहीं हैं। अगर

जीसस से ही कुछ सीखना है, तो एक बात सीख लेनी चाहिए कि परमात्मा को बिना क्रिश्चियन हुए भी पाया जा सकता है। जीसस तो क्रिश्चियन नहीं थे। अगर मुहम्मद से कुछ सीखना है, तो एक बात पक्की सीख लेनी चाहिए कि परमात्मा का मुसलमान से कुछ लेना-देना नहीं है। मुहम्मद तो मुसलमान नहीं थे। परमात्मा मुहम्मद को भी मिल सकता है, जो मुसलमान नहीं हैं।
जिनके पीछे सारी दुनिया चल रही है, वे किसी के पीछे नहीं चलते। और उनके पीछे हम इसीलिए चल रहे हैं कि हम भी वह पा लें, जो उन्होंने पाया! लेकिन हम देखें तो विज्ञान में कहीं भूल हो गई है, गणित में कहीं चूक हो गई है। उन्होंने पाया ही इसलिए कि वे अपने भीतर जाते हैं, और हम पाना चाहते हैं किसी के पीछे जाकर!
पीछे जाना, बाहर जाना है। इसलिए सब तरह के अनुगमन को मैं चोरी कहता हूं! और इस तरह के अनुगमन से संस्कृति पैदा नहीं हुई। संस्कृति के पैदा होने में उल्टी बाधा पड़ी है। और ये सारे अनुयायी सिवाय लड़ने के इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं करते रहे हैं। इन सारे अनुयायियों ने पृथ्वी को खून और रक्त से भरने के सिवाय फूलों से नहीं भरा है। और चर्च, और मंदिर, और मस्जिद, और गुरुद्वारे मनुष्य को लड़ाने का उपक्रम बन गए, उपकरण बन गए। आदमी का इतिहास धर्मों के युद्धों से भरा है। इन अनुयायियों ने मुहम्मद और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को मानकर, कृष्ण और क्राइस्ट बनने की तो कोई घटना नहीं घटायी, लेकिन एक-दूसरे की हत्या करने में बहुत कुशलता दिखायी। यह हत्या बहुत तरह की है। कुछ लोग तलवारों को लेकर कूद पड़ते हैं, और कुछ लोग केवल विचारों की तलवारें चलाते रहते हैं, सिद्धांतों की। जैन मुसलमान के, मुसलमान हिंदू के, हिंदू ईसाई के, ईसाई बौद्ध के सिद्धांतों का खंडन करते रहते हैं। अगर बहुत जोश आ जाये और सिद्धांतों से लड़ाई-झगड़ा ठीक से न हो सके, तो फिर तलवारें भी खिंच जाती हैं।
आदमी बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट के होने की वजह से ज्यादा आनंदित होना चाहिए था, लेकिन इनके होने की वजह से बड़ा उपद्रव हुआ है। बर्ट्रेंड रसल ने कहीं लिखा है कि परमात्मा अगर जीसस को न भेजता, तो क्या हर्जा था? तो कम से कम ईसाई तो न होते। ईसाइयों ने मध्य-युग में सारे यूरोप में लाशें बिछा दीं।
अगर जीसस के लिए बर्ट्रेंड रसल जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति को यह प्रार्थना सोचनी पड़ी कि परमात्मा को क्या हर्ज था कि जीसस को न भेजता, इस एक आदमी को न भेजने से पृथ्वी ज्यादा शांत हो सकती थी, कम से कम लड़नेवाला ईसाई तो न होता, तो सोचने जैसा है।
जीसस के आने से पृथ्वी बुरी नहीं हुई। जीसस के आने से तो पृथ्वी में सुगंध बढ़ती; जीसस के आने से तो पृथ्वी पर गीत फैलता; जीसस के आने से तो पृथ्वी धन्यभागी होती; लेकिन हो नहीं पाई, क्योंकि जीसस आए नहीं कि पीछे क्रिश्चियन आ गया। जीसस जो बनाते हैं, क्रिश्चियन मिटा देता है। जीसस कहते हैं, प्रेम करो पड़ोसी को अपने ही जैसा, क्रिश्चियन पड़ोसी के लिए तलवार पर धार रखता है। मुहम्मद कहते हैं कि एक ही परमात्मा है और सभी उसके बेटे हैं; लेकिन मुसलमान उसी के बेटों को काटने निकल पड़ता है। हिंदू कहते हैं, सभी कुछ परमात्मा है, फिर भी शूद्र को छूते वक्त सभी कुछ परमात्मा है, यह वेदांत का ख्याल एकदम तिरोहित हो जाता है। बड़े से बड़े ज्ञानी को हो जाता है! मुसलमान के साथ बैठते वक्त सरक कर बैठ जाता है बड़े से बड़ा ज्ञानी, जो कहता है कि ब्रह्म सबमें विराजमान है। अचानक पता चलता है कि ब्रह्म मुसलमान में विराजमान होने से डरता है।
जीसस, कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, बुद्ध, कनफ्यूसियस, इन सबके होने से जगत सौभाग्यशाली था। लेकिन इनके पीछे एक बाढ़ आती है उन उपद्रवियों की, जो संगठन खड़े करते हैं, जो संगठनों को लड़ाते हैं। अनुयायियों के दल खड़े होते हैं, और धर्म राजनीति बन जाता है। जैसे ही धर्म अनुयायियों के हाथ में पड़ता है, संगठित होता है, आर्गनाइज्ड हो जाता है, वैसे ही राजनीति बन जाता है। धर्म संगठन नहीं है। धर्म साधना है। अनुयायी संगठन बनाते हैं। तब साधना एक तरफ और संगठन महत्वपूर्ण हो जाते हैं। और संगठन के जो बाहर हैं, वे दुश्मन हो जाते हैं। जो संगठन के भीतर हैं, वे अपने हैं; और संगठन के जो बाहर हैं, वे पराये हैं।

और इसीलिए हर धर्म, आदमी को खंडों में बांटता चला जाता है। आज पृथ्वी
पर कोई तीन सौ धर्म हैं। आदमी तीन सौ खंडों में बंटा हुआ है। धर्म को तो जोड़ना चाहिए, धर्म तोड़ने के लिए नहीं है। लेकिन कौन तोड़ता है? महावीर तोड़ते हैं? मुहम्मद तोड़ते हैं? दो में से एक ही बात हो सकती है--या तो महावीर ही तोड़नेवाले हैं, और या फिर जैन तोड़ने वाला है। या तो मुहम्मद ही तोड़ते हैं, या फिर मुसलमान तोड़ता है। या तो जीसस ही उपद्रवी हैं, या तो क्रिश्चियन उपद्रवी हैं।
मेरी समझ है कि महावीर, जीसस और मुहम्मद उपद्रवी नहीं हैं। क्योंकि जिनके अपने जीवन में उपद्रव की शांति हो गई, वे किसी दूसरे के जीवन में उपद्रव नहीं बन सकते; वे दूसरे के जीवन में भी शांति का ही संदेश हैं। लेकिन उनके पीछे आनेवाला अनुयायी जब खड़ा हो जाता है... ।
और अनुयायी के साथ एक रहस्य है। एक साइंटिफिक सूत्र अनुयायी का समझ लेना चाहिए। और यह बड़ा मजेदार मामला है कि अकसर विपरीत आदमी अनुयायी बनते हैं। अकसर अगर महावीर ने सब छोड़ दिया है, तो महावीर के पास चरणों में वे ही लोग आयेंगे जिनके पास सब है। क्यों? अगर महावीर उपवासे रहते हैं, तो महावीर के पास भोजनभट्ट इकट्ठे हो जायेंगे! उसका कारण है। अगर महावीर को भोजन की कोई चिंता नहीं है, तो जो आदमी भोजन को चौबीस घंटे सोचता है, वह सबसे पहले प्रभावित होता है। सोचता है, यह महावीर बड़ा अदभुत आदमी मालूम होता है! मैं तो चौबीस घंटे भोजन के बारे में ही सोचता हूं, रात सपने में भी भोजन करता हूं। और यह आदमी महीनों भोजन नहीं करता! यह महातपस्वी है! वह महावीर के पैरों में पड़ जाता है। महावीर नग्न खड़े हैं, तो जिसको वस्त्रों से बहुत मोह है, और जो शरीर को जरा भी नग्न करने में असमर्थ है, वह महावीर को मानता है, कि यह आदमी साधारण नहीं है।
इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जैन धर्म के अनुयायी कपड़े की दूकान कर रहे हैं सारे मुल्क में। इसमें महावीर की नग्नता का कुछ न कुछ हाथ है। इसमें जरूर कहीं न कहीं कोई बात है।
इसमें आश्चर्य नहीं है कि ईसाइयों ने सारी दुनिया को तहस-नहस किया, और ईयाइयों ने सारी दुनिया पर साम्राज्य फैलाया। कहां जीसस! जिसने कहा था कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना; और जिसने कहा था कि जो तुम्हारा कोट छीन ले, उसे तुम कमीज भी दे देना; और जिसने कहा था, जो तुमसे एक मील तक बोझा ढोने को कहे, तुम दो मील तक चले जाना। इस आदमी को माननेवाले लोग सारी दुनिया पर गुलामी ढा देंगे--ये कोट भी छीन लेंगे, कमीज भी छीन लेंगे; ये दो मील की जगह दो हजार मील लोगों को चला देंगे; ये एक गाल पर भी चांटा मारेंगे और दूसरा गाल भी मोड़कर उस पर भी चांटा मार देंगे--यह कभी जीसस ने सोचा न होगा। जीसस जैसे विनम्र आदमी के पास इस तरह के लोग इकट्ठे हो जाएंगे? लेकिन इकट्ठे हो गए!
असल में विरोधी आकर्षित करता है। जैसे स्त्री के प्रति पुरुष आकर्षित होता है, पुरुष के प्रति स्त्री आकर्षित होती है। इसी भांति जीवन में सब आकर्षण पोलर हैं, सब आकर्षण विरोधी के, अपोजिट के हैं; सब आकर्षण में दूसरा आकर्षित होता है। त्यागी के पास भोगी इकट्ठे हो जाते हैं। तपस्वियों के पास जो तपश्चर्या बिल्कुल नहीं कर सकते, वे चरणों पर सिर रखकर बैठ जाते हैं। परमात्मा के खोजियों के पास संसार को पागल की तरह पकड़े हुए लोगों की भीड़ जमा हो जाती है। और फिर ये ही अनुयायी बनते हैं। इसलिए तत्काल परवर्शन शुरू हो जाता है। तत्काल, जो महावीर ने कहा, जैन उसे विकृत कर डालते हैं। जो जीसस ने कहा, ईसाई उसे नष्ट कर देते हैं। जो मुहम्मद ने कहा, मुसलमान ही उसे मिटानेवाला बन जाता है। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है; लेकिन है। विपरीत आकर्षक है।
इसलिए मैं कहता हूं कि समस्त अनुयायियों को पृथ्वी से विदा हो जाने
की जरूरत है। मुहम्मद रहें, बुद्ध रहें, उनकी सुगंध रहे, बीच में अनुयायी न हों। महावीर की चर्चा हो, लेकिन अनुयायी न हों। महावीर की बात लोग सुनें, समझें, पढ़ें, लेकिन कोई इस पागलपन में न पड़े कि कहे, मैं उनका अनुयायी हूं। समझें, पढ़ें, सोचें, आनंदित हों, प्रसन्न हों, नाचें, लेकिन पकड़ें मत। काफी हो चुका पकड़ना, और उस पकड़ने के बुनियादी सूत्र का ख्याल न होने से बड़ी कठिनाई हो गई है।

वह बुनियादी सूत्र है कि अपोजिट, विरोधी आकर्षक होता है, और हम उसके पास इकट्ठे हो जाते हैं। वह जो इकट्ठा होना है, वही तत्काल दुश्मन के हाथ में चीज चली जाती है। यह जिंदगी में करीब-करीब ऐसा ही नियम है, जैसे पानी में लकड़ी को डालते ही तिरछी हो जाती है--होती नहीं, दिखायी पड़ने लगती है, तत्काल। पानी और हवा के नियम अलग- अलग हैं। जैसे ही लकड़ी हवा में आती है वापस सीधी हो जाती है। पानी में डालो, फिर तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। महावीर में जो लकड़ी बिल्कुल सीधी है, जैन में बिल्कुल तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। बुद्ध में जो जीवन सीधा सरल है, बौद्ध में बिल्कुल जटिल और तिरछा हो जाता है। मुहम्मद की जिंदगी में जो प्रेम है, वह मुसलमान की जिंदगी में घृणा बन जाता है। जीसस की जिंदगी में जो समर्पण है, वही जीसस के अनुयायी की जिंदगी में आक्रमण बन जाता है। अब अनुयायियों से सावधान होने के लिए काफी इतिहास प्रामाणिक है।
इसका यह मतलब नहीं कि मैं कोई महावीर का दुश्मन हूं। दुश्मन तो उनके अनुयायी हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कोई जीसस का दुश्मन हूं। दुश्मन तो उनके अनुयायी हैं। अगर जीसस को उनकी शुद्धता में बचाना हो, तो अनुयायी के कांच अलग कर देना चाहिए। और किसी आदमी को अनुयायी बनने से कुछ नहीं मिलता। सिर्फ जिसका वह अनुयायी बनता है, उसको भ्रष्ट... उसके सिद्धांतों को, उसके जीवन को विकृत करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर पाता है। वह अपने जीवन को तो ठीक नहीं कर पाता।
मैं अभी एक छोटी-सी कहानी पढ़ रहा था। एक बच्चा अपने पिता से बात कर रहा है। उस बच्चे ने अपनी किताब में से एक कहावत पढ़कर सुनायी है। किताब में लिखा हुआ है कि आदमी उसके संग से पहचाना जाता है। ए मैन इज नोन बाई हिज कंपनी, आदमी अपने संग से पहचाना जाता है। उस लड़के ने अपने पिता से पूछा, क्या यह बात सही है? उसके पिता ने कहा, यह बिल्कुल ही सही है। तो उस लड़के ने कहा, अब एक सवाल और पूछना है। एक अच्छा आदमी और एक बुरा आदमी इन दोनों में दोस्ती है। कौन किससे पहचाना जायेगा? बुरा आदमी अच्छे आदमी के साथ है, इसलिए समझना चाहिए कि अच्छा आदमी है? या अच्छा आदमी बुरे आदमी के साथ है, इसलिए समझना चाहिए कि बुरा आदमी है? अब किसको किससे पहचानें? पिता मुश्किल में पड़ गया है!
जीसस पहचाने जा रहे हैं ईसाई के द्वारा, इसलिए जीसस को पहचानना मुश्किल हो गया है। महावीर पहचाने जा रहे हैं जैन के द्वारा, इसलिए महावीर को पहचानना मुश्किल हो गया है। अनुयायी हट जायें, तो इनके फूल अपनी पूरी खूबसूरती में खिल सकें; इनके दीये अपनी पूरी ज्योति में जल सकें; और एक मजा और आ जाए कि हम सारे जगत की संपत्ति के मालिक हो जायें।
अभी जो महावीर को मानता है, वह समझता है कि मुहम्मद उसकी संपत्ति नहीं हैं। और जो मुहम्मद को मानता है, वह समझता है, बुद्ध से मुझे क्या लेना- देना है। उनसे अपना कोई लेना-देना नहीं है। वह और किसी की बपौती हैं, हमारी नहीं। अगर दुनिया में किसी दिन अनुयायी न रहें, तो सारी दुनिया का हेरीटेज, सारी दुनिया की बपौती, प्रत्येक आदमी की बपौती होगी। उसमें सुकरात भी मेरे होंगे, मुहम्मद भी मेरे होंगे, महावीर भी मेरे होंगे। और तब हम ज्यादा संपन्न होंगे। और तब संस्कृति पैदा होगी।
अभी तो संस्कृति पैदा नहीं हो सकी। अभी तो बहुत तरह की विकृतियां हैं
और उन विकृतियों को हम अपनी-अपनी संस्कृति कहे चले जाते हैं। मनुष्य की संस्कृति उस दिन पैदा होगी, जिस दिन सारे जगत का सब कुछ हमारा होगा। सोचें इसे एक और उदाहरण से, तो ख्याल में आ जाये।
अगर विज्ञान में भी पच्चीस मत बन जायें, तो दुनिया में विज्ञान बनेगा
कि मिटेगा? अगर न्यूटन के माननेवाले एक गिरोह बना लें और आइंस्टीन के माननेवाले दूसरा गिरोह बना लें; और न्यूटन के माननेवाले कहें, आइंस्टीन को हम नहीं मान सकते हैं, क्योंकि इसने हमारे गुरु की बातों के कुछ विपरीत बोल दिया है। और मेस्पलान को मानने वाले तीसरा गिरोह बना लें। और फ्रेडहायल को मानने वाले चौथा गिरोह बना लें। और गिरोह बनते ही चले जायें। अभी दो-तीन सौ वर्षों में पचास जो बड़े वैज्ञानिक हुए हैं, पचास गिरोह हो जायें, तो विज्ञान विकसित होगा कि मरेगा?

विज्ञान विकसित हो सका, क्योंकि वैज्ञानिकों के कोई गिरोह नहीं थे। वैज्ञानिकों ने जो भी दिया है, वह सब वैज्ञानिकों की सामूहिक बपौती है। धर्म संस्कृति पैदा नहीं कर पाया, क्योंकि धर्म के गिरोह बन गए हैं। धर्म के दुनिया में तीन सौ गिरोह हैं, इसलिए धर्म कैसे पैदा हो? अगर ये गिरोह बिखर जायें... !
महावीर ने भी दिया है, महावीर ने एक कोने से सत्य का एक दर्शन दिया है, बुद्ध ने किसी दूसरे कोने से वह दर्शन दिया है, मुहम्मद ने किसी तीसरे कोने से वह दर्शन दिया है, क्राइस्ट उसी की कोई चौथी खबर ले आए हैं। ये सारी की सारी संपत्तियां हमारी हैं, मनुष्य की हैं; और अगर ये सारी संपत्तियां इकट्ठी हों, और हम सब इसके वसीयतदार हों, तो दुनिया में संस्कृति पैदा होगी। अभी तो संस्कृति नहीं है, सिर्फ खंड-खंड विकृतियां हैं। और अगर यह सारी संपत्ति हमारी हो, तो दुनिया में धार्मिक चित्त पैदा होगा। अभी धार्मिक चित्त नहीं, केवल सांप्रदायिक चित्त है, सेक्टेरियन माइंड है; अभी रिलीजियस माइंड दुनिया में नहीं है।
हां, कभी-कभी कोई एक आदमी धार्मिक पैदा होता है, तो उसके आसपास तत्काल सांप्रदायिक इकट्ठे हो जाते हैं। और वह आदमी जिंदगी भर मेहनत करके जो खोज पाता है, उसके आसपास इकट्ठे लोग थोड़े ही दिनों में उसकी मेहनत नष्ट करके विकृत कर देते हैं।
महावीर किसी के भी नहीं हैं, और बुद्ध किसी के भी नहीं हैं; या सबके हैं। कोई उनका मालिक नहीं है, कोई उनका दावेदार नहीं है; या फिर सब उनके दावेदार हैं। यह स्थिति बने, तो धर्म भी एक विज्ञान बन जाये। धर्म है भी विज्ञान। मेरी दृष्टि में तो परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। लेकिन अब तक बन नहीं पाया है। और धर्म अगर विज्ञान बने, तो जीवन सुसंस्कृत होगा; तो जीवन रिफाइंड होगा; तो जीवन विकसित होगा। अभी तो धर्म विकृति ही बन पाया। क्योंकि संप्रदाय ही निर्मित होते हैं और कुछ भी निर्मित नहीं होता है। कौन है जिम्मेवार? अनुयायी जिम्मेवार हैं। अगर अनुयायी भी कहीं पहुंच गया होता यह सब उपद्रव करके, तो भी हम कहते। अनुयायी कहीं भी नहीं पहुंच पाता है। कभी पहुंचा नहीं, कभी पहुंच भी नहीं सकेगा, क्योंकि वह मौलिक सूत्र ही भूल गया है।
खोजना है स्वयं को तो भीतर चलना होगा। दूसरे के पीछे जो गया, वह स्वयं
को खो सकता है, पा नहीं सकता।

ओशो, आपने प्याज का उदाहरण देते हुए कहा कि प्रत्येक व्यक्ति के अनेक चेहरे हैं, मुखौटे हैं--चुराये हुए। और यह मुखौटे तो होंगे, और हर हालत में होंगे। केवल भेद करना पड़ेगा सद-मुखौटों का और असद-मुखौटों का। मैं किसी से घृणा करता हूं, लेकिन जब वह मेरे पास आता है तो मैं मुस्कुराकर उसका स्वागत करता हूं। यह मेरा एक बनावटी चेहरा है, जिसे मैं उसके सामने व्यक्त करता हूं। लेकिन साथ ही साथ मेरे मन में असीम पीड़ा है, दुख है, फिर भी मैं मुस्कुराता हूं। तो यह चेहरा, यह मुखौटा, मेरा सद-मुखौटा होगा। मुखौटा तो जरूर होगा।
आपने मृत्यु को समझा, मृत्यु के रहस्य को समझा, और आप जीवन को जी रहे हैं--यह भी एक प्रकार का मुखौटा हुआ। आपने सत्य पर विजय प्राप्त कर ली, असत्य पर विजय प्राप्त कर ली, और सत्य का उदघोष करते हैं--यह भी एक मुखौटा हुआ। और साथ ही साथ, एक बात और कह दूं कि एक बंसी, जिसकी छाती छिदी हुई है, लेकिन उसकी स्वर-लहरी लोगों पर सम्मोहन डाल देती है। क्या वह बांसुरी का मुखौटा नहीं है? पैर की पायल, जिसकी छाती में कंकड़ गड़े हुए हैं, लेकिन जिससे उसकी झंकार निकलती है, जिससे उसमें संगीत उत्पन्न होता है, क्या वह पायल का मुखौटा नहीं है? अगर यही बात है, तो इन दोनों में भेद तो करना पड़ेगा। और इन दोनों का भेद, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, कि आप समझायें कृपा करके। और साथ ही साथ एक बात और कि यदि जीवन एक विराट अंतर-संबंध है, तो व्यक्तित्व अनेक रूपों में, विधाओं में प्रगट होगा। व्यक्तित्व की इस विभिन्नता को आप नकली मुखौटे कैसे कह सकेंगे?
बालक पैदा हुआ। इस जन्म का नहीं, जन्म-जन्मांतर का संस्कार लेकर साथ में आया। मां से उसे प्रेम मिला, वात्सल्य मिला; पिता से उसे ज्ञान मिला,

रास्ता मिला, मार्ग मिला; शिक्षक से उसे वाणी समझने को मिली, विचार करने के लिए प्रेरणा मिली; और संसार में जहां-जहां वह घूमा, उसने कई अनुभव प्राप्त किए। वह प्राप्त अनुभव भी क्या चोरी की श्रेणी में आ जायेंगे? और यदि ऐसा हुआ, तो यह व्यक्तित्व कटकर अलग हो जायेगा। वह संस्कार बनाकर अपना निजी व्यक्तित्व फिर कैसे पैदा कर पायेगा, जब तक कि दूसरे व्यक्तित्वों से कुछ न कुछ अनुभव ग्रहण न करे? ये दो प्रश्न मैं आपके सामने रखता हूं।

मुखौटे का, मास्क का, शायद अर्थ ठीक से समझ में नहीं आ सका। आपके मुंह
का नाम मुखौटा नहीं है। जब आप अपने मुंह पर नाटक में एक दूसरा मुख लगा लेते हैं-- समझें, रावण का मुंह लगा लेते हैं--तब वह लगाया हुआ मुंह, मुखौटा है। आपका चेहरा मुखौटा नहीं है, लेकिन अपने चेहरे पर जब आप कोई दूसरा नकली चेहरा लगा लेते हैं, जिसकी कोई जड़ें आपके भीतर नहीं होतीं, जिससे आपके प्राणों का कोई भी संबंध नहीं होता, सिर्फ धागे से कान में लटका होता है जो, जिसका हृदय की धड़कन से कोई भी सेतु नहीं होता, तब वह मुखौटा है। मुंह का नाम मुखौटा नहीं है। मुखौटा झूठे मुंह का नाम है, फाल्स फेस का नाम है। पहले तो मुखौटे का ठीक अर्थ समझ लें।
चेहरा मुखौटा नहीं है। लेकिन जरूरी नहीं है कि आप कागज के या प्लास्टिक के बने हुए मुखौटे लगायें, तब झूठा चेहरा पैदा हो। आप इसी चेहरे पर बहुत से झूठे चेहरे पैदा करने में सफल हो जाते हैं। जैसे कहा कि किसी आदमी से मेरी घृणा है, और वह मेरे पास आता है, तब मैं मुस्कुराकर उसका स्वागत करता हूं, पर भीतर घृणा उबलती है। तब यह मुखौटा है। और यह मुखौटा बड़ा खतरनाक है। यह मुखौटा उपयोगी मालूम होता है। इसकी यूटीलिटी दिखायी पड़ती है। इस भांति मैं उस आदमी को अपनी घृणा बताने से अपने को रोक लेता हूं। लेकिन घृणा इससे मिटती नहीं। और खतरा यही है कि मैं उस आदमी को तो धोखा दूंगा ही, धीरे-धीरे मैं अपने को भी धोखा दे लूंगा। और बार-बार झूठी मुस्कुराहट मेरी घृणा को भीतर दबाती जायेगी। और एक दिन मैं भी भूल जाऊंगा कि मैं उसे घृणा करता हूं। बाहर हंसता रहूंगा और भीतर मेरी घृणा छिपी रहेगी।
नहीं, धार्मिक व्यक्ति अगर घृणा अनुभव करता है, तो उसके पास दो ही उपाय हैंः या तो वह घृणा अनुभव न करे तो मुस्कुराये; और अगर घृणा ही अनुभव करनी है, तो कृपा करके मुस्कुराये न, घृणा ही अपने चेहरे से प्रगट कर दे। इसके दो फायदे हैं। यदि वह घृणा अपने चेहरे से प्रगट कर दे, तो घृणा प्रगट करने से जो नुकसान उठाने हैं, वे तो उठाने पड़ेंगे। वे नुकसान उठाने की हिम्मत होनी चाहिए। घृणा प्रकट कर देने से जो नुकसान उठाने पड़ेंगे, घृणा की जो पीड़ा अनुभव करनी पड़ेगी, वही पीड़ा, वही हानि उसे घृणा को बदलने का कारण बनेगी। अन्यथा वह बदलेगा क्यों? जिंदगी में जो नुकसान होंगे घृणा से, जिंदगी में जो बाधा पड़ेगी घृणा से, वही तो कारण बनेगी उसे इस बात के लिए सोचने के लिए मजबूर करने वाली कि वह अपनी घृणा को बदले। क्योंकि घृणा जीवन को नर्क में डाले दे रही है।
लेकिन हम मुस्कुराहट बताकर बाहर स्वर्ग बनाने की कोशिश करते हैं, और भीतर नर्क निर्मित होता चला जाता है। फिर उस नर्क को हम मिटायेंगे कैसे? जिस नर्क की पीड़ा को हम पूरा अनुभव नहीं करते और भीतर छिपा लेते हैं, तो वह पीड़ा मिटने के बाहर हो जाती है।
और एक और मजे की बात है कि जब भीतर घृणा होती है, तो आपके होंठों की मुस्कुराहट से आप ही सोचते होंगे कि आपने मुस्कुराकर दूसरे का स्वागत किया। लेकिन जब भीतर घृणा होती है, तो होंठों पर आई हुई मुस्कुराहट बिल्कुल जहरीली हो जाती है, और दूसरा उसे अच्छी तरह देख पाता है कि वह मुखौटा है। बाहर हंस सकते हैं आप, लेकिन भीतर की घृणा को प्रगट होने से रोकना बहुत मुश्किल है। वह प्रगट हो जाती है। होंठ से, आंख से, उठने से, बैठने से, वह सब तरह से प्रगट हो जाती है।
इसलिए जो झूठी मुस्कुराहट थी वह सिर्फ दबाने का काम करती है, उससे कोई कम्युनिकेशन, उससे कोई संदेश नहीं पहुंच पाता। उससे दूसरा प्रसन्न नहीं लौटता है। और कई बार तो दूसरा आदमी इस बात से प्रसन्न ही होगा कि आप एक आथेंटिक और प्रामाणिक आदमी हैं। अगर आपको क्रोध है किसी पर, तो स्पष्ट कह

दें कि मुझे क्रोध है, और मैं क्रोधी आदमी हूं। और क्रोध कर लें, और क्रोध की पीड़ा को भोग लें, और क्रोध के परिणाम झेल लें, तो आज नहीं कल, यह क्रोध की अग्नि ही आपको क्रोध के बाहर ले जाने का कारण बनेगी। अन्यथा भीतर क्रोध होगा, बाहर हंसी होगी; और धीरे-धीरे वह क्रोध भीतर इकट्ठा होकर जलाता रहेगा; और बाहर झूठी हंसी, सूखी हंसी, व्यर्थ हंसी फैलती रहेगी निष्परिणाम, बिना किसी परिणाम के। कोई उस हंसी से प्रसन्न नहीं होगा। कोई उस हंसी से आनंदित नहीं होगा। क्योंकि लोग हंसी से आनंदित नहीं होते। हंसी के पीछे पूरा व्यक्तित्व हंसना चाहिए, तभी वह हंसी किसी दूसरे के हृदय को छू पाती है। हंसी के साथ पूरे प्राण हंसने चाहिए, तभी उस हंसी में जीवन होता है। हंसी के साथ सब रोआं-रोआं हंसना चाहिए, तभी उस हंसी में अमृत का वरदान होता है, अन्यथा नहीं होता है।
यह जो हम मुखौटे लगाते हैं, धार्मिक व्यक्ति इन्हीं मुखौटों को उतारने की बात करता है। इसलिए अचौर्य का अर्थ है, ऐसे मुखौटे छोड़ना है। कठिनाई तो होगी, क्योंकि धर्म तपश्चर्या है। धर्म की तपश्चर्या का मतलब धूप में खड़ा होना नहीं है। धर्म की तपश्चर्या का मतलब है जीवन की सब तरह की धूप में खड़े होने की हिम्मत। जब क्रोध है, तो कहें कि क्रोध है। और जब घृणा है, तो कहें कि घृणा है। कम से कम ईमानदार तो बनें। कम से कम सिंसियर तो हों। कह दें कि ऐसा है। उस पीड़ा का अनुभव करें, जीयें उसे। उस जीने में से ही गुजरने से हाथ जलेंगे। जले हुए हाथ ही कल रोकने का कारण बनते हैं। और जिस आदमी पर आपने क्रोध प्रकट किया और कहा कि क्रोध है, जिस आदमी पर आपने घृणा की और कहा कि घृणा है, कल अगर आप उस आदमी के साथ हंसेंगे और प्रेम करेंगे, तो वह समझेगा कि आपमें प्रेम भी है। अन्यथा जिसकी घृणा झूठी है, जो झूठा हंसता है, और जो झूठा रोता है, उसकी जिंदगी में बाकी सब चीजें भी संदिग्ध हो जाती हैं।
इसलिए अगर कभी किसी बाप ने अपने बेटे पर सच-सच क्रोध नहीं किया, तो ध्यान रखना बाप की क्षमा भी बेटा कभी ईमानदारी से स्वीकार नहीं कर पायेगा। वह जानता है, बाप बेईमान है; क्षमा भी पता नहीं... । अगर किसी पत्नी ने अपने पति पर कभी क्रोध नहीं किया, क्रोध को दबाया और छिपाया और मुस्कुराई, तो ध्यान रखना, जब वह सच में भी कभी मुस्कुरायेगी, तब भरोसा करना बहुत मुश्किल होगा; क्योंकि आथेंटिक व्यक्तित्व नहीं है उसके पास। प्रामाणिक व्यक्तित्व नहीं है उसके पास। उसके प्रेम के सच्चे होने की भी संभावना रोज-रोज कम होती जायेगी।
जिसकी घृणा झूठी है, उसका प्रेम सच्चा नहीं हो सकता। जिसका क्रोध झूठा है, उसकी क्षमा सच्ची नहीं हो सकती। जिसकी मुस्कुराहट झूठी है, उसके आंसुओं का क्या भरोसा है? जिंदगी तक सारी की सारी एक झूठ की कहानी हो जाती है।
धर्म इसके खिलाफ बगावत है। धर्म विद्रोह है। धर्म एक रिबेलियन है। धर्म इनसिंसियरिटी के खिलाफ, बेईमानी के खिलाफ ईमानदार होने की घोषणा है। वह कहता है, आंसू होंगे, तो रोयेंगे; मुस्कुराहट होगी, तो हंसेंगे। और जो आदमी इतना ईमानदार होता है, वह बहुत ज्यादा देर तक घृणा से भरा हुआ नहीं रह सकता। उसके कारण हैं। जो आदमी इतना ईमानदार है, वह बहुत दिन तक क्रोध से भरा हुआ नहीं रह सकता। उसके कारण हैं। क्योंकि ईमानदारी इतनी बड़ी घटना है, सिंसियरिटी इतनी बड़ी घटना है कि ऐसे आदमी की जिंदगी में, बेईमानी जहां समाप्त हो गई हो, जहां बेईमानी इनकार कर दी गई हो, वहां क्रोध और घृणा के कांटे लगने मुश्किल हो जाते हैं। क्योंकि बेईमानी बीज है, जिसमें सब कुछ लगता है। अगर वह बीज ही टूट गया, तो बाकी चीजें अपने-आप गिरनी शुरू हो जाती हैं।
यह सिंसियरिटी कि आदमी अपने साथ ईमानदार है, बहुत ज्यादा देर तक क्रोध को बर्दाश्त नहीं कर सकती। क्योंकि जो आदमी अपने साथ ईमानदार है, उसे आज नहीं कल यह दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा कि क्रोध अपने ही हाथ से अपने को ही दुख देना है।
बुद्ध ने कहीं मजाक में कहा है कि जब मैं किसी आदमी को क्रोध करते हुए देखता हूं, तो मुझे बड़ी हंसी आती है। क्योंकि वह आदमी दूसरे की भूल के लिए

अपने को दंड दे रहा है। वह कहता है कि इस आदमी ने गाली दी, इसलिए मैं क्रोध कर रहा हूं। गाली उसने दी है, कसूर उसका है, दंड वह अपने को दे रहा है! क्रोध भीतर जलाता है। कोई आग इतना नहीं जलाती, और कोई आग चमड़ी के भीतर, हड्डियों के भीतर प्रवेश नहीं करती। लेकिन क्रोध की आग आत्मा तक जला डालती है। भीतर सब जला डालती है। भीतर राख कर देती है।
जब एक आदमी साधारण आग में हाथ डालने से हाथ खींच लेता है तो वह आदमी क्रोध की आग में कैसे हाथ डाल पाता है? डाल पाता है इसीलिए, कि उसने कभी पूरी तरह देखा ही नहीं कि वह क्रोध में हाथ डाल रहा है। क्रोध में हाथ डालता है, दिखाता है कि हम फूलों को छू रहे हैं। भीतर घृणा में जलता है, होंठों पर मुस्कुराहट रखता है। यह मुस्कुराहट ही देखता रहता है और अटका रहता है इस मुस्कुराहट में, और हाथ जल जाते हैं भीतर उस आग में।
अगर कोई आदमी झूठी हंसी न हंसे और अपने प्राणों के सारे रुदन को, पीड़ा को, कष्ट को देखे, तो आज नहीं कल, यह जलती हुई आग उसे दिखाई पड़ जाती है। इस दुनिया में इतना नासमझ कोई भी नहीं है कि जो देख ले क्रोध को, देख ले घृणा को, और फिर भी उस में वह रह सके। यह असंभव है। वह उसके बाहर आ जाता है। इसलिए जब मैंने कहा कि हम मुखौटे लगाकर चोरी करते हैं, तो मेरा मतलब
यह नहीं है कि आप मुस्कुराते हैं तो मुखौटा है। मुस्कुराहट तब मुखौटा होगी, जब भीतर कोई मुस्कुराहट नहीं है, मुस्कुराहट सिर्फ ऊपर है। रोना तब मुखौटा होगा, जब आंसू भीतर बिल्कुल नहीं हैं, सिर्फ आंखों में आंसू हैं। स्वागत करना तब मुखौटा होगा, जब भीतर प्राण कह रहे हों कि यह आदमी कहां से आ गया, और बाहर से आप कह रहे हैं, अतिथि देवता हैं। आप आइए, विराजिए! तब अतिथि तो अपमानित होता ही है, देवता भी अपमानित होते हैं।
नहीं, कह दें जैसा है, वैसा ही कह दें। कठिन होगा। वह कठिनाई पैदा होनी
ही चाहिए। क्योंकि कठिनाई होगी तो ही मुक्ति होगी। कठिन होगा, घर आए मेहमान से अगर कहें कि आपने बड़े संकट में डाल दिया है; देवता बिल्कुल नहीं मालूम पड़ रहे हैं आप--बड़ी कठिनाई होगी, झूठा चेहरा बचाना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन इस कठिनाई को सहने से, आज नहीं कल, अतिथि देवता मालूम पड़ सकता है। क्योंकि इतना जो सरल हो जायेगा उसे ही अतिथि देवता मालूम पड़ सकता है। जो इतना कनिंग है, जो इतना चालाक है कि भीतर कह रहा है कि यह दुष्ट कहां से आ गया, और ऊपर से कह रहा है, आप देवता हैं, विराजिए, घर में आनंद छा गया है! इस आदमी को अतिथि देवता कभी भी मालूम नहीं पड़ सकते। यह आदमी अपने साथ इतनी चालाकी कर रहा है कि यह चालाकी इसे कुटिल कर देगी, जटिल कर देगी, तिरछा कर देगी। इसका सारा व्यक्तित्व तिरछा होता चला जायेगा।
पूरी जिंदगी हम इसी तरह की कुटिलताएं इकट्ठी करते हैं और तब सब झूठा
हो जाता है। धार्मिक आदमी इस बात की घोषणा है कि वह जटिलता छोड़ेगा, वह सरल होगा; जैसा है, वैसा ही होगा; जैसा है, वैसा ही दिखलायेगा। तब मुखौटे गिरते हैं। और तब आदमी का असली चेहरा प्रकट होना शुरू होता है।
सबके पास असली चेहरे हैं, लेकिन हमने इतने-इतने मुखौटे उन पर ओढ़े हैं
कि हमें खुद भी पता नहीं रह गया कि मेरा असली चेहरा कौन-सा है। आईने के सामने भी जब आप खड़े होते हैं, तो सौ में निन्यानबे मौके यही होंगे कि आईने में जिसको देखकर आप हंस रहे होंगे, वह मुखौटा होगा। आईने में भी हम वही नहीं होते, जो हम हैं। आईने में भी अपने को हम वही दिखलायी पड़ना चाहते हैं, जो हम सोचते हैं कि हम हैं। तो आईने के सामने भी आदमी बन-ठन कर खड़ा हो जाता है!
मैंने सुना है एक औरत के संबंध में कि वह बदशकल थी। कोई उसके सामने आईना कर दे, तो वह आईना तोड़ देती थी। वह कहती थी, कहां का रद्दी आईना सामने ले आए, शकल को बिल्कुल खराब किये दे रहा है। आईने तोड़ देती थी, क्योंकि आईने में दिखायी पड़ता था कि शकल बदसूरत है, तो कहती थी कि आईना खराब है। हम सब भी आईने तोड़ना पसंद करेंगे, शकल बदलनी पसंद नहीं करेंगे। लेकिन आईने तोड़ने से शकलें नहीं बदलती हैं, और आईने तोड़ने से जिंदगी नहीं बदलती। जिसे मैं मुखौटा कह रहा हूं, उससे मेरा यह प्रयोजन है कि झूठे चेहरे जो हम आरोपित कर लेते हैं अपने पर, न करें। इसका यह भी मतलब नहीं है कि जिंदगी में चेहरे बदलेंगे नहीं। जिंदगी में चेहरा रोज बदलेगा, लेकिन वह आपका ही चेहरा होना चाहिए। जब जिंदगी में अंधेरा छायेगा, तो आंखों में आंसू भी

आयेंगे; कल जब एक मित्र मर जायेगा, तो आंसू भी आयेंगे। और कल जब दूर का बिछुड़ा हुआ साथी मिलेगा, तो हृदय में धड़कनें भी उठेंगी खुशी की, और गीत भी निकलेंगे। चेहरा तो बदलेगा आपका प्रतिपल। उसे बदलना चाहिए। रिस्पांसिव होना चाहिए। लेकिन वह चेहरा आपका ही होना चाहिए।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि एक ही चेहरा बना कर बैठे रहें। फिर तो पत्थर
का चेहरा चाहिए। फिर जिंदगी नहीं चल सकती। फिर तो आपके पास एक चेहरा चाहिए, जो पत्थर का हो... ।
मैंने सुना है कि अमेरिका के एक बहुत बड़े करोड़पति के पास एक आदमी दान लेने गया। दान उसने छोटा-सा ही मांगा था। लेकिन उस करोड़पति ने कहा कि मैंने एक नियम बना रखा हैः मेरी एक आंख नकली है--पत्थर की, और एक असली है। जो आदमी बता दे कि मेरी कौन-सी आंख नकली है, उसी को मैं दान देता हूं। और अब तक कोई बता नहीं पाया है। तुम बताओ। उस आदमी ने देखा और कहा कि आपकी बाईं आंख नकली है। उस करोड़पति ने कहा, हैरान कर दिया तुमने, कैसे पता चला? उस आदमी ने कहा, बाईं आंख में थोड़ी दया मालूम पड़ती है। मैंने सोचा कि इसे पत्थर की होना चाहिए।
चेहरे सख्त और कठोर नहीं हो सकते। सिर्फ मरे हुए आदमी के कठोर हो सकते हैं, जिंदा आदमी के नहीं हो सकते। बच्चे के चेहरे को देखें, जैसे हवा के झोंके बदल रहे हों, ऐसे बदल रहा है। बूढ़े के चेहरे को देखें, जैसे पथरीला हो गया है। बूढ़े चेहरे का मतलब ही यह होता है कि अब सब कुछ तय हो गया, फिक्स्ड हो गया। अब तरलता नहीं है, लिक्विडिटी नहीं है।
नहीं, जब मैं यह कह रहा हूं कि चेहरे मत बदलें, तो मेरा मतलब यह नहीं है
कि चेहरे को पत्थर का कर लें। मैं यह कह रहा हूं कि नकली चेहरे मत बदलें। आपका असली चेहरा तो बदलेगा, प्रतिपल बदलेगा। जब आकाश में चांद निकलेगा, तब वह और होगा; और जब अंधेरी रात होगी, तब वह और होगा; जब सुबह फूल खिलेंगे, तब और होगा; और जब सांझ फूल झरेंगे, तब और होगा; और जब रास्ते पर एक भिखारी दिखायी पड़ेगा, तब और होगा। होगा ही। होना ही चाहिए।
जिंदगी सेंसिटीविटी है, जिंदगी संवेदनशीलता है, और चेहरा तरल होना चाहिए; लेकिन होना आपका चाहिए। तरलता आपकी होनी चाहिए। वह बदलाहट तो प्रतिपल होती रहेगी, क्योंकि प्रतिपल जिंदगी में सब बदल रहा है। यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। यहां सब बदल रहा है। इस प्रतिपल हो रही बदलाहट में आप भी बदलेंगे। हवा के झोंके आयेंगे तो पत्ता पूरब की तरफ उड़ेगा, हवा के झोंके आयेंगे तो पश्चिम की तरफ उड़ेगा, हवा रुक जायेगी तो पत्ते ठहर जायेंगे। जिंदगी ठीक वृक्ष पर लटके हुए पत्ते की तरह है। सब प्रतिपल कंप रहा है। जिंदगी में परिवर्तन के अतिरिक्त और कोई भी स्थिरता नहीं है। जिंदगी में परिवर्तन ही एकमात्र चीज है, जो परिवर्तित नहीं होती है। हैराक्लाइटस ने कहा है, यू कैन नाट स्टेप ट्वाइस इन द सेम रिवर। तुम
एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हो।
एक ही क्षण में भी दोबारा नहीं उतरा जा सकता है। जिंदगी एक नदी है, इसमें सब बदलता रहेगा। लेकिन वह बदलनेवाली चीज आपकी हो, वह चेहरा आपका हो, वह प्रामाणिक हो। आप हों, फिर भले ही बदलते रहें। बदलना जिंदगी है। और इस बदलाहट में भी अगर उसका स्मरण रह सके, जो भीतर इस बदलाहट को भी देखता रहता है, तो समाधि उपलब्ध हो जाती है।
चेहरा आपका हो; बदलते हुए चेहरे की धारा में पीछे साक्षी, विटनेस भी हो, जो देखता रहे। जो देखे कि जब चांद निकलता है, तो आंखें हंसती हैं; जब अंधेरी रात आती है, तो आंखें रोती हैं; और जब फूल महकते हैं, तो मन नाचता है; और जब फूल झरते हैं, तो प्राण रोते हैं; और जब प्रिय-जन मिलते हैं, तो आनंद मालूम होता है; और जब प्रिय-जन बिछुड़ते हैं, तो दुख मालूम होता है--यह सब देखता रहे पीछे कोई आपके। वह पीछे देखनेवाला भी है।
लेकिन चेहरा आपका हो, तो वह देखता भी रहे। नकली, प्लास्टिक के चेहरों में वह देखे भी क्या! वे नहीं बदलते। जब नकली चेहरा आप बदलते हैं, तो चेहरा बदलना पड़ता है--एक चेहरा हटाकर दूसरा लगाना पड़ता है। जब आपका अपना चेहरा बदलता है, तो वही चेहरा जिंदगी के नए सरअंजाम में, जिंदगी की नई धारा में, नया हो जाता है। चेहरा वही होता है, सिर्फ जिंदगी के नए रिस्पांस, जिंदगी के प्रति नई प्रतिध्वनि, उसे नया कर जाती है। लेकिन भीतर कोई जाग कर देखता

रहे, तो धीरे-धीरे बदलता हुआ चेहरा संसार मालूम पड़ने लगता है, और न बदलता हुआ साक्षी ब्रह्म मालूम पड़ने लगता है। तब आप अपने भी पार उठ जाते हैं-- बियांड योरसेल्फ--अपने भी पार चले जाते हैं। और जब कोई अपने भी पार चला जाता है, तभी परमात्मा में प्रवेश है।
एक सवाल और पूछ लें।

ओशो, आपने कहा है कि बाहर से व्यक्तित्व और चेहरे आरोपित कर लेना सूक्ष्म चोरी है तथा इससे पाखंड और अधर्म का जन्म होता है। लेकिन देखा जा रहा है कि आजकल आपके आस-पास अनेक नए-नए संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं और बिना किसी विशेष तैयारी व परिपक्वता के आप उनके संन्यास को मान्यता दे रहे हैं। क्या इससे आप धर्म को भारी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं? कृपया इसे समझाइए।

पहली बात, अगर कोई व्यक्ति मेरे जैसा होने की कोशिश करे, तो मैं उसे रोकूंगा; उसे मैं कहूंगा कि मेरे जैसा होने की कोशिश आत्मघात है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति स्वयं जैसा होने की कोशिश की यात्रा पर निकले, तो मेरी शुभकामनाएं उसे देने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। जो संन्यासी चाहते हैं कि मैं परमात्मा के मार्ग पर उनकी यात्रा का गवाह बन जाऊं, विटनेस बन जाऊं, उनका गवाह बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं गुरु किसी का भी नहीं हूं। मेरा कोई शिष्य नहीं है। मैं सिर्फ गवाह हूं। अगर कोई मेरे सामने संकल्प लेना चाहता है कि मैं संन्यास की यात्रा पर जा रहा हूं, तो मुझे गवाह बन जाने में कोई एतराज नहीं है। लेकिन अगर कोई मेरा शिष्य बनने आये, तो मुझे भारी एतराज है। तो मैं किसी को शिष्य नहीं बना सकता हूं, क्योंकि मैं कोई गुरु नहीं हूं। अगर कोई मेरे पीछे चलने आये, तो मैं उसे इनकार करूंगा; लेकिन कोई अगर अपनी यात्रा पर जाता हो और मुझसे शुभकामनाएं लेने आये, तो शुभकामनाएं देने की भी कंजूसी मैं करूं, ऐसा संभव नहीं है। मैं गैरिक वस्त्र नहीं पहनता हूं। मैंने गले में कोई माला नहीं पहनी है। ये जो संन्यासी आपको दिखाई पड़ रहे हैं, इनमें मेरी नकल का कोई कारण नहीं है।
फिर यह भी पूछते हैं आप कि किसी को भी बिना उसकी पात्रता का ख्याल किये मैं उसके संन्यास को स्वीकार कर लेता हूं?
जब परमात्मा ने ही हम सब को हमारी बिना किसी पात्रता के स्वीकार किया है, तो मैं अस्वीकार करने वाला कौन हो सकता हूं? हम सबकी पात्रता क्या है जीवन में? और संन्यास के लिए एक ही पात्रता है कि आदमी अपनी अपात्रता को पूरी विनम्रता से स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त कोई पात्रता नहीं है। अगर कोई आदमी कहता है कि मैं पात्र हूं, मुझे संन्यास दें, तो मैं हाथ जोड़ लूंगा; क्योंकि जो पात्र है उसको संन्यास की कोई जरूरत ही नहीं है। और जिसे यह ख्याल है कि मैं पात्र हूं, तो वह संन्यासी नहीं हो पायेगा। क्योंकि संन्यास विनम्रता का फूल है। वह ह्यूमिलिटी का फूल है। वह विनम्रता में खिलता है।
जो आदमी पात्रता के सर्टिफिकेट लेकर परमात्मा के पास जायेगा, शायद उसके लिए परमात्मा के दरवाजे नहीं खुलेंगे। लेकिन जो दरवाजे पर अपने आंसू लेकर खड़ा हो जायेगा, और कहेगा कि मैं अपात्र हूं, मेरी कोई भी तो पात्रता नहीं है कि द्वार खुलवाने के लिए कहूं; लेकिन फिर भी प्यास है, आकांक्षा है; फिर भी लगन है, भूख है; फिर भी दर्शन की अभीप्सा है; दरवाजे उसके लिए खुलते हैं।
तो मेरे पास कोई आकर संन्यास के लिए कहता है, तो काफी है, मैं कभी उसकी पात्रता नहीं पूछता। क्योंकि जो संन्यासी होना चाहता है, इतनी उसकी इच्छा क्या काफी नहीं है? जो संन्यासी होना चाहता है, इतनी उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना क्या काफी नहीं है? क्या इतनी लगन, अपने को दांव पर लगाने की इतनी हिम्मत काफी नहीं है? और पात्रता क्या होगी? प्यास के अतिरिक्त, और प्रार्थना के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? अपने को छोड़ने के अतिरिक्त, समर्पण के अतिरिक्त, सरेंडर के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? लेकिन समर्पण के लिए भी कोई पात्रता चाहिए होती है?

पात्र समर्पण नहीं कर पायेंगे; क्योंकि वे समझते हैं कि वे अधिकारी हैं। लेकिन जिन्हें अपनी अपात्रता का पूरा बोध है, वे समर्पण कर पाते हैं। परमात्मा के द्वार पर जो असहाय हैं, अपात्र हैं, दीन हैं, अयोग्य हैं, लेकिन फिर भी जिनका हृदय प्रार्थना से भरा है, उनके लिए परमात्मा का द्वार सदा ही खुला है। लेकिन जो पात्र हैं, सर्टिफाइड हैं, योग्य हैं, काशी से उपाधियां ले आए हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तपश्चर्या के धनी हैं, उपवासों की फेहरिस्त जिनके पास है कि उन्होंने इतने उपवास किए हैं, ऐसे व्यक्ति अपने अहंकार को ही भर लेते हैं। और अहंकार से बड़ी अपात्रता कुछ भी नहीं है।
सभी स्वयं को पात्र समझनेवाले लोग अहंकार से भर जाते हैं। सिर्फ अपने
को अपात्र समझनेवाले लोग ही निरहंकार की यात्रा पर निकल पाते हैं। इसलिए मैं उनसे उनकी पात्रता नहीं पूछ सकता हूं। फिर मैं उनका गुरु नहीं हूं, जो उनसे उनकी पात्रता पूछूं। वे मेरे पास सिर्फ इसलिए आए हैं कि मैं उनका गवाह बन जाऊं। इस संबंध में दो-तीन बातें और कहूं। शायद कल इस बाबत और भी आपसे बात करूंगा तो साफ हो सकेगी।
संन्यास मेरे लिए व्यक्ति और परमात्मा के बीच सीधे संबंध का नाम है। उसमें कोई बीच में गुरु नहीं हो सकता। संन्यास व्यक्ति का सीधा समर्पण है। उसके बीच में किसी के मध्यस्थ होने की कोई भी जरूरत नहीं। और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और एक आदमी उसके लिए समर्पित होना चाहे, तो समर्पित हो सकता है। और फिर अपात्र समर्पण से पात्र बनना शुरू हो जाता है। और फिर अपात्र संकल्प, समर्पण, प्रार्थना से पात्र बनना शुरू हो जाता है। संन्यासी सिद्ध नहीं है, संन्यासी तो सिर्फ संकल्प का नाम है, कि वह सिद्ध होने की यात्रा पर निकला है। संन्यासी तो सिर्फ यात्रा का प्रारंभ-बिंदु है, अंत नहीं है। वह तो सिर्फ शुभारंभ है। वह तो मील का पहला पत्थर है, मंजिल नहीं है। लेकिन मील के पहले पत्थर पर खड़े आदमी से पूछें, जिसने अभी पहला कदम भी नहीं उठाया, उससे पूछें कि मंजिल पर पहुंच गये हो, तो ही चल सकते हो। तो जो मंजिल पर पहुंच ही गया है, वह चलेगा ही क्यों? और जो नहीं पहुंचा है, वह मंजिल कहां से दिखाये कि मैं मंजिल पर पहुंच गया हूं।
पहला कदम तो अपात्रता में ही उठेगा। लेकिन पहला कदम भी कोई उठाता है,
यह भी बड़ी पात्रता है; और पहले कदम की भी कोई हिम्मत जुटाता है, तो यह भी बड़ा संकल्प है।
संन्यास मेरी दृष्टि में बहुत और तरह की बात है। संन्यास मेरी दृष्टि में सिर्फ एक बात का स्मरण है कि मैं अब स्वयं को परमात्मा के लिए समर्पित करता हूं; अब मैं स्वयं को सत्य की खोज के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं साहस करता हूं कि धार्मिक चित्त की तरह जीने की चेष्टा करूंगा।
इसलिए ये जो गैरिक वस्त्र आपको दिखाई पड़ रहे हैं, ये उनके स्मरण के लिए हैं, रिमेंबरिंग के लिए हैं, कि उनको स्मरण बना रहे हैं कि अब वे वही नहीं हैं, जो कल तक थे। दूसरे भी उन्हें स्मरण दिलाते रहें कि अब वे वही नहीं हैं, जो कल तक थे।
वस्त्रों की बदलाहट से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी अपने वस्त्र बदल सकता है। गले में माला डाल लेने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी गले में माला डाल सकता है; और माला का उपयोग कर सकता है। गले में डली माला उसके जीवन में आए रूपांतरण की निरंतर सूचना है।
आप बाजार जाते हैं और कोई चीज लानी होती है, तो कपड़े में गांठ बांध लेते हैं। जब भी गांठ याद पड़ती है, ख्याल आ जाता है कि कोई चीज लाने को आये थे। गांठ चीज नहीं है; और जिसने गांठ बांध ली, वह चीज ले ही आयेगा, यह भी पक्का नहीं है। क्योंकि जो चीज भूल सकता है, वह गांठ भी भूल सकता है। लेकिन फिर भी जो चीज भूल सकता है, वह गांठ बांध लेता है; और सौ में नब्बे मौकों पर गांठ की वजह से चीज ले आता है।
ये कपड़े, यह माला, यह सारा बाहरी परिवर्तन है, यह संन्यास नहीं है। यह सिर्फ गांठ बांधना है कि मैं एक संन्यास की यात्रा पर निकला हूं; कि उसका स्मरण, कि उसका सतत स्मरण मेरी चेतना में बना रहे। वह स्मरण सहयोगी है। इस संबंध में कल और आपसे बात कर सकूंगा, आज के लिए बस।
क्रास मैदान, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया दसवां प्रवचन

संन्यास (प्रश्नोत्तर)

ओशो, पंच महाव्रतः अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद की साधना फलीभूत हो सके तथा व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास हो सके, इसमें आपके द्वारा प्रस्तावित नयी संन्यास-दृष्टि का क्या अनुदान हो सकता है, कृपया इसे सविस्तार स्पष्ट करें।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद संन्यास की कला के आधारभूत सूत्र हैं। और संन्यास एक कला है। समस्त जीवन की एक कला है। और केवल वे ही लोग संन्यास को उपलब्ध हो पाते हैं जो जीवन की कला में पारंगत हैं। संन्यास जीवन के पार जाने वाली कला है। जो जीवन को उसकी पूर्णता में अनुभव कर पाते हैं, वे अनायास ही संन्यास में प्रवेश कर जाते हैं। करना ही होगा। वह जीवन का ही अगला कदम है। परमात्मा संसार की सीढ़ी पर ही चढ़कर पहुंचा गया मंदिर है।
तो पहली बात आपको यह स्पष्ट कर दूं कि संसार और संन्यास में कोई भी विरोध नहीं है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। संसार में ही संन्यास विकसित होता है और खिलता है। संन्यास संसार की शत्रुता नहीं है, बल्कि संन्यास संसार का प्रगाढ़ अनुभव है। जितना ही जो संसार का अनुभव कर पायेगा, वह पाएगा कि उसके पैर संन्यास की ओर बढ़ने शुरू हो गए हैं। जो जीवन को ही नहीं समझ पाते, जो संसार के अनुभव में ही गहरे नहीं उतर पाते, वे ही केवल संन्यास से दूर रह जाते हैं।
तो इसलिए पहली बात मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि मेरी दृष्टि में संन्यास का फूल संसार के बीच में ही खिलता है। उसकी संसार से शत्रुता नहीं। संसार का अतिक्रमण है संन्यास। उसके भी पार चले जाना संन्यास है। सुख को खोजते-खोजते जब व्यक्ति पाता है कि सुख मिलता नहीं, वरन जितना सुख को खोजता है उतने ही दुख में गिर जाता है; शांति को चाहते-चाहते जब व्यक्ति पाता है कि शांति मिलती नहीं, वरन शांति की चाह और भी गहरी अशांति को जन्म दे जाती है; धन को खोजते-खोजते जब पाता है कि निर्धनता भीतर और भी घनीभूत हो जाती है; तब जीवन में संसार के पार आंख उठनी शुरू होती है। वह जो संसार के पार आंखों का उठना है, उसका नाम ही संन्यास है।
इसलिए ये पांच सूत्र जिनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं, ठीक से समझें तो
ये संन्यास के ही सूत्र हैं। और जिसकी आंखें संसार के बाहर उठनी शुरू नहीं हुईं, उसके किसी भी काम के नहीं हैं।
मुझे बहुत से मित्रों ने आकर कहा है कि बात कुछ गहरी है और हमारे सिर
के ऊपर से निकल जाती है। तो मैंने उनसे कहा कि अपने सिर को थोड़ा ऊंचा करो ताकि सिर के ऊपर से न निकल जाये। जिनकी आंखें संसार के जरा भी ऊपर उठती हैं, उनके सिर भी ऊंचे हो जाते हैं। और तब ये बातें सिर के ऊपर से नहीं निकलेंगी, हृदय के गहरे में प्रवेश कर जायेंगी। ये बातें गहरी कम, ऊंची ज्यादा हैं। असल में ऊंचाई ही गहराई भी बन जाती है। और ऊंची कोई अपने आप में नहीं है। हम बहुत नीचे, संसार में गड़े हुए खड़े हैं, इसलिए ऊंची मालूम पड़ती है। ऊंचाई सापेक्ष है, रिलेटिव है।
और एक बात ध्यान रहे कि संसार से थोड़ा ऊपर न उठें, संसार से ऊपर थोड़ा देखें। रहें संसार में, कोई हर्ज नहीं। तो जमीन पर खड़े होकर भी आकाश के तारे देखे जा सकते हैं। खड़े रहें संसार में, लेकिन आंखें थोड़ी ऊपर उठ जायें तो ये सारी बातें बड़ी सरल दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वर्ना संसार की बातें रोज कठिन होती चली जाती हैं। कठिन होंगी ही, क्योंकि जिनका अंतिम फल सिवाय दुख के, और जिनकी अंतिम परिणति सिवाय अज्ञान के, और जिनका अंतिम निष्कर्ष सिवाय गहन अंधकार के कुछ भी न होता हो, वे बातें सरल नहीं हो सकतीं, जटिल ही होंगी। चीजें दिखाई कुछ पड़ती हैं, हैं कुछ, और भ्रम कुछ पैदा होता है, सत्य कुछ और है। लेकिन हम संसार में इस भांति खोए होते हैं कि अन्य कोई सत्य भी हो सकता है, इसकी हमें कल्पना भी नहीं उठती।

मैंने सुना है, एक फ्रेंच उपन्यासकार बालजक के पास कोई व्यक्ति मिलने गया था। तो वह बालजक से उसके उपन्यास के पात्रों के संबंध में बात कर रहा था। फिर बात उपन्यास के पात्रों पर चलते-चलते धीरे-धीरे राजनीतिक नेताओं पर और देश की राजनीति पर चली गई। थोड़ी देर तक बालजक बात करता रहा और फिर उसने कहा, माफ कीजिए, लेट अस कम बैक टु द रियलिटी अगेन, अब हमें असली बातों पर फिर वापस लौट आना चाहिए। और बालजक ने अपने उपन्यास के पात्रों की बात फिर से शुरू कर दी। बालजक के लिए उसके उपन्यास के पात्र रियलिटी हैं, यथार्थ हैं। और जिंदगी के मंच पर सच में जो पात्र खड़े हैं, वे अयथार्थ हैं। बालजक ने कहा, छोड़ें अयथार्थ बातों को, हमें अपनी यथार्थ बातों पर फिर से वापस लौट आना चाहिए। बालजक उपन्यासकार है। उसके लिए उपन्यास के पात्र सत्य मालूम होते हैं, जीवंत व्यक्तियों से भी ज्यादा।
हम जिस संसार में इतने डूबे खड़े हैं, वहां हमें संसार के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य दिखाई नहीं पड़ता है। यद्यपि जिन्होंने भी आंखें ऊपर उठाकर देखा है, उन्हें आंखें ऊपर उठाते ही संसार एक अयथार्थ हो जाता है, एक अनरियलिटी हो जाता है। संन्यास का अर्थ है, संसार के ऊपर आंख उठाना। संसार सब कुछ नहीं है, उसके पार भी कुछ है। उसकी तरफ खोज में गई आंखों का नाम संन्यास है।
यह संन्यास... कुछ बातें आपसे कहूं तो स्पष्ट हो सके! ऐसे संन्यास करीब-करीब पृथ्वी से विदा होने के करीब है। क्योंकि अब तक संन्यासी संसार से टूट कर जीया है। और अब भविष्य में ऐसे संन्यास की कोई भी संभावना बाकी नहीं रह जायेगी, जो संसार से टूट कर जी सके। इसलिए रूस से संन्यासी विदा हो गया, चीन से संन्यासी विदा किया जा रहा है। आधी दुनिया संन्यासी से खाली हो गई है। शेष आधी दुनिया कितने दिन तक संन्यासी के साथ रहेगी, कहना मुश्किल है। इस पूरी पृथ्वी पर यह हमारी सदी शायद संन्यास की अंतिम सदी होगी, यदि संन्यास को नए अर्थ, नए डाइमेंशन और नए आयाम न दिए जा सके।
यह संन्यास विदा क्यों हो रहा है? संसार से तोड़कर जिस चीज को हमने अब
तक बचा रखा था, वह हाट हाउस प्लांट था, वह संसार के धक्कों को अब नहीं सह पा रहा है। और जिस समाज ने संन्यासी को संसार से तोड़कर जिंदा रखा था, वह समाज भी मिटने के करीब आ गया है। तो अब उस समाज के द्वारा निर्मित संन्यास की व्यवस्था और संस्था भी बच नहीं सकती। जब समाज ही पूरा रूपांतरित होता है, तो उसकी सारी विधाएं, उसके सारे आयाम टूट जाते हैं। जिस समाज में राजा थे, महाराजा थे, वह समाज मिट गया, राजे- महाराजे मिट गए। राजे-महाराजे के साथ उस समाज के दरबार में पाला हुआ कवि मिट गया। जो समाज कल तक था, जिसने संन्यासी को पाला था, वह समाज विदा हो रहा है। वह समाज बचने वाला नहीं है, संन्यासी भी बच नहीं सकेगा, यदि संन्यासी भी नए रूप को स्वीकार न कर सके। तो एक बात जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है, वह यह
कि संन्यास को बचाना तो अत्यंत जरूरी है। वह जीवन की गहरी से गहरी सुगंध है। वह जीवन का बड़े से बड़ा सत्य है। तो उसे संसार से जोड़ना जरूरी है। अब संन्यासी संसार के बाहर नहीं जी सकेगा। अब उसे संसार के बीच, बाजार में, दूकान में, दफ्तर में जीना होगा, तो ही वह बच सकता है। अब संन्यासी अनप्रोडक्टिव होकर, अनुत्पादक होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे जीवन की उत्पादकता में भागीदार होना पड़ेगा। अब संन्यासी दूसरे पर निर्भर होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे स्वनिर्भर ही होना पड़ेगा।
फिर मुझे समझ में भी नहीं आता कि कोई जरूरत भी नहीं है कि आदमी संसार
को छोड़कर भाग जाये, तभी संन्यास उसके जीवन में फल सके। अनिवार्य भी नहीं है। सच तो यह है कि जहां जीवन की सघनता है, वहीं संन्यास की कसौटी भी है। जहां जीवन घना संघर्ष है, वहीं संन्यास के साक्षी-भाव का आनंद भी है। जहां जीवन अपनी सारी दुर्गंधों में है, वहीं संन्यास का जब फूल खिले, तभी उसकी सुगंध की परीक्षा भी है। और संसार में बड़ी ही आसानी से संन्यास का फूल खिल सकता है। एक बार हमें ख्याल आ जाये कि संन्यास क्या है तो घर से, परिवार से, पत्नी से, बच्चे से, दूकान से, दफ्तर से भागने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। और जो संन्यास भागकर ही बच सकता है, वह बहुत कमजोर संन्यास है। वैसा संन्यास अब आगे नहीं बच सकेगा। अब हिम्मतवर, करेजियस, साहसी संन्यासी की जरूरत है। जो जिंदगी के बीच खड़ा होकर संन्यासी है।

जहां है व्यक्ति, वहीं रूपांतरित हो सकता है। रूपांतरण परिस्थिति का नहीं है, रूपांतरण मनःस्थिति का है। रूपांतरण बाहर का नहीं है, रूपांतरण भीतर का है। रूपांतरण संबंधों का नहीं है, रूपांतरण उस व्यक्तित्व का है जो संबंधित होता है।
आरतेगावायगासिट ने एक छोटी-सी घटना लिखी है। लिखा है कि एक घर में एक व्यक्ति मरणासन्न पड़ा है, मर रहा है, उसकी पत्नी छाती पीटकर रो रही है। पास में डाक्टर खड़ा है। आदमी प्रतिष्ठित है, सम्मानित है। अखबार का रिपोर्टर आकर खड़ा है--मरने की खबर अखबार में देने के लिए। रिपोर्टर के साथ अखबार का एक चित्रकार भी आ गया है। वह आदमी को मरते हुए देखना चाहता है। उसे मृत्यु की एक पेंटिंग बनानी है, चित्र बनाना है। पत्नी छाती पीटकर रो रही है। डाक्टर खड़ा हुआ उदास मालूम पड़ रहा है, हारा हुआ, पराजित। प्रोफेसनल हार हो गई है उसकी। जिसे बचाना था उसे नहीं बचा पा रहा है। पत्रकार अपनी डायरी पर कलम लिए खड़ा है कि जैसे ही वह मरे, टाइम लिख ले और दफ्तर भागे। चित्रकार खड़ा होकर गौर से देख रहा है।
एक ही घटना घट रही है उस कमरे में, एक आदमी का मरना हो रहा है। लेकिन पत्नी को, डाक्टर को, पत्रकार को, चित्रकार को एक घटना नहीं घट रही है, चार घटनाएं घट रही हैं। पत्नी के लिए सिर्फ कोई मर रहा है ऐसा नहीं है, पत्नी खुद भी मर रही है। यह पत्नी के लिए कोई दृश्य नहीं है जो बाहर घटित हो रहा है। वह उसके प्राणों के प्राणों में घटित हो रहा है। यह कोई और नहीं मर रहा है, वह स्वयं मर रही है। अब वह दोबारा वही नहीं हो सकेगी जो इस पति के साथ थी। उसका कुछ मर ही जाएगा सदा के लिए, जिसमें शायद फिर कभी अंकुर नहीं फूट सकेंगे। यह पति नहीं मर रहा है, उसके हृदय का एक कोना ही मर रहा है। पत्नी इनवाल्व है, वह पूरी की पूरी इस दृश्य के भीतर है। इस पति और इस पत्नी के बीच फासला बहुत ही कम है।
डाक्टर के लिए भीतर कोई भी नहीं मर रहा है, बाहर कोई मर रहा है। लेकिन डाक्टर भी उदास है, दुखी है। क्योंकि जिसे बचाना था, उसे वह बचा नहीं सका है। पत्नी के लिए हृदय में कुछ मर रहा है, डाक्टर के लिए बुद्धि में कुछ मरने की क्रिया हो रही है। वह यह सोच रहा है कि और दवाएं दे सकता था तो क्या वह बच सकता था? क्या इंजेक्शन जो दिये थे, वे ठीक नहीं थे? क्या मेरी डाइगनोसिस में कहीं कोई भूल हो गई है? निदान कहीं चूक गया है? अब दोबारा कोई मरीज इस बीमारी से मरता होगा तो मुझे क्या करना है? डाक्टर के हृदय से इस मरीज के मरने का कोई भी संबंध नहीं है, पर उसके मस्तिष्क में जरूर बहुत कुछ चल रहा है।
पत्रकार का मस्तिष्क तो इतना भी नहीं चल रहा है। वह बार-बार घड़ी देख रहा है कि यह आदमी मर जाये तो टाइम नोट कर ले और दफ्तर में जाकर खबर कर दे। उसके मस्तिष्क में भी कुछ नहीं चल रहा है। वह एक काम कर रहा है। बाहर खड़ा है दूर, लेकिन थोड़ा-सा संबंध है उसका। वह सिर्फ इतना-सा संबंध है उसका कि इस आदमी के मरने की खबर दे देनी है जाकर। और वह खबर देकर किसी होटल में बैठकर चाय पीयेगा या खबर देकर किसी थियेटर में जाकर फिल्म देखेगा। बात समाप्त हो जायेगी। इस आदमी को उससे इतना संबंध है कि यह कब मरता है? किस वक्त मरता है? वह मरने की प्रतीक्षा कर रहा है।
चित्रकार के लिए आदमी मर रहा है, नहीं मर रहा है, इससे कोई संबंध ही नहीं है। वह उस आदमी के चेहरे पर आ गई कालिमा का अध्ययन कर रहा है। उस आदमी के चेहरे पर मृत्यु के क्षण में जीवन की जो अंतिम ज्योति झलकेगी, उसे देख रहा है। वह कमरे में घिरते हुए अंधेरे को देख रहा है। चारों तरफ से मौत के साये ने उस कमरे को पकड़ लिया है, वह उसे देख रहा है। उसके लिए आदमी के मरने की वह घटना रंगों का एक खेल है। वह रंगों को पकड़ रहा है, क्योंकि उसे मृत्यु का एक चित्र बनाना है। वह आदमी बिल्कुल आउटसाइडर है। उसे कोई भी लेना-देना नहीं है। यह आदमी मरे, कि दूसरा आदमी मरे, कि तीसरा आदमी मरे, इसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह पत्नी मरे, वह डाक्टर मरे, वह पत्रकार मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। ए बी सी डी कोई भी मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसे मृत्यु का रंगों में क्या रूप है, वह उसे पकड़ने में लगा है। मृत्यु से उसका कोई भी संबंध नहीं है।

परिस्थिति एक है, लेकिन मनःस्थिति चार हैं। चार हजार भी हो सकती हैं। जीवन वही है संसारी का भी, संन्यासी का भी, मनःस्थिति भिन्न है। वही सब घटेगा जो घट रहा है। वही दूकान चलेगी, वही पत्नी होगी, वही बेटे होंगे, वही पति होगा, लेकिन संन्यासी की मनःस्थिति और है। वह जिंदगी को किन्हीं और दृष्टिकोणों से देखने की कोशिश कर रहा है। संसारी की मनःस्थिति और है। संसार और संन्यास मनःस्थितियां हैं, मेंटल एटीट्यूड्स हैं। इसलिए परिस्थितियों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। परिस्थितियों को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मनःस्थिति बदलती है तो परिस्थिति वही नहीं रह जाती। क्योंकि परिस्थिति वैसी ही दिखाई पड़ने लगती है जैसी मनःस्थिति होती है। जो आदमी संसार छोड़कर, भागकर संन्यासी हो रहा है, वह भी अभी संसारी है। क्योंकि उसका अभी विश्वास परिस्थिति पर है। वह भी सोचता है, परिस्थिति बदल लूंगा तो सब बदल जाएगा। वह अभी संसारी है। संन्यासी वह है, जो कहता है कि मनःस्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा। मनःस्थिति बदलेगी, सब बदल जाएगा, ऐसा जिसका भरोसा है, ऐसी जिसकी समझ है, वह आदमी संन्यासी है। और जो सोचता है कि परिस्थिति बदल जाएगी तो सब बदल जाएगा, ऐसी मनःस्थिति संसारी की है। वह आदमी संसारी है।
मेरा जोर परिस्थिति पर बिल्कुल नहीं है, मनःस्थिति पर है। एक ऐसा संन्यासी बच सकता है। और मैं कहना चाहता हूं कि संन्यास बचाने जैसी चीज है।
पश्चिम ने विज्ञान दिया है, वह पश्चिम का कंट्रीब्यूशन है मनुष्य के लिए। पूरब ने संन्यास दिया है, वह पूरब का कंट्रीब्यूशन है संसार के लिए। जगत को पूरब ने जो श्रेष्ठतम दिया है, वह संन्यास है। जो श्रेष्ठतम व्यक्ति दिए हैं, वह बुद्ध हैं, वह महावीर हैं, वह कृष्ण हैं, वह क्राइस्ट हैं, वह मुहम्मद हैं। ये सब पूरब के लोग हैं। क्राइस्ट भी पश्चिम के आदमी नहीं हैं। ये सब एशिया से आये हुए लोग हैं।
शायद आपको पता न हो यह एशिया शब्द कहां से आ गया है। बहुत पुराना शब्द है। कोई आज से छह हजार साल पुराना शब्द है, और बेबीलोन में पहली दफा इस शब्द का जन्म हुआ। बेबीलोनियन भाषा में एक शब्द है "असू"। "असू" से एशिया बना। "असू" का मतलब होता है, सूर्य का उगता हुआ देश। जो जापान का अर्थ है वही एशिया का भी अर्थ है। जहां से सूरज उगता है, जिस जगह से सूर्य उगा है, वहीं से जगत को सारे संन्यासी मिले।
यूरोप शब्द का ठीक इससे उलटा मतलब है। यूरोप शब्द भी अशीरियन भाषा का शब्द है। वह जिस शब्द से बना है--अरेश--उस शब्द का मतलब है, सूरज के डूबने का देश; संध्या का, अंधेरे का, जहां सूर्यास्त होता है।
वे जो सूर्यास्त के देश हैं, उनसे विज्ञान मिला है, वैज्ञानिक मिला है। जो सूर्योदय के देश हैं, सुबह के, उनसे संन्यास मिला है। इस जगत को अब तक जो दो बड़ी से बड़ी देन मिली है, दोनों छोरों से, वह एक विज्ञान की है। स्वभावतः विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां भौतिक की खोज हो। स्वभावतः संन्यास वहीं मिल सकता है जहां अभौतिक की खोज हो। विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां पदार्थ की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। और संन्यास वहीं मिल सकता है जहां परमात्मा की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। जो अंधेरे से लड़ेंगे वे विज्ञान को जन्म दे देंगे। और जो सुबह के प्रकाश को प्रेम करेंगे वे परमात्मा की खोज पर निकल जाते हैं।
यह जो पूरब से संन्यास मिला है, यह संन्यास भविष्य में खो सकता है। क्योंकि संन्यास की अब तक की जो व्यवस्था थी उस व्यवस्था के मूल आधार टूट गए हैं। इसलिए मैं देखता हूं इस संन्यास को बचाया जाना जरूरी है। यह बचाया जायेगा, पर आश्रमों में नहीं, वनों में नहीं, हिमालय पर नहीं।
वह तिब्बत का संन्यासी नष्ट हो गया। शायद गहरे से गहरा संन्यासी तिब्बत के पास था। लेकिन वह विदा हो रहा है, वह विदा हो जाएगा, वह बच नहीं सकता है। अब संन्यासी बचेगा फैक्ट्री में, दुकान में, बाजार में, स्कूल में, युनिवर्सिटी में। जिंदगी जहां है, अब संन्यासी को वहीं खड़ा हो जाना पड़ेगा। और संन्यासी जगह बदल ले, इसमें बहुत अड़चन नहीं है। संन्यास नहीं मिटना चाहिए।

इसलिए मैं जिंदगी को भीतर से संन्यासी कर देने के पक्ष में हूं। जो जहां है वहीं संन्यासी हो जाये, सिर्फ रुख बदले, मनःस्थिति बदले। हिंसा की जगह अहिंसा उसकी मनःस्थिति बने, परिग्रह की जगह अपरिग्रह उसकी समझ बने, चोरी की जगह अचौर्य उसका आनंद हो, काम की जगह अकाम पर उसकी दृष्टि बढ़ती चली जाये, प्रमाद की जगह अप्रमाद उसकी साधना बने, तो व्यक्ति जहां है, जिस जगह है, वहीं मनःस्थिति बदल जाएगी। और फिर सब बदल जाता है।
इसलिए मैं जिन्हें संन्यासी कह रहा हूं वे जगत से भागे हुए लोग नहीं हैं। वे जहां हैं वहीं रहेंगे। और यह बड़े मजे की बात है, आज तो जगत से भागना ज्यादा आसान है। आज जगत में खड़े होकर संन्यास लेना बहुत कठिन है। भाग जाने में तो अड़चन नहीं है, लेकिन एक आदमी जूते की दूकान करता है और वहीं संन्यासी हो गया है तो बड़ी अड़चनें हैं। क्योंकि दूकान वही रहेगी, ग्राहक वही रहेंगे, जूता वही रहेगा, बेचना वही है, बेचनेवाला, लेनेवाला सब वही है। लेकिन एक आदमी अपनी पूरी मनःस्थिति बदलकर वहां जी रहा है। सब पुराना है। सिर्फ एक मन को बदलने की आकांक्षा से भरा है। इस सब पुराने के बीच इस मन को बदलने में बड़ी दुरूहता होगी। यही तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से गुजरना अदभुत अनुभव है। और ध्यान रहे जितना सस्ता संन्यास मिल जाये उतना गहरा नहीं हो पाता, जितना महंगा मिले उतना ही गहरा हो जाता है। संसार में संन्यासी होकर खड़ा होना बड़ी तपश्चर्या की बात है, एक।
दूसरी बात, अब तक संन्यास एक इंस्टीट्यूटलाइज्ड, एक संस्थागत व्यवस्था हो गयी थी। और संन्यास कभी भी इंस्टीट्यूशन, संस्था नहीं बन सकता। और जब भी संन्यास संस्था बनेगा, तब संन्यास की जो खूबी है, जो रस है, जो उसका रहस्य है, वह सब विदा हो जाएगा। संन्यास को जैसे ही संस्था बनाया जाता है, वैसे ही संन्यास मर जाता है।
संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है। संन्यास एक-एक व्यक्ति के भीतर खिलता है, जैसे प्रेम खिलता है। और प्रेम को कोई संस्था नहीं बना सकता। प्रेम एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है और फैलता है। ऐसे ही संन्यास, परमात्मा का प्रेम है। वह भी एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है और फैलता है। इसलिए संन्यासियों की संस्थाओं की कोई भी जरूरत नहीं है। संस्थागत संन्यासी, संन्यासी नहीं रह जाता। असल में संस्था हम बनाते ही इसलिए हैं, सुरक्षा के लिए, सिक्योरिटी के लिए। और संन्यासी है वह, जिसने असुरक्षा में, खतरे में जीने का प्रण लिया है, जो खतरे में, असुरक्षा में जीने की हिम्मत जुटा रहा है। इसलिए आगे संन्यास संस्था से बंधा हुआ नहीं हो सकता है, व्यक्तिगत होगा, व्यक्तिगत मौज होगी। संस्थागत जब भी संन्यास बनेगा तो संन्यास में एक बहुत ही बेहूदी बात जुड़ जाएगी, और वह यह होगी कि संन्यास में एंट्रेंस तो होगा, एक्जिट नहीं होगा। संन्यास के मंदिर में प्रवेश तो होगा, लेकिन बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं होगा। और जिस जगह पर भी प्रवेश हो और बाहर निकलने का द्वार न हो, वह चाहे मंदिर ही क्यों न हो, वह बहुत थोड़े दिनों में कारागृह हो जाता है। क्योंकि वहां परतंत्रता निश्चित हो जाती है।
इसलिए मैं संन्यासी को उसके व्यक्तिगत निर्णय पर छोड़ता हूं। वह उसकी मौज है कि वह संन्यास का निर्णय लेता है। अगर कल वह वापस लौट जाना चाहता है अपनी सहज परिस्थिति, अपनी सहज मनःस्थिति में, तो इस जगत में कोई भी उसकी निंदा करने को नहीं होना चाहिए। निंदा का कोई कारण नहीं है। यह उसकी व्यक्तिगत बात थी। उसने निर्णय लिया, या वह वापस लौट जाये।
इसके दोहरे परिणाम होंगे। बहुत ज्यादा लोग संन्यास ले सकते हैं, अगर उन्हें यह निर्णय हो कि कल अगर उन्हें ठीक न पड़े, तो वह अपनी मनःस्थिति के निर्णय को वापस लौटा सकते हैं। परसों उन्हें फिर लगे कि हिम्मत अब ज्यादा है, अब हम फिर प्रयोग कर सकते हैं, तो फिर वापस भी लौट सकते हैं। संन्यास संस्थाबद्ध हो तो फिर दुराग्रह शुरू होता है कि कोई संन्यासी वापस नहीं लौट सकता। और जब संन्यासी वापस नहीं लौट सकता तो सब संन्यासियों की संस्थाएं कारागृह बन जाती हैं, क्योंकि जाते वक्त व्यक्ति को बहुत कुछ पता नहीं होता। बहुत कुछ तो जाकर ही पता चलता है भीतर से, कि क्या है। और जब भीतर से पता चलता है तो वह वापस लौटने की स्वतंत्रता खो चुका होता है।

इसलिए मैं सैकड़ों संन्यासियों को जानता हूं जो दुखी हैं, क्योंकि वे वापस नहीं लौट सकते। और संन्यास कोई कारागृह नहीं होना चाहिए।
इसलिए दूसरा सूत्र इस नए संन्यास की धारणा में मैं जोड़ना चाहता हूं
वह यह है कि संन्यास व्यक्तिगत निर्णय है। उसके ऊपर किसी दूसरे का न कोई दबाव है, न किसी दूसरे से उसका कोई संबंध है। यह एक व्यक्ति की अपनी सूझ है, यह एक व्यक्ति की अपनी अंतर्दृष्टि है। वह जाये, लौटे। और इसी के साथ एक और बात पीरियाडिकल रिनंसिएशन के संबंध में कहना चाहता हूं।
मैं मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को आजीवन संन्यास का आग्रह नहीं लेना चाहिए। असल में आजीवन के लिए आज कोई निर्णय लिया भी नहीं जा सकता। कल का क्या भरोसा? कल के लिए मैं क्या कह सकता हूं? आज जो मुझे ठीक लगता है, कल गलत लग सकता है। और अगर मैं पूरे जीवन का निर्णय लेता हूं तो इसका मलतब यह हुआ कि कम अनुभवी आदमी ने ज्यादा अनुभवी आदमी के लिए निर्णय लिया। मैं बीस साल बाद ज्यादा अनुभवी हो जाऊंगा। बीस साल पहले का मेरा निर्णय बीस साल बाद के ज्यादा अनुभवी आदमी की छाती पर पत्थर बन जाएगा। बच्चे के निर्णय बूढ़े के लिए लागू नहीं होने चाहिए। लेकिन दस साल का बच्चा संन्यास ले सकता है और सत्तर साल का बूढ़ा फिर जिंदगी भर पछता सकता है, क्योंकि वह आजीवन है। नहीं, कोई संन्यास आजीवन नहीं हो सकता। इस जीवन में सभी चीजें सावधिक हैं, पीरियाडिकल हैं। और संन्यास जैसी कीमती चीज तो सिर्फ अवधिगत होनी चाहिए। एक व्यक्ति लेता है जानने के लिए, जिज्ञासा के लिए, खोज के लिए। अगर संन्यास में कुछ रस है तो संन्यास रोक लेगा, यह दूसरी बात है। लेकिन आप अपने निर्णय से जबर्दस्ती रुकेंगे तो संन्यास के रस पर आपका भरोसा नहीं है।
तो मैं तो मानता हूं कि जो व्यक्ति संन्यास में एक बार जाएगा वह लौटेगा नहीं। लेकिन यह संन्यास के अनुभव में सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह न लौटे। यह सिर्फ कसम और नियम और ला और कानून नहीं होना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को तो इसी भाव से संन्यास में प्रवेश करना चाहिए कि मैं मुक्त प्रवेश करता हूं। कल अगर मुझे लगे कि प्रवेश गलत हुआ, निर्णय भूल थी, तो मैं वापस लौट सकता हूं।
हर आदमी को अपनी भूल से सीखने का हक होना चाहिए। और भूल से ही सीख मिलती है। इस दुनिया में सीखने का और कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन जहां भूल परमानेंट करनी पड़ती हो कि हम उससे सीख ही न सकें, फिर वहां जिंदगी में ज्ञान की जगह अज्ञान आरोपित हो जाता है। इसलिए आजीवन संन्यास ने संन्यासी को ज्ञानी कम, अज्ञानी बनाने में ज्यादा सहयोग दिया है।
दो मुल्क हैं पृथ्वी पर जरूर, जहां पीरियाडिकल रिनंसिएशन की अलग व्यवस्था है। आजीवन संन्यास की व्यवस्था भी है बर्मा में, थाईलैंड में, और सावधिक संन्यास की व्यवस्था भी है। कोई व्यक्ति साल में तीन महीने के लिए संन्यासी हो जाता है। इसलिए बर्मा में लाखों लोग मिल जायेंगे जो संन्यासी रह चुके हैं, कोई तीन महीने को, कोई छः महीने को, कोई साल भर को। फिर दो-चार वर्ष में सुविधा होती है, वह आदमी फिर तीन-चार महीने के लिए संन्यास की दुनिया में चला जाता है।
एक आदमी अगर अपने चालीस साल के अनुभव की जिंदगी में दस बार महीने- महीने भर के लिए भी संन्यासी हो जाये, तो मरते वक्त वह वही आदमी नहीं होगा, जो वह आदमी होगा जिसने कभी संन्यास की जिंदगी में प्रवेश नहीं किया। साल में अगर एक महीने के लिए भी कोई संन्यासी हो जाये, तो आदमी वही नहीं लौटेगा जो था। बाकी आने वाले ग्यारह महीने वर्ष के दूसरे हो जाने वाले हैं। सारी जिंदगी तो व्यक्ति के भीतर से निकलती है।
तो मैं तो मानता हूं कि आजीवन लेने की जरूरत ही नहीं है। आजीवन हो जाये, यह सौभाग्य है। आजीवन फैल जाए, यह परमात्मा की कृपा है। लेकिन अपनी तरफ से तो एक पल का निर्णय भी बहुत है। आज का निर्णय काफी है।
तीसरी बात, अब तक जितने भी संन्यास के जगत में रूप हुए हैं, वे सभी संप्रदायों से बंधे हुए थे। इसलिए संन्यासी कभी भी मुक्त नहीं हो पाया। कोई संन्यासी हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई ईसाई है। कम से कम संन्यासी को तो सिर्फ धार्मिक होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मस्जिद न जाये, वह मंदिर न जाये। यह उसकी मौज है। वह कुरान पढ़े या

गीता पढ़े, यह उसकी पसंद है। वह जीसस को प्रेम करे कि बुद्ध को प्रेम करे, यह उसकी अपनी बात है। लेकिन संन्यासी होते ही उसे किसी संप्रदाय का नहीं रह जाना चाहिए। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति संन्यासी हुआ अब कोई धर्म उसका अपना नहीं, क्योंकि सभी धर्म अब उसके अपने हो गये।
इसलिए संन्यास में एक तीसरी बात भी मैं जोड़ना चाहता हूं, वह है-- गैरसांप्रदायिकता। संप्रदाय के पार संन्यासी को होना चाहिए। और अगर इस पृथ्वी पर हम ऐसे संन्यासी पैदा कर सकें जो ईसाई नहीं हैं, हिंदू नहीं हैं, जैन नहीं हैं, बौद्ध नहीं हैं, तो हम इस जगत को धार्मिक बनाने के रास्ते पर आसानी से ले जा सकेंगे। और अगर संन्यासी हिंदू, बौद्ध और जैन न रह जायें तो आदमी-आदमी को लड़ाने के बहुत-से आधार गिर जायेंगे, और आदमी-आदमी को जोड़ने के बहुत से सेतु फैल जायेंगे।
इसलिए संन्यासी को मैं सिर्फ धार्मिक कहता हूं, रिलिजस माइंड। उसका किसी धर्म से कोई लेना-देना नहीं, क्योंकि सारे धर्म उसके अपने हैं। यह दूसरी बात है कि उसे गीता से प्रेम है और वह गीता पढ़ता है। यह दूसरी बात है कि उसे कृष्ण से प्रेम है और वह कृष्ण के गीत गाता है। यह दूसरी बात है कि उसे जीसस से मुहब्बत है और वह जीसस के चर्च में सो जाता है। ये बिल्कुल दूसरी बातें हैं। ये उसकी व्यक्तिगत बातें हैं। लेकिन अब वह ईसाई नहीं है, जैन नहीं है, हिंदू नहीं है, बौद्ध नहीं है। और कल अगर उसे किसी गांव का मंदिर बुलाता है तो मंदिर में रुकता है, मस्जिद बुलाती है तो मस्जिद में रुक जाता है, चर्च निमंत्रण देता है तो चर्च का मेहमान हो जाता है। अगर हम पृथ्वी पर लाख दो लाख संन्यासी भी धर्मों के पार निर्मित कर सकें, तो हम दुनिया में आदमी-आदमी के बीच के वैमनस्य को गिराने के लिए सबसे बड़ा कदम उठा सकते हैं।
इस तरह के संन्यास को मैं तीन हिस्सों में बांट देना पसंद करता हूं,
जो आपको समझने में आसान हो जाएगा। वे लोग जो अपनी जिंदगी को जैसा चला रहे हैं वैसा ही चलाकर संन्यासी होना चाहते हैं, वे वैसे ही संन्यासी हो जायें। सिर्फ संन्यास की घोषणा अपने और जगत के प्रति कर दें। संन्यास का निर्णय अपने और जगत के प्रति ले लें। लेकिन जहां हैं उसमें रत्ती भर फर्क न करें, जो हैं उसमें फर्क करना शुरू कर दें।
लेकिन बहुत लोग हैं, जैसे ढेर वृद्ध मुझे मिलते हैं जो घरों में तकलीफ में पड़ गए हैं, क्योंकि घरों में अब उनका कोई संबंध नहीं है। आनेवाली पीढ़ियों को उनमें कोई रस नहीं है। सारे सेतु उनके बीच टूट गए हैं। वृद्धों को तो निश्चित ही आश्रमों में पहुंच जाना चाहिए। इस मुल्क में एक व्यवस्था थी। उस व्यवस्था के टूट जाने के बाद शायद जिसको हम जेनरेशन गैप कहते हैं, वह पैदा हुआ। सारी दुनिया में पैदा हुआ। जिसे हम पीढ़ियों का फासला कहते हैं।
इस मुल्क की एक व्यवस्था थी कि पच्चीस साल तक के विद्यार्थी को हम जंगल में रखते थे और पचहत्तर साल के बाद जो बूढ़े संन्यासी थे उनको भी जंगल में रखते थे। और जो पचहत्तर साल के बूढ़े संन्यासी थे वे जंगल में गुरु का काम कर देते थे, शिक्षक का। और जो पच्चीस साल के युवा जंगलों में पढ़ने आते थे वे विद्यार्थी का काम कर देते थे। हम पहली पीढ़ी की आखिरी पीढ़ी से मुलाकात करवा देते थे, उन दोनों के बीच डायलाग हो जाता था, उन दोनों के बीच संबंध हो जाता था। सत्तर साल, पचहत्तर साल का बूढ़ा, पांच और दस साल के बच्चों से मुलाकात ले लेता था। सत्तर-पचहत्तर साल में जो उसने जिंदगी से जाना और सीखा उससे उन्हें परिचित करा देता था।
बहुत कुछ चीजें हैं जो युनिवर्सिटीज में नहीं सीखी जातीं, सिर्फ जिंदगी के अनुभव में ही सीखी जाती हैं। जिस दिन से हमें यह ख्याल पैदा हो गया कि सारा ज्ञान विश्वविद्यालय से मिल सकता है, उस दिन से दुनिया में ज्ञान तो बहुत मिला, लेकिन विजडम, प्रज्ञा बहुत कम होती चली गई। युनिवर्सिटीज में ज्ञान भले मिल जाये, पर प्रज्ञा, विजडम नहीं मिलती है। विजडम तो जिंदगी की ठोकरों और टक्करों और संघर्षों में ही मिलती है। वह तो जिंदगी से गुजर कर ही मिलती है।
तो हम अपने सबसे ज्यादा बूढ़े व्यक्ति को अपने सबसे ज्यादा छोटे बच्चे
से मिला देते थे। ताकि दोनों पीढ़ियां, आती हुई और विदा होती पीढ़ी, डूबता

हुआ सूरज उगते हुए सूरज से मुलाकात कर जाये और जो बारह घंटे की यात्रा पर उसने पाया है वह उगते हुए सूरज को दे जाये। वह संबंध टूट गया है। उससे खतरनाक परिणाम हुए हैं। पीढ़ियों के बीच फासला बढ़ गया है। बूढ़े और बच्चों के बीच कोई डायलाग नहीं है, बूढ़े और बच्चों के बीच कोई बातचीत नहीं है। बूढ़े की भाषा न बच्चे समझते हैं, न बच्चे की भाषा बूढ़े समझ पाते हैं। बूढ़े बच्चों पर नाराज हैं, बच्चे बूढ़ों पर हंस रहे हैं। यह उनकी नाराजगी का ढंग है। अगर जीवन में एक तारतम्य न रह जाए और जीवन में पीढ़ियां इस तरह दुश्मन की तरह खड़ी हो जायें तो जिंदगी एक अराजकता बन जाती है। उस जिंदगी से सारा संगीत खो जाता है।
मेरी दृष्टि में है कि एक तो वे संन्यासी जो अपने घरों में अपनी जिम्मेवारियों के बीच में संन्यासी होंगे। लेकिन कल उनमें से बहुत से लोग जिम्मेवारियों से बाहर हो जायेंगे। बहुत से लोग तो आज भी जिम्मेवारियों के बाहर हैं। जिन पर कोई जिम्मेवारी नहीं है, वे घरों में बोझ भी हो जाते हैं। क्योंकि जो सदा से काम से भरे रहे हैं, खाली होना उन्हें बहुत मुश्किल होता है। तब वे बेकाम के काम करने लगते हैं, जिनसे दूसरों के काम में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। उन्हें जिंदगी की भीड़ और बाजार को छोड़कर जरूर आश्रम की दुनिया में चले जाना चाहिए। वहां वे साधना भी करें, ध्यान भी करें, परमात्मा को भी खोजें और गांव के बच्चों को--जो उनके पास कभी महीने दो महीने के लिए आकर बैठते रहें, ज्यादा देर भी बिठाये जा सकते हैं-- शिक्षित बनायें। क्योंकि मैं तो मानता ही यही हूं कि ऐसे आश्रम ही युनिवर्सिटीज बन जाने चाहिए। और इन बच्चों को अपना सारा सब कुछ दे जायें, जो उन्होंने जाना है।
ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके व्यक्तित्व की दिशा ऐसी है कि वे संसार में नहीं जाना चाहते, तो उन्हें भेजना आवश्यक नहीं है। ढेरों लोग हैं जिनके पिछले जन्मों की यात्रा उस जगह उन्हें ले आई है कि उनके लिए विवाह का कोई अर्थ नहीं होगा। उनके लिए अब जगत में बहुत अर्थ नहीं होगा। अगर ऐसे लोग हैं तो उनको जबरदस्ती जगत में डालना वैसा ही पागलपन है जैसे किसी आदमी को, जिसे अभी विवाह करना था, उसे जबरदस्ती दीक्षा दे देना पागलपन है। नहीं, जिनकी जिंदगी में सहज ही सुगंध है, और जो छोड़कर इस घेरे के बाहर जीना चाहते हैं, वे जरूर आश्रमों में जीयें, पर उनके आश्रम प्रोडक्टिव होने चाहिए। वहां वे खेती भी करें, बगीचे भी लगायें, फैक्टरी भी चलायें, स्कूल भी चलायें, अस्पताल भी चलायें, वे वहां पैदा भी करें, और उस पैदावार पर ही जीयें।
ये तीन दिशाएं हैं। और जो लोग इन तीनों में से कुछ भी नहीं कर सकते, वे
भी इतना तो कर सकते हैं कि वर्ष में पंद्रह दिन हॉली-डे पर चले जायें। अंग्रेजी का यह हॉली-डे शब्द बहुत अच्छा है। हॉली-डे का मतलब छुट्टी नहीं होता, हॉली-डे का मतलब होता है, पवित्र दिन। यह जो रविवार है वह अंग्रेजों के लिए, पश्चिम में हॉली-डे है, पवित्र दिन है, क्योंकि उस दिन परमात्मा ने भी काम छोड़ दिया था दुनिया बनाकर। उस दिन उसने आराम किया था। छह दिन उसने दुनिया बनायी, सातवें दिन वह भी संन्यासी हो गया। उसने सातवें दिन आराम किया। जो छह दिन काम कर रहे हैं, सातवें दिन उनको भी आराम चाहिए। जो साल भर काम कर रहे हैं, वे कभी महीने भर के लिए हॉली-डे पर चले जायें, पवित्र दिनों में चले जाएं। छोड़ दें, भूल जायें इस दुनिया को। एक महीने के लिए डूब जायें किसी और यात्रा में, एक महीने संन्यासी की तरह किसी आश्रम में जीकर लौटें। तब आप दूसरे आदमी होकर लौटेंगे, आप कुछ आत्मिक होकर लौटेंगे, आंतरिक होकर लौटेंगे। दुनिया यही होगी लेकिन आपका दृष्टिकोण बदला हुआ होगा।
मेरे लिए संन्यास का ऐसा अर्थ है। और यह व्यक्तिगत निर्णय और चुनाव है। और अगर ऐसा संन्यास पृथ्वी पर फैलाया जा सके तो हम पृथ्वी से संन्यास को मिटने से रोक सकते हैं, अन्यथा बहुत कठिन मामला है कि संन्यास बच सके। साम्यवाद जितने जोर से फैलेगा, संन्यास की हत्या उतनी ही व्यवस्था से होती चली जाएगी।
आज चीन में, जहां कल बुद्ध की प्रतिमा रखी थी, वह प्रतिमा तो फोड़ डाली
गई और माओ का फोटो लटका दिया गया है। आज चीन के स्कूलों में दीवालों पर जो वचन लिखें हैं, वे बहुत हैरानी के हैं। चीन में एक स्कूल की दीवाल पर लिखा

हुआ है कि जो बच्चा माओ की किताब एक दिन नहीं पढ़ता उसकी भूख मर जाती है, जो बच्चा माओ की किताब दो दिन नहीं पढ़ता उसकी नींद चली जाती है, जो बच्चा माओ की किताब तीन दिन नहीं पढ़ता वह बीमार पड़ जाता है, जो बच्चा माओ की किताब चार दिन नहीं पढ़ता उसकी जिंदगी अंधकारपूर्ण हो जाती है। माओ की किताब में ऐसा कुछ भी नहीं है कि कोई भी बच्चा दुनिया में कहीं भी उसे पढ़े, लेकिन स्कूल के बच्चों को समझाया जा रहा है।
एक यात्री चीन गया था। वह एक मोनास्ट्री के पास से गुजर रहा था, एक पहाड़ पर बसे हुए आश्रम के पास से। उसने अपने गाइड से पूछा कि ऊपर जो आश्रम दिखायी पड़ता है पर्वत पर, वहां साधु रहते होंगे? तो उस गाइड ने कहा, माफ कीजिए, आप बड़े पुराने बुद्धि के आदमी मालूम पड़ते हैं, वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है। साधु अब वहां नहीं रहते। पहले रहते थे, लेकिन वे शोषक दिन समाप्त हुए। अब उन शोषकों की कोई जगह नहीं है चीन में, अब वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है।
बुद्ध की जगह माओ को बिठा दिया जाएगा, आश्रमों की जगह कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर हो जायेंगे। कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, माओ की तस्वीर में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, लेकिन जिस जगह उसे रखा जा रहा है उसमें जगत बहुत कुछ खो देगा। कहां बुद्ध, कहां माओ! कहां बुद्ध के जीवन का आनंद, कहां बुद्ध के जीवन की करुणा और प्रेम, कहां बुद्ध की ऊंचाइयां, कहां बुद्ध के चित्त पर उतरा हुआ निर्वाण, कहां बुद्ध के एक-एक वचन का अमृत, कहां माओ! उससे कोई भी तुलना नहीं, उससे कोई भी संबंध नहीं है।
लेकिन यह हो रहा है, यह सारी दुनिया में होगा। यह कलकत्ते में हो रहा है, यह बंबई में होगा। कलकत्ता की दीवालों पर लिखा हुआ है जगह-जगह कि चीन के अध्यक्ष माओ हमारे भी अध्यक्ष हैं। कलकत्ता और बंबई में बहुत फासला नहीं है। और जो हाथ कलकत्ते की दीवालों पर लिख रहे हैं उन हाथों में और बंबई के हाथों में बहुत फर्क मुझे दिखायी नहीं पड़ता।
इस जगत से धर्म का फूल तिरोहित हो जाएगा अगर कोई ऐसा चाहता हो कि संन्यास की पुरानी धारणा से चिपके रहना चाहिए। अगर इस जगत में धर्म के फूल को बचाना हो तो संन्यास की नई धारणा को जन्म देना जरूरी है।

ओशो, संस्था और संघ के संदर्भ में एक प्रश्न आया है। महावीर जैसी आत्माएं दूसरे किसी का अनुगमन न करके स्वयं को खोजते-खोजते ही स्वयं को उपलब्ध हुईं। यह बात बिल्कुल सही मालूम पड़ती है, फिर भी महावीर ने साधु- साध्वी, श्रावक-श्राविका के चतुर्विध संघ की रचना करके क्या एक संगठन की रचना नहीं की? क्या यह संघ-रचना सीधे रूप में अनुकरण नहीं बन गई? महावीर का उनके पीछे क्या मतलब रहा होगा? क्या आपके पास भी ठीक महावीर जैसे ही संन्यासी और संगठन का निर्माण नहीं हो रहा है? कृपया संक्षेप में स्पष्ट करें।

शब्दों की अपनी यात्राएं हैं। पच्चीस सौ साल पहले जिस शब्द का जो अर्थ था, आज उस शब्द का वही अर्थ नहीं है। इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। महावीर ने जिसे संघ कहा था और हम जिसे संघ कहते हैं, उसमें बड़ा फर्क पड़ गया है। महावीर संघ किसी संस्था को नहीं कहते थे। महावीर संघ कहते थे कुछ समान-चेता, कुछ एक से संगीत अनुभव करनेवाले लोगों के मिलन को। महावीर संघ कहते थे कुछ एक-सी यात्रा पर समस्वरता को अनुभव करनेवाले लोगों की मित्रता को, सहपथिकों को, फेलो-टै्रवेलर्स को। महावीर के लिए संघ का अर्थ आर्गनाइजेशन नहीं है। संघ का अर्थ संगठन नहीं है। क्योंकि संगठन तो सदा किसी के खिलाफ करना पड़ता है। संगठन सदा ही किसी के खिलाफ होता है। संगठन किसी की शत्रुता में होता है। संगठन किसी से अपनी रक्षा के लिए होता है या किसी पर आक्रमण के लिए होता है।
अब महावीर को न तो किसी से अपनी रक्षा करनी थी और न ही किसी पर आक्रमण करना था। इसलिए महावीर के लिए संघ का अर्थ वह नहीं होता जो हमारे लिए होता है। हमारे लिए तो हम संघ बनाते ही तब हैं... मुसलमान कहता है, संगठित हो जाओ! क्योंकि इस्लाम खतरे में है। हिंदू कहता है, संगठित हो जाओ! क्योंकि

हिंदू-धर्म खतरे में है। हिंदुस्तान कहता है, संगठित हो जाओ! क्योंकि चीन हमला कर रहा है। पाकिस्तान कहता है, संगठित हो जाओ! क्योंकि हिंदुस्तान दुश्मन है, पड़ोस में खड़ा है। हमारे लिए संगठन का अर्थ सदा ही आक्रमण या रक्षा है। महावीर को किस पर आक्रमण करना है, किससे रक्षा करनी है!
महावीर के लिए संघ का कुछ और ही अर्थ है। संघ का महावीर के लिए अर्थ है
एक कम्यूनियन; संघ का महावीर के लिए अर्थ है एक समान चेता, समान खोजी, सहपथिकों का मिलन। इसमें कोई आर्गनाइजेशन नहीं है, इसमें कोई आर्गनाइजेशन की बाहरी व्यवस्था नहीं है। जैसे चार आदमी एक गांव में संगीत से प्रेम करते हैं और वे चारों लोग बैठकर रात अपनी महफिल जमा लेते हैं। कोई तबला पीटता है, कोई हारमोनियम बजाता है। यह कोई संघ नहीं है, यह सिर्फ समान चेता, समान इच्छा रखनेवाले लोगों का मिल जाना है। एक गांव में चार आदमी ध्यान करते हैं। वे चारों मिल कर एक कमरे में बैठकर परमात्मा के लिए अपने को समर्पित करते हैं। यह कोई संघ नहीं है। यह किसी के खिलाफ नहीं है, किसी के पक्ष में नहीं है। यह मिलन है।
महावीर के लिए संघ का अर्थ है कम्यूनियन, ऐसे लोगों का मिलन जो एक ही खोज पर, एक ही यात्रा पर निकले। यह संघ उपयोगी हो सकता है, संगठन के अर्थों में नहीं, मिलन के अर्थों में। यह उपयोगी हो सकता है, बहुत उपयोगी हो सकता है। क्योंकि इस जगत में हमारा सारा जीवन ही हमारे चारों तरफ जो है उससे जुड़ा है। अगर आप एक गांव में अकेले हैं संगीत को प्रेम करने वाले और अगर उस गांव में दस लोग संगीत से प्रेम करनेवाले कभी साथ बैठकर गीत गा लेते हैं, तो वे दसों ही ज्यादा समृद्ध हो जाते हैं, वे दसों ही ज्यादा प्रसन्न और सुखी हो जाते हैं।
और मैंने तो सुना है--पता नहीं कहां तक सच है, लेकिन सच मालूम होता है-- मैंने सुना है कि अगर एक सितार को बजाया जाये एक सूने मकान में और दूसरे सितार को दूसरे कोने में बिना बजाये रख दिया जाए और सिर्फ एक सितार को बजाया जाये तो कुशल सितारवादक दूसरे सितार के तारों को भी झनझना देता है। बजेगा एक ही, लेकिन इसकी स्वरध्वनियां उस दूसरे सोए हुए सितार के तारों को भी छेड़ देती हैं और वह भी झनझना उठता है।
अगर दस ध्यान करनेवाले इकट्ठे बैठकर ध्यान करते हैं और उनमें से एक
भी बहुत गहराई में जा सकता है, तो उससे उठी हुई तरंगें, उससे उठी हुई वाइब्रेशंस दूसरों के सोए हुए ध्यान के तारों को भी झनझना देती हैं। इसलिए सामूहिक ध्यान का अपना उपयोग है, सामूहिक साधना का अपना उपयोग है, सामूहिक प्रार्थना का अपना उपयोग है। और हम जो बहुत कमजोर लोग हैं उनके लिए समूह अर्थपूर्ण बन जाता है, बहुत अर्थपूर्ण बन जाता है।
महावीर ने जिन संघों की बात की है वे संघ समान खोज करनेवाले लोगों के मिलन स्थल हैं। उस मिलन में किसी के प्रति पक्ष या विपक्ष से कोई प्रयोजन नहीं है। उस मिलन में प्रेम के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है।
और मैं मानता हूं कि ऐसे प्रेम करनेवाले लोगों को जरूर ही इकट्ठे होते रहना चाहिए। ऐसे प्रेम करनेवाले लोग बुरी बातों के लिए तो इकट्ठे हो रहे हैं। चोर तो इकट्ठे हो जाते हैं, साधुओं का इकट्ठा होना बहुत मुश्किल होता है। धूर्त तो इकट्ठे हो जाते हैं, साधुओं का इकट्ठा होना बहुत मुश्किल मालूम होता है। लेकिन धूर्तों का संघ किसी के पक्ष में और किसी के खिलाफ होता है। साधुओं का संघ किसी के पक्ष में या किसी के खिलाफ नहीं होता, सिर्फ मिलन के आनंद के लिए होता है।
और दुनिया में अगर धूर्त ही इकट्ठे होते रहें तो धूर्तों के पास ज्यादा शक्ति इकट्ठी हो जाती हो तो इसमें आश्चर्य नहीं है। साधुओं के भी कहीं इकट्ठे होने के उपाय होने चाहिए। गांव में बुरे लोग इकट्ठे होकर सब तरह का बुरा संवेदन पैदा करते रहे हैं, बुरे लोग इकट्ठे होकर होटलों में, क्लबों में सब तरफ, इस गांव की तरंगों को दूषित और अंधकारपूर्ण करते रहे हैं, और अच्छे लोगों के लिए मिलने की कोई जगह न हो जहां से वे भी सत्य के, जहां से वे भी प्रेम के संवेदन गांव में पैदा कर सकें, तो इस दुनिया का बहुत अहित होता है।
मंदिर, मस्जिद, चर्च कभी ऐसे ही मिलनेवाले लोगों के मिलन-स्थल थे--अब नहीं हैं--जिनमें गांव की शुद्ध तरंगें भी पैदा होती थीं और जहां से

परमात्मा की यात्रा पर भी पुकार आती थी। आज भी मंदिर के घंटे हम बजाते रहते हैं, लेकिन किसी को वे सुनायी नहीं पड़ते। कभी वे पुकार थे परमात्मा की, कभी वे स्मरण के स्रोत थे, कभी वे खबरें थीं कि उठो! कोई और भी है खोज, उसकी भी याद उनसे आती थी। अब भी मस्जिद से अजान दी जाती है, लेकिन लोगों की सिर्फ सुबह की नींद खराब होती है और कुछ भी नहीं होता। देनेवाला भी सिर्फ प्रोफेशनल है, एक काम है कि वह सुबह अजान दे देता है। वह भी सोचता है कि आज सुबह बड़ी जल्दी हो गई मालूम होता है। आज सब बेमानी हो गया है।
महावीर ने जो मिलन की कामना की थी वह अर्थपूर्ण है, वह संघ नहीं है आज
की भाषा में। असाधु की भाषा में संघ कुछ और अर्थ रखता है, साधु की भाषा में कुछ और अर्थ रखता है। इतना ख्याल में आ जाए तो कठिनाई नहीं रह जाएगी। लेकिन जितनी भी श्रेष्ठ चीजें हैं, महावीर जैसे व्यक्ति खड़ा करते हैं उन श्रेष्ठ चीजों को, लेकिन बचा नहीं पाते, दुर्भाग्य है। चेष्टा बहुत करते हैं कि बच जायें चीजें अपने शुद्धतम रूप में, लेकिन नहीं बच पातीं। उसका कारण है। महावीर अस्सी साल जिंदा रहते हैं, फिर विदा हो जाते हैं। जो दे जाते हैं वह हमारे हाथ में पड़ता है, जो महावीर नहीं हैं, जिनको उस चेतना की स्थिति से कोई भी संबंध नहीं है। फिर तो हम जो करेंगे वह करेंगे।
मैंने सुना है कि मौजेज के पास, मूसा के पास एक बांसुरी थी और उस बांसुरी को कभी-कभी पहाड़ पर बैठकर वे बजाते थे। राह चलते गड़रिए ठहर जाते थे। भ.ेडें रुक जाती थीं, जंगल के हिरण इकट्ठे हो जाते थे, पक्षी मौन हो जाते थे, पक्षी उन्हें घेर लेते थे। फिर मौजेज मर गये, तो जिन गड़रियों ने उस दिव्य बांसुरी के स्वर सुने थे, उन्होंने उस बांसुरी को वृक्ष के नीचे रखकर पूजा करनी शुरू कर दी।
लेकिन वह बांस की पोंगरी थी। एक-दो पीढ़ी भी नहीं बीत पायी कि लोगों ने कहा कि इस कोरी बांस की पोंगरी में रखा क्या है, इसमें कुछ पूजा-योग्य भी तो होना चाहिए!
तो बड़े-बूढ़ों ने कहा, यह बात ठीक है। तो उन्होंने उस बांसुरी के ऊपर सोने का प्लास्तर चढ़ा दिया, ताकि पूजा-योग्य हो जाये। फिर जब वह सोने की हो गई तो लोगों को लगा कि हां, अब वह बांस की पोंगरी नहीं है, सोने की बांसुरी है। तो वे सोने की बांसुरी की पूजा करते रहे।
एक-दो पीढ़ी बाद लोगों ने कहा कि यह क्या कोरा सोना लगा रखा है! कुछ लोग हीरे-जवाहरात खरीद लाये, उन्होंने हीरे-जवाहरात लगा दिए उस पर। लेकिन अब उसमें कहीं से भी फूंकें, उसमें कोई स्वर न उठते थे। फिर जब कोई संगीतज्ञ वहां से गुजरा तो उसने पूछा, मैंने सुना है कि यहां मूसा की बांसुरी की पूजा होती है। मैं उस बांसुरी के दर्शन करना चाहता हूं। जब वह गया देखने तो वहां बांसुरी थी ही नहीं। उस पर सोने का प्लास्तर चढ़ गया था। प्लास्तर के ऊपर हीरे-जवाहरात लग गए थे। उसने दोनों तरफ से फूंका। उसमें कोई छेद ही न थे जहां से फूंकी जा सके।
महावीर की बांसुरी भी ऐसी ही हो जाती है, बुद्ध की बांसुरी भी ऐसी ही
हो जाती है, जीसस की बांसुरी के साथ भी हम यही करते हैं। जिनके हाथ में पड़ती है बात, वे सब कुछ विकृत कर देते हैं। इस विकृति का जिम्मा महावीर या बुद्ध के ऊपर या कृष्ण के ऊपर नहीं है। इस विकृति का जिम्मा हमारे ऊपर है। और इसलिए अगर महावीर जैसा व्यक्ति आज फिर लौट आये तो उसे महावीर के ही खिलाफ बोलना पड़ता है। बोलना पड़ता है इसलिए कि आपने महावीर की जो शक्ल बना दी है, अब उस शक्ल को गिराना जरूरी हो जाता है। अगर कोई संगीतज्ञ लौट आये तो उसे उसी बांसुरी के खिलाफ बोलना पड़ेगा और कहना पड़ेगा, यह बांसुरी नहीं है। अगर जीसस वापस लौट आयें तो उन्हें जीसस के ही खिलाफ बोलना पड़ेगा। क्योंकि दो हजार साल में हमने जो शक्ल कर दी है, वह जीसस भी नहीं पहचान पायेंगे कि कभी मैं आया था, यह मेरी शक्ल थी!
आदमी के हाथ में पड़ कर सब बिगड़ जाता है। लेकिन इसका कोई उपाय नहीं है। इसका सिर्फ एक ही उपाय है कि काश, मूसा के आसपास प्रेम करनेवाले लोगों को हम कहें कि तुम कृपा करके बांसुरी की पूजा मत करो, बांसुरी बजाना सीखो। अगर मूसा के आसपास के लोग बांसुरी बजाना सीखें--हो सकता है मूसा जैसी न बजा पायें, लेकिन बांसुरी बजाना भी सीख लें--तो एक बात तो कम से कम पक्की है कि बांसुरी पर सोना नहीं चढ़ेगा, हीरे- जवाहरात नहीं चढ़ाए जाएंगे। क्योंकि तब

वे इतना कह सकेंगे कि बांसुरी की पूजा बांसुरी की नहीं है, उससे पैदा होनेवाले संगीत की पूजा है। और वह संगीत तभी पैदा होता है जब बांसुरी पोली हो। उसमें सोना भर दिया है तो फिर संगीत पैदा नहीं होता है।
महावीर और बुद्ध की पूजा न की जाये, महावीर और बुद्ध के जीवन में जो घटित हुआ है, महावीर और बुद्ध के जीवन की जो ऊंचाइयां प्रगट हुई हैं, जिन शिखरों को, जिन गौरीशंकरों को उन्होंने छुआ है, अगर हम भी छोटे-मोटे टीलों की भी खोज में निकल जायें तो शायद विकृति न हो।

लेकिन हम पूजा में लग जाते हैं। पूजा विकृति बन जाती है। जिसको हम पूजते हैं उसको हम बिगाड़ते हैं। जिसे हम पूजते हैं उसे हम नष्ट करते हैं।
क्योंकि धीरे-धीरे हम जिसको पूजते हैं उसको अपनी शक्ल में गढ़ लेते हैं।
तभी तो हम पूज पायेंगे, नहीं तो पूज नहीं पायेंगे। हम कहानियां गढ़ते हैं उसके आसपास जो हमारी होती हैं। हम उसे पूजा-योग्य बनाते चले जाते हैं।
उसका व्यक्तित्व धीरे-धीरे सिर्फ मुर्दा राख रह जाता है।
मूसा की बांसुरी करीब-करीब सारी दुनिया में सब लोगों के पास है।
लेकिन उसमें से कोई स्वर नहीं निकलते हैं। लेकिन क्या किया जा सकता है, आज तक ऐसा हुआ है। शायद आगे भी ऐसा ही होगा। दुर्भाग्यपूर्ण है! होना नहीं चाहिए। लेकिन हमारी आदतें हैं, हमारी मजबूरियां हैं। हम वही करते रहते हैं, लेकिन फिर भी सचेत करने की कोशिश निरंतर की जाती रही है।
बुद्ध लोगों से कहते हैं कि मेरी पूजा मत करना, महावीर कहते हैं कि तुम स्वयं भगवान हो। जो आदमी दूसरों से कह रहा है कि तुम स्वयं भगवान हो, वह आदमी कह रहा है कि मेरी पूजा मत करो। वह आदमी यह कह रहा है कि तुम जिसकी पूजा कर रहे हो वह तुम स्वयं हो। अब तुम्हें किसी और की पूजा की कोई भी जरूरत नहीं है। महावीर कहते हैं, अशरण हो जाओ, सब शरण छोड़ दो, क्योंकि तुम किसकी शरण जा रहे हो? तुम खुद वही हो जिसकी खोज चल रही है। लेकिन हम महावीर की शरण चले जाते हैं। हम कहते हैं, आपने अशरण का मार्ग बताया, बड़ी कृपा की। कम से कम आपके चरणों में तो हमें आ जाने दो। बुद्ध कहते हैं, पूजा मत करना। तो हम कहते हैं, किसी की पूजा न करेंगे, लेकिन तुमने तो इतनी ऊंची बात कही, तुम्हारी तो कम से कम करने दो। तो हम बुद्ध की पूजा जारी कर देते हैं। आदमी की बुनियादी भूलें कारण हैं। अभी तक आदमी जीतता रहा, महावीर-बुद्ध हारते रहे। पता नहीं आगे इस कहानी में फर्क पड़ेगा या नहीं पड़ेगा, कोशिश जारी रहनी चाहिए। कोशिश जारी रहनी चाहिए कि अब आगे बुद्ध और महावीर न हार पायें, अब आगे जो व्यक्ति भी परमात्मा का संदेश लाये, वह लड़ता ही रहे; और जो भूलें पीछे हो गई हैं आदमी से, उनके खिलाफ चलता ही रहे। पक्का नहीं कहा जा सकता कि आदमी मानेगा, क्योंकि कुछ भी पक्का नहीं कहा जा सकता, लेकिन कोशिश जारी रहनी चाहिए।
एक बात अंत में इस प्रश्न के संबंध में वह यह है कि कितनी ही भूल-चूक आदमी ने की हो और लोगों ने मूसा की बांसुरी पर कितना ही सोना चढ़ा दिया हो, अगर हम आज भी सोने को उखाड़ें तो मूसा की बांसुरी भीतर छिपी मिल सकती है। अनुयायियों ने महावीर पर जो-जो थोपा है, उसे अगर हम उतार दें, उनके सब आलेपन... बुद्ध के माननेवालों ने जो-जो पहनाया है, वह सारे वस्त्र हम अलग कर दें, तो भीतर वह सत्य आज भी वैसा ही मौजूद है।
लेकिन बुद्ध के आरोपण अलग करने जाइए--पच्चीस सौ साल पहले बुद्ध हुए--द जरूरत क्या है? महावीर के आरोपण अलग करने जाइए, जरूरत क्या है? इतनी मेहनत से तो आप अपने भीतर के बुद्ध, अपने भीतर के महावीर के आरोपण अलग कर ले सकते हैं।
और ध्यान रहे, जब तक मैं अपने भीतर महावीर को न पा लूं तब तक मैं बाहर किसी महावीर को पहचान नहीं सकता हूं। जब तक मैं अपने भीतर कृष्ण को न पा लूं तब तक कोई कृष्ण मेरे लिए सार्थक नहीं हो सकते। जब तक मेरे भीतर बुद्ध प्रकट न हो जायें तब तक बुद्ध का एक भी शब्द मेरे लिए मेरी भाषा का शब्द नहीं है। अपने को ही हम खोज लें, तो हम सबको खोज लेते हैं।

ओशो, आपने कहा है कि चेहरे चुराना, दूसरे जैसा बनने का प्रयास करना, शिष्य और अनुयायी बनाना सूक्ष्म चोरी है। तब दूसरे व्यक्तियों से

प्रेरणा पाना, साधना सीखना, अनुभवी, जाग्रत लोगों के पास जाना, यह सब भी क्या चोरियां हैं? यदि ये सब चोरियां हैं तो सम्यक शिक्षा का क्या रूप होगा? कृपया इसे समझायें।

जो जानते हैं उनके पास जायें, लेकिन जो वे जानते हैं उसे मान मत लेना! उसे खोजें। जो वे जानते हैं उसे विश्वास न बना लें, उसे ही जिज्ञासा बनायें। जो वे जानते हैं उसके प्रति अंधे होकर मुट्ठी न बांध लें, उसके प्रति आंख खोलें, टटोलें। प्रेरणा का अर्थ दूसरे को स्वीकार कर लेना नहीं है। प्रेरणा का अर्थ दूसरे की चुनौती स्वीकार करना है, चैलेंज।
महावीर के पास जायें तो प्रेरणा का अर्थ यह नहीं है कि महावीर जैसे होने में लग जायें। महावीर के पास जाकर प्रेरणा का यह अर्थ है कि अगर इस महावीर के भीतर यह प्रकाश पैदा हो सका तो मेरे भीतर क्यों पैदा नहीं हो सकता? यह चुनौती है!
अंग्रेजी में शब्द है, इंस्पिरेशन। वह शब्द बहुत कीमती है। उसमें "इन" शब्द पर ध्यान देना जरूरी है--इंस्पिरेशन। लेकिन इंस्पिरेशन लेते हम सदा दूसरे से हैं। तब तो शब्द बड़ा गलत है। इंस्पिरेशन का मतलब ही है अंतःप्रेरणा। दूसरा निमित्त बन सकता है, दूसरा आधार नहीं बन सकता। दूसरा चुनौती बन सकता है, नियम नहीं बन सकता।
एक जला हुआ दीया, एक बुझे हुए दीये के लिए खबर बन सकता है कि मैं भी जल सकता हूं। क्योंकि बाती भी मेरे पास है, तेल भी मेरे पास है, दीया भी मेरे पास है। लेकिन जला हुआ दीया अगर बुझे हुए दीये के लिए इस तरह की प्रेरणा न बनकर सिर्फ पूजा की प्रेरणा और अनुकरण बन जाए, और बुझा हुआ दीया, जले हुए दीये के चरणों में सिर रखकर बैठ जाये, तो बैठा रहे अनंत काल तक, उससे कुछ होनेवाला नहीं है।
प्रेरणा का अर्थ है चुनौती। जहां भी कुछ दिखाई पड़ता हो वहां से यह चुनौती मिलनी ही चाहिए कि यह मेरे भीतर क्यों नहीं हो सकता है? इस जगत में जो एक व्यक्ति के भीतर भी हुआ है, वह मेरे भीतर क्यों नहीं हो सकता है? सब उपकरण मौजूद हैं। वह हृदय मौजूद है, जो मीरा का गीत बन जाये। वह बुद्धि मौजूद है, जो बुद्ध की प्रज्ञा बन जाये। वह शरीर मौजूद है, जिस शरीर के भीतर लोगों ने परमात्मा को पा लिया है। वह आंख मौजूद है, जिससे दृश्य ही नहीं, अदृश्य भी दिखाई पड़े! वह कान मौजूद हैं, जिनसे बाहर के संगीत ही नहीं, भीतर के नाद भी कबीर ने सुन लिये। लेकिन अगर कबीर भीतर के नाद सुन सकते हैं तो मैं भीतर के नाद क्यों नहीं सुन सकता हूं?
प्रेरणा का अर्थ है, चुनौती। प्रेरणा का अर्थ है, जायें सब तरफ, खोजें
सब तरफ। जिन्होंने भी ऊंचाइयां छुई हों, उनको देखें। जिन्होंने गहराइयां पाई हों, उनको देखें। और अपने पैरों के नीचे देखें कि आप कहां खड़े हैं। इन ऊंचाइयों और इन गहराइयों में आपका जाना भी हो सकता है। बस, इससे ज्यादा प्रेरणा का और कोई अर्थ नहीं है।
अगर इससे ज्यादा अर्थ आप लेते हैं तो प्रेरणा नहीं रह जाती, फिर वह अनुगमन बन जाती है, फिर वह अनुसरण हो जाती है, फिर वह फालोइंग हो जाती है। और फिर आप अंधे ही बनते हैं, आंख वाले नहीं बन पाते। हां, अंधे बनने से बचने की जरूरत है। अंधा आदमी परमात्मा को नहीं खोज पायेगा। अंधा आदमी टटोलता ही रहेगा किसी के पीछे और भटकता रहेगा। और किसी के पीछे भटक कर सत्य कैसे मिल सकता है?
सत्य भीतर है, चोट पड़ने दें। महावीर की, बुद्ध की, कृष्ण की, क्राइस्ट की, जिसकी भी चोट पड़ती हो, पड़ने दें। जिनसे चुनौती मिलती हो, ले लें! और चुनौती के लिए धन्यवाद भी दे दें। लेकिन सीखें, वह नहीं जो देखा है, सीखें वह, जो मेरे भीतर हो सकता है। इन सब में फर्क को समझ लें। सीखें मत दूसरे से, जो उसके भीतर हो गया है। सीखें केवल इतना ही कि उसके भीतर जो हो सका वह मेरी भी पोटेंशियलिटी है। वह मेरा भी बीज है। वह मेरे भीतर भी हो सकता है। एक बीज को रखें एक वृक्ष के पास, बीज को पता भी नहीं चलता कि इतना बड़ा वृक्ष मेरे भीतर भी छिपा हो सकता है। लेकिन बीज अगर एक वृक्ष को देख ले और उस वृक्ष से पूछे कि तुम इतने बड़े वृक्ष हो गए, क्या तुम इतने ही बड़े थे सदा? तो वह वृक्ष कहेगा, बीज था तेरे ही जैसा कभी, और ऐसा ही मैंने भी

वृक्षों से पूछा था कि इतने बड़े कैसे हो गए हो! तेरे जितना ही बीज था, तेरे जैसा छोटा ही बीज था। लेकिन यह सब भीतर छिपा था। अब प्रकट हो गया है। यह मैनिफेस्ट हो गया है।
असल में तब बीज के लिए चुनौती मिल गई। अब यह बीज भी टूटेगा। लेकिन यह बीज वैसा ही वृक्ष नहीं बन सकता है। यह बीज जो बन सकता है, वही बनेगा। इस बीज के भीतर हो सकता है दूसरा वृक्ष छिपा हो। वह दूसरा वृक्ष ही बनेगा। इतना स्मरण रहे तो प्रेरणा घातक नहीं होती, साधक हो जाती है। तो प्रेरणा शत्रु नहीं बनती, मित्र बन जाती है। प्रेरणा बाहर से आती हुई सिर्फ दिखाई पड़ती है, पर आती भीतर से ही है। वह इंस्पिरेशन ही होता है। वह अंतःचोट होती है। वह बाहर से किसी चीज की चोट और भीतर कोई सोया हुआ फन उठाकर जग जाती है। और हमें पहली बार पता चलता है कि हम यह भी हो सकते हैं! इस स्मरण का नाम प्रेरणा है। और इस अर्थ में सीखना ही पड़ेगा, इस अर्थ में सीखते ही रहना है।
लेकिन सीखना और मानना बड़ी अलग-अलग बातें हैं। मानता वही है जो सीखना नहीं चाहता। जो सीखना चाहता है वह तो मानेगा नहीं, वह तो खोजेगा, खोजेगा। और तब तक नहीं मानेगा जब तक पा नहीं लेगा। वह अगर किसी बात की खोज पर भी निकलेगा तो उसकी खोज मानने की खोज नहीं, जानने की खोज होगी।
सीखने का अर्थ श्रद्धा नहीं है, सीखने का अर्थ विश्वास नहीं है, सीखने
का अर्थ खोज है। सीखने का अर्थ जिज्ञासा है। सीखना एक यात्रा है। सीखना प्रारंभ है, अंत नहीं है।
लेकिन हम सब लोग सीख कर बैठ जाते हैं। हम कहते हैं, हमने तो गीता से सीख लिया। गीता के सीखने से क्या हो सकता है? गीता सीख सकते हैं आप, लेकिन गीता सीखने से कृष्ण नहीं हो सकते। गीता पूरी की पूरी कंठस्थ करने से भी कुछ न होगा। एक बात पक्की है कि कृष्ण को गीता कंठस्थ नहीं थी और अगर दोबारा बुलवाई होती तो बड़ी भूलचूक हो गई होती। गीता निकली है, वह याददाश्त नहीं है। वह सहज स्रोत है, जो कृष्ण से बाहर फूटा है। और आप? आप उसको बाहर से भीतर डाल रहे हैं।
नहीं, कृष्ण की गीता को पढ़कर इस आकांक्षा से भरें कि कब वह दिन आयेगा
जब मेरे प्राणों से भी गीता फूटकर निकलने लगेगी। जिस दिन मेरे प्राण भी भगवत-गीता बन जाएंगे, भगवान का गीत बन जाएंगे, वह दिन कब आएगा? उसकी याद से भरें। छोड़ें कृष्ण को, छोड़ें उनकी गीता को। अपनी गीता की खोज में लगें। एक बात पक्की हो गई कि कृष्ण से फूट सकती है तो मुझसे क्यों नहीं फूट सकती? परमात्मा पक्षपाती नहीं है। अगर कृष्ण को मिल सकी है भगवत-गीता तो मुझे भी मिल सकती है। अगर उनके प्राणों के वाद्य पर यह गीत उठ सका, सिलेस्टियल सांग पैदा हो सका, तो मेरे प्राणों के वाद्य पर भी पैदा हो सकता है।
लेकिन हम? हम कुछ और कर रहे हैं। हम सीखने का मतलब गीता कंठस्थ करना समझते हैं। गीता से सीखने का मतलब इतना ही है कि अब मिल गई चुनौती। अब तब तक चैन नहीं कि जब तक भगवत-गीता भीतर से पैदा न होने लगे। जब तक कि वाणी का स्वर-स्वर परमात्मा का स्वर न हो जाये, तब तक चैन नहीं। यह सीखें, लेकिन यह कौन सीखता है? गीता सीख लेते हैं, वह आसान है। गीता को कंठस्थ कर लेना बच्चों का काम है और जितनी कम बुद्धि का आदमी हो उतनी जल्दी कंठस्थ हो जाती है।
सीखें कि सम्यक सीखना, राइट लर्निंग क्या है? कुछ और भी सीखना है। वह
जो हैपनिंग है, वह जो घटना घटी है, वह सीखना है। यह जो कृष्ण नाम की घटना घट गई है, यह सीखनी है। यह जो कृष्ण के मुंह से निकला है, यह नहीं सीखना है। यह जो कृष्ण पहने हुए हैं, यह नहीं सीखना है। नहीं, कृष्ण के भीतर जो बीज फूटा और अंकुरित होकर वृक्ष बन गया है तो मेरा बीज भी फूट सकता है, यह सीखना है। इस बीज को तोड़ने की आकांक्षा सीखनी है, अभीप्सा सीखनी है। इस बीज को तोड़ने का पागलपन सीखना है। इस बीज को तोड़ने की जिद सीखनी है। इस बीज को तोड़ने का संकल्प सीखना है। वह कृष्ण से सीख लें।
वह क्राइस्ट से भी सीखा जा सकता है। वह बुद्ध से भी सीखा जा सकता है।
वह अपने चारों तरफ हजार-हजार मार्गों से सीखा जा सकता है। और जो सीखने को उत्सुक है उसे तो वृक्ष पर खिलते हुए फूल से भी याद आती है उसी की! आकाश में

चमकते हुए तारे से भी ख्याल आता है उसी का! जमीन से फूटते हुए झरने में भी स्मृति आती है उसी की। सबसे उसी की याद!
सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर एक गांव से गुजर रहा है। सांझ है और एक बच्चा मंदिर में दीया चढ़ाने जा रहा है। उसने उसे रोका और पूछा, इस दीये में ज्योति कहां से आई? तू ने ही जलाया है दीया? तो उस बच्चे ने कहा, जलाया तो मैंने, लेकिन ज्योति कहां से आई यह पता नहीं। और तभी बच्चे ने दीया फूंक कर बुझा दिया और कहा कि आपके सामने ज्योति चली गई। अब आप मुझे बता दें कहां चली गई ज्योति? आपके सामने ही गई है न? तब मैं भी बता सकूंगा कि कहां से आई थी, मेरे ही सामने आई थी। वह फकीर उस बच्चे के पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा कि आज से गलत सवाल न पूछूंगा। क्योंकि जिसका जवाब मैं नहीं दे सकता वैसा सवाल पूछना मूर्खता है। तू मुझे माफ कर दे, तू मुझे क्षमा कर दे, और मुझे भी तो पता नहीं है कि ज्योति कहां चली जाती है! छोड़ें इस दीये को, उस फकीर ने कहा। तूने अच्छी याद दिला दी। मुझे यह भी तो पता नहीं है कि मेरे दीये में जो ज्योति जल रही है, वह कहां से आती है। और जब मेरे दीये में बुझ जाएगी तब कहां चली जाएगी। पहले अपने दीये का पता लगा लूं फिर इस मिट्टी के दीये की खोज करूंगा।
अब यह जो आदमी है उसने सीखा कुछ। ही हैज लर्न्ड समथिंग, इसने कुछ सीखा। इसने इस घटना से कुछ सीखा।
एक झेन फकीर के आश्रम में एक बूढ़ी औरत बहुत दिन से रुकी है और वह कहती
है कि नहीं, घटना नहीं घट रही है। कुछ और सिखाओ, कुछ और सिखाओ। वह बड़े-बड़े सिद्धांत सीख गई, शास्त्र सीख गई है, लेकिन घटना नहीं घट रही है। वह कहती है, और सिखाओ। अब वह फकीर कहता है, तू सीखती ही नहीं। सब तरफ वही सिखाया जा रहा है।
फिर एक दिन वह वृक्ष के नीचे बैठी और एक सूखा पत्ता वृक्ष से नीचे गिर गया। बस, वह नाचती हुई आश्रम में चिल्लाने लगी कि मैं सीख गई। लोगों ने कहा, किस शास्त्र से सीखी है? हमको भी बता दो! और भी सीखनेवाले लोग मौजूद थे।
उसने कहा, शास्त्र से नहीं सीखा है। एक सूखे पत्ते को वृक्ष से गिरते देखकर बस, सब हो गया। पर उन्होंने कहा, पागल, वृक्षों से सूखे पत्ते तो हमने भी बहुत गिरते देखे हैं, तुझे क्या हो गया? उसने कहा, जैसे ही वृक्ष से सूखा पत्ता गिरा, मेरे भीतर भी कुछ गिर गया और मुझे लगा कि आज नहीं कल सूखे पत्ते की तरह गिर जाऊंगी। तो जब सूखे पत्ते की तरह गिर ही जाना है तो इतनी अकड़ क्यों, इतना अहंकार क्यों? और सूखा पत्ता हवा में यहां-वहां डोलने लगा, पूरब-पश्चिम होने लगा। हवा उसे टक्कर देने लगी। वह सड़कों पर भटकने लगा। आज नहीं कल जिसे मैं "मैं" कहती हूं, वह भी कल राख हो जाएगा और सड़कों पर हवाएं उसे धक्के देंगी। वह सूखे पत्ते की तरह भटकेगा। आज से अब मैं नहीं हूं। मैंने सूखे पत्ते से सीख लिया है।
सीखने का मतलब? सीखने का मतलब खुली आंख रखें और चुनौतियां लें। आने दें चुनौतियां। सब तरफ से आती हैं। बाप को बेटे से आ सकती है। बेटे को बाप से आ सकती है। राह चलते अजनबी से मिल सकती है। पड़ोसी से मिल सकती है। कहीं से भी मिल सकती है। सीखनेवाला चित्त चाहिए।
लेकिन इस सीखने के अर्थ को हम नहीं समझे। हम समझ रहे हैं कि बस कंठस्थ
कर लो। हमारा सीखना बौद्धिक है, इंटेलेक्चुअल है! शब्द सीख लो, सिद्धांत सीख लो, कंठस्थ कर लो।
सीखना होता है टोटल, रोएं-रोएं से, श्वास-श्वास से, प्राण के कण-कण से, हृदय की धड़कन-धड़कन से। पूरा व्यक्तित्व जब सीखने को तैयार होता है तो जरा- सी चुनौती झंकार बन जाती है और सोए हुए प्राण जाग जाते हैं। लेकिन इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। और जो लोग इस तरह से व्यर्थ के सीखने में लगे रहते हैं उनके पास तो समय भी नहीं बचता, सुविधा भी नहीं बचती, मन में जगह भी नहीं बचती। सब भर जाता है, सीखने को जगह नहीं बचती।
अगर किसी दिन परमात्मा के सामने खड़े होंगे और उससे कहेंगे कि मैं आपको क्यों न सीख पाया, तो वह यह नहीं कहेगा कि आपने कुछ कम सीखा इसलिए नहीं सीख पाए। वह कहेगा कि तुमने इतना सीखा कि मुझे सीखने के लिए जगह कहां

बची! सीखा बहुत... । सीखते हम सब बहुत हैं, लेकिन सीखने योग्य ही छूट जाता है। चुनौती नहीं सीख पाते।
धर्म एक चुनौती है। और चुनौती सीख जायें तो कहीं से भी वह चुनौती मिल सकती है। उसके कोई बंधे-बंधाये रास्ते नहीं हैं। उसके कोई बंधे-बंधाये सूत्र नहीं हैं। जीवन कहीं से भी टूट पड़ सकता है। जीवन कहीं से भी आपको पकड़ ले सकता है। खुले रखें द्वार मन के। राह चलते, सोते, उठते, बैठते, सीखते रहें। लेते रहें चुनौती। किसी दिन चोट गहरी पड़ जाएगी और वीणा झंकृत हो जाएगी।
एक आखिरी सवाल और।

ओशो, आपने कहा है कि असभ्य आदमी चेहरे प्रयत्नपूर्वक बदल पाता है, लेकिन सभ्य, शिक्षित आदमी सहजता से चेहरे बदल पाता है। अर्थात चेहरे बदलने की सहजता सभ्यता का वरदान है। इस चेहरे की बदलाहट के संदर्भ में मैं पूछना चाहता हूं कि रिएक्शंस और रिस्पांस में आप क्या सूक्ष्म भेद करते हैं? रिएक्शंस से मुक्ति और रिस्पांस की उपलब्धि के क्या सूत्र होंगे, इसे संक्षेप में समझाएं।

साधारणतः हम रिएक्शंस ही करते हैं, प्रतिक्रियाएं ही करते हैं, प्रति-कर्म ही करते हैं। कोई गाली देता है तो हमारे भीतर गाली पैदा हो जाती है। यह गाली हम नहीं देते। कोई हमसे दिला लेता है। ऐसे हम गुलाम हो जाते हैं। अगर आपसे मुझे गाली दिलानी है तो मैं दिला लूंगा। एक गाली भर देने की जरूरत है। आपको गाली देनी पड़ेगी। अगर आपमें मुझे क्रोध पैदा करना है, एक जरा से धक्के की जरूरत है, आप क्रोधी हो जाएंगे।
तो मैं आप में क्रोध पैदा करा दूंगा तो आप गुलाम हो गये। जो चीज हममें दूसरे पैदा करवा लेते हैं वही हमारी गुलामियां हैं। रिएक्शन हमारी गुलामी है, और हममें सब तरह के रिएक्शन पैदा करवा लिये जाते हैं। कोई आदमी आता है और प्रशंसा करता है, हमारे प्राण पुलकित हो जाते हैं। कोई आदमी आता है, निंदा करता है, और हम एकदम उदास, गहन अंधेरी रात में खो जाते हैं। कोई आदमी आता है और कहता है, आप तो बहुत सुंदर हैं, और हम एकदम सुंदर हो जाते हैं। और कोई कह देता है, सुंदर जरा भी नहीं, तो हम एकदम कुरूप हो जाते हैं। हम कुछ भी नहीं हैं, पब्लिक ओपिनियन हैं। लोग क्या कहते हैं, वही हम हैं। इसलिए हम सब अखबार की कटिंग काट-काटकर अपने पास रखते हैं कि कौन हमारे बाबत क्या कह रहा है। उन सबको हम अपने कपड़ों पर नहीं लगाते हैं, यही बड़ी कृपा है। पूरे समय हम सिर्फ रिएक्ट कर रहे हैं। कौन क्या कहता है, कौन क्या करवाता है, हम वही कर लेते हैं। हम व्यक्ति नहीं हैं। व्यक्ति तो हम उसी दिन शुरू होते हैं जिस दिन रिस्पांस शुरू होता है।
रिस्पांस प्रतिसंवेदन है। प्रतिसंवेदन और प्रतिक्रिया में बड़ा फर्क है। समझें कि एक आदमी ने गाली दी आपको, तो प्रतिक्रिया में तो हमेशा गाली ही पैदा होगी आपसे। लेकिन प्रतिसंवेदन में दया भी आ सकती है। एक आदमी ने गाली दी आपको, यह भी दिखाई पड़ सकता हैः बेचारा, पता नहीं किस मुसीबत में गाली दे रहा है--तब प्रतिसंवेदन है, तब रिस्पांस है। तब आपने उसकी गाली के द्वारा व्यवहार नहीं किया। आप अपना व्यवहार जारी रख रहे हैं। आपके भीतर जो व्यवहार पैदा हो रहा है वह उसकी गाली का यांत्रिक परिणाम नहीं है, चेतनगत प्रत्युत्तर है। इन दोनों में बड़ा फर्क है।
एक बिजली का बटन हम दबाते हैं, पंखा चल पड़ता है। पंखा सोचता नहीं, चलूं, न चलूं। बटन दबायी तो चलता है, फिर बटन दबायी तो बंद हो जाता है। आपको गाली दी--बटन दबायी, आप क्रोधित हो गए। आपकी प्रशंसा की--बटन दबायी, क्रोध चला गया। तो आप व्यक्ति हैं या यंत्र हैं? आप जो व्यवहार कर रहे हैं वह यंत्र जैसा है। रिएक्शन यांत्रिकता है, प्रतिक्रिया यांत्रिकता है। प्रतिसंवेदन चैतन्य का प्रतीक है। प्रतिसंवेदन बड़ी और बात है।
जीसस को लोगों ने सूली दी और जब अंतिम क्षण में जीसस से कहा गया कि प्रार्थना करो परमात्मा से, तो उन्होंने प्रार्थना की कि इन सब लोगों को माफ कर देना क्योंकि इन्हें पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। यह प्रतिसंवेदन है। यह रिस्पांस है। यह एक चेतनगत उत्तर है। किसी को सूली दी

जा रही हो उससे यह प्रतिक्रिया नहीं हो सकती। उससे प्रतिक्रिया तो यह होती है कि वह गाली देता, कर्स करता, अभिशाप देता कि मिटा डालना इन सबको; हे परमात्मा, तेरे प्यारे बेटे को ये सब सूली पर लटका रहे हैं। आग लगा देना, नर्क में जला डालना इनको--यह प्रतिक्रिया होती, यह यांत्रिक होती। जीसस ने कहा, माफ कर देना इन सबको क्योंकि इनको पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं। यह प्रतिसंवेदन है, यह चेतनगत उत्तर है।
इसलिए जिस व्यक्ति को साधना की दुनिया में प्रवेश करना है, जिसे संन्यास की यात्रा करनी है, उसे प्रतिपल ध्यान रखना चाहिए कि वह जो कर रहा है वह प्रतिक्रिया है या प्रतिसंवेदन है। वह रिएक्शन है या रिस्पांस है। रास्ते पर एक आदमी का धक्का लग गया है तब एक क्षण रुक जाइये। जल्दी भी क्या है उत्तर देने की। एक क्षण रुक जाइये और देख लीजिये कि जो आप उत्तर दे रहे हैं वह यांत्रिक है या सचेतन है। और आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। आप यांत्रिक उत्तर फिर नहीं दे पायेंगे। हो सकता है हंसकर अपने रास्ते पर चले जायें, उत्तर दें ही नहीं। यह भी उत्तर होगा। लेकिन हम इतना भी मौका नहीं देते। इधर बटन दबी, उधर काम हुआ। इधर धक्का लगा, उधर क्रोध निकला। उधर किसी ने प्रशंसा की, इधर हम गुब्बारे की तरह फूले।
बर्ट्रेंड रसल के संबंध में एक मजाक चल गया है। मजाक ही कहना चाहिए, क्योंकि पता नहीं उसने ऐसा किया कि नहीं किया। सुना है मैंने कि मरते वक्त उसके मुंह से निकला, "हे परमात्मा!" पास में एक पादरी खड़ा हुआ था। वह तो बहुत चकित हुआ। वह बहुत डरते-डरते तो आया था। क्योंकि बर्टें्रड रसल तो परमात्मा को मानता नहीं, इसलिए उससे रिपेंटेंस के लिए, आखिरी प्रायश्चित के लिए कैसे कहे। वह डरा हुआ खड़ा है। और जब आखिरी क्षण में रसल के मुंह से निकला, हे परमात्मा, तो उसकी हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि क्या तुम परमात्मा को मानते हो? तो बर्ट्रेंड रसल ने आंख खोली और कहा कि तुम कौन हो! उसने कहा कि मैं पादरी हूं। डरा हुआ खड़ा हूं। मैं आया था कि प्रायश्चित करवा दूं, लेकिन सोचा कि तुम तो परमात्मा को मानते ही नहीं। अच्छा है तुम मानते हो, तो प्रायश्चित कर लो। तो रसल ने कहा, घर आए मेहमान को वापस लौटाना ठीक नहीं, इसलिए मैं प्रायश्चित करता हूं। और बर्टें्रड रसल ने कहा कि "हे परमात्मा, यदि कोई परमात्मा हो, तो मेरी आत्मा को क्षमा कर देना, यदि मेरी कोई आत्मा हो!" उस पादरी ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? तो रसल ने कहा कि बिना सोचे मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। मुझे पता नहीं परमात्मा है या नहीं, मुझे पता नहीं कि आत्मा है या नहीं। तो ज्यादा से ज्यादा मैं "यदि" की भाषा में बोल सकता हूं। "यदि परमात्मा हो तो क्षमा कर दे इस बर्टें्रड रसल को, यदि बर्टें्रड रसल हो।"
यह आदमी मृत्यु के प्रति भी रिएक्शन नहीं कर रहा है। यह आदमी मृत्यु
के प्रति भी रिस्पांस कर रहा है। यह आदमी मृत्यु के क्षण में भी घबरा नहीं गया है।
एक मित्र हैं, बड़े पुराने विचारक हैं, बड़े पंडित हैं, कृष्णमूर्ति को निरंतर सुनते हैं। तो मुझसे एक दफा उन्होंने कहा कि अब तो मेरे मन से सब हट गया--राम, ओम्, मंत्र, सब हट गए। मैंने पूछा, पक्के हट गए हैं? उन्होंने कहा, बिल्कुल हट गए हैं। अब तो मेरे मन में कोई जगह नहीं रही। न मैं भजन करता हूं, न मैं भगवान का नाम लेता हूं, क्योंकि उसका कोई नाम नहीं है। उसका कोई भजन नहीं है। मैं कृष्णमूर्ति को सुनता हूं। मुझे बात बिल्कुल समझ में आ गई। मैंने कहा, आ गयी तो बड़ा अच्छा है। लेकिन आप इतने जोर से कह रहे हैं कि बिल्कुल समझ में आ गई, तो भीतर कहीं न कहीं संदेह होना चाहिए। फिर भी मैंने कहा, अच्छा है कि आ गई।
दो-एक महीने बाद उनको हृदय का दौरा हुआ। उनके लड़के ने मुझे खबर भेजी
कि वे बहुत घबरा रहे हैं, आप आइए। मैं गया। वे आंख बंद किये हुए हैं और राम-राम, राम-राम कहे चले जा रहे हैं।
मैंने उन्हें हिलाया, और कहा कि क्या कर रहे हो? उन्होंने आंख खोली और कहा, पता नहीं, मैं भी थोड़ा सोचा, लेकिन जैसे लगा कि मौत करीब है, मैंने कहा, जाने दो कृष्णमूर्ति को, मौत करीब है और फिर तो मेरे बस में न रहा। फिर तो मेरे मुंह से निकलने ही लगा। अब यह मैं कह नहीं रहा हूं, यह हो रहा है। यह सिर्फ हो रहा है। घबराहट में राम-राम निकल रहा है।

अब यह रिएक्शन है। अब यह आदमी भगवान को माननेवाला है, लेकिन रिएक्शन
कर रहा है। और बर्ट्रेंड रसल भगवान को माननेवाला नहीं है, लेकिन रिस्पांस कर रहा है। और मैं मानता हूं, बर्टें्रड रसल किसी दिन भगवान को पा सकता है। लेकिन यह आदमी भगवान को किसी दिन नहीं पा सकता है। क्योंकि जो व्यक्ति सचेतन व्यवहार कर रहा है जीवन के प्रति वह आदमी आत्मवान होने का सबूत दे रहा है।
बर्टें्रड रसल का यह वक्तव्य कि यदि कोई आत्मा हो, और हे परमात्मा, यदि कोई परमात्मा हो, तो माफ कर देना, बड़ा सचेतन वक्तव्य है। बड़ा आत्मवान वक्तव्य है। आत्मा के संबंध में भी "यदि" लगाने वाला व्यक्ति, मरते क्षण में परमात्मा के संबंध में भी "यदि" लगानेवाला व्यक्ति, अपने आत्मवान होने की पूरी सूचना दे रहा है। भयभीत नहीं है। मृत्यु से घबरा नहीं गया है। जो उसकी चेतना कह रही है वह उसके साथ पूरा-पूरा खड़ा है। यह प्रतिसंवेदन है। यह प्रत्युत्तर है, लेकिन यह सचेतन है। यांत्रिक प्रत्युत्तर सचेतन नहीं है, जड़ है।
इतना फर्क अगर स्मरण रहे तो रिएक्शंस से बचना, रिस्पांस की ओर बढ़ना है; प्रतिक्रिया से बचना, प्रत्युत्तर की तरफ बढ़ना है। और जिस दिन जीवन सचेतन प्रत्युत्तर बन जाता है, उसी दिन जीवन में आत्मवानता पैदा होती है। और ऐसा आत्मवान व्यक्ति ही परमात्मा को पाने में किसी दिन समर्थ हो पाता है।
शेष कल!
क्रास मैदान, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया
ग्यारहवां प्रवचन

अकाम (प्रश्नोत्तर)

ओशो, मन की किन-किन स्थितियों के कारण यौन-ऊर्जा, सेक्स एनर्जी अधोगमित होती है, और मन की किन-किन स्थितियों के कारण यौन-ऊर्जा ऊर्ध्वगमित होती है? कृपया इस पर कुछ प्रकाश डालें।

जीवन को उसके सभी स्तरों पर दो भांति देखा जा सकता है। दो पहलू हैं जीवन के। एक उसका पौदगलिक, मैटीरियल, पदार्थगत पहलू है, दूसरा उसका आत्मगत, स्प्रिचुअल पहलू है। यौन को भी दो दिशाओं से देखना आवश्यक है। एक तो यौन का जैविक, बायोलाजिकल पहलू है, पौदगलिक, पदार्थगत, शरीर से जुड़ा हुआ, शरीर के अणुओं से जुड़ा हुआ। दूसरा यौन का शक्तिगत, आत्मिक पहलू है, मन से, चेतना से जुड़ा हुआ।
इसलिए दो शब्दों को पहले समझ लें। एक तो जैविक ऊर्जा, जो मनुष्य के जीवकोष्ठों से संबंधित है, जिनके द्वारा व्यक्ति को शरीर उपलब्ध होता है। ये जो जीव कोष्ठ हैं, ये जो सेल्स हैं, ये शरीर के ही हिस्से हैं। जैविक, बायोलाजिकल हिस्सा हम सब की आंखों में प्रत्यक्ष है--जिसे हम वीर्य कहें, यौन-ऊर्जा कहें या कोई और नाम दें। लेकिन एक और पहलू भी उसके पीछे जुड़ा है जो आत्मगत है, शक्तिगत है। उसे मैं काम-ऊर्जा या आत्म- ऊर्जा या जो भी हम नाम देना चाहें, दे सकते हैं।
जैसे कि एक लोहे का चुंबक होता है। एक तो लोहे का टुकड़ा होता है जो साफ दिखायी पड़ता है और एक मैगनेटिक फील्ड होता है उसके चारों तरफ, जो दिखायी नहीं पड़ता है। लेकिन अगर हम आस-पास लोहे के टुकड़े रखें तो वह जो मैगनेटिक शक्ति है चुंबक की, उसे खींच लेती है। एक क्षेत्र है जिसके भीतर वह शक्ति काम करती है। यह लोहे का टुकड़ा कल हो सकता है अपनी चुंबकीय शक्ति खो दे, तो भी लोहे का टुकड़ा रहेगा। उस लोहे के टुकड़े के वजन में अंतर नहीं पड़ेगा, उस लोहे के टुकड़े के कांस्टीट्यूशन में भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा, उसकी रचना और बनावट में भी कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन एक मौलिक अंतर हो जाएगा, मैगनेटिक उसमें से मर गया है, उसमें से चुंबक जा चुका है। यह उदाहरण के लिए मैंने कहा।
आत्मा एक फील्ड है, एक चुंबकीय क्षेत्र है। शरीर दिखायी पड़ता है, आत्मा के केवल प्रभाव दिखायी पड़ते हैं, जैसे चुंबक के प्रभाव दिखायी पड़ते हैं। यह जमीन है, यह दिखाई पड़ रही है, लेकिन जमीन पूरे वक्त हमें खींचे हुए है, वह दिखायी नहीं पड़ रहा है। यह जमीन हमें छोड़ दे तो हम एक क्षण भी इस जमीन पर नहीं रह सकेंगे।
अंतरिक्ष में जो यात्री यात्रा कर रहे हैं, उनके लिए अंतरिक्ष की यात्रा में जो सबसे ज्यादा कठिन बात है, वह यही है कि जैसे ही दो सौ मील जमीन के मैगनेटिक फील्ड को छोड़कर उनका यान ऊपर जाता है, वैसे ही जमीन की चुंबकीय शक्ति विदा हो जाती है। तब फिर वे हवा के गुब्बारों की तरह अपने यान में भटक सकते हैं। अगर उनकी पट्टियां छोड़ दी जायें उनकी कुर्सी से, तो जैसे गैस भरा हुआ गुब्बारा मकान की छत को छूने लगे, ऐसे ही वे भी यान की छत को छूने लगेंगे।
यह जमीन हमें खींचे हुए है, लेकिन उसका हमें पता नहीं चलता है। क्योंकि वह दिखायी पड़नेवाली बात नहीं है। जो दिखायी पड़ती है वह जमीन है, जो नहीं दिखायी पड़ता है वह उसका ग्रेवीटेशन है। जो दिखायी पड़ता है वह शरीर है, वह जो नहीं दिखायी पड़ता है वह मनस और आत्मा है। ठीक ऐसे ही काम के साथ, यौन के साथ दो पहलुओं को समझ लेना जरूरी है। जो दिखायी पड़ती हैं वे जैविक कोष्ठ हैं, जो नहीं दिखायी पड़ता है वह काम-ऊर्जा है। इस सत्य को ठीक से न समझने से आगे बातें फैलाकर देखनी कठिन हो जाती हैं।
इस देश में काम-ऊर्जा पर बड़े प्रयोग हुए हैं। इस देश में पांच हजार वर्ष का लंबा इतिहास है। शायद उससे भी ज्यादा पुराना है, क्योंकि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भी ऐसी मूर्तियां मिली हैं जो इस बात की खबर देती हैं कि

योग की धारणा तब तक विकसित हो चुकी होगी। हड़प्पा की मूर्तियां कोई सात हजार साल पुरानी हैं। सात हजार साल के लंबे इतिहास में इस मुल्क ने काम-ऊर्जा पर, सेक्स एनर्जी पर, बहुत अनूठे प्रयोग किए हैं। लेकिन उनको समझने में भूल हो जाती है। क्योंकि काम-ऊर्जा से हम जीव-ऊर्जा, बायोलाजिकल अर्थ लेकर कठिनाई में पड़ जाते हैं।
इस देश के योगियों ने कहा है कि काम-ऊर्जा, सेक्स एनर्जी, नीचे से ऊपर
की तरफ ऊर्ध्वगमन कर सकती है। वैज्ञानिक कहता है, हम शरीर में काटकर भी देख लेते हैं योगी के, लेकिन उसके वीर्य-कण तो वहीं पड़े रहते हैं। उसी जगह, जहां साधारण आदमी के शरीर में पड़े होते हैं। वीर्य ऊपर चढ़ता हुआ दिखायी नहीं पड़ता है।
वीर्य ऊपर चढ़ता भी नहीं है, चढ़ भी नहीं सकता। लेकिन जिस काम-ऊर्जा के चढ़ने की बात की है उसे हम समझ नहीं पाए। वीर्य-कणों की वह बात नहीं है, वीर्य-कणों के साथ एक और ऊर्जा जुड़ी हुई है, जो दिखायी नहीं पड़ती है, वह ऊर्जा ऊपर ऊर्ध्वगमन कर सकती है। और जब कोई व्यक्ति यौन-संबंध से गुजरता है तो उसके जैविक परमाणु तो उसके शरीर को छोड़ते ही हैं, साथ ही उसकी काम-ऊर्जा, उसकी सेक्स एनर्जी भी उसके शरीर से बाहर जाती है। वह सेक्स एनर्जी आकाश में खो जाती है। और यौनकण नए व्यक्ति को जन्म देने की यात्रा पर निकल जाते हैं।
संभोग के क्षण में दो घटनाएं घटती हैं--एक जैविक और एक साइकिक। एक तो जीव शास्त्रीय दृष्टि से घटना घटती है, जैसा कि बायोलाजिस्ट अध्ययन कर रहा है, वह वीर्य- कण का स्खलन है। वह वीर्य-कण का यात्रा पर निकलना है अपने विरोधी कणों की खोज में, जिससे कि नए जीवन को वह जन्म दे पाये। और एक दूसरी घटना है। जिसकी योग खोज करता है, वह दूसरी घटना है। इस कृत्य के साथ ही मनस की शक्ति भी स्खलित होती है। वह तो सिर्फ शून्य में खो जाती है।
इस मनस-शक्ति को ऊपर ले जाने के उपाय हैं। और जब वीर्य के ऊर्ध्वगमन
की बात कही जाती है तो कोई शरीर-शास्त्री, कोई डाक्टर भूल कर यह न समझे कि वह वीर्य की, या वीर्य-कणों के ऊपर ले जाने की बात है। वीर्य-कण ऊपर नहीं जा सकते। उनके लिए कोई मार्ग नहीं है शरीर में ऊपर। सहस्रार तक तथा मस्तिष्क तक पहुंचने के लिए कोई उपाय नहीं है उनके पास। जो चीज जाती है वह ऊर्जा है। वह मैगनेटिक फोर्स है जो ऊपर की तरफ जाती है। यह जो मैगनेटिक फोर्स है, इसके ही नीचे जाने पर वीर्य-कण भी सक्रिय होते हैं।
बच्चा जब पैदा होता है, लड़की जब पैदा होती है, तब वे अपने यौन संस्थान
को पूरा का पूरा लेकर पैदा होते हैं। स्त्री तो अपने जीवन में जितने रजकणों का उपयोग करेगी उन सबको लेकर ही पैदा होती है। फिर कोई नया रजकण पैदा नहीं होता। कोई तीन लाख छोटे अंडों को लेकर स्त्री पैदा ही होती है। बच्ची पैदा ही होती है। एक दिन की बच्ची के पास भी तीन लाख अंडों की सामग्री मौजूद होती है। इसमें से ज्यादा से ज्यादा दो सौ अंडे जीवन लेने के लिए तैयार होकर उसके गर्भाधान तक पहुंचते हैं। उनमें से भी दस-बारह, ज्यादा से ज्यादा बीस, सक्रिय और जीवन में सफल उतर पाते हैं।
लेकिन तेरह या चौदह साल तक लड़की को भी इस सारी की सारी व्यवस्था का कोई पता नहीं चलेगा। उसका शरीर पूरा तैयार है, लेकिन अभी उसकी काम-ऊर्जा उसके अंडों तक नहीं पहुंचती है। तेरह और चौदह साल में जब उसका मस्तिष्क पूरा विकसित होगा तब मस्तिष्क काम-ऊर्जा को नीचे की तरफ भेजेगा। और मस्तिष्क की सूचना मिलते ही उसका सेक्स-यंत्र सक्रिय होगा। और इससे उलटी घटना भी घटती है। पैंतालीस या पचास साल की उम्र में स्त्री के सारे के सारे अंडे, जो उसके पास सामग्री थी, वह सब समाप्त हो जाएगी। उसके बायोलाजिकल सेक्स का अंत हो जाएगा। लेकिन उसके मन की ऊर्जा अभी भी नीचे उतरती रहेगी।
इसलिए सत्तर साल की ब.ूढी स्त्री भी कामातुर हो सकती है, यद्यपि उसके शरीर में अब काम का कोई उपाय नहीं रह गया। अब काम का कोई जैविक अर्थ नहीं रह गया। अब उसकी बायोलाजिकल बात समाप्त हो गई है। पुरुष भी नब्बे साल का बूढ़ा हो जाए तब भी, उसकी काम-ऊर्जा उसके चित्त से उसके शरीर के नीचे हिस्से तक उतरती रहती है। वही काम-ऊर्जा उसे पीड़ित करती रहती है। यद्यपि शरीर अब सार्थक नहीं रह गया, लेकिन मन अभी भी कामना किए चला जाता है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि हम समझ सकें कि चौदह या तेरह साल तक, जब
तक मस्तिष्क से सूचना नहीं मिलती... और अब तो बायोलाजिस्ट भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि जब तक मस्तिष्क से आर्डर नहीं मिलता है शरीर को, तब तक सेक्स-यंत्र सक्रिय नहीं होता है।
इसलिए अगर हम मस्तिष्क के कुछ हिस्से को काट दें, तो व्यक्ति का सेक्स जीवन भर के लिए समाप्त हो जाएगा। या मस्तिष्क के कुछ हिस्से को हारमोन के इंजेक्शन देकर जल्दी आर्डर देने के लिए तैयार कर लें, तो सात साल का लड़का या पांच साल की लड़की, उसका भी सेक्स-यंत्र सक्रिय हो जाएगा। अगर हम बूढ़े आदमी को वीर्य-कणों का इंजेक्शन दे सकें तो वह अस्सी साल में भी गर्भाधान करा सकेगा। अगर हम स्त्री के ओवरी में अंडा रख सकें, नब्बे साल की स्त्री के, तो भी गर्भाधान हो जायेगा। क्योंकि काम-ऊर्जा तो प्रवाहित हो ही रही है, सिर्फ उसका बाडिली पार्ट, उसका शारीरिक हिस्सा समाप्त हो गया है।
यह जो काम-ऊर्जा है, यह अनंत है। महावीर ने उसे अनंत वीर्य कहा है। असल में महावीर को नाम ही महावीर इसीलिए मिला क्योंकि उन्होंने कहा कि यह अनंत वीर्य... अनंत वीर्य से अर्थ, जैविक वीर्य से नहीं, सीमेन से नहीं है। अनंत वीर्य से अर्थ उस काम-ऊर्जा का है जो निरंतर मन से शरीर तक उतरती है। और जो मन से शरीर तक उतरती है, वह मन से नहीं आती है। वह आती है आत्मा से मन तक और मन से शरीर तक। यह आत्मा से मन तक उतरेगी और मन से शरीर तक उतरेगी। यह उसकी सीढ़ियां हैं। इसके बिना वह उतर नहीं सकती। अगर बीच में से मन टूट जाये, तो आत्मा और शरीर के बीच सारे संबंध टूट जाएंगे।
जिस शक्ति को मैं काम-ऊर्जा कह रहा हूं, जिस शक्ति को योग ने और तंत्र
ने काम-ऊर्जा कहा है, वह जीव शास्त्रीय काम-ऊर्जा नहीं है। यह काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ पुनः गति कर सकती है। और अगर किसी वृद्ध में भी यह काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ गति कर जाये तो उसकी जिंदगी उतनी ही सरल और इनोसेंट और निर्दोष हो जाएगी जितनी छोटे बच्चे की थी। उसकी आंखों में फिर वही सरलता झलकने लगेगी। उसके व्यक्तित्व में फिर वही भोलापन लौट आएगा जो छोटे बच्चे का था। बल्कि उससे भी ज्यादा। क्योंकि छोटे बच्चे का भोलापन खतरे से भरा हुआ है, अब यह भोलापन उसका नष्ट होगा। अभी उसके भोलेपन के नीचे ज्वालामुखी धधक रहे हैं, तैयार हो रहे हैं। वह अभी फूटेंगे। अगर ब.ूढे आदमी की काम-ऊर्जा वापस लौट जाए तो बच्चे से भी ज्यादा सरल, निर्दोष, इनोसेंट उसकी जिंदगी में उतर आता है। साधुता इसी निर्दोषता का नाम है। काम-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन साधु की यात्रा है।
यह काम-ऊर्जा मन से ही संचालित होती है। यह काम-ऊर्जा मन का ही संकल्प है। मन की आज्ञा के बिना यह काम-ऊर्जा नीचे की ओर प्रवाहित नहीं होती है। इसलिए यदि मन को ऐसी व्यवस्था दी जा सके कि वह इस काम-ऊर्जा को कम प्रवाहित करे तो व्यक्ति के जीवन में काम कम हो जाएगा। ज्यादा प्रवाहित करे तो ज्यादा हो जाएगा। बहुत ज्यादा मन को आतुर किया जाए तो बहुत ज्यादा हो जाएगा।
अमरीका में विगत बीस वर्षों में लड़के और लड़कियों की प्रौढ़ता की उम्र
दो साल नीचे गिर गई है। जहां तेरह साल में लड़कियां प्रौढ़ होती थीं, सेक्सुअली मैच्योर होती थीं, वहां ग्यारह साल में होनी शुरू हो गई हैं। अमरीका के चित्त पर इतने जोर से काम-ऊर्जा को आज्ञा देने के सब तरह के दबाव हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि यह उम्र और नीचे गिरेगी। यह ग्यारह से नौ साल भी पहुंच सकती है, यह सात साल भी पहुंच सकती है, यह पांच साल भी पहुंच सकती है।
अगर हम चारों तरफ पूरी हवाओं को कामुक वातावरण से भर दें, और अगर चारों तरफ सिवाय काम को आकर्षित करने के कुछ भी न हो, अगर हर चीज कामुक सिम्बल बन जाए, अगर कार भी बेचनी हो तो अर्धनग्न स्त्री को खड़ा करना पड़े कार के पास, अगर सिगरेट भी बेचनी हो तो स्त्री को लाना पड़े, अगर कुछ भी करना हो तो सेक्स सिम्बल को एक्सप्लाएट करना पड़े, तो चित्त पर स्वाभाविक भयंकर परिणाम होंगे। और चित्त जो आज्ञा दो साल बाद देता, वह दो साल पहले आज्ञा दे देगा। यह प्रिमैच्योर आज्ञा है और इसके खतरनाक परिणाम होने वाले हैं। इससे उलटा भी हुआ है। इस देश में हमने पच्चीस वर्ष तक युवक और युवतियों को यौन के जगत से बिल्कुल ही अछूता रखने में सफलता पायी थी।

लेकिन उलटा ही सब किया था, सारी व्यवस्था बदली थी। चित्त आज्ञा न दे इसके सारे उपाय किए थे। चित्त आज्ञा न दे, इसकी सारी व्यवस्था की थी। उस तरह के व्यायाम का उपयोग किया था, उस तरह के आसन का उपयोग किया था, उस तरह के ध्यान का उपयोग किया था, उस तरह के मनन और चिंतन का उपयोग किया था, उस तरह के संकल्प और विल-पावर का उपयोग किया था, जो मन को आज्ञा देने से रोकेगा।
और अगर पच्चीस वर्ष तक किसी व्यक्ति के मन को काम-ऊर्जा में नीचे उतरने से रोका जा सके तो वह इतने आनंद का अनुभव कर लेता है कि कल अगर वह काम-ऊर्जा के जगत में गया भी, अगर वह यौन के जगत में गया भी तो उसके सामने एक कम्पेरीजन होता है। उसे पता होता है कि जब वह नहीं गया था तब का आनंद, और जब गया तब के आनंद में बुनियादी फर्क है। और इसलिए उसका चित्त निरंतर कहता है कि कब मैं वापस लौट जाऊं। इसलिए पच्चीस साल तक जो ब्रह्मचर्य के जीवन में रहा है, वह पचास साल के बाद पुनः संन्यासी की दुनिया की तरफ उन्मुख होना शुरू हो जाएगा। क्योंकि उसके पास तुलना का उपाय है।
आज जब हम किसी व्यक्ति को ब्रह्मचर्य के आनंद की बात कहते हैं तो बात
का कोई अर्थ ही नहीं होता। क्योंकि उसे ब्रह्मचर्य के आनंद का कुछ भी पता नहीं है। वह एक ही सुख को जानता है, जो कि उसे यौन से मिलता है। इसलिए ब्रह्मचर्य की बात बिल्कुल ही व्यर्थ मालूम पड़ती है। अकाम की बात उसके लिए सार्थक नहीं मालूम पड़ती। वह उसके अनुभव का हिस्सा नहीं है।
और मजे की बात यह है कि एक बार ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होना शुरू
हो जाये, फिर उसे ऊपर की तरफ प्रवाहित करना कठिन हो जाता है। मार्ग बन जाते हैं। अगर आप घर में एक ग्लास पानी लुढ़का दें तो पानी एक मार्ग बनाकर बह जाएगा। फिर धूप पड़ेगी, पानी उड़ जाएगा। कुछ भी नहीं बचेगा उस जमीन पर। लेकिन पानी के बहने की एक सूखी रेखा बच जाएगी। अगर आप दूसरी दफा भी पानी उस कमरे में डालें तो सौ में निन्यान्बे मौके यह हैं कि उसी सूखी रेखा को पकड़ कर वह पानी फिर बहेगा। लीस्ट रेसिस्टेंस को पकड़ना स्वभाव है। जहां कम से कम तकलीफ होती है, वहीं बह जाने की इच्छा होती है।
एक बार अपरिपक्व मन जब काम की दुनिया में उतर जाता है, यौन की दुनिया में उतर जाता है, तो जीवन भर जब भी शक्ति इकट्ठी होती है, लीस्ट रेसिस्टेंस का नियम मानकर वह उसी मार्ग से बह जाने की तत्परता दिखलाती है। और जब तक नहीं बह जाती तब तक भीतर पीड़ा, परेशानी अनुभव होती है। और जब बह जाती है तो रिलीफ मालूम होता है। जैसे हल्का हो गया मन, भार से हम मुक्त हो गए। लेकिन एक बार अगर ऊपर की तरफ जानेवाला मार्ग खुल जाये तो फिर निरंतर उसका स्मरण आता रहता है। किस विधि से मन यौन-ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बना सकता है, तीन बातें इस संबंध में समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि जो भी चीज नीचे जा सकती है वह चीज ऊपर भी जा सकती है। इसे वैज्ञानिक सूत्र समझा जा सकता है। असल में जिस चीज का भी नीचे जाने का उपाय है, उसके ऊपर जाने का भी उपाय होगा ही, चाहे हमें पता हो चाहे हमें पता न हो। जिस रास्ते से हम नीचे जा सकते हैं, उसी रास्ते से ऊपर भी जा सकते हैं। रास्ता वही होता है, सिर्फ रुख बदलना होता है।
आप यहां तक आये हैं जिस रास्ते से अपने घर से, उसी रास्ते से आप घर वापस लौटेंगे। तब सिर्फ आपकी पीठ घर की तरफ थी, अब मुंह घर की तरफ होगा। कोई दरवाजा ऐसा नहीं है जो बाहर लाये और भीतर न ले जा सके। जिंदगी दोहरे आयाम में फैलती है। अगर ऊर्जा नीचे उतर सकती है तो ऊर्जा ऊपर जा सकती है। इस पहले नियम को मन को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जो हो सकता है मन केवल उसी को करने को राजी होता है कि यह हो सकता है। मन असंभव की तलाश छोड़ देता है। उसे साफ ख्याल में आना चाहिए कि यह हो सकता है।
अगर पहाड़ से पानी नीचे की तरफ गिरता है तो साधारणतः पानी पहाड़ से नीचे
की तरफ ही गिरता है, ऊपर की तरफ नहीं जाता। हजारों साल तक ऊपर तक ले जाने का हमें कुछ भी पता नहीं था। लेकिन जो चीज नीचे आ सकती है तो ऊपर भी जा सकती है। लेकिन अब हम पहाड़ों की ऊंचाई पर पानी को पहुंचा भी सकते हैं। क्योंकि जिस नियम से पानी नीचे आता है उस नियम के विपरीत प्रयोग करने से पानी ऊपर चढ़ जाता है।
यौन-ऊर्जा नीचे की तरफ सहज आती है। प्रकृति की तरफ से आती है। अगर किसी मनुष्य को उस ऊर्जा को ऊपर ले जाना है तो यह सहज नहीं होगा। प्रकृति

की तरफ से नहीं होगा। यह संकल्प से होगा। यह मनुष्य के प्रयास, मनुष्य की आकांक्षा और अभीप्सा और श्रम से होगा। मनुष्य को इस दिशा में श्रम करना पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति से उलटी दिशा में बहना पड़ेगा। नदी में अगर नीचे की तरफ बहना हो, सागर की तरफ, तब तैरने की कोई भी जरूरत नहीं है। तब हम हाथ-पैर छोड़कर सागर की तरफ बह जा सकते हैं। नदी ही सागर की तरफ ले जाएगी, हमें कुछ भी करना नहीं। लेकिन अगर नदी के मूल स्रोत की तरफ, उदगम की तरफ जाना हो तो फिर तैरना पड़ेगा, श्रम उठाना पड़ेगा। फिर एक संघर्ष होगा। नदी की धारा से संघर्ष होगा।
तो जो लोग भी ऊपर की तरफ जाना चाहते हैं, उन्हें दूसरी बात समझ लेनी चाहिए कि संकल्प और संघर्ष मार्ग होगा। ऊपर जाया जा सकता है, और ऊपर जाने के अपूर्व आनंद हैं। क्योंकि नीचे जाकर जब सुख मिलता है--क्षणिक सही, पर मिलता है--तो ऊपर जाकर क्या मिल सकता है, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यौन-ऊर्जा नीचे बहकर जो लाती है वह सुख है, और यौन-ऊर्जा ऊपर उठकर जो लाती है वह आनंद है। यौन-ऊर्जा नीचे जाकर जिसे लाती है वह क्षणिक है, क्योंकि वह घटना ही क्षणिक है। खोने की घटना क्षणिक ही होगी, संग्रहीत करने की घटना शाश्वत हो सकती है। नीचे जाकर आप खोते हैं, खोने की घटना क्षणिक है। एक क्षण को खोने का क्षण ही सब कुछ है। लेकिन ऊपर आप संग्रहीत करते हैं। ऊपर रिजर्वायर बनाते हैं। यह रिजर्वायर अनंत हो सकता है। वह रोज बढ़ता जाता है।
सुख मिलते ही घटना शुरू हो जाता है। आनंद मिलते ही बढ़ना शुरू हो जाता है। और सुख जब घटता है तो दुख बढ़ता है। इसलिए हर सुख के पीछे दुख की काली छाया खड़ी होती है, और हर आनंद के पीछे आनंद की और बढ़ती हुई प्रकाशित दुनिया होती है। आनंद के पीछे दुख की कोई छाया नहीं होती। आनंद और गहरा होता चला जाता है, क्योंकि संग्रह रोज बढ़ता जाता है और अनंत संग्रह की संभावना है। दूसरी बात, संकल्प और संघर्ष। संकल्प को थोड़ा समझना उपयोगी है कि संकल्प से क्या अर्थ है, और कैसे यह ऊर्जा संकल्प से ऊपर जा सकती है। दो- चार उदाहरण दूं, उनसे ख्याल में आ सकेगा।
कल ही एक मित्र मुझसे पूछ रहे थे कि मुसलमान रोजा रखते हैं, जैन, हिंदू उपवास करते हैं, क्रिश्चियन उपवास करते हैं, इसका क्या संबंध है? भूखे रहने से क्या होगा?
भूखे रहने से कभी कुछ भी नहीं होता। भूखे रहने से कभी कुछ भी नहीं हो सकता है। लेकिन ये सारे लोग पागल नहीं हैं। उन्हें नहीं कह रहा हूं जो कर रहे हैं, क्योंकि उनमें से अधिक लोग पागल ही होंगे। क्योंकि उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। लेकिन जिन लोगों से इन सूत्रों की यात्रा शुरू हुई, वे लोग पागल नहीं हैं।
आदमी की जिंदगी में भोजन की आकांक्षा सबसे गहरी है। क्योंकि सर्वाइवल
के लिए, बचने के लिए, सबसे जरूरी चीज है। आदमी प्रेम छोड़ सकता है भोजन के लिए। मां बच्चे को काट सकती है भोजन के लिए। बंगाल के अकाल में माताओं ने अपने बच्चे बेच दिए। पति पत्नी को काट सकता है, बेच सकता है, पत्नी पति को फेंक सकती है। मरने के क्षण में जहां अंतिम स्थिति बचाने की हो जाये वहां चित्त पूरे जोर से कहेगा कि अपने को बचाओ। क्योंकि शेष सब फिर से हो सकता है। लेकिन बचना फिर दुबारा नहीं हो सकता है। पति फिर मिल सकता है, बेटा फिर पैदा हो सकता है लेकिन स्वयं के पाने का दुबारा क्या उपाय है? इसलिए भोजन सर्वाइवल की गहरी से गहरी आकांक्षा है।
अब एक आदमी को महीने भर के लिए भूखा रख दिया गया है। जब वह भूखा है तब चौबीस घंटे उसे याद आती हैः भोजन करूं, भोजन करूं, भोजन करूं। चौबीस घंटे उसके शरीर का रोआं-रोआं कहेगा कि भोजन करो। जागते में, सपने में, शरीर कहेगाः भोजन करो। एक जगह खाली हो गई है। एक बायोलाजिकल गैप भीतर पैदा हो गया है। शरीर कहेगा भोजन करो और वह इसी वक्त परमात्मा की प्रार्थना में लगता है। शरीर चिल्ला रहा है भोजन की प्यास, और वह चिल्ला रहा है परमात्मा की प्यास। थोड़े ही समय में, दिन दो-दिन, चार-दिन बीतेंगे और शरीर की जो भोजन की प्यास है, कनवर्ट हो जाएगी और परमात्मा की प्यास बन जाएगी। वह जो शरीर की भोजन की मांग है, अगर वह नहीं झुका और संकल्प किए ही चला गया कि नहीं, भोजन नहीं, परमात्मा ही; नहीं, भोजन नहीं परमात्मा। अगर शरीर के सामने

नहीं झुका और कहता चला गयाः भोजन नहीं, परमात्मा! तो चार-छह दिन के भीतर शरीर भोजन की जगह परमात्मा को पुकारने लगेगा।
यह रूपांतरण हुआ। यह ट्रांसफार्मेशन हुआ। एनर्जी, जो भोजन को मांगती थी, वह परमात्मा को मांगने लगी। इस तरह भोजन की तरफ जाते हुए संकल्प को परमात्मा की तरफ मोड़ दिया गया है। यह बड़ा रूपांतरण है।
संकल्प शक्तियों के रूपांतरण का नाम है। जब चित्त मांगता है यौन, जब चित्त मांगता है दूसरे को, अपोजिट को, स्त्री पुरुष को, पुरुष स्त्री को, जब चित्त मांगता है कि दूसरे की तरफ बहो, तब बहाव का रूपांतरण करना पड़ेगा। जब चित्त जिस ढंग से दूसरे को, मांगता है उससे उलटी प्रक्रिया करनी पड़ेगी ताकि चित्त की यह मांग परमात्मा की, मोक्ष की, निर्वाण की मांग बन जाये। अब इसके लिए दो-तीन बातें ख्याल में लेनी जरूरी हैं।
जैसे ही चित्त यौन की मांग करता है, सेक्स की मांग करता है, शरीर सेक्स
की तैयारी करने लगता है। यौन-केंद्र मूलाधार से दूसरे की मांग की स्फुरणा शुरू हो जाती है। यौन-केंद्र बहिर्गामी हो जाता है। इस क्षण में तंत्र कहता है कि अगर यौन-केंद्र को अंतर्गामी किया जा सके, भीतर की तरफ खींचा जा सके--जिसे यौन-मुद्रा का नाम दिया है--अगर यौन-केंद्र मूलाधार को भीतर की तरफ खींचा जा सके, तो तत्काल आप दो क्षण में पायेंगे कि शरीर ने यौन की मांग बंद कर दी। मांग लेकिन पैदा हो गई थी। शक्ति जग गई थी, और अब मांग बंद हो गई। इस शक्ति को ऊपर ले जाया जा सकता है।
जैसे ही हम सेक्स का विचार करते हैं वैसे ही हमारा चित्त जननेंद्रिय
की तरफ बहने लगता है। तो तुरंत जननेंद्रिय को भीतर की ओर खींच लेते ही जननेंद्रिय से बाहर जानेवाले सब द्वार बंद हो जाते हैं। और जो ऊर्जा जग गई है, अगर उस क्षण में हम आंखों को बंद कर लें और आंख बंद करके सिर की छत की तरफ, अंदर से जैसे ऊपर की तरफ देख रहे हों, देखना शुरू कर दें, तो ऊर्जा ऊपर की तरफ बहना शुरू हो जाती है।
यह एक महीने भर के प्रयोग से अभूतपूर्व अनुभव में किसी भी व्यक्ति को उतार दिया जा सकता है। जब भी यौन का ख्याल उठे तभी यौन-केंद्र को, मूलाधार को भीतर की ओर खींच लें, आंख बंद करें और सिर की छत की तरफ अंदर से जैसे ऊपर देख रहे हों, देखना शुरू कर दें। और आप एक महीने भर के भीतर, इक्कीस दिन के भीतर पायेंगे कि आपके भीतर से कोई चीज नीचे से ऊपर की तरफ जानी शुरू हो गई है। यह वस्तुतः अनुभव होगा कि कोई चीज ऊपर बहने लगी, कोई चीज ऊपर उठने लगी। उसे कोई कुंडलिनी का नाम कहता है, उसे कोई और कोई नाम दे सकता है।
इसमें दो बिदुओं पर ध्यान देना जरूरी है। एक तो सेक्स-सेंटर पर, मूलाधार पर, और दूसरे सहस्रार पर। सहस्रार हमारे ऊपर का केंद्र है सबसे ऊपर, और मूलाधार हमारे सबसे नीचे का केंद्र है। मूलाधार को सिकोड़ लें भीतर की तरफ। तो उसमें जो शक्ति पैदा हुई है, वह शक्ति मार्ग खोज रही है। और अपने चित्त को ले जायें ऊपर की तरफ, तो वही मार्ग खुला रह जाता है। चित्त जिस तरफ देखता है उसी तरफ शरीर की शक्तियां बहनी शुरू हो जाती हैं। यह ट्रांसफार्मेशन की छोटी-सी विधि है।
तो इसका अगर प्रयोग करें तो ब्रह्मचर्य बिना सप्रेशन के फलीभूत होता है। यह सप्रेशन नहीं है, यह सब्लीमेशन है। यह दमन नहीं है। दमन का तो मतलब है कि ऊपर का द्वार नहीं खुला है और नीचे के द्वार पर रोके चले जा रहे हैं। तब उपद्रव होगा, तब विक्षिप्तता होगी, पागलपन होगा। अगर मार्ग भी है शक्ति के लिए, तो दमन नहीं होगा, सिर्फ ऊर्ध्वगमन होगा। शक्ति नीचे से ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाएगी।
यह तो एक प्रायोगिक बात मैंने आपसे कही। यह प्रयोग करें और समझें। यह कोई सैद्धांतिक बात नहीं है। न कोई बौद्धिक या शास्त्रीय बात है। यह करोड़ों लोगों की अनुभूत घटना है और सरलतम प्रयोग है। कठिन बहुत नहीं है। और एक बार मस्तिष्क के ऊपरी छोरों पर रस के फूल खिलने शुरू हो जायें तो आपकी जिंदगी से यौन विदा होने लगेगा। वह धीरे-धीरे खो जाएगा और एक नई ही ऊर्जा का, नई ही शक्ति का, एक नये ही वीर्य का, एक नई दीप्ति का, एक नये आलोक का एक नया संसार शुरू हो जाता है।
फिजिओलाजिस्ट से इसका कोई लेना-देना नहीं है। जो शक्ति ऊपर उठेगी उसे अगर हम शरीर को काटकर देखें, तो वह कहीं भी नहीं मिलेगी। वह मैगनेटिक

फील्ड की तरह है। अगर हम हड्डियों को तोड़ें-फोड़ें तो उसका कहीं भी सुराग नहीं मिलेगा, कहीं उसका कोई पता नहीं चलेगा। वह शारीरिक घटना नहीं है। वह घटना साइकिक है। वह घटना मनस में घटती है, शरीर के तल पर लेकिन अंतर पड़ने शुरू हो जाएंगे। क्योंकि उस शक्ति के नीचे प्रवाहित होने पर शरीर के वीर्य-कणों का भी प्रवाह बाहर की तरफ होता है। यदि वह शक्ति नीचे नहीं बहेगी तो शरीर के वीर्य-कण भी बाहर की ओर बहने बंद हो जाएंगे। शरीर भी संरक्षित होगा, लेकिन शरीर के संरक्षण के लिए यह प्रयोग नहीं है।
शरीर किसी भी तरह संरक्षित हो या न हो, क्योंकि शरीर की उम्र है और वह मरेगा, और सड़ेगा। वह जायेगा। जन्म और मृत्यु के बीच फासला जितना है वह पूरा कर लेगा। बड़ी जो घटना घटेगी वह साइकिक एनर्जी की है। वह मनस-ऊर्जा की है। और जितनी मनस-ऊर्जा व्यक्ति के पास हो, उतना ही व्यक्ति का विस्तार होने लगता है, उतना ही वह फैलने लगता है, उतना ही वह विराट होने लगता है। और जिस दिन एक कण भी व्यक्ति की मनस-ऊर्जा का नीचे की तरफ प्रवाहित नहीं होता, उसी दिन व्यक्ति घोषणा कर सकता है, अहं ब्रह्मास्मि। वह कह सकता है, मैं ब्रह्म हूं।
यह अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा कोई तार्किक निष्पत्ति, कोई लाजिकल कनक्लूजन नहीं है। यह एक एक्जिस्टेंसियल कनक्लूजन है। यह एक अस्तित्वगत अनुभव है। जिस दिन विराट से संबंध होता है, उस दिन पता चलता है कि मैं व्यक्ति नहीं हूं, विराट हूं। लेकिन यह विराट का अनुभव विराट शक्ति के संरक्षण से हो सकता है। और इस शक्ति का संरक्षण, जब तक काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित न हो, तब तक असंभव है।

ओशो, आपने कहा है कि वर्तमान में पल-पल जीने से सेक्स एनर्जी, यौन-ऊर्जा का संचय और ऊर्ध्वगमन होने लगता है तथा अतीत और भविष्य के चिंतन से ऊर्जा का विनाश और अधोगमन होने लगता है। इन दोनों बातों में क्या-क्या प्रक्रिया घटित होती है, उसका विज्ञान स्पष्ट करें।

जीवन है अभी और यहीं, जीवन है क्षण-क्षण में, जीवन है पल-पल में, लेकिन मनुष्य का चित्त सोचता है पीछे की, मनुष्य का चित्त सोचता है आगे की। और यह जो चित्त का चिंतन है जब काम से संबंधित होता है तो मनुष्य का चित्त सोचता है उन काम-संबंधों के संबंध में, उन यौन अनुभवों के संबंध में जो पीछे घटित हुए हैं। और उन यौन-संबंधों की कल्पना करता है, जो आगे घटित होंगे, हो सकते हैं, होने की आकांक्षा है। और जब चित्त इस तरह के चिंतन में खो जाता है पीछे और आगे, तो शारीरिक वीर्य-कण तो नष्ट नहीं होते, लेकिन जिस यौन-ऊर्जा की, जिस काम-ऊर्जा की, जिस साइकिक एनर्जी की मैंने बात कही है, वह नष्ट होनी शुरू हो जाती है। शरीर के वीर्य-कण तो वास्तविक संभोग में नष्ट होंगे, लेकिन मन की ऊर्जा चिंतन में ही नष्ट होने लगती है।
इसलिए भाव से भी जो काम का चिंतन करता है, वह अपनी ऊर्जा को अधोगामी करता है, भाव से भी, विचार से भी। एक रत्ती भर शक्ति शरीर नहीं खो रहा है, सिर्फ सोच रहा है उन संभोगों के संबंध में जो उसने किए, या उन संभोगों के संबंध में जो वह करेगा, सिर्फ चिंतन कर रहा है। पर इतना चिंतन भी मन की ऊर्जा के विनाश के लिए काफी है। मन की ऊर्जा तो विनष्ट होनी शुरू हो जाएगी। और मन की यह ऊर्जा ही असली ऊर्जा है। संभोग से तो सिर्फ शरीर के ही कुछ कण खोते हैं, लेकिन मन के संभोग से, इस मेंटल सेक्स से, इस मानसिक यौन से, मन की विराट ऊर्जा नष्ट होती है। शरीर तो आज नहीं, कल पूरा ही नष्ट हो जाएगा। शरीर उतना चिंतनीय नहीं है, चूंकि मन की जो ऊर्जा है वह अगले जन्म में भी आपके साथ होगी। उस ऊर्जा का ही असली सवाल है।
इसलिए जब मैंने यह कहा कि जो व्यक्ति पल-पल जीता है--न पीछे की सोचता है, न आगे की सोचता है काम के संबंध में--तो वह आगे की भी नहीं सोचता और पीछे की भी नहीं सोचता, वही पल-पल जीता है। उसकी मानसिक ऊर्जा के विसर्जन का कोई उपाय नहीं रह जाता।
और भी एक मजे की बात है कि जो आदमी अतीत की चिंता कम करता है, भविष्य की चिंता कम करता है, जो सामने होता है उसी को करता है, उसी में पूरा डूबकर जीता है, उसकी जिंदगी में तनाव, टेन्शंस कम हो जाते हैं। और जितना तनाव कम

हो उतनी सेक्स की जरूरत कम हो जाती है। जितना तनाव ज्यादा हो उतनी सेक्स की जरूरत बढ़ जाती है, क्योंकि सेक्स रिलीफ का काम करने लगता है। वह तनाव के बिखेरने का काम करने लगता है।
इसलिए जितना ज्यादा चिंतित आदमी है, उतना कामुक हो जाएगा। और जितना चिंतित समाज है, वह उतना कामुक हो जायेगा, जैसे आज यूरोप या अमरीका है। अत्यधिक चिंतित है तो जीवन सारा काम से भर जाएगा। जितना निश्चिंत व्यक्ति है, उतनी काम की जरूरत कम हो जाएगी। क्योंकि तनाव इतने इकट्ठे नहीं होते कि शरीर से शक्ति को फेंककर उन्हें हल्का करना पड़े।
अतीत और भविष्य की बहुत ज्यादा चिंतना तनावग्रस्त करती है, टेन्शंस पैदा करती है। वर्तमान में जीये जाना तनाव मुक्त करता है। जो आदमी अपने बगीचे में गड्ढा खोद रहा है तो गड्ढा ही खोद रहा है। जो आदमी खाना खा रहा है तो खाना ही खा रहा है। जो आदमी सोने गया है तो सोने ही गया है, दफ्तर में है तो दफ्तर में है, घर में है तो घर में है, जिससे मिल रहा है उससे मिल रहा है, जिससे बिछुड़ गया है उससे बिछुड़ गया है। जो आदमी आगे-पीछे बहुत समेट कर नहीं चलता है, उसके चित्त पर इतने कम भार होते हैं कि उसकी काम की जरूरत निरंतर कम हो जाती है।
तो दो कारणों से मैंने ऐसा कहा। एक तो चिंतन करने से काम के, मानसिक काम-ऊर्जा विनष्ट होती है। दूसरा, अतीत और भविष्य की कामनाओं में डूबे होने से तनाव इकट्ठे होते हैं। और जब तनाव ज्यादा इकट्ठे हो जाते हैं तो शरीर को अनिवार्य रूप से अपनी शक्ति कम करनी पड़ती है। शक्ति कम करके जो शिथिलता अनुभव होती है उस शिथिलता में विश्राम मालूम पड़ता है। शिथिलता को हम विश्राम समझे हुए हैं। थककर गिर जाते हैं तो सोचते हैं आराम हुआ। थक कर टूट जाते हैं तो लगता है अब सो जायें, अब चिंता नहीं रही। चिंता के लिए भी शक्ति चाहिए। लेकिन चिंता ऐसी शक्ति है जो भंवर बन गयी और जो पीड़ा देने लगी। अब उस शक्ति को बाहर फेंक देना पड़ेगा। उस शक्ति को हम निरंतर बाहर फेंक रहे हैं। और हमारे पास शक्ति को बाहर फेंकने का एक ही उपाय दिखाई पड़ता है। क्योंकि ऊपर जाने का तो हमारे मन में कोई ख्याल नहीं है। नीचे जाने का एकमात्र बंधा हुआ मार्ग है।
इसलिए जो व्यक्ति चिंता नहीं करता, अतीत की स्मृतियों में नहीं डूबा रहता, भविष्य की कल्पनाओं में नहीं डूबा रहता, जीता है अभी और यहीं वर्तमान में... इसका यह मतलब नहीं है कि आपको कल सुबह ट्रेन से जाना हो तो आज टिकिट नहीं खरीदेंगे। लेकिन कल की टिकिट खरीदनी आज का ही काम है। लेकिन आज ही कल की गाड़ी में सवार हो जाना खतरनाक है। और आज ही बैठकर कल की गाड़ी पर क्या-क्या मुसीबतें होंगी और कल की गाड़ी पर बैठकर क्या-क्या होने वाला है, इस सबके चिंतन में खो जाना खतरनाक है।
नहीं, यौन इतना बुरा नहीं है जितना यौन का चिंतन बुरा है। यौन तो सहज, प्राकृतिक घटना भी हो सकती है, लेकिन उसका चिंतन बड़ा अप्राकृतिक और परवर्सन है, वह विकृति है। एक आदमी सोच रहा है, सोच रहा है, योजनाएं बना रहा है, चौबीस घंटे सोच रहा है। और कई बार तो ऐसा हो जाता है, होता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सैकड़ों-हजारों लोगों के अनुभवों के बाद यह पता चलता है कि आदमी मानसिक यौन में इतना रस लेने लगता है कि वास्तविक यौन में उसे रस ही नहीं आता, फिर वह फीका मालूम पड़ता है। चित्त में ही जो यौन चलता है वही ज्यादा रसपूर्ण और रंगीन मालूम पड़ने लगता है।
चित्त में यौन की इस तरह से व्यवस्था हो जाये तो हमारे भीतर कंफ्यूजन पैदा होता है। चित्त का काम नहीं है यौन। गुरजिएफ कहा करता था कि जो लोग यौन के केंद्र का काम चित्त के केंद्र से करने लगते हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। होगी ही, क्योंकि उन दोनों के काम अलग हैं। अगर कोई आदमी कान से भोजन करने की कोशिश करने लगे तो कान तो खराब होगा ही और भोजन भी नहीं पहुंचेगा। दोनों ही उपद्रव हो जाएंगे।
व्यक्ति के शरीर में हर चीज का सेंटर है। चित्त काम का सेंटर नहीं है। काम का सेंटर मूलाधार है। मूलाधार को अपना काम करने दें। लेकिन चित्त को, चेतना को, अभी उस काम में मत लगायें, अन्यथा चेतना उस काम से ग्रस्त, आबसेस्ड हो जाएगी।

इसलिए आदमी आबसेस्ड दिखायी पड़ता है। वह नंगी तस्वीरें देख रहा है बैठकर, और मूलाधार को नंगी तस्वीरों से कोई भी संबंध नहीं है। उसके पास आंख भी नहीं है। आदमी नंगी तस्वीरें देख रहा है, यह मन से देख रहा है। और मन में तस्वीरों का विचार कर रहा है, योजनाएं बना रहा है, कल्पनाएं कर रहा है, रंगीन चित्र बना रहा है। यह सब के सब मिल कर उसके भीतर सेंटर का कंफ्यूजन पैदा कर रहे हैं। मूलाधार का काम चित्त करने लगेगा, पर मूलाधार तो चित्त का काम नहीं कर सकता है। बुद्धि भ्रष्ट होगी, चित्त भ्रमित होगा, विक्षिप्त होगा।
पागलखाने में जितने लोग बंद हैं उनमें से नब्बे प्रतिशत लोग चित्त से यौन का काम लेने के कारण पागल हैं। पागलखानों के बाहर भी जितने लोग पागल हैं, अगर उनके पागलपन का हम पता लगाने जायें तो हमें पता चलेगा कि उसमें भी नब्बे प्रतिशत यौन के ही कारण हैं। उनकी कविताएं पढ़ें तो यौन, उनकी तस्वीरें देखें तो यौन, उनकी पेंटिंग्स देखें तो यौन, उनका उपन्यास देखें तो यौन, उनकी फिल्म देखने जायें तो यौन, उनका सब कुछ यौन से घिर गया है। आब्सेशन है यह, यह पागलपन है।
अगर पशुओं को भी हमारे संबंध में पता होगा तो वे भी हम पर हंसते होंगे
कि आदमी को क्या हो गया है? अगर हमारी कविताएं वे पढ़ें, भले ही कालिदास की हों, तो पशुओं को बड़ी हैरानी होगी कि इन कविताओं की जरूरत क्या है? इनका अर्थ क्या है? वे हमारे चित्र देखें, चाहे पिकासो के हों, तो उन्हें बड़ी हैरानी होगी कि इन चित्रों का मतलब क्या है? ये स्त्रियों के स्तनों को इतना चित्रित करने की कौन-सी आवश्यकता है? क्या प्रयोजन है?
आदमी जरूर कहीं पागल हो गया है। पागल इसलिए हो गया है कि जो काम मूलाधार का है, सेक्स-सेंटर का है, उसे वह इंटलेक्ट से ले रहा है। इसलिए इंटलेक्ट से जो काम लिया जा सकता था, उसका तो समय ही नहीं बचता है।
बुद्धि परमात्मा की तरफ यात्रा कर सकती है, लेकिन वह मूलाधार का काम
कर रही है। चेतना परम जीवन का अनुभव कर सकती है, लेकिन चेतना सिर्फ फैंटेसीज में जी रही है, सेक्सुअल फैंटेसीज में जी रही है, वह सिर्फ यौन के चित्रों में भटक रही है।
इसलिए मैंने कहा, अतीत का मत सोचें, भविष्य का मत सोचें। यौन के संबंध में तो बिल्कुल ही नहीं। अभी जीयें और जितना यौन पल में आ जाता हो उसे आने दें, घबरायें मत, लेकिन उस यौन के समय में भी जो मैंने ऊर्ध्वगमन की यात्रा की बात कही, अगर उसका थोड़ा स्मरण करें तो बहुत शीघ्र उस शक्ति का ऊपर प्रवाह शुरू हो जाता है। और जैसी धन्यता उस प्रवाह में अनुभव होती है वैसी जीवन में और कभी अनुभव नहीं होती।

ओशो, आपने कहा कि यदि कोई भी क्रिया पूरी, टोटल हो तो ऊर्जा खोयी नहीं जाती। कृपया बताइए कि टोटल एक्शन का आप क्या अर्थ लेते हैं? और यह भी बतायें कि संभोग की प्रक्रिया में टोटल यानी पूर्ण होने का क्या अर्थ है? क्या उसमें ऊर्जा के क्षय न होने का अर्थ है?

कर्म पूर्ण हो, कृत्य पूरा हो तो ऊर्जा क्षीण नहीं होती। कोई भी कर्म पूरा हो तो ऊर्जा क्षीण नहीं होती है। जब मैंने ऐसा कहा तो मेरा अर्थ है कि कृत्य अधूरा तब होता है जब हम अपने भीतर खंडित और विभाजित और कांफ्लिक्ट में होते हैं। जब मैं अपने भीतर ही टूटा हुआ होता हूं तो कृत्य अधूरा होता है।
समझें कि आप मुझे मिले और मैंने आपको गले लगा लिया। अगर इस गले लगाते वक्त मेरे मन का एक खंड कह रहा है कि यह क्या कर रहे हो? यह ठीक नहीं है, मत करो। और एक खंड कह रहा है कि करूंगा, बहुत ठीक है। तो मेरे भीतर मैं दो हिस्से में बंटा हूं और लड़ रहा हूं। आधे हिस्से से मैं गले लगाऊंगा और आधे हिस्से से गले से दूर हटने की कोशिश में लगा रहूंगा। मैं एक ही साथ दो विरोधी काम कर रहा हूं। इन विरोधी कामों में मेरे भीतर की मनस-ऊर्जा क्षीण होगी। लेकिन अगर मैंने पूरे ही हृदय से किसी को गले लगा लिया है और उस गले लगाने में मेरे हृदय में कहीं भी कोई विरोधी स्वर नहीं है तो ऊर्जा के

नष्ट होने का कोई भी कारण नहीं है। बल्कि यह पूर्ण आलिंगन मुझे और भी ऊर्जा से भर जाएगा, मुझे और भी आनंद से भर जाएगा।
शक्ति क्षीण होती है कांफ्लिक्ट में, इनर कांफ्लिक्ट में। भीतरी अंतर्द्वंद्व शक्ति के क्षीण होने का आधार है। कितना ही अच्छा काम कर रहे हों, अगर भीतर विरोध है तो शक्ति क्षीण होगी ही, क्योंकि आप अपने भीतर ही लड़ रहे हैं। यह वैसा ही है जैसे मैं एक मकान बनाऊं। एक हाथ से ईंट रखूं और दूसरे से उतारता चला जाऊं, तो शक्ति तो नष्ट होगी और मकान कभी बनेगा नहीं। हम सब स्व-विरोधी खंडों में बंटे हैं। हम जो भी कर रहे हैं उसके बाहर भी, हमारे विरोध में कोई चीज खड़ी है। अगर हम किसी को प्रेम कर रहे हैं तो उसे घृणा भी कर रहे हैं। अगर हम किसी से मित्रता बना रहे हैं तो शत्रुता भी बना रहे हैं। अगर किसी के पैर छू रहे हैं तो दूसरे कोने से उसके अनादर का इंतजाम भी कर रहे हैं। हम पूरे समय दोहरे काम कर रहे हैं। इसलिए प्रत्येक आदमी धीरे-धीरे दिवालिया हो जाता है, उसके भीतर की शक्ति बैंक्रप्ट हो जाती है। वह खुद ही अपने से लड़ कर मर जाता है।
देखें अपनी तरफ, भीतर देखें तो आपके ख्याल में बात आ जाएगी। जब भी कोई काम कर रहे हैं, यदि आप पूरे उसमें हैं तो आप सदा ही और भी ताजे, और भी शक्तिशाली होकर उस काम से बाहर आएंगे। और अगर आप अधूरे उस काम में हैं तो आप थक कर चकनाचूर होकर, टूटकर बाहर आएंगे।
इसलिए जो लोग भी किसी काम को पूरा कर पाते हैं--जैसे चित्रकार है, अगर
वह अपने चित्र को रंगने में, बनाने में, पूरा लग जाता है, तो कभी भी थकता नहीं है। वह पूरे का पूरा और भी आनंदित, और भी रिफ्रेस्ड, और भी ताजा होकर वापस लौट आता है। लेकिन इसी चित्रकार को आप नौकरी पर रख लें और कहें कि हम रुपए देंगे, और चित्र बनाओ, तब वह थक कर लौट आता है। क्योंकि उसका पूरा मन उस चित्र के साथ खड़ा नहीं हो पाता। जैसे ही हमारे मन का कोई हिस्सा हमारे विरोध में हो जाता है, तो हमारी शक्ति क्षीण होती है।
जब मैंने कहा, टोटल एक्ट, तो किसी एक काम के लिए नहीं, सारे कामों के लिए, जो भी आप कर रहे हैं। अगर भोजन करने जैसा या स्नान करने जैसा साधारण काम कर रहे हैं तो भी पूरा करें। स्नान करते वक्त स्नान करना ही अकेला कृत्य हो, न तो मन कुछ और सोचे, न मन कुछ और करे। आप पूरे के पूरे स्नान ही कर लें। तो शरीर ही स्नान नहीं करेगा, आत्मा भी स्नान कर जायेगी। आप स्नान के बाहर पाएंगे कि आप कुछ लेकर लौटे हैं।
लेकिन नहीं, स्नान आप कर रहे हैं और हो सकता है पैर आपके अब तक सड़क पर पहुंच गए हों और मन आपका अब तक दफ्तर में पहुंच गया हो और आप भागे हुए हैं। स्नान का कोई रस नहीं, कोई आनंद नहीं। वह स्नान भी एक टूटा हुआ कृत्य है। कहीं पानी डाला है और भागे। इस भागने में आप शक्ति को खो रहे हैं। और ऐसा प्रतिपल हो रहा है, चौबीस घंटे यही हो रहा है। बिस्तर पर सोए हैं लेकिन सोए नहीं हैं, क्योंकि सोने का एक्ट पूरा होगा तभी सुबह विश्राम होगा। सो रहे हैं, सपने देख रहे हैं। सो रहे हैं, सोच रहे हैं। सो रहे हैं, करवट बदल रहे हैं। हजार विचार हैं, हजार काम हैं। आज दिन में क्या किया, वह भी साथ है, कल सुबह क्या करना है, वह भी साथ है। तब सुबह आप और भी थककर, चकनाचूर होकर बिस्तर से उठते हैं। नींद भी आपकी विश्राम न दे पाएगी, क्योंकि नींद में भी आप पूरे नहीं हो पाते कि सो ही जायें, नींद में भी अधूरे ही होते हैं। इसलिए नींद उखड़ती जा रही है, नींद कम होती जा रही है। सारी दुनिया में बड़े से बड़े सवालों में एक यह भी है कि नींद का क्या होगा? नींद खत्म होती जा रही है। नींद खत्म होगी, क्योंकि नींद कहती है कि पूरे सोओ तो ही सो सकते हो। लेकिन चौबीस घंटे हम टूटे हुए हैं, और जब सब कामों में टूटे हुए हैं तो नींद में इकट्ठे कैसे हो सकते हैं? रात तो हमारे दिन भर का जोड़ है। जैसे हम दिन भर रहे हैं वैसे ही हम रात नींद में भी होंगे। और ध्यान रहे जैसे हम रात नींद में होंगे कल का दिन भी उसी आधार पर फैलेगा और विकसित होगा। फिर जिंदगी पूरी टूट जाती है। न तो हम ठीक से जी पाते हैं, जीते वक्त भी हजार तरह के रोग हैं।
एक मित्र को मेरे पास अभी लाया गया है। उनको जो लोग लाए थे उन्होंने कहा कि ये पांच बार आत्महत्या का प्रयास कर चुके हैं। मैंने कहा, बड़े गजब के आदमी हैं, प्रयास भी अधूरा करते हैं, ऐसा मालूम होता है। पांच बार! और जो

आदमी पांच बार आत्महत्या का प्रयास कर चुका है वह पूरा जी रहा होगा, यह तो माना ही नहीं जा सकता। अगर पूरे ही जी रहे हों तो मरने की क्या जरूरत आ गई? पूरा जीएगा भी नहीं, पूरा मरेगा भी नहीं। पांच बार प्रयास कर चुके हैं! मैंने उनसे कहा कि अब तो शर्म खाओ, अब प्रयास मत करो। पांच बार काफी है!
लेकिन पांच बार कोई आदमी आत्महत्या करके नहीं कर पाया और बच गया, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है कि एक हिस्सा उसका बचने की कोशिश में लगा ही रहा होगा। उसने कोशिश भी की होगी, बचने का इंतजाम भी किया होगा, नहीं तो कोई किसी को मरने से रोक सकता है? मरने में भी आनेस्टी नहीं है, उसमें भी ईमानदारी नहीं है, तब फिर जीने में ईमानदारी कैसे होगी! जब मरने तक में ईमानदारी नहीं है तो यह जीना पूरा का पूरा डिसआनेस्टी, बेईमानी होगा ही। जब मैंने उस मित्र को कहा कि शर्म आनी चाहिए, पांच बार मर कर तो मर ही जाना चाहिए था। एक ही बार में मर जाना चाहिए था। अब उनको लाया गया कि वह छठवीं बार मरने का प्रयास कर रहे हैं। तो मैंने उनसे कहा कि और अब नाहक बदनामी होगी, अब मत प्रयास करो। वे बहुत चौंके, क्योंकि वे सोचते होंगे कि मैं उनको समझाऊंगा कि आत्महत्या मत करो। और उन्होंने कहा, आप आदमी कैसे हैं? मुझे जिसके पास भी ले जाया गया उन्होंने मुझे समझाया है कि यह बहुत बुरा काम है। मैंने कहा, मैं नहीं कहता बुरा काम है, मैं कहता हूं, अधूरा करना बहुत बुरी बात है। करना है, पूरा करो। वह आदमी मेरी तरफ थोड़ी देर देखता रहा। फिर बोला, आत्महत्या करनी तो नहीं है, जीना तो मैं भी चाहता हूं, लेकिन अपनी शर्तों के साथ जीना चाहता हूं। अगर मेरी शर्त नहीं मानी गई तो मैं मर जाऊंगा।
न तो यह आदमी मरना चाहता है, क्योंकि यह मरना भी शर्तों के साथ चाहता है, और न यह आदमी जीना चाहता है, क्योंकि जीना भी शर्तों के साथ चाहता है। यह आदमी जीयेगा भी तो मरा हुआ जीयेगा, और मरेगा भी किसी दिन तो जीने की आकांक्षा से तड़फता हुआ मरेगा। यह आदमी न जी पाएगा, न मर पाएगा। इसकी जिंदगी में मौत प्रवेश कर गई, इसकी मौत में जिंदगी प्रवेश कर जायेगी। यह आदमी विक्षिप्त हो गया है।
हम सब इसी तरह के आदमी हैं। हम सब में बहुत फर्क नहीं है। हम सब ऐसा ही
कर रहे हैं। जिसको हम प्रेम करते हैं उसको भी प्रेम नहीं करते। सांझ प्रेम करते हैं, सुबह तलाक देने का विचार करते हैं मन में। फिर दोपहर पश्चात्ताप करते हैं, सांझ क्षमा मांगते हैं, सुबह फिर तलाक देने का विचार करते हैं। मैं एक घर में ठहरा था। उस घर में पति-पत्नी अपने तलाक की एप्लीकेशन बिल्कुल तैयार ही रखे हुए हैं, सिर्फ दस्तखत करने की बात है। देखी है मैंने अपनी आंख से। पति ने मुझे बताया कि कई दफा ऐसी हालत हो जाती है कि बस दस्तखत कर दूं। वे तो पूरी तैयारी रखे हुए हैं। मैंने कहा कि इसमें कोई हर्जा नहीं है कि दस्तखत कर दो, लेकिन इसको तैयार रखे हो, यह ब.ड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि जिस पत्नी के लिए तलाक देने की एप्लीकेशन तैयार हो, उस पत्नी को पत्नी कहने का कोई अर्थ है? कोई अर्थ नहीं है। लेकिन पत्नी जारी है। यह एप्लीकेशन तो सात साल से तैयार रखी हुई है, वे कहने लगे। यह कोई नई बात नहीं है।
इस आधे-आधे जीने के संघर्ष को मैं कहता हूं, ऊर्जा का स्खलन है। यह शक्ति का गंवाना है। इस तरह जिंदगी में हम कभी कुछ भी नहीं उपलब्ध कर पाते हैं। एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात समझाऊं।
मैंने सुना है एक समुराई सरदार, जापान में एक सम्राट, जो बहुत तेजस्वी तलवार चलानेवाला समुराई सरदार है। उसके मुकाबले जापान में कोई आदमी नहीं है जो इतनी अच्छी तरह तलवार चला सके। उसकी कुशलता की कीर्ति दूर-दूर तक जापान के बाहर भी पहुंच गई। लेकिन एक दिन उसे पता चला कि उसका पहरेदार उसकी पत्नी के प्रेम में पड़ गया है। उसने उन दोनों को पकड़ लिया। लेकिन समुराई सरदार था! उसने कहा कि मन तो मेरा करता है कि तेरी गर्दन काट दूं। लेकिन नहीं, तूने भी प्रेम किया है मेरी पत्नी को, इसलिए उचित यही होगा कि एक तलवार तू ले ले और एक मैं ले लूं। हम दोनों युद्ध में उतर जायें। जो बच जाये वही मालिक हो। उस पहरेदार ने कहा कि मालिक आप ऐसे ही मेरी गर्दन काट दें तो अच्छा है, यह खेल आप क्यों करते हैं? गर्दन मेरी ही कटेगी। क्योंकि

मैं तो तलवार पकड़ना भी नहीं जानता, और आप जैसा तलवार चलानेवाला आदमी शायद पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। तो आप तलवार से लड़ने का मुझे जो मौका दे रहे हैं, नाहक मखौल और मजाक क्यों करते हैं? तलवार से मेरी गर्दन ऐसे ही काट दें। तलवार से गरदन तो मेरी ही कटेगी, क्योंकि मैं तो तलवार चलाना नहीं जानता। लेकिन उस समुराई सरदार ने कहा कि यह मेरी इज्जत के खिलाफ होगा कि कभी यह कहा जाये कि मैंने बिना तुझे मौका दिए तेरी गर्दन काट दी। तलवार संभाल और मैदान में उतर।
कोई रास्ता न था। वह गरीब बेचारा डरता हुआ तलवार हाथ में लेकर मैदान में उतरा। गांव इकट्ठा हो गया। खबर फैल गई। सारे लोग जानते हैं कि वह गरीब आदमी मर जाएगा। क्योंकि इस सरदार से तो एक हाथ भी बचाना मुश्किल है। वह इतना कुशल कारीगर है, वह इतना कुशल तलवारबाज है।
लेकिन हालत उलटी हो गई। हालत यह हुई कि जब उस पहरेदार ने तलवार चलानी शुरू की तो उस सरदार के छक्के छूट गए। छक्के इसलिए छूट गए कि वह तलवार बिल्कुल बेढंगी चला रहा था। उसको चलाना आता ही नहीं था। उससे बचाव मुश्किल मालूम पड़ा, और वह इतनी पूर्णता से तलवार चला रहा था... क्योंकि उसके जीवन-मरण का सवाल था। सरदार के लिए तो एक खेल का मामला था। वह जानता था अभी काट देंगे, परंतु पहरेदार के लिए जीवन-मृत्यु का सवाल था। तलवार और वह पहरेदार एक ही हो गया। सरदार ने घुटने टेक दिए और कहा कि मुझे माफ कर दे। लेकिन तू यह कर क्या रहा है?
बामुश्किल उसको रोका जा सका। उसके सामने एक दरख्त था। उसको उसने तलवार से काट डाला, वह इतना एक हो गया। राजा तो हट गया, घुटने टेक दिए, लेकिन उसमें जो ऊर्जा जाग गई थी, उसने जब तक दरख्त नहीं काट डाला तब तक ऊर्जा रुकी नहीं। बामुश्किल उसे रोका जा सका। जब उससे पूछा गया कि यह तुझे हो क्या गया? तुझमें कहां से यह शक्ति आ गई?
तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि जब मरना ही है तो पूरी तलवार चलाकर ही मर जाना चाहिए। जब मरना ही पक्का है और अब जीने का कोई उपाय नहीं है, तो मैं पहली दफा जिंदगी में इंटीग्रेटेड हो गया। पहली दफा इकट्ठा हो गया। मैंने कहा, अब कोई सवाल नहीं है। मौत सामने खड़ी है। और एक मौका है कि जो भी मैं कर सकता हूं, कर डालूं। तो मुझे न आगे का ख्याल रहा, न पीछे का ख्याल रहा, न मुझे पत्नी का, राजा का ख्याल रहा, न अपनी प्रेयसी का ख्याल रहा। फिर तो धीरे-धीरे मुझे यह भी पता नहीं रहा कि मेरा हाथ कहां खत्म होता है और तलवार कहां शुरू होती है! और जब लोग चिल्लाने लगे कि रुको, रुको! तो मुझे सुनाई नहीं पड़ता था कि कौन चिल्ला रहा है? किसको रोक रहे हैं?
यह आदमी टोटल हो गया। उस सम्राट ने कहा, आज मुझे पहली दफा पता चला कि सबसे बड़ी कुशलता टोटल एक्शन है। मैंने बड़ी कुशलता पाई लेकिन मैं टोटल नहीं हूं। क्योंकि तलवार चलाना मेरे लिए एक कला है, एक आर्ट है। मैं चलाता हूं, लेकिन मैं अलग हूं और पूरे वक्त मैं देख रहा हूं कि चोट तो नहीं लग जाएगी। कैसे बचूं, कैसे न बचूं।
उसने कहा, बचने न बचने का तो सवाल ही न था मेरे लिए। इतना ही सवाल था कि आपको भी पता चल जाए कि तलवार चलायी गई। तुमने ऐसे ही नहीं मारा नहीं तो लोग तुम्हारी इज्जत को नाम धरेंगे, तो मैंने कहा कि अब मैं पूरा चला ही लूं दो चार क्षण के लिए जो मौका है।
यह टोटल एक्शन से मेरा मतलब है। कृष्ण ने योग को कुशलता कहा है। यह तलवार चलानेवाला बिल्कुल अकुशल आदमी, एकदम कुशल हो गया है। क्यों? क्योंकि योग को उपलब्ध हो गया है। योग शब्द का मतलब है, टोटल, जोड़। जब कोई आदमी भीतर पूरी तरह जुड़ जाता है तो योग उपलब्ध होता है, इंटीग्रेटेड, संयुक्त, संश्लिष्ट। जब भीतर कोई खंड नहीं होते। प्रेम करता है तो प्रेम करता है, क्रोध करता है तो क्रोध करता है, दुश्मन है तो दुश्मन है, मित्र है तो मित्र है। जब कोई आदमी किसी भी कृत्य में पूरा होता है तब उसकी शक्ति नहीं खोती।
और यह बड़े मजे की बात है कि अगर कोई आदमी कृत्यों में पूरा हो जाये तो क्रोध धीरे-धीरे असंभव हो जाता है। क्योंकि तब क्रोध पूरा जला देता है, झुलसा देता है। तब घृणा मुश्किल हो जाती है, क्योंकि घृणा जहर हो जाती है। सब पूरे शरीर के रग-रोएं में जहर के फफोले छूट जाते हैं। तब शत्रु होना

मुश्किल हो जाता है, क्योंकि शत्रुता आत्मघात प्रतीत होती है, अपनी ही छाती में छुरा भोंकना प्रतीत होता है।
हम तभी तक क्रोध में हो सकते हैं जब तक हम अधूरे काम कर रहे हैं। हम तभी तक दुश्मन हो सकते हैं जब तक हमारे कृत्य पूरे नहीं हैं। जिस दिन हमारे कृत्य पूरे हैं, उस दिन हमारी जिंदगी में प्रेम का ही फूल खिल सकता है। जिस दिन हमारा कृत्य पूर्ण है, उस दिन प्रार्थना ही हमारे प्राणों की अभीप्सा बन जाती है। जिस दिन हमारे सारे जीवन का एक-एक कृत्य पूरा हो जाता है, उस दिन परमात्मा ही हमारे लिए एकमात्र सत्य रह जाता है। जब भीतर एक पैदा होता है तो बाहर भी एक दिखाई पड़ने लगता है। जब तक भीतर दो हैं तब तक बाहर दो हैं। दो भी कहना ठीक नहीं। हमारे भीतर अनेक हैं।
मैंने सुना है, जीसस एक गांव से गुजरते थे। रात थी और मरघट पर एक आदमी छाती पीट रहा था, चिल्ला रहा था, पत्थरों से अपने शरीर को खरोंच कर लहूलुहान कर रहा था। तो जीसस ने उस आदमी से जाकर पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो? उस आदमी ने कहा, जो सारी दुनिया कर रही है वही मैं कर रहा हूं। फिर वह अपने खरोंचने में लग गया। लहू बह गया है, सिर पीट रहा है, सिर पर घाव हो गया है। जीसस ने कहा, ऐ पागल, तेरा नाम क्या है? तो उस आदमी ने कहा, माई नेम इज लीजियन। मेरे नाम हजार हैं। मेरा एक नाम नहीं है। जीसस बार-बार इस कहानी को कहते थे कि एक आदमी ने मुझसे कहा था कि माई नेम इज लीजियन, मेरे नाम हजार हैं, एक मेरा नाम नहीं है क्योंकि मैं हजार आदमी हूं। मैं एक आदमी नहीं हूं।
हमारे नाम भी लीजियन हैं। हमारे भीतर भी हजार आदमी हैं। कोई बचाना चाह रहा है, कोई मारना चाह रहा है; कोई प्रेम करना चाह रहा है, कोई हत्या करना चाह रहा है; कोई जीना चाह रहा है, कोई अपनी कब्र का पत्थर बनवा रहा है; कोई परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर रहा है, हमारे ही भीतर कोई कह रहा है, सब झूठ है, सब असत्य है, कहीं कोई परमात्मा नहीं है। कोई घंटा बजा रहा है मंदिर का, और कोई भीतर हंस रहा है कि यह क्या पागलपन कर रहे हो? उस घंटे के बजाने से कुछ भी नहीं हो सकता है। कोई माला फेर रहा है और हमारे भीतर उसी वक्त कोई दुकान भी चला रहा है। माई नेम इज लीजियन। उस आदमी ने ठीक कहा कि मेरे नाम हजार हैं। मैं कौन-सा नाम बताऊं तुम्हें! मैं एक आदमी नहीं हूं, मैं हजार आदमी हूं।
ये जो हजार आदमी हैं हमारे भीतर, यही हमारी शक्ति का ह्नास है। अगर ये
ही एक आदमी हो जायें तो हमारी शक्ति संरक्षित होती है। टोटल एक्शन, एक करने की विधि है, समग्र कृत्य। जो भी करें उसके साथ पूरे ही खड़े हो जायें, जो भी करें उसे पूरा ही कर लें। और जैसे ही उसे पूरा करेंगे वैसे ही आपके भीतर कोई चीज एकदम इकट्ठी होने लगेगी, संयुक्त होने लगेगी, संश्लिष्ट होने लगेगी।
गुरजिएफ कहा करता था कि पूर्ण कृत्य, क्रिस्टलाइजेशन है। जब भी कोई व्यक्ति कोई काम पूरा करता है तो उसके भीतर कोई चीज क्रिस्टलाइज हो जाती है। कोई चीज इकट्ठी हो जाती है। यह इकट्ठा हो जाना व्यक्तित्व का जन्म है, आत्मा का जन्म है। इस अर्थ में मैंने कहा है। उसे प्रयोग करें, समझें, देखें, तो यह बात ख्याल में आ सकती है।
एक आखिरी सवाल और पूछ लें।

ओशो, यौन-ऊर्जा के संचय और ऊर्ध्वीकरण के संबंध में आहार रसायन, डाइट केमिस्ट्री पर भी कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

आहार शब्द बहुत बड़ा है। डाइट से बहुत बड़ा है। पहले आहार शब्द को समझ लें, फिर हम थोड़ी-सी बात करें।
आहार का मतलब है, जो भी हम बाहर से भीतर लेते हैं वह सब आहार है। आंख से देखते हैं एक सुंदर फूल को, तो आहार हो रहा है। आंख सौंदर्य का आहार कर रही है। कान से सुनते हैं एक संगीत को, तो संगीत का आहार हो रहा है। कान ध्वनियों का आहार कर रहा है। किसी के शरीर को स्पर्श करते हैं, हाथ आहार ले रहा है। किसी की सुगंध नासापुटों को छू लेती है, नाक आहार कर रही है। पूरा शरीर आहार कर रहा है, रोआं-रोआं श्वास ले रहा है, रोआं-रोआं स्पर्श ले रहा

है। पूरा शरीर ही हमारा आहार यंत्र है। हमारी सारी इंद्रियां बाहर के जगत को भीतर ले जा रही हैं। लेकिन हम सिर्फ भोजन को आहार समझते हैं, उससे भूल होती है।
काम-ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के लिए समस्त आहार को समझना जरूरी है। क्योंकि हो सकता है, भोजन आपने बिल्कुल ऐसा लिया हो जो काम-ऊर्जा को नीचे न ले जाकर ऊपर ले जाने में सहयोगी हो। लेकिन आंख ने ऐसे दृश्य देखे हों कि काम-ऊर्जा को नीचे ले जायें, और कान ने ऐसी ध्वनियां सुनी हों जो ऊर्जा को नीचे ले जायें, और शरीर ने ऐसे स्पर्श किए हों जो ऊर्जा को नीचे ले जायें। तो आहार के पूरे पर्सपेक्टिव को देख लेना जरूरी है।
आंख से भी हम भोजन ले रहे हैं, कान से भी हम भोजन ले रहे हैं, नाक से भी
हम भोजन ले रहे हैं, मुंह से भी हम भोजन ले रहे हैं, रोयें-रोयें के स्पर्श से भी हम भोजन ले रहे हैं। चौबीस घंटे हम भोजन कर रहे हैं। बाहर के जगत से बहुत कुछ हममें प्रविष्ट हो रहा है। यह जो प्रवेश हममें हो रहा है, इसके परिणाम होंगे।
स्वभावतः हम जो भी इकट्ठा कर रहे हैं, शरीर में वह कुछ काम करेगा। अगर
एक आदमी ने शराब पी ली है तो उसका सारा व्यक्तित्व दूसरा होगा, उसके सारे व्यक्तित्व में मूर्च्छा छा जाएगी। वह वही काम करने लगेगा जो मूर्च्छा में संभव हैं। एक आदमी ने शराब नहीं पी है तो वह वे काम नहीं कर सकेगा, जो मूर्च्छा में ही हो सकते हैं। हम जो भी भोजन ले रहे हैं वह सब परिणाम लाएगा। उसके परिणाम आते ही रहेंगे।
मुसोलिनी से एक भारतीय संगीतज्ञ पं. ओंकार नाथ मिलने गए थे। मुसोलिनी
ने आमंत्रण दिया था। संगीतज्ञ इटली गया था, तो उसने उन्हें भोजन पर आमंत्रित किया। तब मुसोलिनी ताकत में था। उसने पं. ओंकार नाथ से भोजन करते समय यह कहा कि मैंने सुना है कि कृष्ण बांसुरी बजाते थे तो लोग दीवाने होकर उनके आसपास इकट्ठे हो जाते थे! ठीक जाने दें लोगों को, हो जाते होंगे, लेकिन यह विश्वास नहीं होता कि हरिण भी दौड़ आते थे! मोर भी नाचने लगते थे! यह कैसे हो सकता है? पं. ओंकार नाथ ने कहा कि मैं कृष्ण तो नहीं हूं, इसलिए वैसी बांसुरी नहीं बजा सकता, लेकिन थोड़ा-सा क ख ग मैं भी जानता हूं, वह मैं आपको प्रयोग करके ही बताऊं। मुसोलिनी ने कहा, इससे बेहतर क्या होगा। लेकिन वहां कोई वाद्य-यंत्र भी न था, वहां तो चम्मच-कांटे थे। खाने की मेज पर बैठ कर ये बातें हो रही थीं। तो ओंकार नाथ ने चम्मच और कांटे को उठाकर और चीनी के बर्तनों पर बजाना शुरू कर दिया।
मुसोलिनी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं थोड़ी ही देर में बेहोश
हो गया। और मेरा सिर झुक-झुक कर टेबुल से लगने लगा और वह इतने जोर से चम्मच-कांटे पटकने लगे कि मेरा सिर उसकी ताल में टेबुल पर गिरे और उठे। फिर मेरा सिर लहूलुहान हो गया और मैंने चिल्लाकर कहा कि बंद करो यह वाद्य, अन्यथा मैं सिर को कैसे रोकूं! तब उस संगीतज्ञ ने बंद किया। सिर पर खून की बूंदें आ गयीं, सारा सिर छिल गया।
मुसोलिनी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैंने कहा, मुझे माफ करना, मुझे पता नहीं था कि संगीत का ऐसा परिणाम भीतर हो सकता है कि मैं रोक ही नहीं पा रहा था। शरीर अवश हो गया, सिर मेरे हाथ के बाहर हो गया और मुझे ऐसा लगा कि अब तो मैं मर जाऊंगा। क्योंकि मैं कोशिश करूं! और कोई उपाय नहीं... जितना ही कोशिश करूं, सिर उतना ही और जोर से जाकर टेबुल से टकराने लगा। और ओंकार नाथ ने कहा कि मेरी कोई हैसियत नहीं। कृष्ण के बाबत मैं कोई वक्तव्य दूं, यह ठीक नहीं। लेकिन इतना हो सकता है, तो उतना भी हो सकता है।
इस्लाम ने संगीत को वर्जित किया, इसलिए नहीं कि संगीत अनिवार्य रूप
से काम-ऊर्जा को नीचे ले जाता है। लेकिन संगीत के जितने प्रकार प्रचलित हैं, उनमें से निन्यान्बे प्रतिशत काम-ऊर्जा को नीचे की तरफ ले जानेवाले हैं। शायद एक प्रतिशत संगीत मुश्किल से जगत में बचा है जो ऊर्जा को ऊपर ले जाये। वह भी खोता जा रहा है, उसका भी कोई उपाय बचाने का नहीं दिखायी पड़ता। ऐसे सूफी फकीरों के नृत्य हैं, जिनको देखते- देखते देखनेवाले ध्यानस्थ हो जायें।
गुरजिएफ सूफी फकीरों के दरवेश नृत्य की एक टोली बनाकर सारे यूरोप और अमरीका में घूमता रहा और उसने कहा, सिर्फ देखो और कुछ मत करो। तीस लोगों की

टोली है। वे नाचना शुरू करते हैं। फकीरों का नाच है। और जितने लोग बैठे हैं वे थोड़ी देर में ध्यानस्थ हो जाएंगे। वे सिर्फ देखेंगे मूवमेंट्स, वे मूवमेंट्स उनके प्राणों में उतर जाएंगे और उनके भीतर भी करस्पांडिंग मूवमेंट पैदा होंगे। जो बाहर हो रहा है, वही आकृति उनके भीतर भी डोलने लगेगी। बाहर वह जो फकीर नाच रहे हैं, उनके नाचने की जो रिदम और गति है और लय है, वह धीरे-धीरे उनके हृदय की गति और लय बन जाएगी। और उनके भीतर भी कोई नृत्य शुरू हो जाएगा और उनकी ऊर्जा में रूपांतरण हो जाएगा।
आंख से जो हम देखते हैं, कान से जो हम सुनते हैं, ओंठ से जो हम स्वाद लेते हैं, नाक से जो हम गंध लेते हैं, उन सबके संबंध हैं। मंदिरों में घंटे हमने कभी लटकाये थे। हर कोई घंटा मतलब का नहीं है। कुछ विशेष घंटे ही काम के हो सकते हैं।
तिब्बतियों के पास एक विशेष घंटा होता है, शायद आपमें से किसी ने देखा हो। वह घंटा ऐसा लटकाने वाला नहीं होता। बर्तन की तरह बड़ा होता है, और बजाने को उसके अंदर एक गोल डंडा घुमाकर चोट करनी पड़ती है। जैसे एक बाल्टी रखी हो, उसके अंदर गोल घुमाकर डंडे से चोट करनी पड़ती है। उस डंडे और घंटे के बीच चोट का एक विशेष क्रम है। उस चोट करने से, घंटे से जोर की आवाज निकलती है--ओम मणि पद्मे हुं--यह पूरा सूत्र तिब्बत का उससे निकलता है। और यह सूत्र बार-बार मंदिर में गूंजता रहता है। और इस सूत्र के कुछ उपाय हैं। ये सूत्र हमारे भीतर जाकर कुछ चक्रों पर चोट करना शुरू कर देते हैं और उन चक्रों की शक्ति ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है।
ओम का उपयोग भीतर, उसकी गूंज, शक्ति को ऊपर ले जाने के लिए थी। अकेले
ओम का ही नहीं, मुसलमान कहते हैं आमीन, वह ओम का ही रूप है। क्रिश्चियन भी कहते हैं, आमीन, वह ओम का ही रूप है। अंग्रेजी में शब्द हैंः ओमनीसाइंट, ओमनीपोटेंट, ओमनीप्रेजेंट; वह सब ओम से ही बने हुए शब्द हैं। ओमनीसाइंट का मतलब है, जिसने ओम को देख लिया। ओम का मतलब है, विराट ब्रह्म। ओमनीप्र्रेजेंट का अर्थ है, जो ओम के साथ मौजूद हो गया। ओमनीपोटेंट का अर्थ है, जो ओम की तरह शक्तिशाली हो गया। जो परमात्मा के बराबर शक्ति-बीज से भर गया।
अब यह जो ओम शब्द है उसमें ए यू एम, अ ऊ म मूल ध्वनियां हैं। ये ध्वनियां अगर व्यवस्था से गुंजायी जायें तो ऊर्जा को ऊपर ले जाने लगती हैं। इससे उलटी ध्वनियां भी हैं, जो चोट की जायें तो ऊर्जा नीचे जाने लगती है।
आज अमरीका में जाज है, ट्विस्ट है, शेक है, और जमाने भर के नृत्य हैं।
उन सबकी ध्वनि-लहरी, उन सबके रिदम, सेक्स-ऊर्जा को नीचे की तरफ ले जानेवाली हैं। इसलिए अगर आप ट्विस्ट देख रहे हों तो थोड़ी देर में आप पायेंगे कि आपके भीतर ट्विस्ट होना शुरू हो गया। आपके भीतर कोई शक्ति डावांडोल होने लगी। आधुनिक जगत में विकसित सभी नृत्य और सभी संगीत की व्यवस्थाएं मनुष्य के काम का शोषण हैं।
इसलिए आहार का मतलब बड़ा है। इसलिए जो भोजन हम ले रहे हैं उसके परिणाम होंगे ही, उसके परिणाम से हम बच नहीं सकते। क्योंकि हमारा पूरा का पूरा जो जीवन-यंत्र है वह साइको केमिकल है। उसमें पीछे मन है, तो नीचे रसायन है। वह रसायन पूरे वक्त काम कर रहा है। केमिस्ट्री हमारे पूरे शरीर में पूरे वक्त काम कर रही है। हम क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, उसके परिणाम होंगे। ऐसे भी भोजन हैं जो मनुष्य को ज्यादा कामुक बनाते हैं।
मधुमक्खियों के छत्ते में एक खास तरह की जैली होती है। मधुमक्खियों
के बाबत आपको शायद थोड़ा पता हो कि मधुमक्खियों में एक ही रानी मक्खी होती है जो बच्चे पैदा करती है। और बाकी सारी मधुमक्खियां, मादा स्त्री मधुमक्खी जो सिर्फ मजदूर का काम करती हैं, उनकी जिंदगी में सेक्स जैसी कोई चीज नहीं होती। फेवरे, जिसने इन मधुमक्खियों का विराट गहन अध्ययन किया है, वह बड़ी हैरानी में पड़ा कि लाखों मधुमक्खियों की जिंदगी में कोई सेक्स क्यों नहीं होता! आखिर वे भी मादा हैं, उनकी जिंदगी में भी सेक्स का यंत्र पूरा है, लेकिन फिर भी सेक्स नहीं है। बात क्या है? तो उसे बड़ी हैरानी का जो नतीजा निकला वह यह कि मधुमक्खियां खास तरह की जैली इकट्ठी करती हैं जो सिर्फ मादा रानी ही खाती है। बाकी सब मधुमक्खियों को सिर्फ तीन दिन के

लिए, जन्म के बाद, वह खाने को मिलती है, उसके बाद खाने को नहीं मिलती। उस जैली में ही सारा राज है।
इसलिए उस जैली को रिजुवीनेशन के लिए कई पागलों ने प्रयोग किया... आदमी
को उसकी गोली बनाकर खिला दी जाये तो शायद बूढ़ा आदमी जवान हो जाये। उस जैली से बहुत-सी क्रीम भी लोगों ने बनाई और लाखों स्त्रियों के चेहरे पर पोती कि शायद उस जैली से सौंदर्य प्रगट हो जाये। वह जैली विशेष विटामिन्स लिए हुए है, जो अति-कामुकता पैदा कर देती है।
तो वह जो रानी मधुमक्खी है उसकी कामुकता का हिसाब लगाना मुश्किल है।
वह दो हजार अंडे रोज देती है और देती ही चली जाती है। वह करोड़ों अंडे एक ही मादा पैदा कर देती है, इतनी सेक्स ऐक्टीविटी उसके भीतर पैदा हो जाती है। और अब तो हम जानते हैं कि हारमोन्स की खोज ने बड़ा स्पष्ट कर दिया है कि अगर एक पुरुष को भी स्त्री हारमोन्स के इंजेक्शन दे दिए जायें तो उसका शरीर पुरुष का न रहकर थोड़े दिनों में स्त्री का हो जाएगा। अगर एक स्त्री शरीर को पुरुष-इंजेक्शन दे दिये जायें तो उसका शरीर थोड़े दिनों में स्त्री का न रहकर पुरुष का हो जाएगा। पैंतालीस से पचास साल के बाद आमतौर से कुछ स्त्रियों को मूंछ आनी शुरू हो जाती है। उसका कुल कारण इतना ही है कि स्त्री हारमोन्स कम हो गए और शरीर में पड़े हुए पुरुष हारमोन प्रभावी होने लगे, इसलिए मूंछ आनी शुरू हो जायेगी। स्त्रियों की आवाज पचास साल के बाद पुरुषों से मेल खाने लगेगी। उसका कुल कारण यही है कि पुरुष हारमोन और स्त्री हारमोन का अनुपात टूट गया। स्त्री हारमोन कम हो गए, पुरुष हारमोन अनुपात में ज्यादा हो गए, तो आवाज में बदलाहट हो जाएगी। ये सारे केमिकल मामले हैं।
हम जो भोजन ले रहे हैं उस पर बहुत कुछ निर्भर है। हम कैसा भोजन ले रहे हैं, इस भोजन में यदि मादक तत्व हैं, इस भोजन में यदि मूर्च्छा लानेवाले तत्व हैं, तो वे शरीर-ऊर्जा को, काम-ऊर्जा को नीचे की तरफ प्रवाहित करेंगे। इस भोजन में अगर उत्तेजक स्टिमुलेंट हैं, एक्टीवाइजर्स हैं, तो वे शरीर की काम-ऊर्जा को नीचे की तरफ प्रवाहित करेंगे। अगर इस भोजन में ट्रैंकोलाइजर्स हैं, और शामक तत्व हैं जो कि मन को शांत करते हैं, उत्तेजित नहीं करते हैं, तो वे ऊर्जा को ऊपर की तरफ ले जाने में सहयोगी होंगे।
यह तो बहुत बड़ी बात है, लेकिन सिद्धांत की बात ख्याल में लाई जा सकती है। जो तत्व उत्तेजना देते हों, जो तत्व मूर्च्छा देते हों, मादकता देते हों, जो तत्व शरीर को भारी कर देते हों, मन को बोझिल कर देते हों, उस तरह के भोजन से निरंतर बचना चाहिए। भोजन ऐसा होना चाहिए जो शरीर को भारी न कर जाये। भोजन ऐसा होना चाहिए जो शरीर को उत्तेजित न कर जाये। भोजन ऐसा होना चाहिए जो शरीर को मादकता न दे, मूर्च्छा न दे, तंद्रा और निद्रा लानेवाला न बने। तो ऐसा भोजन साधक के लिए सहयोगी होता है। और उसके ऊपर की यात्रा का रास्ता बन जाता है।
अगर इसके विपरीत भोजन है, तो साधक की यात्रा कठिन हो जाती है। ऐसा नहीं है कि नहीं हो सकती है, हो सकती है, लेकिन व्यर्थ की कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं। गलत भोजन करके भी साधक ऊपर की तरफ जा सकता है, लेकिन व्यर्थ की कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।
और जब मैंने आहार की पूरी बात कही तो इसको भी ध्यान में ले लेना जरूरी है। जो साधक है, जो अपनी काम-ऊर्जा को ऊपर ले जाना चाहता है, वह सभी कुछ नहीं पढ़ेगा, वह सभी कुछ नहीं देखेगा, वह सभी कुछ नहीं सुनेगा। वह इस बात का विचार करके सुनेगा कि जो संगीत उत्तेजित करता है, वह व्यर्थ है। जो संगीत शांत करता है, वह सार्थक है। वह ऐसे दृश्य नहीं देखेगा जो उत्तेजना से भर देते हैं।
अब आपने देखा होगा... फिल्म भी अगर आप देख रहे हैं तो अक्सर वैसी ही फिल्म ज्यादा देखी जाती हैं जो थ्रीलिंग हैं, जो उत्तेजक हैं, जिनमें आपके रोयें-रोयें खड़े हो जायें और रोंगटे खड़े हो जायें। जो रोमांचकारी हैं। इसलिए फिल्म का एडवरटाइज करने वाला अपनी फिल्म के एडवरटाइज के लिए लिखेगा कि ऐसी रोमांचक फिल्म कभी नहीं बनी, आपके रोंगटे खड़े हो जायेंगे। लेकिन जिस फिल्म में आपके रोंगटे खड़े हो रहे हैं, आप गलत आहार कर रहे हैं। वह

उत्तेजक है, डिटेक्टिव है, हत्या है, खून है, वह सब का सब आपको उत्तेजना से भर रहा है।
अगर फिल्म को देखते वक्त आप किसी दिन फिल्म न देखें, कोने में खड़े हो जायें और लोगों को देखें, फिल्म मत देखें। तो आपको पता चल जाएगा कि कौन सी चीज उत्तेजित करती है। जब उत्तेजना का चित्र आएगा तो सारे लोग अपनी कुर्सियां छोड़कर रीढ़ को सीधा कर लेंगे, सांसें उनकी ठहर जाएंगी, कि पता नहीं सांस के लेने में कोई चीज चूक न जाये। बिल्कुल वे थिर हो जाएंगे। जब उत्तेजक चित्र चला जाएगा, फिर वे अपनी कुर्सी पर वापस टिक जायेंगे, फिर वे आराम से देखने लगेंगे। जितनी बार किसी फिल्म में आदमी कुर्सी छोड़कर बैठ जाता है, उतनी ही उसकी सेक्स-ऊर्जा को नीचे की तरफ जाने में सुविधा बनेगी। लेकिन हम रास्ते पर भी सब कुछ देख रहे हैं, बिना फिक्र किए कि सब कुछ देखना अनिवार्य नहीं है, न उचित है। न सब कुछ देखना-पढ़ना अनिवार्य है, न उचित है। व्यक्ति को प्रतिपल चुनाव करना चाहिए। वह वही भीतर ले जाये जो उसकी जिंदगी को ऊपर ले जानेवाला है। और अगर उसे जिंदगी को नीचे ही ले जाना है तो भी सोच समझ कर ले जाये। फिर वही ले जाये जो नीचे ले जाने वाला है। लेकिन हमें कुछ पता नहीं है। हम अंधों की तरह टटोलते रहते हैं। एक हाथ ऊपर भी मारते हैं, एक हाथ नीचे भी मारते हैं। सुबह चर्च भी हो आते हैं, सांझ फिल्म भी देख आते हैं। चर्च में चर्च की घंटी भी सुन लेते हैं, होटल में जाकर नृत्य भी देख आते हैं। हम इस तरह से अपनी जिंदगी को अपने हाथों से काटते रहते हैं। इस तरह हम अपनी जिंदगी को दोनों तरफ फैलाये रहते हैं और कहीं भी नहीं पहुंच पाते।
निर्णय चाहिए। नीचे जाना है तो जायें और पूरा नर्क तक छू कर लौटें। लेकिन तब भी व्यवस्था चाहिए, तब भी साधना चाहिए। तब फिर ऊपर की बातों को छोड़ दें। फिर चर्च की तरफ भूलकर मत देखें, फिर मंदिर की तरफ मुड़कर भी न जायें, फिर कभी गीता से कोई संबंध न बनायें, फिर साधु से बचें, फिर इनको भूल जायें कि ये दुनिया में हैं, फिर ये बुद्ध, महावीर, कृष्ण, इनके नाम भी न लें। क्योंकि ये ठीक लोग नहीं हैं, आपकी यात्रा में बाधा बनेंगे। आपको नर्क जाना है, अपनी गाड़ी पकड़ें और अपनी गाड़ी पर मजबूती से रुके रहें। लेकिन आदमी अजीब है, एक पांव नर्क की गाड़ी पर रखे रहता है, एक पांव स्वर्ग की गाड़ी पर रखे रहता है। कहीं भी नहीं पहुंच पाता। यह सारी जिंदगी एक घसीटन बन जाती है। वह यहां से वहां तक घसीटता रहता है। आदमी ऐसी बैलगाड़ी है जिसमें दोनों तरफ बैल जोत दिए हैं। वे दोनों तरफ खींचते रहते हैं। कभी यह बैल थोड़ा खींच लेता है, फिर मन पछताता है कि नर्क चूक गया, थोड़ा इस तरफ चलें। फिर थोड़ा नर्क की तरफ गए कि फिर मन पछताता है, कहीं स्वर्ग न चूक जाये, थोड़ा उस तरफ चलें। और सारी जिंदगी ऐसे ही बीत जाती है, बैलगाड़ी कहीं पहुंच नहीं पाती। अस्थिपंजर ढीले हो जाते हैं और बैल मर जाते हैं। फिर नई दुनिया, फिर नई जिंदगी, फिर वही काम हम पुरानी आदत से शुरू करते हैं।
यह निर्णय करें कि कहां जाना है, निर्णय करें क्या होना है, निर्णय करें क्या पाना है, निर्णय करें क्या लक्ष्य है, क्या दिशा है, क्या आयाम है। फिर उस निर्णय के अनुसार चलना शुरू करें, उस निर्णय के अनुसार जिंदगी में सब बदलें। आंख, कान, मुंह, हाथ सब को बदलें। फिर वही स्पर्श करें जो परमात्मा की तरफ ले जानेवाला हो। फिर वही सुनें जिसकी झंकार प्राणों को छुए और वह ऊपर उठ आये। फिर वही खायें जो जीवन को ऊंचा उठाता है और हल्का करता है। फिर वही देखें जो आंखों में दीया बन जाता है और अंधेरे को दूर करता है। और फिर सब कुछ बदल दें।
मंदिर में भी एक सुगंध है। मुसलमान फकीरों ने कुछ सुगंधें चुनी थीं।
इस मुल्क में हिंदू संन्यासियों ने भी कुछ सुगंधें चुनी थीं। उन सुगंधों का कुछ आधार है। उनका कुछ कारण है। जब आदमी किसी गहरे ध्यान में पहुंचता है तो अक्सर जैसी चंदन की गंध होती है, वैसी गंध से भर जाता है। इसलिए तो मंदिर में हमने चंदन को जलाना शुरू किया कि शायद यह गंध किसी के भीतर की गंध को चोट करे और स्मरण दिला दे। जब कोई आदमी ध्यान की किसी स्थिति में पहुंच जाता है तो ऐसी गंध से भर जाता है जैसे लोभान की गंध होती है। इसलिए मुसलमान फकीरों ने लोभान को चुना कि शायद लोभान की गंध किसी के भीतर सोयी

हुई गंध को चोट मार दे और उठा दे। यह सब कुछ चुनाव है, यह सब अकारण नहीं है। इस सबके पीछे कारण है।
एक छोटी-सी बात फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। मुझे कल किसी मित्र ने पूछा कि आपने गैरिक वस्त्र क्यों संन्यास के लिए चुना?
कारण है उसका। जैसे-जैसे चित्त शांत होता है भीतर, वैसे-वैसे सूर्योदय का प्रकाश भीतर फैलना शुरू हो जाता है। वह गैरिक होता है। वह गेरुवे वस्त्र बाहर से उस भीतर के रंग को चोट करते रहें, यही गैरिक वस्त्रों के चुनाव का अर्थ है। रोज-रोज देखता रहे, उठाये, पहने, सोये, उठे, देखता रहे तो शायद उसके भीतर जो सोया हुआ रंग है, एक नये सूर्योदय का। वह जो ध्यान में कभी प्रकट होता है। जैसे अभी सूरज नहीं जगा और सुबह की लालिमा फैल गई, सारी प्राची लाल हो गई है। अभी सूरज नहीं आया है सिर्फ प्राची लाल हो गयी है और पक्षी गीत गाने लगे हैं, और सुबह की ठंडी हवाएं बाहर फैल गई हैं, ठीक वैसा ही कभी ध्यान के किसी क्षण में भीतर भी होता है। उस रंग को देखकर ही इस बाहर के रंग को किसी ने चुन लिया था।
दूसरे रंग भी चुने गए हैं, वे भी भीतर देखे गए रंग हैं। उनके चुनाव के
भी कारण हैं। मुसलमान फकीरों ने हरा रंग चुन लिया था क्योंकि भीतर वह रंग भी देखा जाता है। बुद्ध के साधकों ने पीला रंग चुन लिया था। वह रंग भी भीतर देखा जाता है। थियोसाफिकल सोसाइटी ने कभी एक रंग के लिए सारी दुनिया के बाजारों में खोज की थी--एक नीले रंग के लिए। कर्नल अल्काट को एक रंग ध्यान में दिखायी पड़ा और उस रंग को सारी दुनिया के बाजारों में खोजने के लिए आदमी भेजे गए। क्योंकि अल्काट का कहना था, उसी रंग का उपयोग साधक के लिए करना है। बड़ी मुश्किल हुई, वर्षों खोज हुई, ठीक रंग नहीं मिलता था। नीले के बहुत शेड मिलते थे, लेकिन अल्काट कह देता कि यह वह रंग नहीं है। आखिर दो- तीन साल के बाद इटली के एक बाजार में कहीं वह रंग मिला और तब अल्काट ने कहा कि ठीक है, अब वह रंग मिल गया जो मैंने देखा था। यह रंग काम करेगा। उस रंग को देखने से, जो अल्काट ने रंग देखा था, दूसरे व्यक्ति के भीतर भी झंकार पैदा हो सकती है। वह रंग जगा सकता है।
गैरिक रंग सूर्योदय का रंग है। और भीतर जब प्राणों का उदय होता है तो वैसा रंग फैल जाता है।
रंग भी, ध्वनि भी, गंध भी, स्वाद भी, स्पर्श भी, सबका चुनाव करना होगा,
तब ऊपर की यात्रा शुरू होती है। और हम सब कंफ्यूज्ड हैं, क्योंकि हम सब अनर्गल, असंगत चुनाव करते रहते हैं। अनेक तरह की नाव पर सवार हो जाते हैं।
फिर जीवन टूटता है, जीवन नष्ट होता है और हम कहीं पहुंच नहीं पाते हैं।
आज इतना ही, शेष कल।
क्रास मैदान, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया बारहवां प्रवचन

तंत्र (प्रश्नोत्तर)

ओशो, काम-ऊर्जा को ध्यान और समाधि की दिशा में रूपांतरित करने की साधना में तंत्र का क्या योगदान है? कृपया इसकी रूप-रेखा प्रस्तुत करें।

तंत्र अद्वैत दर्शन है। जीवन को उसकी समग्रता में तंत्र स्वीकार करता है--बुरे को भी, अशुभ को भी, अंधकार को भी। इसलिए नहीं कि अंधकार अंधकार रहे, इसलिए नहीं कि बुरा बुरा रहे, इसलिए नहीं कि अशुभ अशुभ रहे, बल्कि इसलिए कि अशुभ के भीतर भी रूपांतरित होकर शुभ होने की संभावना है। अंधकार भी निखर कर प्रकाश हो सकता है। और जिसे हम पदार्थ कहते हैं, वह भी अपनी परम गहराइयों में परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
तंत्र अद्वैत है। उस एक की ही स्वीकृति है। वह जो बुरा है, वह भी उस एक
का ही रूप है। वह जो अशुभ है, वह भी उस एक का ही रूप है। तंत्र के मन में निंदा किसी की भी नहीं है। कंडेमनेशन है ही नहीं।
जी.एम.एन.टारेल ने एक किताब लिखी है, "ग्रेड्स आफ सिग्नीफिकेंस", महत्ता की सीढ़ियां या महत्ता के सोपान। तंत्र की दृष्टि में जीवन में जो फर्क हैं, वह महत्ता के सोपानों के फर्क हैं। लेकिन पहली सीढ़ी भी मंदिर की अंतिम सीढ़ी का ही हिस्सा है। यदि पहली सीढ़ी हटा दी जाये तो मंदिर की अंतिम सीढ़ी तक पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। जमीन के नीचे छिपी हुई कुरूप जड़ें भी आकाश में खिले हुए फूलों के प्राण हैं। और अगर कुरूप, अंधकार में डूबी हुई जड़ों को काट दिया जाये, तो आकाश में खिलनेवाले सुंदर फूलों की कोई संभावना नहीं। मंदिर की बुनियाद में पड़े हुए बेढंगे पत्थर ही मंदिर के शिखर पर चढ़े हुए स्वर्ण-कलश को संभाले हुए हैं। उन्हें इनकार कर दिया जाये, तो स्वर्ण-कलश भी जमीन पर धूल-धूसरित होकर गिर पड़ता है।
तंत्र, जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करता है। इस बात को पहले समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इसी आधार पर तंत्र ने काम-ऊर्जा के रूपांतरण के विज्ञान को विकसित किया है। तंत्र की दृष्टि में काम-ऊर्जा दिव्य-ऊर्जा का पार्थिवीकरण है। तंत्र की दृष्टि में सेक्स एनर्जी, काम-ऊर्जा, ब्रह्म की ही पहली सीढ़ी है।
इसका अर्थ यह नहीं है कि तंत्र चाहता है कि व्यक्ति काम में डूबा रहे। इसका इतना ही अर्थ है कि हम जहां खड़े हैं, यात्रा वहीं से करनी पड़ेगी; और हम जहां खड़े हैं अगर वह भूमि, उस भूमि से नहीं जुड़ी है जहां हमें पहुंचना है, तो फिर यात्रा का कोई उपाय नहीं। मनुष्य काम में खड़ा है।
मनुष्य काम में, काम की भूमि में, मौजूद है। जहां हम अपने को प्रकृति
की तरफ से पाते हैं, वह बिंदु काम का, सेक्स का बिंदु है। प्रकृति हमें वहीं खड़ा किए हुए है। कोई भी यात्रा इस बिंदु से ही होगी। अब इस बिंदु से हम दो तरह की यात्रा कर सकते हैं।
एक, जो साधारणतः लोग करने की कोशिश करते हैं, लेकिन कभी कर नहीं पाते,
वह यह कि हम अपनी स्थिति से लड़ना शुरू कर दें। हम जहां खड़े हैं, उस भूमि के दुश्मन हो जायें, अर्थात हम अपने ही दुश्मन हो जायें और अपने को ही दो हिस्सों में खंडित कर लें। एक वह हिस्सा, जिसकी हम निंदा करते हैं, जो हम हैं। और एक वह हिस्सा जिसकी हम प्रशंसा करते हैं, जो हम अभी नहीं हैं, जो हम होना चाहते हैं। हम अपने को दो हिस्सों में तोड़ लेंः जो है और जो होना चाहिए।
और जब भी कोई व्यक्ति अपने को ऐसे दो खंडों में तोड़ता है तो पहली तो बात यह समझ लेनी चाहिए कि जिसे वह इनकार कर रहा है वही वह है, और जिसे वह स्वीकार कर रहा है वही वह नहीं है। उसका सारा जीवन अब एक बहुत बेहूदे, एब्सर्ड संघर्ष में उतर जाएगा। जो वह नहीं है, समझना चाहेगा कि मैं हूं, और जो वह है उसे इनकार करना चाहेगा कि वह मैं नहीं हूं। ऐसे व्यक्ति केवल विक्षिप्त हो सकते हैं। तंत्र की दृष्टि में यह अंतर-कलह है।

अगर कोई ब्रह्मचर्य तक पहुंचना चाहता है तो काम से लड़कर नहीं, क्योंकि तंत्र कहता है कि स्वयं से लड़कर तो हम कहीं भी नहीं पहुंच सकते हैं। लड़ेगा कौन? लड़ेगा किससे? हम एक हैं। लड़ने का अर्थ है, अपने को दो खंडों में बांटना होगा। वह सीजोफ्रेनिक है। इस तरह व्यक्ति दो खंडों में टूटकर विक्षिप्त होगा। उससे स्प्लिट पर्सनाल्टी पैदा होगी। सिर्फ हमारे भीतर खंड-खंड छितर जाएंगे। तंत्र कहता है कि काम को ही रूपांतरित करना है ब्रह्मचर्य तक, काम की ही शक्ति को ले जाना है ब्रह्म तक। वही काम की शक्ति जो दूसरे तक दौड़ती है, उसे पहुंचाना है स्वयं तक। वही काम की शक्ति जो दूसरे की आकांक्षा करती है, उससे ही आकांक्षा करवानी है स्वयं की गहराइयों की। वही काम की शक्ति जो छुद्र सुख को खोजती है, उसी काम-शक्ति को मोड़ देना है विराट, अनंत आनंद की ओर, शाश्वत की ओर, मुक्ति की ओर। तंत्र की इस दृष्टि को मैं अद्वैत की दृष्टि कहता हूं।
वे सारे लोग जो जीवन को कलह की भाषा में, कांफ्लिक्ट की भाषा में देखते हैं, द्वैतवादी हैं, डुआलिस्ट। वे मानते हैं कि जीवन में दो तत्व हैं, और दोनों को लड़ाना है। शरीर को लड़ाना है आत्मा से, परमात्मा को लड़ाना है प्रकृति से, काम को लड़ाना है ध्यान से। लड़ाने की ही भाषा में उनके सारे चिंतन का जाल फैलता है। ऐसे लड़ानेवाले लोग जीवन के सत्य को नहीं जानते। तंत्र कहता है, लड़ाना नहीं है, रूपांतरित करना है, ट्रांसफार्म करना है, जो हमारे पास है। आज विज्ञान भी तंत्र की बात से सहमत है। क्योंकि विज्ञान ने अगर इधर तीन सौ वर्षों में कुछ भी मौलिक सिद्धांतों की घोषणा की है तो उनमें एक सिद्धांत यह है कि ऊर्जा का हनन नहीं हो सकता। एनर्जी को नष्ट नहीं किया जा सकता। ऊर्जा को नष्ट करने का कोई उपाय ही नहीं है। हम सिर्फ बदल सकते हैं, विनष्ट नहीं कर सकते। एक रेत के छोटे-से कण को भी विज्ञान की महत्तम से महत्तम शक्ति नष्ट नहीं कर सकती, जो उस रेत के कण में छिपा है। हां, उसे रूपांतरित कर सकती है; उसे दूसरा रूप दे सकती है। दूसरा फार्म, दूसरी आकृति, दूसरा जीवन, दूसरा जगत, सब कुछ बदला जा सकता है, लेकिन उस रेत के छोटे से कण में जो ऊर्जा, जो एनर्जी छिपी है उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। विज्ञान कहता है, इस जगत में कुछ भी विनष्ट नहीं होता है।
इसका दूसरा पहलू भी है। इस जगत में किसी भी चीज की सृष्टि नहीं होती।
न कुछ मिटता है, न कुछ बनता है, सिर्फ रूपाकृतियां बदलती हैं। बीज था, वृक्ष हो जाता है। बीज मिट जाता है, लेकिन हमारे देखने की कमी के कारण। बीज मिटता नहीं, बीज में छिपी ऊर्जा वृक्ष बन जाती है। फिर कल वृक्ष मर जाता है, मिट जाता है, और हजारों बीजों को अपने पीछे फिर छोड़ जाता है। ऊर्जा सिर्फ रूप बदलती रहती है, ऊर्जा नष्ट नहीं होती है। न कुछ बनता है जगत में, न कुछ मिटता है।
इसलिए जो लोग बनाने-मिटाने की भाषा में सोचते हैं, वे अवैज्ञानिक ढंग
से सोचते हैं। सेक्स को मिटाया नहीं जा सकता, लेकिन एक अर्थों में सेक्स बिल्कुल विदा हो सकता है, जैसे बीज विदा हो गया। आज कहां है वह बीज जो कल था? अब वह वृक्ष है। अगर बीज को खोजने जाएंगे तो कहीं भी उसे खोज नहीं सकेंगे। कहा जा सकता है, बीज मिट गया। लेकिन गलत होगी वह भाषा। बीज मिटा नहीं, रूपांतरित हो गया। क्योंकि जहां बीज था, वहां अब वृक्ष है; जो बीज था, वही अब वृक्ष है।
ब्रह्मचर्य सेक्स का विनाश नहीं है, ब्रह्मचर्य वहां है अब, जहां कल काम था। जहां कल काम की ऊर्जा बाहर की तरफ दौड़ रही थी, आज वहां वही ऊर्जा ब्रह्मचर्य बनकर भीतर की तरफ दौड़ी चली जा रही है। जहां कल तक जिस ऊर्जा की गति बहिर्गामी थी, वही ऊर्जा की गति अब अंतर्गामी हो गई है। जो ऊर्जा केंद्र से परिधि की तरफ दौड़ती थी, अब परिधि से केंद्र की तरफ दौड़ने लगी है। लेकिन ऊर्जा वही है। ऊर्जा विनष्ट नहीं होती है। तंत्र ने इस घोषणा को विज्ञान की आधुनिक समझ के बहुत पहले मनुष्य को दिया है।
तंत्र कहता है, किसी शक्ति को नष्ट करने के पागलपन में मत पड़ जाना, अन्यथा स्वयं ही टूटोगे, बिखरोगे, शक्ति को नष्ट नहीं कर पाओगे। इसलिए जो लोग भी काम से लड़ेंगे, वे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते, सिर्फ विकृतियों को, परवर्सन को उपलब्ध होते हैं। जो व्यक्ति भी अपने काम से

संघर्षरत हो जायेगा, शत्रुता पाल लेगा... और हममें से अधिक लोग काम से शत्रुता पाले हुए हैं।
असल में हम या तो शत्रुता पालना जानते हैं या मित्रता पालना जानते हैं। दोनों के बीच में ठहरना हम नहीं जानते। या तो हम पागल की तरह मित्र बन जाते हैं या हम पागल की तरह शत्रु बन जाते हैं, लेकिन हमारा पागलपन कायम रहता है। हम कभी भी तटस्थ होकर नहीं देख पाते।
तंत्र कहता है, काम को तटस्थ होकर देखना पहला सूत्र है। काम को मित्र
की तरह मत देखो, शत्रु की तरह मत देखो; काम को भोगने योग्य की भांति मत देखो, काम को त्यागने योग्य की भांति मत देखो। काम को देखो एक शुद्ध ऊर्जा की भांति, एक प्योर एनर्जी की भांति। वह सत्य भी है। मित्रता, शत्रुता हमारे दृष्टिकोण हैं, तथ्य नहीं हैं। मित्रता, शत्रुता हमारी व्याख्याएं हैं, इंटरप्रिटेशन्स हैं, तथ्य नहीं हैं। तथ्य तो इतना ही है कि वह एक ऊर्जा, एक विराट ऊर्जा, जो बाहर की तरफ फैलती चली जाती है, जो दूसरे की मांग करती है, जो विरोधी की मांग करती है, इस ऊर्जा को ऊर्जा की तरह देखें। तंत्र का यह पहला सूत्र है।
और इसे ऊर्जा की तरह देखते ही सारी दृष्टि बदल जाती है। क्योंकि तब न
हम भोगने को आतुर हैं, न हम त्यागने को आतुर हैं। जो त्यागने को आतुर है, वह हारा हुआ भोगी है, थका हुआ भोगी है, ऊबा हुआ भोगी है, परेशान हुआ भोगी है। वह भोगी ही है, जो अब त्याग की बात कर रहा है। लेकिन जब भोग से ऊब गया आदमी तो त्याग पर कितने दिन रुकेगा कि न ऊब पाये?
जो भोग से ऊब गया है, वह जल्दी ही त्याग से भी ऊब जाएगा। जब भोग तक से
ऊब रहे हैं, तो त्याग से कैसे बच सकेंगे ऊबने से? त्याग उसी भोग का दूसरा पहलू है, वह उसी सिक्के की दूसरी तस्वीर है। जब एक पहलू से ऊब गए हैं, तब दूसरे पहलू से भी ऊब जाएंगे।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि यह काम-ऊर्जा के रूपांतरण के लिए अनिवार्य समझ बनेगी।
प्रत्येक काम के कृत्य के दो पहलू हैं। प्रत्येक कृत्य के ही दो पहलू हैं। काम-कृत्य के भी दो पहलू हैं। उदाहरण से समझें कि भूख लगी है, खाने के लिए आतुर हैं, पागल हैं, सब दांव पर लगा सकते हैं। फिर भोजन कर लिया है। फिर भोजन करने के बाद भोजन को बिल्कुल भूल जाते हैं, फिर भोजन की कोई याद नहीं रह जाती। और अगर ज्यादा भोजन कर लिया तो जिस भोजन के लिए पागल थे, उसी भोजन को वोमिट करने की, वमन करने की इच्छा पैदा हो जाती है। जिस भोजन के लिए दीवाने थे, उसी से अरुचि पैदा हो जाती है। जिस भोजन के लिए सब कुछ दांव पर लगाने के लिए तैयार थे, अब उसी के प्रति मन में बड़ा तिरस्कार और निंदा पैदा हो जाती है। चित्त की प्रत्येक वृत्ति, भूख और प्यास के दो पहलू हैं--प्यास की स्थिति और फिर प्यास के पूरे हो जाने की स्थिति।
ठीक ऐसे ही काम जब मांग करता है मन में, तब आदमी विक्षिप्त और पागल होकर काम के पीछे दौड़ता है। फिर काम एक शिखर तक ले जाता है, जहां सिर्फ शक्ति क्षीण होती है, और व्यक्ति वापस उदासी के गड़्ढे में गिर जाता है। उस उदासी के गड्ढे में अब वह काम के विरोध में सोचता है। ऐसा भोगी खोजना मुश्किल है जो भोग के बाद त्याग की भाषा में न सोचता हो।
त्याग जो है वह काम की ही पृष्ठभूमि में सोचा गया ख्याल है। त्याग जो
है वह काम का ही पश्चात्ताप है, रिपेंटेंस है। त्याग जो है वह खोयी गई शक्ति के लिए किया गया दुख है। सभी भोगी काम की तृप्ति के बाद त्याग का, रिनंसिएशन का, विषाद का, उपेक्षा का, तिरस्कार का अनुभव करते हैं। पति पत्नी की तरफ पीठ करके जब सो जाता है तो वह पीठ बड़ी सूचक है। पत्नी उस पीठ की सूचना को भी समझती है, इसलिए पत्नी पीठ के पीछे निरंतर रोती है। क्योंकि क्षण भर पहले यही व्यक्ति पागल था और यही व्यक्ति क्षण भर के बाद पीठ कर लिया है। और यही व्यक्ति अब ऐसा उदास और थका और परेशान है, जैसे दोबारा अब इसकी यह मांग नहीं उठनेवाली है। चौबीस घंटे में, अड़तालीस घंटे में, शक्ति और उम्र के अनुसार मांग फिर पकड़ लेगी, फिर भोग का चित्त खड़ा हो जाएगा, और वह पिछला सब पश्चात्ताप भूल जाएगा जो उसने कल तक किये थे। और फिर पश्चात्ताप, और पश्चात्ताप के क्षण में वह भोग की सब आकांक्षाएं, स्वप्न, सुख की कामनाएं, सब भूल जायेगा जो उसने जिंदगी भर की हैं।

त्याग और भोग एक सिक्के के दो पहलू हैं। प्रत्येक व्यक्ति चौबीस घंटे में निरंतर त्याग और भोग के पेंडुलम में घूमता रहता है। कुछ लोग फिर इसमें से एक को पकड़ लेते हैं। कुछ लोग भोग को पकड़ लेते हैं तो वे वेश्यागृहों में पड़े रह जाते हैं। कुछ लोग इसमें से दूसरे सिक्के को, पश्चात्ताप को पकड़ लेते हैं, तो मोनेस्ट्रीज में, आश्रमों में बैठ जाते हैं। लेकिन ये दोनों ही उस सिक्के के एक-एक हिस्से को पकड़े हुए हैं जिसमें दूसरा पहलू पीछे छिपा है।
इसलिए मोनास्ट्री में भागा हुआ व्यक्ति, आश्रम में भागा हुआ व्यक्ति अपने चित्त में रोज-रोज काम की तरंगों को उठता हुआ अनुभव करेगा। पुकार आती रहेगी उस दूसरे पहलू से, जिसको छोड़ा नहीं गया, सिर्फ दबाया गया है। सिक्के के दोनों पहलू एक साथ छोड़े जा सकते हैं, एक पहलू कभी भी नहीं छोड़ा जा सकता है। ज्यादा से ज्यादा हम एक पहलू को नीचे कर सकते हैं, दूसरे को ऊपर कर सकते हैं। लेकिन अगर हाथ में सिक्का है, तो दूसरा पहलू भी हाथ में है। इसलिए त्यागी निरंतर भोग का आकर्षण अनुभव करता है, और इसलिए त्यागी निरंतर भोग के खिलाफ बोलता रहता है। वह आपको नहीं समझा रहा है, वह अपने को ही समझा रहा है।
इसलिए दुनिया के समस्त त्यागियों ने भोग को ऐसी गालियां दी हैं कि शक होता है कि उनके चित्त में जरूर ही भोग का आकर्षण रहा होगा, अन्यथा इस तरह की गालियों का कोई प्रयोजन नहीं है। अगर भोग छूट ही गया हो तो उसको गाली देने में भी रस नहीं रह जाएगा। लेकिन अगर त्यागियों के ग्रंथ उठाकर देखें तो बड़ी हैरानी होगी। जिस तरह भोगी प्रशंसा कर रहे हैं, उसी तरह त्यागी निंदा कर रहे हैं।
भोगी क्यों प्रशंसा कर रहा है? भोगी अपने पश्चात्तापों को मिटाने के लिए प्रशंसा किये चला जा रहा है। वह अपने को समझा रहा है कि पश्चात्ताप व्यर्थ थे। क्षण की कमजोरी थी, बेकार थी। आकर्षण बहुत है, रस बहुत है, स्वर्ग बहुत है। वह अपने पश्चात्तापों को धो डालने के लिए प्रशंसा कर रहा है। और ऐसी प्रशंसा कर रहा है जो सत्य नहीं है। प्रशंसाएं कभी सत्य नहीं होतीं। और त्यागी उससे उलटा निंदा कर रहा है। वह अपने भोग के क्षणों में पाए गए सुख की स्मृतियों को झुठलाने की कोशिश में लगा है। वह कह रहा है, सब गलत है। मन से कह रहा है, झूठ हैं ये बातें, नर्क हैं बिल्कुल। मन स्वर्ग की स्मृतियां दिलाता है। वह नर्क कह-कह कर उन स्मृतियों को नष्ट करने में लगा है। लेकिन ये दोनों ही दमन कर रहे हैं। भोगी त्याग का दमन कर रहा है, त्यागी भोग का दमन कर रहा है। ये दोनों ही सप्रेसिव माइंड हैं।
यह बात भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है। आमतौर से हम त्यागी को दमनकारी कहते हैं, लेकिन भोगी को हम कभी दमनकारी नहीं कहते। यह गलत बात है। त्यागी भी दमन करता है, भोग का दमन करता है। भोगी भी दमन करता है, अपने पश्चात्तापों, अपने त्यागों का दमन करता है। दोनों ही दमन करते हैं। तंत्र कहता है, दमन मत करो, देखो, जानो, पहचानो। इन दोनों के द्वंद्व
से बचो। यह द्वैत गलत है। न तो प्रशंसा करो, न निंदा करो। क्योंकि अभी प्रशंसा करोगे तो थोड़ी देर बाद निंदा करोगे। जैसे दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन, ऐसे ही प्रशंसा के पीछे निंदा और निंदा के पीछे प्रशंसा उनका वर्तुल घूम रहा है। तो तंत्र कहता है कि तुम देखो कि दोनों ही व्यर्थ हैं। ऊर्जा को तटस्थ देखो। समस्त ऊर्जा तटस्थ है। न शुभ है, न अशुभ है। न त्यागने योग्य है, न भोगने योग्य है।
अगर कोई व्यक्ति अपनी जीवन-ऊर्जा को इस दोहरे द्वंद्व से बचाकर देख पाये, तो क्या परिणाम होगा? तो तंत्र कहता है, जैसे ही जीवन-ऊर्जा को कोई ऊर्जा की भांति, जस्ट ऐज एनर्जी, बिना किसी वैल्युएशन के, बिना किसी मूल्यांकन के देखता है, वैसे ही ऊर्जा ठहर जाती है। न तो वह आगे की तरफ जाती है, न तो वह पीछे की तरफ जाती है। न वह बाहर की तरफ जाती और न वह भीतर की तरफ जाती है। क्योंकि ऊर्जा को हम ले जाते हैं; प्रशंसा से बाहर की तरफ ले जाते हैं, निंदा से भीतर की तरफ ले जाते हैं।
घड़ी के पेंडुलम को हमने घूमते देखा है, लेकिन एक सूत्र ख्याल में न आया होगा और वह यह कि जब घड़ी का पेंडुलम बायीं तरफ जाता है तब वह दायीं तरफ जाने की शक्ति अर्जित करता है। और जब वह दायीं तरफ जाता है तब वह बायीं तरफ

जाने की शक्ति इकट्ठा करता है। असल में दायीं तरफ जाकर वह बायीं तरफ जाने की तैयारी करता है और बायीं तरफ जाकर दायीं तरफ जाने की तैयारी करता है। उसी हिसाब से वह घूमता रहता है।
जब आप अपनी काम-ऊर्जा की प्रशंसा कर रहे हैं, तब आप निंदा की तैयारी कर रहे हैं; और जब आप निंदा कर रहे हैं तब आप प्रशंसा की तैयारी कर रहे हैं। यह उलटा ख्याल एकदम से समझ में नहीं आता। यह ला आफ रिवर्स इफेक्ट है। यह आदमी के मन में विरोधी ऊर्जा इकट्ठी होती रहती है।
मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर हसीद ने एक किताब लिखी है। वह किताब एक क्रांतिकारी किताब थी और यहूदियों का जो आर्थाडाक्स, रूढ़िग्रस्त वर्ग था, वह बहुत कुपित था उस किताब पर। तो उसने अपने एक भक्त को, अपने एक प्रेमी को वह किताब देकर कहा कि यहूदियों का जो सबसे बड़ा रब्बी है, उसको भेंट कर आओ। वह भक्त बहुत घबराया। उसने कहा, पता नहीं, वह कैसा व्यवहार करे? हसीद फकीर ने कहा, तुम उनके व्यवहार का उत्तर मत देना। वह जो भी व्यवहार करे, उसे ठीक-ठीक आकर मुझे बता देना। और ध्यान रखना कि तुम उनके व्यवहार को रिएक्ट मत करना, नहीं तो तुम ठीक-ठीक खबर न दे पाओगे। तुम सिर्फ देखना कि वह क्या व्यवहार करते हैं। तुम कुछ करने मत लग जाना। अगर वे गाली दें तो तुम गाली का उत्तर मत देना, अगर वह क्रोध करें तो तुम समझाने की कोशिश मत करना। तुम सिर्फ विटनेस, साक्षी रहना, ताकि तुम ठीक-ठीक खबर मुझे दे सको। तुम्हें मैं एक गवाह की तरह वहां भेज रहा हूं।
वह आदमी गवाह की तरह वहां गया। सांझ थी और रब्बी अपनी पत्नी के साथ बगीचे में बैठा था। भक्त ने उसे वह किताब दी और कहा कि फलां फकीर ने आपके लिए भेंट भेजी है। नाम सुनते ही रब्बी ने किताब को उठाकर जोर से फेंक दिया और कहा कि दरवाजे के बाहर रखो। ऐसी अधार्मिक किताबें इस मकान के भीतर भी प्रवेश नहीं कर सकतीं। लेकिन उस आदमी को कहा गया था कि वह सिर्फ गवाह की तरह रहेगा, एक क्षण तो उस आदमी को हुआ कि कुछ करे, एक क्षण तो हुआ कि कुछ कहे, लेकिन उसे कहा गया था कि उसे भागीदार, पार्टीसिपेंट नहीं होना है, उसे सिर्फ गवाह होना है। तो वह खड़ा रहा। तभी रब्बी की पत्नी ने कहा, ऐसा भी क्या क्रोध कर रहे हैं! घर में हजारों किताबें रखी हैं, लाइब्रेरी की रैक पर इसको भी रख दें, और फेंकना भी हो तो पीछे फेंक सकते हैं, इस बेचारे आदमी को इतना दुख देने की भी क्या जरूरत है? मन हुआ कि वह धन्यवाद दे उसकी पत्नी को, लेकिन फिर ख्याल आया कि वह सिर्फ गवाह की तरह भेजा गया है। उसे कुछ करना उचित नहीं है। वह खड़ा देखता रहा।
फिर उसने पूछा, मैं जाऊं? रब्बी और उसकी पत्नी दोनों ने पूछा, लेकिन आपने कुछ भी कहा नहीं। उसने कहा, मैं सिर्फ गवाह की तरह भेजा गया हूं। मुझे खबर दे देनी है, जो हो रहा है। मुझे कहा गया है कि मुझे भागीदार नहीं होना है। लेकिन चलते वक्त उसने कहा कि एक खबर आपको जरूर दे जाऊं कि जिंदगी में यह पहला मौका है कि मैं किसी चीज में सिर्फ गवाह था, और मेरा पहला मौका है कि अपनी पूरी जिंदगी के लिए मेरा चित्त हंस रहा है। काश, मैं पूरी जिंदगी ऐसा गवाह हो पाता!
वह वापस चला आया। फिर हसीद फकीर ने पूछा, क्या हुआ? तो उसने कहा, ऐसा- ऐसा हुआ। हसीद फकीर ने पूछा, तुमने कोई प्रतिक्रिया तो नहीं की? उसने कहा, नहीं, मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। हसीद फकीर ने पूछा कि अब तुम्हारा क्या ख्याल है? अगर तुम उस वक्त प्रतिक्रिया करते तो क्या ख्याल होता और अब अगर प्रतिक्रिया करो तो क्या ख्याल है? तो उस आदमी ने कहा कि बिल्कुल हालत बदल गयी। अगर उस वक्त मैं प्रतिक्रिया करता तो मैं समझता कि वह रब्बी दुश्मन है और उसकी पत्नी मित्र है। लेकिन गवाह की तरह देख आया तो अब मैं कह सकता हूं कि रब्बी आज नहीं कल मित्र बन सकता है, पर उसकी पत्नी के मित्र बनने की कोई उम्मीद नहीं है। हसीद ने पूछा, क्यों? तो उसने कहा कि रब्बी ने इतने जोर से किताब क्रोध में फेंकी कि आज नहीं कल उसे किताब पढ़नी ही पड़ेगी, आज नहीं कल वह पछताएगा। लेकिन पत्नी ने बड़े ठंडे दिल से इतना कहा कि रख दो लाइब्रेरी में, हजार किताबें रखी हैं, यह भी रखी रहेगी। उससे कोई उम्मीद नहीं है कि वह पढ़े। तो अब मैं कह सकता हूं कि रब्बी की पत्नी ही दुश्मन है। रब्बी तो मित्र बन सकता है। वह हसीद हंसने लगा। उसने कहा कि तुम घड़ी के पेंडुलम के सिद्धांत को समझ गए हो।

जिंदगी बड़ी उलटी प्रतिक्रियाएं इकट्ठी करती है। भोगी रोज-रोज त्याग
की कसमें खाता है, त्यागी रोज-रोज भोग की आकांक्षाओं में लिप्त होता है। तंत्र कहता है, दोनों व्यर्थताएं हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तंत्र कहता है, ऊर्जा सिर्फ ऊर्जा है। मत देखो भोगने की तरह, मत देखो त्यागने की तरह। देखो ही मत कुछ करने की तरह। सिर्फ ऊर्जा के गवाह बन जाओ, जस्ट बी ए विटनेस। और जैसे ही ऊर्जा का कोई गवाह बने, ऊर्जा न बाहर जाती है, न भीतर जाती है, ऊर्जा खड़ी रह जाती है। और जैसे ही ऊर्जा खड़ी रह जाए, वैसे ही ऊर्जा में रूपांतरण शुरू हो जाता है।
और एक बड़े मजे का एक दूसरा नियम आपसे कहूं। इस जगत में कोई भी चीज खड़ी नहीं रह सकती। इस जगत में कोई भी चीज ठहर नहीं सकती। इस जगत में कोई भी चीज या तो बाहर जाएगी या भीतर जाएगी। इस जगत में कोई भी चीज या तो आगे जाएगी या पीछे जाएगी। इस जगत में ठहराव नहीं है, यहां कुछ भी ठहरा नहीं रह सकता। प्रत्येक चीज प्रतिपल आगे-पीछे हो रही है। अगर ऊर्जा खड़ी हो जाए, न भीतर जाए, न बाहर जाए, तो एक क्षण को ऐसा दिखाई पड़ेगा कि ऊर्जा खड़ी हो गई, क्योंकि उसका बाहर जाना तत्काल बंद हो जायेगा। आप कुछ न करें, सिर्फ गवाह बने रहें, तो आप पाएंगे कि ऊर्जा ने भीतर जाना शुरू कर दिया। ऊर्जा जीवंत है, रुक नहीं सकती, कहीं जाएगी ही। अगर नीचे न जाएगी तो ऊपर जाएगी।
इसलिए तंत्र कहता है, बाहर ले जाने के लिए मनुष्य को बड़े उपाय करने पड़ते हैं। भीतर ले जाने के लिए सिर्फ निरुपाय हो जाना पड़ता है। बाहर ले जाने के लिए बड़े एफर्ट करने पड़ते हैं, क्योंकि बाहर ले जाना अस्वाभाविक है। भीतर ले जाने के लिए उपाय नहीं करने पड़ते हैं। भीतर ले जाने के लिए एक ही उपाय करना पड़ता है, बाहर ले जाने वाले उपाय छोड़ देने पड़ते हैं। और भोगी और त्यागी दोनों ही बाहर लड़ते रहते हैं। एक ऊर्जा को भीतर की तरफ खींचता है। जितना भीतर की तरफ खींचता है, ऊर्जा उतना बाहर की तरफ धक्का देती है। दूसरा, जितना बाहर की तरफ धक्के देता है, ऊर्जा भीतर की तरफ जाने की चेष्टा करती है। जैसे गेंद को दीवाल पर फेंक कर मारा गया हो और गेंद आपकी तरफ लौट आती हो, ठीक ऐसे ही शक्ति के साथ हमारा संघर्ष एब्सर्डिटीज में ले जाता है, असंगतियों में ले जाता है।
तंत्र कहता है, ठहर जाओ। गवाह बन जाओ। साक्षी बन जाओ। देखो, निर्णय मत लो, व्याख्या मत करो, पक्ष-विपक्ष मत चुनो, प्रशंसा नहीं, निंदा नहीं। खड़े रह जाओ। बस एक बार देख लो। स्टैंड स्टिल। और जैसे ही कोई एक क्षण को खड़ा हो गया, तत्काल एक क्षण को लगता है कि ठहर गई, क्योंकि बाहर जाना तत्काल बंद हो जाता है, और दूसरे क्षण पता चलता है कि धारा भीतर की तरफ बहने लगी। बाहर की तरफ बहना नीचे की तरफ बहना है। भीतर की तरफ बहना ऊपर की तरफ बहना है। भीतर और ऊपर पर्यायवाची हैं, इस अंतर्यात्रा में। बाहर और नीचे पर्यायवाची हैं, इस साधना में। और जैसे ही ऊर्जा भीतर की तरफ बहती है तो अंतर्मैथुन शुरू होता है। वह तंत्र की अपनी अदभुत कला की बात है अंतर्मैथुन।
एक संभोग है जो व्यक्ति दूसरे से करता है, एक रति है, एक संबंध है जो व्यक्ति अपने विरोधी से, अपोजिट सेक्स से निर्मित करता है। पुरुष स्त्री से या स्त्री पुरुष से। लेकिन जब भीतर की तरफ यात्रा शुरू होती है तो अपने ही भीतरी केंद्रों पर संबंध निर्मित होने शुरू हो जाते हैं। एक मूलाधार जब दूसरे मूलाधार से संबंधित होता है तो यौन घटित होता है। वे भी दो चक्र हैं। उनके मिलन से यौन घटित होता है। क्षण भर का सुख घटित होता है। जैसे ही मूलाधार से शक्ति भीतर के दूसरे चक्र की तरफ बहनी शुरू होती है, दूसरे चक्र पर मिलन घटित होता है। दो चक्र फिर मिलते हैं, लेकिन यह अंतर-चक्रों का मिलन है, और तंत्र शुरू हो गया। अंतर्मैथुन शुरू हुआ।
ऐसे सात चक्र हैं और प्रत्येक चक्र पर जब ऊर्जा पहुंचती है तो और गहरे आनंद और गहरे आनंद का अनुभव होता है, और सातवें चक्र पर ऊर्जा के बहने पर परम आनंद का विस्फोट, एक्सप्लोजन हो जाता है। उसके बाद कोई चक्र नहीं है। उसके बाद ऊर्जा परम ब्रह्म से एक हो जाती है।
ये जो अंतर-चक्र हैं व्यक्ति के अपने भीतर, इनसे ही मिलन-ऊर्जा का नाम अंतर्मैथुन है। यह सुख... तंत्र कहता है इसे महासुख, क्योंकि सुख कहना ठीक नहीं है। सुख तो वह है जो हमने दूसरों से मिलकर जाना है। हालांकि दूसरे से

हम कभी मिल नहीं पाते। मिल भी नहीं पाते कि बिछुड़ना शुरू हो जाता है। मिलना हो भी नहीं पाता कि टूटना हो जाता है। मिल भी नहीं पाते कि ऊर्जाएं अलग हो जाती हैं। इसलिए दूसरे से सिर्फ मिलने की कामना ही होती है, घटना नहीं घटती। घट भी नहीं पाती कि मिट जाती है। लेकिन अपने ही भीतर तो टूटने का कोई सवाल नहीं। मिलन गहरा होने लगता है, शाश्वत होने लगता है, और जैसे- जैसे गहरे चक्रों पर व्यक्ति पहुंचता है वैसे-वैसे महासुख की धारा बहने लगती है। लेकिन यह महासुख की धारा यौन-ऊर्जा का ही रूपांतरण है।
तो पहली तो बात गवाह होना जरूरी है। तटस्थ दृष्टि होनी जरूरी है। यौन
की दुश्मनी नहीं, मित्रता नहीं, सहज भाव होना जरूरी है। और दूसरी बात, यह जो तटस्थ क्षण है, यह जो रुक जाने का, ठहर जाने का क्षण है, इस क्षण में बड़ी गहरी प्रतीक्षा और धैर्य चाहिए। क्यों? क्योंकि हमारी जिंदगी में यौन का जो अनुभव है वह एक क्षण का अनुभव है। क्षण के भी हजारवें हिस्से का अनुभव है। और जैसे ही वह क्षण पूरा भी नहीं हो पाता कि चित्त वापस लौट जाता है। विरोध में लौट जाता है। इसलिए आदतवश जब यह ठहरने का क्षण भी आता है तंत्र में, तब भी चित्त तत्काल वापस लौटने लगता है। यह उसकी पुरानी आदत है। इसलिए बड़े धैर्य की जरूरत है। जब भीतर के चक्रों पर ऊर्जा प्रवाहित हो, तब जरा धैर्य रखने की जरूरत है। सुख बहुत मिलेगा, लेकिन वापस मत लौट जाइए। पहले सुख का अनुभव यौन-सुख जैसा ही होता है, संभोग जैसा ही होता है। इसलिए जल्दी से वापस मत लौट जाइए। पुरानी आदत जोर करेगी। आपको पता भी नहीं चलेगा और आप पायेंगे कि आप वापस लौट गये हैं। क्योंकि चित्त हमारा मेकेनिकल हैबिट से चलता है। उसकी सारी बंधी हुई आदतें हैं। वह अपनी आदतों से ही जीता है। जैसी आदतें हैं वह वैसे ही किए चला जाता है। स्वाभाविक भी यही है, क्योंकि चित्त के पास आदत के अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं है। उसका जो ज्ञान है वह यही है, वह अपनी आदत को दोहरा लेगा।
इसलिए तंत्र की ध्यान-साधना में बड़ी से बड़ी जो बात है जानने की वह यह
है कि पहले क्षण का पहले चक्र पर अनुभव संभोग जैसा होगा, तब मन एकदम लौट जाना चाहेगा। उस वक्त धैर्य और प्रतीक्षा, पेसेंट अवेटिंग की जरूरत है। उसमें जल्दी मत लौट जाइये। कठिनाई होगी, दस-पांच दफा वापिस लौट ही जाइयेगा, लेकिन उस वक्त धैर्य रखिये, उसे देखते रहिए, देखते रहिए। एक-एक क्षण लंबा मालूम होगा, कि बहुत टाइमलेस है, कि कब पूरा होगा। क्योंकि मन की आदत क्षण के सुख की ही है। अगर महासुख उतरेगा तो भी घबराकर वापस लौट जाता है। इस क्षण में ही तपश्चर्या की जरूरत है। इस क्षण में धैर्य की जरूरत है। रुक जायें, और भीतर, और भीतर डूबते जायें। यह जो महासुख का अनुभव है, यह मृत्यु जैसा मालूम होगा। इतनी घबराहट होगी।
असल में यौन का मृत्यु से गहरा संबंध है। सेक्स और डेथ बहुत गहरे रूप
से जुड़े हैं। आदमी भी अपने प्रत्येक संभोग में कुछ मरता है। प्रत्येक संभोग में उसकी जीवन-शक्ति क्षीण होती है। और अगर हम कुछ प्राणियों की तरफ नजर डालें तब तो बहुत हैरानी हो जाएगी। कुछ प्राणी तो एक ही संभोग में मर जाते हैं। अपनी मादा के ऊपर से उन्हें मुर्दा ही उतारा जाता है। वह जिंदा नहीं लौटते। एक ही संभोग उनकी मृत्यु बन जाती है। और भी कुछ प्राणी हैं जिनके संभोग को समझकर तो और भी हैरानी होगी। फर्क नहीं है हमारे और उनके संभोग में। सिर्फ टाइम-गैप का, समय का फर्क है।
एक अफ्रीकी मकड़ा संभोग करता रहता है, और उसकी मादा उसको ऊपर से चबाना
और खाना शुरू कर देती है। जब तक संभोग पूरा होता है तब तक उसका आधा शरीर खा लिया गया होता है। लेकिन दूसरे मकड़े यह देखते हुए भी फिर भी संभोग में उतरते ही रहेंगे। यह दिखाई पड़ रहा है, लेकिन प्रत्येक मकड़ा उसी तरह सोचता है जैसे प्रत्येक मनुष्य सोचता है। प्रत्येक मकड़ा इसी तरह सोचता है कि यह उसके साथ घट रहा है, मैं तो अपवाद हूं, मैं एक्सेप्शन हूं। मेरे साथ क्यों घटेगा!
प्रत्येक आदमी के भी सोचने का ढंग यही है। मकड़ों और मनुष्यों के तर्कों में बहुत फर्क नहीं है। तर्क वही हैं। प्रत्येक आदमी सोचता है कि मैं अपवाद हूं। जब कोई आदमी सड़क पर मरता है तो ऐसा ख्याल नहीं आता कि मैं भी मरूंगा। ऐसा ख्याल आता है, बेचारा... ! ऐसा ख्याल नहीं आता है कि इधर जो है वह भी बेचारा है, और इस आदमी के मरने की खबर, मेरे मरने की खबर है।

अगर हम प्राणी-जगत में यौन के सारे के सारे अनुभवों को देखने जायें तो बहुत हैरान हो जाएंगे। अधिक जगह यौन और मृत्यु साथ ही घटित हो जाते हैं। जहां साथ ही घटित नहीं होते, वहां भी प्रत्येक यौन की घटना मृत्यु को निकट लाती चली जाती है। यह जोड़ गहरा है। इसलिए संभोग के बाद जो पश्चात्ताप है, वह असल में थोड़ा-सा मर जाने का पश्चात्ताप भी है। थोड़ा आदमी मर गया। अब वह वही नहीं है जो संभोग के पहले था। कुछ खो गया है, कुछ नष्ट हो गया है, कुछ टूट गया है, पश्चात्ताप है। जीवन-ऊर्जा क्षीण हुई है।
इसलिए पहली दफा जब अंतर-चक्रों पर ऊर्जा पहुंचेगी या पहले चक्र पर पहुंचेगी तो ऐसा ही डर लगेगा कि कहीं मैं मर न जाऊं। इसलिए ध्यान की गहराइयों में मृत्यु का भय बड़ी मुश्किल में ला देता है, बड़ी मुश्किल पैदा कर देता है, ऐसा लगता है कि मैं मर न जाऊं! उस वक्त तैयारी दिखानी पड़ेगी कि ठीक है। मौत का भी स्वागत है। राजी हूं। जैसे संभोग में सदा राजी रहे हैं, और मौत का स्वागत करते रहे हैं, ऐसे ही उस अंतर्मैथुन के पहले क्षण में भी मौत के लिए राजी होना पड़ेगा। और जो वहां मौत के लिए राजी हो जाता है, उसे तत्काल पता चल जाता है कि वह अमृत में प्रवेश कर गया है।
बाहर प्रत्येक मैथुन मृत्यु में प्रवेश है। भीतर प्रत्येक मैथुन अमृत में प्रवेश है। बाहर प्रत्येक संभोग की घटना मरने की घटना है। भीतर प्रत्येक संभोग की घटना अमृत के आस्वाद की घटना है। वह जो कबीर चिल्लाते हैं कि अमृत बरस रहा है तालू से, चिल्लाते हैं कि साधुओ, अमृत की वर्षा हो रही है, वह कुछ बाहर नहीं बरस रहा है कहीं। वह भीतर के चक्रों पर जब जीवन ऊर्जा चढ़ती है तो अमृत का स्वाद बरसना शुरू हो जाता है। अब अमृत कोई चीज नहीं है कि बरसेगी। मृत्यु कोई चीज है कि बरसती है! मृत्यु एक घटना है, ऐसे ही अमृत भी एक घटना है, वह अंतर्घटना है।
और दूसरा भी पहलू आप से कह दूं, कि जैसे दूसरे के साथ संभोग करके हम दूसरे व्यक्ति को जन्म देते हैं, ऐसे ही स्वयं के चक्रों पर संभोग स्वयं का नया जन्म बनता है। भीतर नया व्यक्ति पैदा होने लगता है। रोज नया व्यक्ति पैदा होने लगता है। असल में जिसे हम "द्विज" कहते थे, वह उस व्यक्ति का नाम था जिसने दूसरा जन्म लिया।
एक जन्म तो मां-बाप से मिलता है। वह जन्म दूसरों के द्वारा मिला है।
एक और जन्म है जो स्वयं से मिलता है। वह तंत्र का ही जन्म है। ट्वाइस बार्न। इसलिए द्विज कहेंगे उस आदमी को जो अपने भीतर के चक्रों पर जीवन-ऊर्जा को लेकर नए जन्म को उपलब्ध हो गया है। बाहर के सब जन्मों के पीछे मृत्यु है। भीतर के सब जन्मों के पीछे अमृत है।
तंत्र की यह रूप-रेखा ख्याल में आ जाये तो काम-ऊर्जा को ब्रह्मचर्य तक पहुंचा देने में जरा भी कठिनाई नहीं है। लेकिन तंत्र की यह दृष्टि समझ में आना कठिन है, क्योंकि हम सबके मन में काम-ऊर्जा के प्रति शत्रुता के भाव बहुत गहरे हैं। हालांकि शत्रुता से हम शत्रु नहीं हो जाते। शत्रुता पाल-पाल कर रोज मित्रता में उतरते चले जाते हैं। इधर गाली देते रहते हैं, उधर भोगते चले जाते हैं। इधर निंदा करते चले जाते हैं, उधर चरण उठाये चले जाते हैं। वही पेंडुलम बायें से दायें, दायें से बायें घूमता चला जाता है।
जिस व्यक्ति को भी काम-ऊर्जा को ऊपर ले जाना है, उसे जानना चाहिए कि काम की ऊर्जा भी परमात्मा की ही ऊर्जा है, इसलिए निंदा व्यर्थ है, इसलिए भोगने की बात व्यर्थ है। उसे जानने की बात सार्थक है, जीने की बात सार्थक है। न भोग में जीना है, न त्याग में जीना है।
काम-ऊर्जा जितनी भीतर जाये उतनी जीवंत होती चली जाती है। और जितनी ऊपर चढ़े उतना मेरे जीवन का हिस्सा होती चली जाती है। और जो भीतर एम्पटीनेस का अनुभव होता है, रिक्तता का, खालीपन का, जैसे ही काम-ऊर्जा भीतर दौड़ती है वह भर जाती है, फुलफिलमेंट हो जाता है। आदमी कह पाता है कि अब मैं भरा-पूरा हूं। अब कोई जगह खाली नहीं है।

ओशो, आपने अभी-अभी कहा है कि संभोग में स्त्री और पुरुष दोनों की ऊर्जा क्षीण होती है, लेकिन सामान्य मान्यता यह है कि संभोग के वीर्य से स्त्री को पुष्टि मिलती है। कृपया इसे स्पष्ट करें।

सामान्य मान्यताएं ऐसी ही होती हैं। जैसे सामान्य मान्यता यह है कि सूरज उगता है; पृथ्वी चपटी है। सामान्य मान्यताएं अक्सर ही गलत होती हैं। क्योंकि सामान्य का अर्थ है ऊपर से देखी गई, जिसमें गहरे नहीं जाया गया। सूरज उगता दिखाई पड़ता है। अब हम भलीभांति जानते हैं कि सूरज नहीं उगता, नहीं डूबता। लेकिन सूर्योदय और सूर्यास्त शब्दों से छुटकारा मनुष्य का कभी भी नहीं हो सकता है। ये शब्द जारी रहेंगे। जमीन चपटी दिखाई पड़ती है, कहीं भी गोल दिखाई नहीं पड़ती। हजारों-लाखों साल तक आदमी मानता चला आया कि चपटी है। आज गोल मानना पड़ता है तो कठिनाई होती है, सामान्य मन को बड़ी तकलीफ होती है कि गोल कैसे मानें, जब दिखाई चपटी पड़ती है।
सामान्य मान्यताएं अक्सर गलत होती हैं, क्योंकि सामान्य मान्यताएं
दो चीजों पर आधारित होती हैं। एक, जैसा ऊपर से दिखाई पड़ता है। और दूसरा, जैसा हम मानना चाहते हैं वैसा हम मान लेते हैं। सामान्यतया हम सत्य को नहीं मानना चाहते। हम जो मानना चाहते हैं, उसे सत्य बना लेते हैं। आदमी रेशनल प्राणी कम, रेशनलाइजिंग प्राणी ज्यादा है। ऐसा नहीं कि वह बहुत बुद्धिमत्ता से विचार करता है, बल्कि ऐसा कि वह जो भी विचार करता है, उसको बुद्धिमत्ता की शकल दे देता है। यह ज्यादा आसान पड़ता है।
हम संभोग, यौन, काम को भोगना चाहते हैं तो रेशनलाइजेशन जोड़ते हैं। स्त्री शक्तिशाली होगी, पुरुष शक्तिशाली होगा, स्वस्थ होगा, मेडिकली ठीक होगा, ये सारी बातें हम जोड़ लेंगे। और अगर हम इनकार करना चाहेंगे तो हम सारी विरोधी बातें जोड़ लेंगे। और जमीन पर सामान्य आदमी सभी स्थितियों से गुजर चुका है।
अगर मध्य युग के यूरोप की किताबें देखें डाक्टरों की भी, तो उन्होंने
जो बातें कही हैं वह आज का डाक्टर बिल्कुल नहीं कह रहा है। मध्य युग के डाक्टर्स कह रहे हैं, बड़ा खतरनाक है काम, क्योंकि मध्य युग का आदमी काम-विरोधी रुख अख्तियार किए हुए था। आज का डाक्टर कह रहा है कि बिल्कुल खतरनाक नहीं है, एकदम शुभ है, क्योंकि आज का आदमी शुभ मानना चाह रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि स्थिति कल फिर बदल जाए। फैशन विचार में भी बदलते रहते हैं।
इस जमीन पर आदमी ने हजार बार उन्हीं बातों को लौटा लिया है, जिन बातों
को उसने छोड़ा है या जिनसे ऊब गया है। फिर उनसे विपरीत बातों को पकड़ लेता है, फिर उनसे भी ऊब जाता है। फिर उनसे विपरीत बातों को पुनः पकड़ लेता है। रोज आदमी गये-बीते सत्यों को फिर से जिंदा कर लेता है, फिर उनसे भी ऊब जाता है।
और मजा यह है कि हर युग के बुद्धिमान आदमी सामान्य आदमी की बात का समर्थन कर देते हैं। क्योंकि उनके बुद्धिमान बने रहने के लिए भी यह जरूरी है कि सामान्य आदमी के सत्यों को वे सत्य स्वीकार करें। दुनिया में ऐसे नासमझ लोग कम ही होते हैं जो सामान्य आदमी की मान्यताओं को चुनौती दें।
यद्यपि ऐसे ही लोग इस जगत में थोड़े-बहुत सत्य को खोजने का कारण बनते हैं। लेकिन साधारणतः हम सब स्वीकृति देते हैं जो सामान्य आदमी मानता है। सामान्य आदमी की मान्यता मन को समझाने की मान्यता है।
जब मैं यह कह रहा हूं कि स्त्री और पुरुष दोनों ही शक्ति खोते हैं, तो
दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। एक तो मैं यह कह रहा हूं कि जिस शक्ति की मैंने कल बात की, काम-ऊर्जा की--जीव-ऊर्जा की नहीं, बायोलाजिकल नहीं, साइकिक--उस काम-ऊर्जा को तो दोनों खोते हैं। दोनों ही खोते हैं। इसे कुछ समझने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। इसे तो हम मेडिकली भी जांच-परख कर सकते हैं।
काम के क्षण में श्वास तीव्र हो जाएगी। ठीक वैसे ही जैसे आदमी सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ हांफ रहा हो। ब्लड प्रेशर बढ़ जाएगा, पसीना छूट जाएगा, काम के क्षण के बाद आदमी थक जाएगा। घंटे भर में वापस उसे संभोग करने को कहें, तो पता चल जाएगा कि शक्ति मिली कि घटी। अब उसको फिर चौबीस घंटे, अड़तालीस घंटे लगेंगे। एक आदमी के बाबत किसी ने खबर दी है, पता नहीं कहां तक सच है, कभी रेयर घटनाएं होती हैं, कि वह एक रात में बारह संभोग कर सका। लेकिन इस तरह की कहानियां अक्सर तो अलीबाबा चालीस चोर वाली कहानियां होती हैं। यह संभव नहीं है।

अगर आदमी शक्ति इकट्ठा करता है तब तो पहले संभोग के बाद दूसरे संभोग में उसकी शक्ति बढ़ जानी चाहिए। लेकिन पहले संभोग में जितना वीर्य-कण वह छोड़ता है, अगर दो-चार घंटे के भीतर दूसरा संभोग करे तो मात्रा आधी हो जाएगी। और तीसरे संभोग में मात्रा और गिर जाएगी और चौथे संभोग में और कम हो जाएगी। चौथे संभोग में आदमी पाएगा कि वह वृद्ध हो गया है, उसमें अब कोई शक्ति नहीं है।
स्त्री के संबंध में थोड़ी भ्रांति होती है, क्योंकि स्त्री के पास पैसिव सेक्स है। शक्ति वह भी खोती है, लेकिन स्त्री आक्रामक नहीं है। स्त्री स्वभावतः पैसिविटि में कम शक्ति खोती है। आक्रमण में शक्ति ज्यादा खोती है। पुरुष पहल करता है, आक्रमण करता है। स्त्री आक्रमण नहीं करती, सिर्फ आक्रमण झेलती है। कहना चाहिए सिर्फ डिफेंस करती है, सिर्फ रक्षा करती है। स्त्री की शक्ति पुरुष से कम समाप्त होती है।
इसलिए स्त्री-वेश्याएं पैदा हो सकीं। पुरुष-वेश्याएं पैदा होने में बहुत कठिनाई है। अभी इंग्लैंड और फ्रांस में कुछ पुरुष-वेश्याएं पैदा हुई हैं। लेकिन उनके दाम बहुत ज्यादा हैं। क्योंकि एक पुरुष-वेश्या एक रात में एक ही बार अपने को बेच सकता है। वैश्य नहीं कह रहा हूं, कहीं कोई नाराज न हो जाए। इसलिए पुरुष-वेश्या कह रहा हूं। स्त्री पैसिव है, लेकिन वह भी शक्ति खोती है।
दूसरा कारण, स्त्री के बाबत इसलिए पता नहीं चलता कि स्त्री अक्सर आरगाज्म को उपलब्ध नहीं होती। असल में पुरुष और स्त्री की पीक्स भिन्न-भिन्न हैं। स्त्री के पास जो काम की व्यवस्था है, वह बहुत धीमी विकसित होती है। अक्सर तो ऐसा होता है कि पुरुष काम के क्षण के बाहर हो जाता है और स्त्री किसी ऊंचाई पर पहुंचती नहीं। उसमें कुछ क्षीण नहीं होता। स्त्री और पुरुष की जो गति है संभोग के क्षण में, वह समान नहीं है।
इसलिए अक्सर स्त्री का कुछ भी क्षीण नहीं होता। पुरुष जल्दी से क्षीण होकर संभोग के बाहर हो जाता है। इसलिए स्त्री को भ्रम हो सकता है। लेकिन अगर स्त्री को भी आरगाज्म उपलब्ध हो, अगर उसका भी रजपात हो तो शक्ति क्षय होगी। शक्ति क्षय होनी ही है। शक्ति क्षय करने में ही तो रस आ रहा है। इसलिए आमतौर से स्त्री को संभोग में उतना रस नहीं होता है जितना पुरुष को होता है। क्योंकि किन्से ने अभी दस साल की मेहनत के बाद जो रिर्पोट दी है, वह यह कहती है कि सौ में से सत्तर प्रतिशत स्त्रियों को संभोग के शिखर की कोई अनुभूति नहीं है। बच्चे पैदा हो जाते हैं, लेकिन काम-ऊर्जा के जो स्खलन का अनुभव है, वह स्त्री को मुश्किल से हो पाता है। इसलिए स्त्रियां बहुत जल्दी अरुचि से भर जाती हैं। पुरुष अरुचि से नहीं भरता। रोज-रोज उसकी रुचि फिर वापस लौट आती है।
यह जो मैंने कहा कि दोनों की शक्ति क्षीण होती है। शक्ति तो क्षीण होती ही है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि शक्ति को जबरदस्ती दबाकर कोई बड़ा शक्तिशाली बन जाएगा। अगर जबरदस्ती शक्ति को दबाया तो दबाने में भी शक्ति क्षीण होती है। अगर जबरदस्ती दबाया, तो जितना भोगने में क्षीण होती है कभी तो उससे भी ज्यादा दबाने में क्षीण होती है। उसके दो कारण हैं, वह दबाई हुई शक्ति आज नहीं, कल निकल जाएगी, अनेक मार्ग निकलने के खोज लेगी। वह सपने में बह जाएगी। और दबाने में जो शक्ति लगायी थी, वह व्यर्थ हो जाएगी।
इसलिए दबाने के पक्ष में मैं नहीं हूं। जो चिकित्सक या जो शरीर-शास्त्री इस बात को कहते हैं कि यह स्वाभाविक है, स्वस्थ है, उनका कुल प्रयोजन इतना है कि कोई आदमी दबाने के पागलपन में न पड़े। दबायेगा तो विकृत हो जाएगा, परवर्ट होगा, और उपद्रव पैदा हो जाएंगे। नहीं, दबाने से शक्ति नहीं बचेगी, दबाने से शक्ति और भी गलत, अस्वाभाविक मार्ग लेगी, जो कि और भी घातक हो सकते हैं।
मैं दबाने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि और भी इस शक्ति की गति के मार्ग हैं। और अगर एक बार उस मार्ग का दर्शन हो जाये तब आपको पता चलेगा कि कितनी शक्ति आपने खोयी है। क्योंकि हमें पॉजिटिव उपलब्धि का कोई पता ही नहीं है। इसका हमें पता चले तभी हम तौल कर सकते हैं।

मैं एक घर में ठहरा था। जिन मित्र के घर ठहरा था वे परेशान थे और नींद आनी बंद हो गई थी। तो मैंने पूछा, बात क्या है? उन्होंने कहा, बहुत नुकसान लग गया है। कोई पांच-सात लाख रुपए का नुकसान लग गया। मैंने उनकी पत्नी से पूछा कि मामला क्या है कि इतना नुकसान और इतने परेशान! तो उसने कहा, सच पूछिए तो मेरी समझ में नहीं आता कि नुकसान लग गया है। असल बात यह है कि दस लाख कमाने की उनकी आशा थी किसी काम में, लेकिन चार ही लाख कमा पाए। तो वे पांच-सात लाख रुपए का नुकसान बता रहे हैं। मुझे तो दिखता है कि चार लाख का लाभ हुआ। लेकिन उन्हें लगता है कि पांच-सात लाख रुपए का नुकसान हो गया। अब कौन उनको समझाये!
असल में तब तक आपको पता नहीं लगेगा कि नुकसान हो रहा है जब तक कि आपको किसी लाभ की दिशा का पता न हो। तो तौलेंगे कैसे? हिसाब क्या है? मापदंड क्या है? नुकसान ही नुकसान हुआ है जिंदगी में। तौल के लिए कोई उपाय भी तो नहीं है। तौल तो उसी दिन शुरू होती है जिस दिन काम-ऊर्जा लाभ की दिशा में, ऊपर की दिशा में बढ़ती है। तब आपको पता लगता है कि जिंदगी में कितना नुकसान हुआ है। इस नुकसान को तौलने के लिए थोड़े लाभ के तराजूवाले पलड़े पर भी तो कुछ होना चाहिए। एक ही पलड़ा है हमारे पास, जिसमें हम नुकसान ही रखते चले गए हैं। वही नुकसान, वही नुकसान। उसे लाभ कहिए, नुकसान कहिये, जो कहना है वह कहिए। हमारा कोई दूसरा अनुभव नहीं है। जिंदगी में सारे अनुभव सापेक्ष हैं।
इसलिए मैं कहूंगा कि मेरी बात ख्याल में तभी पूरी आ सकती है जब आपकी जिंदगी में लाभ का कोई कण पैदा हो जाये। तब आप समझेंगे कि नुकसान क्या हुआ है, नहीं तो कैसे समझ सकते हैं कि नुकसान क्या हुआ है। नुकसान ही हुआ है केवल, तो उसी में हम लाभ-हानियां सोच लेते हैं। अगर किसी नुकसान में क्षण भर के लिए जरा ज्यादा सुख मिला हो तो लगता है लाभ हुआ है। और किसी नुकसान में क्षण भर को कम सुख मिला हो तो लगता है नुकसान हुआ है। किसी में जरा ज्यादा देर के लिए संभोग की प्रतीति हुई हो तो लगता है लाभ हुआ। और किसी में नहीं प्रतीत हुई हो तो लगता है नुकसान हुआ। ये सब नुकसान हैं। इन्हीं में हम तौल कर लेते हैं। ये सब हारे हुए बटखरे हैं हमारे, जिनको हम तौल लेते हैं।
लेकिन जब पहली दफा जिंदगी में ऊर्जा ऊपर उठती है तब पता चलता है कि इस जन्म में ही नहीं, अनंत जन्मों में कितना अनंत नुकसान हुआ है। उसका हमें कोई अनुभव तब तक नहीं हो सकता जब तक विपरीत तौल का अनुभव न हो जाये।
तो जब मैं कह रहा हूं कि दोनों ही व्यक्ति ऊर्जा खोते हैं, तो मैं किन्हीं दस लाख के लाभ हो सकते हैं उस ख्याल से कह रहा हूं। मगर उन्हें कुछ पता नहीं है। उन्हें चार लाख में भी लाभ मालूम पड़ रहा है, तब बात दूसरी है। छह लाख की हानि हो रही है! छह लाख की चाहे दस लाख की हो रही है, अरबों की हो रही है, यह तो तब पता चले जब लाभ का द्वार खुल जाये।
इसे थोड़ा प्रयोग कर के देखें। ऊर्जा को थोड़ा ऊपर जाने दें, फिर आप कहेंगे कि क्या हुआ है। समस्त जीवन सापेक्षताओं में है। और जब मैं कहता हूं कि दोनों ऊर्जा खोते हैं, तो दोनों ही संभोग के बाद सोचें तो उनको पता चल जाएगा। कुछ समय के बाद ऊर्जा फिर वापस भर दी जाएगी। शरीर तो एक यंत्र है। आप ऊर्जा खत्म करते हैं, शरीर ऊर्जा पैदा करके फिर भर देता है। अगर शरीर ऊर्जा न भरे रोज तब आपको पता चलेगा कि ऊर्जा खोयी है। असल में ऐसा है कि वर्षा हो रही है। आप गड्ढे से पानी निकाल लेते हैं। गड्ढा फिर भर जाता है। आप कहते हैं, कौन कहता है कि पानी निकाला, गड्ढा फिर भरा हुआ है। अमरीका की कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी में एक छोटा-सा प्रयोग किया गया। तीस युवकों को तीस दिन के लिए भूखा रखा गया। तीन दिन के बाद ही उनका जो सेक्स अट्रेक्शन और सेक्स अपील है वह खत्म होनी शुरू हो गई। तीन दिन के बाद मनोवैज्ञानिकों ने देखा कि नंगी तस्वीरों की मैगजीनें पड़ी रहीं, पर अब वे कम उलटाते हैं। सात दिन के बाद मैगजीन खोलकर सामने भी रख दो तो भी नजर नहीं डालते। दस दिन के बाद उनसे बहुत चर्चा करना चाहो, गंदा मजाक करना चाहो, उन्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता। वे कहते थे, बेकार की बातें मत करो। पंद्रह दिन के बाद उनका सेक्स में कोई भी रस नहीं रह जाता है। तीस दिन पूरे होते-होते, उनको सब तरफ से स्टिमुलेंट दो, सब तरफ से उनको जगाओ, नंगी

फिल्में दिखाओ, नंगी तस्वीरें रखो, पोस्टर लगाओ उनके सामने, वे ऐसे बैठे हैं जैसे उन सबसे उन्हें कोई मतलब नहीं। क्या हो गया है? असल में शरीर तीस दिन में शक्ति को पूरा नहीं कर रहा है। गड्ढे खाली रह गए हैं। चित्त में अब कोई रस नहीं है।
फिर खाना दिया जाता है। तीन दिन में फिर गड्ढे भरने लगते हैं। अब रस वापस आ गया है। मैगजीन अब जोर से पलटी जाने लगी हैं। सात दिन ठीक भोजन मिला है। अब वे फिर गंदी बातें करने लगे हैं। फिर वे मजाक करने लगे हैं। अब उनकी बातचीत का ज्यादा हिस्सा स्त्रियों के बाबत फिर शुरू हो गया है। पंद्रह दिन ठीक भोजन, और वे वापिस वैसे ही युवक हो गए हैं। और उनको मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम बड़े त्यागी हो गए थे, बड़ी उपेक्षा से भर गए थे। वे कहते हैं, त्यागी कुछ भी नहीं, हम सिर्फ भूखे थे।
इसलिए दुनिया में बहुत-से त्यागी भूखे रहकर अगर त्यागी बने बैठे हैं
तो बहुत भूल में मत पड़ना। शरीर सब्सटीट्यूट नहीं कर रहा है। जो शक्ति खाली रह गयी है, वह खाली रह गयी है। शरीर नहीं भरेगा शक्ति को तो आप बाहर सो जायेंगे। शरीर चौबीस घंटे में आपको वीर्य-ऊर्जा वापस दे देता है। इसलिए आपको लगता है कि क्या खर्च हो गया है, कुछ भी खर्च नहीं हुआ है।
लेकिन बड़े मजे की बात है कि चौबीस घंटे खाना-पीना, दुकान, नौकरी, मजदूरी, मेहनत, पढ़ना-लिखना, सब कुछ वीर्य-कणों को पैदा करने के लिए हो रहा है। और इन सबको करने के बाद उन वीर्य-कणों का क्या करना? उन वीर्य-कणों को फेंक देना है और फिर सुबह से उसी सिलसिले में लग जाना है। किसलिए लगें! वीर्य-कण इकट्ठे करने में!
अगर बायोलाजिस्ट से पूछें तो वह कहेगा कि आदमी का कुल फंक्शन इतना है, उसके शरीर का पूरा काम इतना हैः मेहनत करे, खाना कमाये, खाना खाये, खाना पचाये, खून बनाये, वीर्य बनाये और वीर्य को फेंक दे और फिर उसी काम में लग जाये। यह कुल जमा आदमी का बायोलाजिकल सर्किल है।
क्या पूरी जिंदगी हम इतने काम के लिए हैं? अगर इस बात को कोई ठीक से समझ ले कि बस इतना ही काम है मेरा, तो जिंदगी में क्रांति घटित हो जाती है। जब वह आदमी सोचता है लौटकर कि यह मुझसे क्या करवाया जा रहा है? यह मुझसे क्या हो रहा है? इतना ही मेरा फंक्शन है! कुल जमा इतनी ही बात है बस! अगर इतनी ही जिंदगी है तो फिर जिंदगी क्या खाक है! फिर कुछ भी नहीं है।
नहीं, जिंदगी में और भी द्वार हैं, जो अनजाने और अपरिचित हैं। परंतु
हम एक चक्कर में पड़ गए हैं और उसी चक्कर में घूमते हुए नष्ट हो जाते हैं। इस चक्कर से शक्ति बचे तो उस नए द्वार पर भी चोट की जा सकती है। लेकिन यह वीसियस सर्किल तेज है और तेजी से घूम रहा है, और कभी हमें मौका भी नहीं मिलता है कि क्षण भर ठहर कर हम सोच लें कि हम जिंदगी में क्या कर रहे हैं। शक्ति तो खोती है, लेकिन पता तभी चलेगा जब शक्ति से कुछ पॉजिटिव, कुछ विधायक उपलब्धि होने लगे। उसके पहले पता नहीं चलता है।

ओशो, आपने कुछ दिन पहले कहा है कि संभोग में सूक्ष्म हिंसा है। तो क्या जिस संभोग से महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट तथा बुद्ध जैसे लोगों का जन्म होता है, उसमें भी हिंसा का आधार है? यदि नहीं है तो क्यों नहीं है? और क्या ऐसे भी संभोग संभव हैं जिनमें जरा भी हिंसा न हो?

हिंसा से रहित संभोग असंभव है। महावीर पैदा हों, कि बुद्ध पैदा हों,
कि कृष्ण पैदा हों, वह हिंसा होगी ही। न्यूनतम हो, यह दूसरी बात है। लेकिन हिंसा होगी ही। हिंसा के बिना जन्म नहीं हो सकता। इसलिए जन्म की आकांक्षा भी हिंसा है। महावीर के जन्म में भी हिंसा घटित होगी ही।
अब महावीर अगर पिछले जन्म में, जन्म लेने की थोड़ी सी भी आकांक्षा से भरे रह गए हों, तभी जन्म होगा। महावीर पर भी उस हिंसा का आरोपण है। महावीर के माता और पिता पर तो है ही, लेकिन महावीर भी उस हिंसा के भागीदार हैं। क्योंकि जन्म लेने की उनकी भी आतुरता है। माता और पिता तो सिर्फ अवसर, सिचुएशन पैदा कर रहे हैं। वह सिचुएशन तो... ।
अभी एक पश्चिम के वैज्ञानिक डैनियल ने घोषणा की है, हम टेस्ट-ट्यूब में पैदा कर देते हैं। अब जीवन यहीं पैदा हो सकेगा, हो जाएगा। कोई कठिनाई

नहीं है। महावीर के माता-पिता तो सिर्फ एक परिस्थिति पैदा कर रहे हैं जिसमें महावीर की आत्मा प्रवेश करती है। माता और पिता हिंसा कर रहे हैं वह तो ठीक ही है, महावीर भी थोड़ी-सी हिंसा कर रहे हैं। जन्म लेने की आकांक्षा भी हिंसा है। बुद्ध ने कहा है, जीवेषणा हिंसा है। वह जीवन की जो आकांक्षा है, लस्ट फार लाइफ, कि मैं जीऊं, मैं जन्म लूं, उसमें भी हिंसा है। महावीर की भी तो थोड़ी हिंसा तो है ही। इसलिए महावीर की जब यह हिंसा भी समाप्त हो जाती है, तो इसके बाद फिर उनका कोई जन्म नहीं हो सकता।
महावीर के साथ एक बड़ी मीठी बात है। समस्त जैन तीर्थंकरों के साथ है। जैन-परंपरा कहती है कि तीर्थंकर गोत्र भी एक बंध है। तीर्थंकर भी, आदमी किसी कर्मबंधन के कारण होता है। वह आखिरी बंधन है, स्वर्ण-बंधन है, श्रेष्ठतम बंधन है, लेकिन बंधन तो है ही। तीर्थंकर भी किसी गहरी आखिरी आकांक्षा के कारण पैदा होता है। उसने जो जाना है या जान रहा है, उसे दूसरों को देने की आकांक्षा से पैदा होता है।
ऐसी आकांक्षा भी जीवन की ही आकांक्षा है। वही तीर्थंकर-बंध है। वैसा आदमी बिना टीचर हुए नहीं रह सकता है। उसे शिक्षक होना ही पड़ेगा। उसकी भीतर कामना में कहीं गहरे शिक्षक मौजूद है। वह उस शिक्षक को एक जन्म जरूर लेना ही पड़ेगा। यह जन्म, यह शिक्षक होने की आकांक्षा भी हिंसा है।
तो चाहे महावीर पैदा हों, चाहे कृष्ण पैदा हों, जिसे पैदा होना है उसे हिंसा से गुजरना ही पड़ेगा। और जिस दिन इतनी हिंसा भी नहीं रह जाएगी, उस दिन महावीर के जन्म क्षीण हो जाएंगे, समाप्त हो जाएंगे, शून्य हो जाएंगे। महावीर अब लौट नहीं सकते। अब लौटने का कोई उपाय न रहा। क्योंकि लौटने की आखिरी इच्छा भी समाप्त हो गई है। वह दूसरे को सिखाने की बात ही समाप्त हो गयी है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि जन्म हिंसा नहीं है, हिंसा है। मेरे जन्म में हिंसा है, आपके जन्म में हिंसा है, महावीर के जन्म में हिंसा है, हिंसा होगी ही। कम-ज्यादा हो सकती है; कितनी तीव्र इच्छा है जन्म लेने की, उस मात्रा में हिंसा हो जाएगी। बहुत कम रही होगी महावीर की इच्छा, क्योंकि इसके बाद फिर दुबारा जन्म नहीं हुआ है। आखिरी रही होगी, लेकिन रही है। उसके बिना तो जन्म नहीं हो सकता।
यह समझ लेना जरूरी है कि जन्म हिंसा है, जीवन हिंसा है, मृत्यु हिंसा है। हम बिना हिंसा के जी नहीं सकते। एक आदमी मांस न खाये तो कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता, साग- सब्जी तो खाएगा ही। साग-सब्जी में भी उतना ही प्राण है, उतनी ही हिंसा हो रही है। पानी तो पीयेगा ही। पानी में भी प्राण है। हिंसा तो होगी ही। श्वास तो लेगा ही, श्वास में भी प्राण है, जीवन है। हिंसा तो होगी ही। एक शब्द मैं बोलता हूं, ओंठ एक बार खुलते हैं और बंद होते हैं, तो लाखों कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। हिंसा तो होगी ही। महावीर रात में एक ही करवट सोते थे, करवट नहीं बदलते थे, क्योंकि रात में दो-चार दफे करवट बदलें तो दो-चार दफे करवट के नीचे कुछ जीव जरूर दबेंगे और नष्ट होंगे। मगर एक करवट भी सोये, तब भी एक करवट के नीचे भी जीव दबते ही हैं। इतनी हिंसा तो हो जाएगी। महावीर न्यूनतम हिंसा में हैं, यह दूसरी बात है, लेकिन हिंसा के बाहर जीवन नहीं है। चलेंगे, कदम रखेंगे, श्वास लेंगे, उठेंगे, बैठेंगे, हिंसा होगी।
यह सारा का सारा जीवन हिंसा पर खड़ा है, यह सारा का सारा जीवन हिंसा के सागर में डोल रहा है। हम हिंसा के सागर में मछलियां हैं। कम-ज्यादा की बात दूसरी है। जितना कम होता जाये, उतना शुभ है, लेकिन जीते-जी अहिंसा पूरी तरह नहीं हो सकती। पूरी करने की कोशिश बहुत शुभ है। लेकिन पूरी अहिंसा तो जीते-जी नहीं हो सकती, हिंसा कुछ न कुछ बाकी रह जाएगी। आखिरी श्वास भी जब मैं लूंगा तब भी थोड़ी हिंसा बाकी रह जाएगी।
लेकिन अगर जीवन भर मैं हिंसा को कम से कम, कम से कम करता चला गया हूं, हिंसा की आकांक्षा को क्षीण करता चला गया हूं, हिंसा के रस को तोड़ता चला गया हूं, तो आखिरी क्षण में मैं उस जगह होऊंगा जहां मेरी आखिरी श्वास मेरी आखिरी हिंसा हो जाएगी। और जिस दिन मेरी आखिरी श्वास मेरी आखिरी हिंसा है, उसके बाद मेरी पहली श्वास फिर शुरू नहीं होगी। फिर बात समाप्त हो जायेगी।

इसलिये बुद्ध ने निर्वाण के दो रूप कहे हैं। बुद्ध ने कहा है कि जब मुझे ज्ञान मिला बोधि वृक्ष के नीचे, तो वह निर्वाण था। लेकिन अभी महानिर्वाण होने को है। महानिर्वाण उस दिन होगा, जिस दिन मेरी आखिरी श्वास छूटेगी। ज्ञान होना और आखिरी श्वास छूटने के बीच चालीस साल का फासला है। महावीर के लिए चालीस-बयालीस साल का फासला है। इन बयालीस वर्षों के पहले भी हिंसा थी, ज्ञान की घटना के बाद भी हिंसा है। लेकिन दृष्टिकोण में फर्क पड़ गया। पहले जो हिंसा थी, अनजानी थी, अब जान कर है। पहले जो हिंसा थी, वह मूर्च्छित थी, अब होशपूर्वक है, इसलिए कम से कम है।
महावीर अपनी तरफ से अब हिंसा नहीं कर रहे हैं। जितनी हिंसा मात्र जीवित होने से होती है, उतनी हो रही है। उसमें भी जितनी न्यूनता वे ला सकते हैं, लाते हैं। सोयेंगे तो ही, तो एक करवट सो सकते हैं तो वे एक ही करवट सोते हैं। भोजन तो करेंगे ही। अगर एक ही बार कर सकते हैं तो एक ही बार कर लेते हैं। अगर दो दिन में एक बार तो फिर दो दिन में एक बार कर लेते हैं। भोजन तो करना ही पड़ेगा। मांस नहीं लेते हैं। सब्जी ही ले लेते हैं। सब्जी भी, अगर सूखी हुई मिल जाए, फल भी सूखा हुआ ले लेते हैं बजाय हरे के लेने के। क्योंकि हरे को तोड़ना पड़ेगा तो कहीं तो पीड़ा होगी। सूखा अपने से गिर गया है। लेकिन सूखे के भीतर भी अनेक जीवन हैं, उनकी तो हिंसा होगी ही।
महावीर ज्ञान के बाद जिस हिंसा से गुजरे हैं, वह मजबूरी है। उस हिंसा में महावीर को कोई रस नहीं है, मजबूरी है। आखिरी श्वास के साथ वह मजबूरी भी टूट जाएगी। आखिरी श्वास के साथ परम निर्वाण होगा। फिर वह यात्रा और होगी। तब बिना शरीर का जीवन होगा। तब शुद्ध आत्मा का जीवन होगा। शुद्ध आत्मा का जीवन ही पूर्ण अहिंसा का जीवन हो सकता है।
इस पृथ्वी पर सभी चीजें अशुद्ध होंगी। अशुद्धि कम-ज्यादा हो सकती है।
इस पृथ्वी पर एब्सोल्यूट कुछ भी नहीं होता, पूर्ण कुछ भी नहीं होता। इस पृथ्वी पर जिसको हम पूर्णतम कहते हैं, उसमें भी थोड़ी-सी न्यूनता शेष रह जाती है। इस पृथ्वी पर राम, कितने ही बड़े राम हो जायें, थोड़ा-सा रावण उनके भीतर शेष रह ही जाता है। और इस पृथ्वी पर रावण कितना ही बड़ा रावण हो जाये, उसके भीतर भी थोड़ा-सा राम सदा मौजूद रहता है। असल में रावण के भीतर थोड़ा-सा राम ही उसके विकास की संभावना है। और राम के भीतर थोड़ा-सा रावण ही उनके जन्म की संभावना है। राम के भीतर वह जो थोड़ा सा रावण है, वही उनके जीवन का आधार है। और रावण के भीतर वह थोड़ा सा जो राम है, वही उसकी विकास की यात्रा के लिए उपाय है। यह होगा ही।
इस जगत में पापी से पापी के भीतर संत होगा, इस जगत में संत से संत के भीतर थोड़ा-सा पापी होगा। लेकिन संत वही है जो इस छोटे से पापी को भी जानता है, और इसे नेसेसरी इविल की तरह स्वीकार करता है। वह मानता है कि यह अनिवार्य है, जीवन के साथ है। जब कोई संत कह दे कि अब मैं इस पृथ्वी पर पूर्ण हूं तो समझना कि थोड़ी चूक हो गई। वह अपने भीतर कुछ हिस्सा देखने से इनकार कर रहा है। वह इनकार नहीं किया जा सकता, वह रहेगा ही। ऐसा असंभव है कि हम पापियों के साथ पृथ्वी पर रहें और थोड़े-से पाप के भागीदार न हों। यह असंभव है।
यह जिंदगी एक शेयरिंग है। यहां यह हो सकता है कि आप अमीर हैं और मैं गरीब हूं, लेकिन मेरी और आपकी अमीरी और गरीबी दोनों जुड़ी होंगी। आपके पास करोड़ रुपए हो सकते हैं, मेरे पास एक कौड़ी हो सकती है, लेकिन मेरे पास भी एक कौड़ी है। असल में कहना यों चाहिए, मैं बहुत थोड़ा अमीर हूं, आप बहुत थोड़े गरीब हैं। इस जिंदगी में सभी चीजें सापेक्ष हैं।
महावीर, बुद्ध और कृष्ण, उनके जीवन में भी हिंसा है, जन्म में भी हिंसा है। लेकिन वह हिंसा बिल्कुल मजबूरी और आखिरी मजबूरी है, द लास्ट बैरियर। जिस दिन वह गिर जाता है उसके बाद उनका दूसरा जन्म असंभव है।

ओशो, इसी संबंध में एक और प्रश्न है। बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट जैसे लोग ज्ञानोपलब्धि के बाद भी क्या गर्भाधान करवा सकते हैं? और वे पुनः संभोग क्यों नहीं करते ताकि श्रेष्ठ आत्मा को जन्म दे सकें? और क्या गर्भाधान दो अज्ञानी व्यक्तियों के बीच की ही संभावना है?

साधारणतः गर्भाधान दो अज्ञानी व्यक्तियों के बीच की ही संभावना है।
यह समझने जैसा है। महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्ति जन्म देने को राजी न होंगे। दो कारणों से। एक तो वे किसी भी व्यक्ति को जीवन-मरण की यात्रा पर भेजने की तैयारी नहीं दिखा सकते। वे किसी भी व्यक्ति के जीवन और मृत्यु की लंबी यात्रा के लिए कारण नहीं बन सकते।
असल में महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्ति तो हम सबको ऐसे जगत में भेजने
के लिए उत्सुक हैं जहां से लौटना न हो, जहां से फिर जीवन न हो। वे तो आवागमन से मुक्त कराने के लिए आतुर व्यक्ति हैं। हम सब लोगों को आवागमन से मुक्त कराने के लिए आतुर व्यक्ति हैं। हम किसी को इस पृथ्वी पर लाना चाहते हैं, महावीर और बुद्ध किसी को इस पृथ्वी से मुक्त करना चाहते हैं। महावीर और बुद्ध भी कहीं जन्म देना चाहते हैं, लेकिन वह मोक्ष है, जहां वे जन्म देना चाहते हैं। कहीं पहुंचाना चाहते हैं जहां शरीर नहीं है, जहां दुख नहीं है, जहां पीड़ा नहीं है। वे भी जीवन भर दौड़ रहे हैं आपके किसी नए जन्म के लिए, लेकिन आपके शरीर के जन्म के लिए उनकी आतुरता नहीं है।
बुद्ध के जीवन में एक मीठी घटना है, वह आपसे कहूं तो समझ में आ सके।
बुद्ध बारह वर्ष बाद घर लौटे हैं। तो वे अपने पुत्र राहुल को सिर्फ एक दिन का छोड़ कर भाग गए थे। अब वह बारह वर्ष का हो गया है। उसकी मां स्वभावतः बुद्ध पर नाराज रही है। और अपने बेटे को भी उसने बुद्ध के खिलाफ बहुत बातें कही होंगी। अपने बेटे को भी उसने काफी तैयार कर रखा है कि जब बुद्ध आयें, तो उनसे झगड़ना ही है। फिर बुद्ध आए तो उसने अपने बेटे से कहा, अपने हाथ फैलाकर इस भिखारी बाप से मांग ले कि बेटे के लिए वसीयत क्या है? बेटे के लिये क्या है? जन्म दिया था सिर्फ, अब जीवन के लिए पाथेय भी दे दें। मजाक था, क्रूर मजाक था। व्यंग्य था और अत्यंत गहरा था। लेकिन क्षमा किया जा सकता है यशोधरा को। क्योंकि बिना पूछे बुद्ध उसे छोड़कर चले गए थे। उसका क्रोध स्वाभाविक ही है। कोई सोच भी नहीं सकता था कि यह घटना घटेगी। बुद्ध ने आनंद से कहा, आनंद, मेरा भिक्षा-पात्र कहां है? राहुल को मेरा भिक्षा-पात्र दे दो और इसे संन्यास में दीक्षित करो। वह यशोधरा तो छाती पीटकर रोने लगी। उसने कहा, यह क्या कर रहे हैं। बुद्ध ने कहा, जिस परम धन को मैंने पाया है, वसीयत में वही मैं अपने बेटे को भी देना चाहता हूं। जिस परम आनंद की यात्रा पर मैं गया हूं और जिन खजानों को मैंने खोज लिया है, वही तो मैं अपने बेटे को भी दे देना चाहता हूं।
राहुल दीक्षित कर लिया गया। बारह साल का छोटा-सा लड़का संन्यासी हो गया। बुद्ध को औरों ने भी कहा, ऐसा मत करें। बुद्ध के पिता ने भी कहा कि तू घर छोड़कर गया और जो हमारी आंखों का एकमात्र तारा है, तू उसको भी हटा रहा है। फिर इस राज्य का मालिक कौन होगा? तो बुद्ध ने कहा कि मैं एक और बड़े महाराज्य की खबर लाया हूं। यह बहुत छोटा राज्य है और इसके लिए उसको छोड़ना बड़ा महंगा सौदा है। मैं एक महाराज्य की खबर लेकर आया हूं और उस महाराज्य का महासम्राट बनाता हूं इसे। पिता ने दुख में ही बुद्ध को कहा कि फिर हमें भी तू दीक्षा दे दे। बुद्ध ने कहा, इससे शुभ और क्या हो सकता है! और अपने पिता को भी दीक्षा दे दी। फिर यशोधरा चिल्लाने लगी, मुझे यहां अकेला किस लिए छोड़ देते हैं, तो मुझे भी दीक्षा दे दें। बुद्ध ने कहा, इससे शुभ और क्या हो सकता है। फिर वह पूरा घर दीक्षित हो गया।
अब यह बुद्ध जैसा व्यक्ति भी जन्म दे रहा है, किसी और महाराज्य में, किसी और जीवन में। इस शरीर की कैद में किसी आत्मा को लाने के लिए बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति, ज्ञान के बाद राजी नहीं हो सकते।
ऐसा ही समझें कि एक जेलखाना है। जेलखाने में रहने वाले लोगों को कुछ
भी पता नहीं है कि बाहर भी एक दुनिया है फूलों की, सूरज की, चांद-तारों की, खुले हुए आकाश की, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सदा से वहीं हैं। वे वहीं पैदा हुए हैं।
फिर एक दिन ऐसा आता है कि एक आदमी जेल की दीवार पर चढ़ कर एक खुला आकाश, चांद-तारे, सूरज, पक्षियों के गीत आदि को देख लेता है। और उस आदमी से उसकी पत्नी कहती है कि और लोग बच्चे पैदा कर रहे हैं, तुम बच्चे पैदा नहीं करोगे? तब वह आदमी कहता है कि इस कारागृह में मैं किसी को भी जन्म न देना

चाहूंगा। मेरा बच्चा तो कम से कम इस कारागृह में नहीं हो सकता है। अब अगर जन्म ही देना है तो उस खुले आकाश की यात्रा में जन्म दूंगा।
लेकिन उस जेल के भीतर कौन समझेगा इस बात को? ये कैदी कहेंगे, पागल हो
गए हो, लौट आओ अपने घर। अपने घर मतलब अपनी सेल, अपनी कोठरी। और वह आदमी कितना ही कहे कि चांद, सूरज, फूल वहां होंगे, वे कुछ भी न समझेंगे। क्योंकि उन्होंने न चांद देखा, न सूरज देखा, न फूल देखे। उन्होंने सिवाय अंधकार के और जंजीरों के कुछ भी नहीं देखा है। हो सकता है जैसे हम आज यहां पूछ रहे हैं, वैसे ही वे लोग भी पूछेंगे, क्या कोई आदमी कारागृह की दीवालों पर बैठने के बाद एक बार लौटकर बच्चे को जन्म दे सकता है? या कि केवल वे ही लोग बच्चों को जन्म देते हैं जो कभी दीवाल पर चढ़कर नहीं खड़े हुए हैं? ठीक वैसा ही हमारा सवाल है।
बुद्ध और महावीर जिस जगत को, जिस जीवन को, जिस महाजीवन को देख रहे हैं,
उस जीवन का हमें कुछ भी पता नहीं। हम इस शरीर में, इस छोटे-से शरीर के कारागृह में बंद हैं। जिंदगी भर इस कारागृह को लिए घूमते रहते हैं। हम सोचते हैं, बड़ा जीवन यहीं है। तो हम सोचते हैं कि इसमें और आत्माओं को जन्म दो न, और अच्छी आत्माओं को लाओ न। बुद्ध और महावीर इस कोशिश में लगे हैं कि यहां से बुरी आत्माओं को भी भेज दें, छुटकारा दिला दें। और हम इस कोशिश में लगे हैं कि और अच्छी आत्माओं को यहां ले आयें। हमारी और उनकी दृष्टि में, हमारे और उनके डायमेंशन में, आयाम में बुनियादी फर्क है। इसलिए हमें ख्याल में नहीं आ सकता।
ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति जन्म नहीं दे सकता है। नहीं दे सकता है इसलिए कि किसी को कारागृह में डालने की जिम्मेवारी नहीं ले सकता है। हां, वह जन्म दे सकता है किसी और विराट मुक्ति के जीवन में, किसी परम स्वतंत्रता में। लेकिन वह जन्म शरीर का जन्म नहीं, आत्मा का जन्म है। वह जन्म दिखाई पड़नेवाले का जन्म नहीं, अदृश्य का जन्म है। ज्ञात का नहीं, अज्ञात का जन्म है।
महावीर और बुद्ध ने ऐसे बहुत जन्म दिए हैं। महावीर के पचास हजार संन्यासी थे। महावीर इनके लिए पिता से क्या कम हैं? निश्चित ही ज्यादा हैं! बुद्ध के हजारों संन्यासी थे। बुद्ध क्या इनके लिए पिता से कम हैं? पिता से बहुत ज्यादा हैं। पिताओं ने क्या दिया है जो इन्होंने दिया है। लेकिन वह जिन्हें मिला है, केवल वे ही जान सकते हैं। हमारी अपनी कठिनाइयां हैं, हमें कुछ भी पता नहीं, इसलिए हम ऐसे सवाल उठा सकते हैं। इसलिए समझ लेना उचित है कि ऐसे सवालों को भी हम समझ लें।
आज के लिए इतना काफी, शेष कल!
क्रास मैदान, बंबई

ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया
तेरहवां प्रवचन

अप्रमाद (प्रश्नोत्तर)

ओशो, अचेतन, समष्टि अचेतन और ब्रह्म अचेतन में जागने की साधना से गुजरते समय साधक को क्या-क्या बाधाएं आ सकती हैं तथा उनके निवारण के लिए साधक क्या-क्या सावधानियां रखें? कृपया इस पर प्रकाश डालें।

जैसे कोई आदमी सागर की गहराइयों में उतरना चाहता हो और तट के किनारे बंधी हुई जंजीर को जोर से पकड़े हो और पूछता हो कि सागर की गहराई में मुझे जाना है, सागर की गहराई में जाने में क्या-क्या बाधाएं आ सकती हैं? तो उस आदमी को कहना पड़ेगा कि पहली बाधा तो यही है कि तुम तट पर बंधी हुई जंजीर को पकड़े हुए हो। दूसरी बाधा यह होगी कि तुम स्वयं ही सागर की गहराई में जाने के खिलाफ लड़ने लगो, तैरने लगो, बचने का उपाय करने लगो। और तीसरी बाधा यह होगी कि गहराई का अनुभव मृत्यु का अनुभव है। जितनी गहराई में जाओगे उतने ही खो जाओगे। अंतिम गहराई पर गहराई रह जाएगी, तुम न रहोगे। इसलिए यदि अपने को बचाने का थोड़ा-सा भी मोह है तो गहराई में जाना असंभव है।
जगत हमारे चारों ओर फैला हुआ है। उस जगत में बहुत कुछ हम जोर से पकड़े हुए हैं। वह जोर से जो हमारी पकड़ है, वही स्वयं के भीतर की गहराइयों में उतरने में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए इस जगत के संबंध में कुछ सूत्र समझ लेने जरूरी हैं।
बुद्ध कहा करते थे अपने भिक्षुओं से कि जीवन एक धोखा है। और जो इस धोखे को समझ लेता है, उसकी पकड़ जीवन पर छूट जाती है।
इस पहले सूत्र को समझने की कोशिश करें--जीवन एक धोखा है। यहां जो जैसा दिखायी पड़ता है वह वैसा नहीं है। और यहां जैसी आशा बंधती है वैसा कभी फल नहीं होता है। यहां जो मानकर हम चलते हैं, उपलब्धि पर उसे कभी वैसा नहीं पाते। खोजते हैं सुख और मिलता है दुख। खोजते हैं जीवन, आती है मौत। खोजते हैं यश, अपयश के अतिरिक्त अंत में कुछ भी हाथ नहीं बचता है। खोजते हैं धन, भीतर की निर्धनता बढ़ती चली जाती है। चाहते हैं सफलता और पूरी जिंदगी असफलता की लंबी कथा सिद्ध होती है। जीतने निकलते हैं, हारकर लौटते हैं। इस पूरी जिंदगी के धोखे को ठीक से देख लेना जरूरी है उस साधक के लिए, जो स्वयं के भीतर जाना चाहता है। यदि पहचान ले कि जीवन धोखा है, तो उस पर से उसकी पकड़ छूट जाती है। तट पर बंधी हुई जंजीर से हाथ मुक्त हो जाता है।
हम जानते हैं, फिर भी देखते नहीं हैं। शायद देखना यही चाहते हैं कि जीवन शायद धोखा नहीं है। हम अपने को धोखा देना चाहते हैं। जीवन तो निमित्त मात्र है। क्योंकि वही जीवन किसी के जागने का कारण भी बन जाता है और वही जीवन किसी के सोने का आधार हो जाता है।
ठीक ऐसे ही है जैसे राह पर चलते हुए, अंधेरे में कोई रस्सी सांप जैसी दिख जाये। रस्सी को सांप जैसा दिखने की कोई आकांक्षा भी नहीं है। रस्सी को कुछ पता भी नहीं है। लेकिन मुझे रस्सी सांप जैसी दिख सकती है। रस्सी सिर्फ निमित्त हो जाती है। मैं उसमें सांप को आरोपित कर लेता हूं। फिर भागता हूं, हांफता हूं, पसीने से लथपथ, भयभीत। और वहां कोई सांप नहीं है। लेकिन मेरे लिए है। रस्सी ने धोखा दिया, ऐसा कहना ठीक नहीं। रस्सी से मैंने धोखा खाया, ऐसा ही कहना ठीक है। पास जाऊं और देखूं, रस्सी दिखाई पड़ जाये तो भय तत्काल तिरोहित हो जायेगा। पसीने की बूंदें सूख जायेंगी। हृदय की धड़कनें वापस अपनी गति ले लेंगी। खून अपने रक्तचाप पर लौट जायेगा। और मैं हंसूंगा और उसी रस्सी के पास बैठ जाऊंगा, जिस रस्सी से भागा था।
परंतु जिंदगी में उलटी हालत है। यहां हमने रस्सी को सांप नहीं समझा है, सांप को रस्सी समझ लिया है। इसलिए जिसे हम जोर से पकड़े हुए हैं, कल अगर पता चल जाये कि वह सांप है तो छोड़ने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती। इसलिए जीवन को उसकी सचाई में, उसके तथ्यों में देख लेना जरूरी है।
बच्चा रोता है जब पैदा होता है, और हम सब बैंड-बाजे बजाकर हंसते हैं,
और प्रसन्न होते हैं। कहते हैं, सिर्फ एक बार भूलचूक हुई है इस जगत में,

सिर्फ एक बार ऐसा हुआ कि एक बच्चा जरथुस्त्र पैदा होते वक्त हंसा था। अब तक कोई बच्चा पैदा होते वक्त हंसा नहीं है। और तब से हजारों लोगों ने पूछा है कि जरथुस्त्र पैदा होते वक्त क्यों हंसा? अब तक कोई उत्तर भी नहीं दिया गया है। लेकिन मुझे लगता है जरथुस्त्र हंसा होगा उन लोगों को देखकर जो बैंड-बाजे बजाते थे और खुश हो रहे थे। क्योंकि हर जन्म मृत्यु की खबर है। हंसा होगा जरथुस्त्र जरूर! वह उन लोगों पर हंस रहा था, जो सांप को रस्सी समझकर पकड़ रहे थे। वह उन लोगों पर हंसा होगा, जो जिंदगी को उसके चेहरे से पहचानते हैं और उसकी आत्मा से नहीं पहचानते।
हम भी जिंदगी को उसके चेहरों से ही पहचान कर जीते हैं। ऐसा नहीं है कि जिंदगी की आत्मा बहुत बार दिखाई नहीं पड़ती। हमारे न चाहते हुए भी जिंदगी बहुत बार अपना दर्शन देती है, लेकिन तब हम आंख बंद कर लेते हैं। जब भी जिंदगी प्रगट होना चाहती है, तभी हम आंखें बंद कर लेते हैं।
मेरे एक वृद्ध मित्र हैं। उनका पुत्र मर गया तो वे रोते थे छाती पीटकर। मैं उनके घर गया था। वे कहने लगे, यह कैसे हो गया कि मेरा जवान लड़का मर गया! मैंने उनसे कहा कि ऐसा मत पूछें। ऐसा पूछें कि यह कैसे हुआ कि आप अस्सी साल के हो गए हैं और अभी तक नहीं मरे हैं। यहां जवान का मरना आश्चर्य नहीं है। यहां मृत्यु आश्चर्य नहीं होनी चाहिये। क्योंकि मृत्यु ही अकेली सर्टेंटी है। और सब आश्चर्य हो सकता है, पर मृत्यु एकमात्र निश्चय है, जिसके संबंध में आश्चर्य की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन मृत्यु हमें सबसे ज्यादा आश्चर्य दिखती है। इस जगत में सब कुछ अनिश्चित है, मृत्यु भर निश्चित है। सब कुछ हो रहा है, सब कुछ हो सकता है, सब कुछ बदल जाता है, बस वह एक मृत्यु ध्रुवतारे की तरह बीच में खड़ी रहती है। लेकिन उसको हम बहुत आश्चर्य से लेते हैं। और जब हम सुनते हैं कि कोई मर गया तो ऐसे लगता है कि कोई बहुत बड़ी आश्चर्य की घटना घट गयी, कुछ अनहोनी घट गयी है। लोग कहते हैं, मृत्यु अनहोनी है। नहीं होनी चाहिए थी, ऐसी है। पर सच यह है कि मृत्यु की होनी भर निश्चित है, बाकी सब अनहोनी है। बाकी न हो तो हम कहीं भी पूछने न जा सकेंगे कि क्यों नहीं हुआ। अगर मृत्यु न हो तो सारे जगत को आश्चर्य से भर जाना चाहिए। लेकिन निश्चित को हम झुठलाये हुए हैं। जीवन में हम सभी सत्यों को झुठलाये हुए हैं।
जीवन अनिश्चित है। जीवन की सारी की सारी व्यवस्था असुरक्षा है, इनसिक्योरिटी है। लेकिन हम बड़े सिक्योर जीये चले जाते हैं। हम ऐसे जीते हैं कि सब ठीक है। लेकिन हमारा वह सब ठीक वैसा ही है जैसे सुबह कोई मिलता है और आपसे पूछता है, कैसे हैं? और आप कहते हैं, सब ठीक है। सब कभी भी ठीक नहीं है। कुछ भी ठीक हो, यह भी संदिग्ध है। सब सदा गैर ठीक है।
लेकिन आदमी का मन अपने को धोखा दिये चला जाता है। और कहे चला जाता है
कि सब ठीक है। जहां कुछ भी ठीक नहीं है, जहां पैरों के नीचे से रोज जमीन खिसकती चली जाती है, और जहां हाथ में जीवन की रेत रोज कम होती चली जाती है, और जहां सिवाय मृत्यु के और कुछ पास आता नहीं मालूम होता है... ।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जिंदगी को देखना है तो जाकर मरघट
पर देखो। लेकिन हम अगर मरघट पर भी जाते हैं तो वह जो मर गया है, उसकी मृत्यु की चर्चा में समय को झुठला देते हैं। उसकी मृत्यु की चर्चा में यह कहते लौटते हैं कि उस बेचारे के साथ अनहोनी घट गई है, बिना इसकी चिंता किये कि हर मृत्यु की खबर, हमारी मृत्यु की खबर है। हर मृत्यु की घटना, हमारी मृत्यु की पूर्व सूचना है। हर मृत्यु मेरी ही मृत्यु है।
अगर हम जीवन को उसके इस वास्तविक रूप में देख पायें तो उस पर पकड़ कम हो जाती है। लेकिन हमने मरघट गांव के बाहर बनाए हैं, जानकर कि वह हमें दिखाई न पड़े। हम मरघट सुंदर बनाने में लगे हैं, कि हम मरघट के फूलों में मौत को छिपा दें। हम जिंदगी के इस पूरे भवन को एक प्रवंचना, एक डिसेप्शन की भांति खड़ा करते हैं।
भीतर जिसे जाना है, अचेतन में जिसे उतरना है, गहराइयां जिसे छूनी हैं, उसे बाहर की पकड़ को शिथिल करना पड़ेगा। वह पकड़ तभी शिथिल हो सकती है जब हम देखें कि क्या है।
तो पहली बात ध्यान में रखें कि इस जगत में जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा नहीं है। हमने कितनी बार सुख चाहा है और कितनी बार सुख पाया है? नहीं, हम

गणित करने नहीं बैठते हैं। दिन में आदमी कितना कमाता है, कितना गंवाता है, सांझ इसका सब हिसाब कर लेता है। लेकिन जिंदगी में कितना हम कमाते हैं और गंवाते हैं, उसका हम किसी सांझ कोई हिसाब नहीं करते। और आज सोते वक्त पांच मिनिट सोच लेना जरूरी है कि दिन भर में कितना सुख पाया है! और कल जितने सुख सोचे थे कि आज मिलेंगे, उनमें कितने मिल गये हैं! और कल जिन दुखों को कभी नहीं सोचा था कि मिलेंगे, आज उनमें से कितने अचानक घर में मेहमान हो गये हैं!
काश, हम थोड़े दिनों तक सांझ को इसे सोचते रहें, तो कल के लिए सुख की आशा बांधनी बहुत मुश्किल हो जाएगी। और जब आदमी में सुख की आशा बंधनी एकदम असंभव हो जाती है तब उस व्यक्ति की अंतर-यात्रा शुरू होती है। उस व्यक्ति की अंतर-यात्रा कभी शुरू नहीं होती जिसे सुख की आशा बाहर बनी रहती है। सुख बाहर है तो व्यक्ति कभी गहराई में नहीं उतर सकता है। सुख बाहर नहीं है, तो सिवा भीतर की गहराई में उतरने के और कोई उपाय नहीं रह जाता।
इसलिए पहली बात, जीवन एक धोखा है, जिसे हम देखते हैं और जानते हैं वह जीवन। जिसे हमने जीवन समझा है, वह एक डिसेप्शन है। लेकिन यह डिसेप्शन, यह धोखा जब टूटता है तब उसका कोई प्रयोग, उपयोग नहीं किया जा सकता है। मौत के आखिरी क्षण में टूटता है, लेकिन तब करने को कुछ भी नहीं बच रहता है। और तब भी मुश्किल है कि टूटता हो। अक्सर तो ऐसा होता है कि मृत्यु के आखिरी क्षण में भी हम उन्हीं कामनाओं को भीतर दोहराये चले जाते हैं, कल की आशाओं को भीतर बांधे चले जाते हैं, भविष्य के सुखों को चाहते चले जाते हैं। और इसलिए वह मृत्यु फिर नया जन्म बन जाती है। और फिर वही चक्कर जो हमने पीछे पूरा किया था, फिर शुरू हो जाता है।
महावीर और बुद्ध ने एक अदभुत, अनूठा प्रयोग किया था। और वह प्रयोग था
कि जब भी कोई साधक आता तो वे उससे कहते कि पहले तुम अपने पिछले जन्मों के स्मरण में उतरो। उस स्मरण को महावीर "जाति स्मरण" कहते थे। उसे ध्यान में उतारते कि पहले तुम अपने पिछले जन्म जान लो। नए साधक आते और कहते कि पिछले जन्म से हमें कोई प्रयोजन नहीं, हम शांत होना चाहते हैं, हम आत्मा को जानना चाहते हैं, हम मोक्ष पाना चाहते हैं। तो महावीर कहते कि वह तुम न पा सकोगे, न जान सकोगे। पहले तुम अपने पिछले जन्म को देख लो। उनकी समझ में भी नहीं आता कि पिछले जन्म देखने से क्या होगा। लेकिन महावीर कहते कि पिछले जन्म के स्मरण दो-चार तुम कर ही लो। और उन्हें पिछले जन्मों की प्रक्रिया से गुजारते।
वर्ष लगता, दो वर्ष लगता और व्यक्ति पिछले जन्मों की स्मृति ले आता और फिर महावीर पूछते, अब क्या ख्याल है? तो वह आदमी कहता, धन मैं बहुत बार पा चुका और फिर भी कुछ नहीं पाया। प्रेम मैं बहुत बार पा चुका, फिर भी खाली हाथ रहा। यश के सिंहासन पर और भी कई जन्मों में पहुंच चुका, पर मौत के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला। तो महावीर कहते, अब ठीक है। अब इस जन्म में तो यश पाने का ख्याल नहीं है?
पिछला जन्म हमें भूल जाता है। इसलिए जो हमने कल किया था, उसे ही हम आज किये चले जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। आदमी इतना अदभुत है, इतना एब्सर्ड है। ऐसा नहीं है कि यदि पिछले जन्म याद हों, फिर भी जरूरी नहीं कि हम बदल जायें। आपको अच्छी तरह मालूम है कि कल आपने क्रोध किया था, अच्छी तरह याद है। और क्या पाया था, वह भी याद है। आज फिर क्रोध किया है, कल भी आप क्रोध करेंगे! इसकी ही संभावना ज्यादा है। कल भी सुख चाहा था, और मिला क्या? अच्छी तरह याद है। लेकिन आज फिर उसी तरह सुख चाहेंगे। कल भी उसी तरह चाहेंगे। रोज सुख चाहेंगे, रोज दुख मिलेगा। फिर भी आदमी को अपने को धोखा देने की सामर्थ्य अनंत मालूम पड़ती है। रोज कांटे चुभते हैं, फूल कभी हाथ लगते नहीं, लेकिन फिर भी फूलों की खोज जारी हो जाती है।
आदमी को देखकर ऐसा लगता है कि आदमी शायद सोचता ही नहीं है। शायद सोचने
से डरता है कि कहीं ऐसा न हो कि जैसे बच्चे तितलियों के पीछे दौड़ रहे हैं, वैसे ही कहीं मैं भी सुख की तितलियों के पीछे दौड़ना बंद न कर दूं! शायद घबराता है कि रुकूं तो वह कहीं दौड़ छूट न जाये। शायद डरता है कि कहीं जिंदगी को देख लूं तो कहीं बदलाहट न करनी पड़े।

लेकिन जिन्हें साधना के जगत में उतरना है, अप्रमाद में, जागरण में, चेतना में, उन्हें स्मरणपूर्वक पहले सूत्र को चौबीस घंटे ख्याल में रखना जरूरी है। उठें सुबह, तो स्मरण- पूर्वक ध्यान करें कि कल भी उठे थे, परसों भी उठे थे, पचास वर्ष हो गए हैं उठते हुए। क्या वही आकांक्षाएं आज फिर पकड़ेंगी जो कल पकड़े हुए थीं। कुछ करें मत, सिर्फ स्मरण करें। जस्ट रिमेंबर। कसम मत खाएं कि आज कल जैसा नहीं करूंगा। कसम खाने का तो मतलब यही हुआ कि कल से कोई समझ नहीं मिली, इसलिए कसम खानी पड़ रही है। कल का स्मरण भर करें। यह मत कहें कि अब नहीं करूंगा। यह मत कहें कि अब क्रोध नहीं करूंगा। इतना ही कहें कि कल भी क्रोध किया था, बस इतना ही स्मरण रखें। परसों भी क्रोध किया था। कल भी पछताया था, परसों भी पछताया था। आज के लिए कोई निर्णय न लें। केवल कल का स्मरण आज आपके पीछे छाया की तरह घूमता रहे।
तो क्रोध असंभव हो जाएगा। सुख की दौड़, पागलपन हो जाएगी। दूसरे से कुछ मिल सकता है, इसकी आशा क्षीण हो जाएगी। और जिंदगी पर पकड़ रोज-रोज ढीली होने लगेगी। मुट्ठी खुलने लगेगी। जैसे ही जीवन पर पकड़ कम होती है, भीतर प्रवेश शुरू हो जाता है। इसलिए पहला सूत्र कि जीवन एक धोखा है, इसका स्मरण रखें। दूसरा सूत्र, यह शरीर मरणधर्मा है। इसे स्मरण रखें। यह शरीर मृत्यु
की ही काया है। यह डेथ एंबाडीड है। नार्मन ब्राउन ने एक किताब लिखी है, लव्स बाडी--प्रेम की काया। मेरा मन होता है कि कभी कोई एक किताब लिखे, डेथ्स बाडी--मृत्यु की काया। यह शरीर सिर्फ मृत्यु की तैयारी है। इस शरीर से मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ मिलनेवाला नहीं है।
पहले तो जगत एक धोखा है, इससे बाहर के जगत से मुट्ठी ढीली हो जाएगी। फिर हमारे शरीर पर हमारी इतनी पकड़ है कि शरीर ही हमारा सब कुछ मालूम होता है। और जिसे शरीर ही सब कुछ मालूम होता है, वह भीतर न जा सकेगा। उसने शरीर के किनारे की खूंटी जोर से पकड़ रखी है। यह छोड़नी पड़ेगी, यह नाव खोलनी पड़ेगी। भीतर जाने के लिए इस खूंटी से हाथ ढीले करने पड़ेंगे। यह शरीर मृत्यु है, यह स्मरण... ।
फिर ऐसा भी समझाना नहीं है अपने को कि यह शरीर मरेगा, और मैं तो अमर हूं। ऐसा मत समझाना अपने को। आपको मैं कौन हूं इसका तो कोई पता नहीं है, इसलिए यह मत समझाना कि शरीर तो मरेगा और मैं अमर हूं। वह अमर होने की आकांक्षा आप अपने साथ खड़ी मत कर लेना। अभी इतना ही जानना कि यह शरीर मरता है और मुझे मेरा कोई पता नहीं है। क्योंकि अगर आपने कहा कि मैं अमर हूं, आत्मा अमर है, शरीर ही मरेगा, तो आप भीतर नहीं जा पायेंगे। क्योंकि ये शब्द आपने बाहर से उठा लिये। ये शब्द उपनिषद और गीता से सुन लिये। ये शब्द कुरान और बाइबिल के हैं, ये आपके नहीं हैं। भीतर जाना नहीं होगा। ये शब्द ज्यादा से ज्यादा बुद्धि में अटका देंगे आपको। वह भी एक खूंटी है, जो भीतर जाने के लिए तोड़नी पड़ती है। उसकी बात मैं तीसरे सूत्र में आपसे करना चाहता हूं।
शरीर मरणधर्मा है, इतना स्मरण काफी है। आत्मा अमर है, कृपा करके यह दूसरा हिस्सा आप मत जोड़ें, इसका आपको पता नहीं है। इसका किसी दिन पता चला सकता है, लेकिन जिस दिन पता चलेगा उस दिन दोहराने की जरूरत न रह जाएगी। अभी इतना ही जानें कि शरीर मरणधर्मा है। और इस जानने में कोई भी बाधा नहीं है। आत्मा अमर है, इसमें संदेह उठेंगे। आत्मा अमर है या नहीं, इसमें मन में शंकायें खड़ी होंगी। इसलिए कोई भी आदमी बिना जाने, आत्मा अमर है, ऐसी निस्संदिग्ध स्थिति को उपलब्ध नहीं होता है, ऐसी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होता है। जब तक जान न ले तो ऊपर से थोपता रहे कि आत्मा अमर है, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। भीतर वह जानता है कि मैं मरूंगा।
शरीर मरणधर्मा है, यह जरूर सत्य है। यह सारी मनुष्य-जाति का, यह सारे जीवन का अनुभूत सत्य है। इसके लिए किसी पर विश्वास करने की कोई भी जरूरत नहीं है। यह शरीर मर ही रहा है। यह शरीर बच्चा था, यह जवान हो गया, यह बूढ़ा हो रहा है, यह मर ही रहा है। यह एक-एक कदम मौत के ही उठा रहा है। यह जन्मने के बाद मरने के अतिरिक्त दूसरा काम ही नहीं कर रहा है। यह मरता ही चला जा रहा है। जिसे हम शरीर की जिंदगी कहते हैं, वह धीरे-धीरे क्रमशः मरने की स्थिति है, वह ग्रेजुअल डेथ-प्रोसेस... वह मरता जा रहा है।

लोग गलत कहते हैं कि आदमी सत्तर साल में मर गया। सत्तर साल में मरने
की क्रिया सिर्फ पूरी होती है। उस क्षण कोई मरता नहीं है। मरता ही रहता है, मरने का काम चलता रहता है, लेकिन हम तो आखिरी हिस्से देखते हैं। हम कहते हैं कि सौ डिग्री पर पानी भाप बन गया। जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है लेकिन एक डिग्री पर, दो डिग्री पर, वह भाप बनने की तैयारी करता रहता है और गर्म होता रहता है, निन्यान्बे डिग्री पर वह पूरा तैयार होता है, सौ डिग्री पर छलांग लगा जाता है--हम जिंदगी भर मरने की तैयारी करते हैं। जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह सिर्फ मरने का उपक्रम है। शरीर की तरफ यह स्मरण गहरा हो जाये, तो शरीर से पकड़ छूटनी आसान हो जाती है।
स्मरण रखें कि जिसे आपने समझा है कि मैं हूं और जब दर्पण के सामने खड़े हों तो देखें कि सामने मौत खड़ी है, आप नहीं खड़े हैं। लेकिन चेहरा आपको अपना दिखाई पड़ रहा है, यह मौत का चेहरा दिखाई नहीं पड़ रहा है। हालांकि जिस जमीन पर आप बैठे हैं, उसमें ऐसा मिट्टी का एक कण भी नहीं है जो कभी न कभी किसी आदमी को अपना चेहरा होने का भ्रम नहीं दे चुका है। जिस जगह आप बैठे हैं वहां कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है। जमीन पर एक इंच जमीन नहीं है जहां कम से कम दस आदमियों की राख न मिल चुकी हो। आदमियों की कह रहा हूं, पशु-पक्षियों का हिसाब लगाना तो मुश्किल है, कीड़े-मकोड़ों का हिसाब लगाना तो मुश्किल है, पौधों का हिसाब लगाना तो मुश्किल है। वे भी जीये हैं। जिस जगह आप बैठे हैं वहां न मालूम कितने वे ही लोग भ्रमपूर्वक जीये हैं, जिन्होंने दर्पण में समझा है कि जिसे मैं देख रहा हूं यह मैं हूं, आज वे सिर्फ राख में पड़े हैं। आपके और उनके राख में पड़ जाने में सिर्फ टाइम गैप का फर्क पड़ेगा, थोड़े से वक्त की देर है, आप भी उसी क्यू में खड़े हैं जिसमें वे आगे खड़े थे। थोड़ी देर में क्यू वहां पहुंच जायेगा। और क्यू पूरे वक्त बढ़ रहा है। जब एक आदमी मरता है तो क्यू में थोड़ी जगह आगे सरक गयी। लेकिन आप बड़ी उत्सुकता से आगे बढ़ते हैं कि जगह खाली हुई, आगे बढ़ने का मौका मिला। जगह खाली नहीं हुई, मौत ने एक कदम और आपकी तरफ बढ़ाया है या आप एक कदम और मौत की तरफ बढ़ गये हैं।
सुबह जब उठें, तो अपने शरीर को गौर से देख लें और जानें कि शरीर मृत्यु है। सांझ को जब सोने लगें तब भी शरीर को गौर से देख लें और जानें कि शरीर मृत्यु है। स्नान जब करें तब शरीर को गौर से देख लें और जानें कि शरीर मृत्यु है। भोजन जब करें, तब शरीर को गौर से देख लें और जानें कि शरीर मृत्यु है। दिन में दस-बीस मौकों पर, शरीर मृत्यु है, इसका स्मरण माला के गुरियों की तरह आपके भीतर प्रविष्ट हो जाये, तो आपके शरीर से खूंटी टूट जाएगी, बहुत ज्यादा देर नहीं लगेगी। जैसे ही दिखने लगेगा कि शरीर मृत्यु है, तो शरीर के भीतर जो हमारे तादात्म्य हैं, आइडेंटिटी हैं कि यह मैं ही हूं, यह छिन्न-भिन्न हो जाएगा। उसे छिन्न-भिन्न करना पड़ेगा, उसे मिटा ही डालना पड़ेगा। वह आइडेंटिटी, वह तादात्म्य टूटना ही चाहिए। वही खूंटी है, जो शरीर को बांधे हुए है।
और तीसरा सूत्र, जिसे हम मन कहते हैं, बुद्धि कहते हैं, विचार कहते हैं, इससे हम सत्य को कभी भी न जाने सकेंगे। इससे कभी सत्य जाना नहीं गया है। इससे हम केवल ज्यादा अपीलिंग असत्यों का निर्माण करते हैं। मनुष्य ने हजार-हजार दर्शन, हजार-हजार फिलासफीज खड़ी की हैं, अनेक शास्त्र-सिद्धांत निर्मित किए हैं। जिंदगी का क्या है सत्य, इसको बतानेवाले न मालूम कितने- कितने सिस्टम्स बनाए हैं। पर फिलासफी हार गई, अब तक कोई उत्तर नहीं मिला। बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि बचपन में जब मैं युनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र पढ़ने गया था तो मैंने सोचा था कि जीवन में कम से कम जरूरी-जरूरी सवालों के जवाब तो मिल ही जाएंगे। फिलासफी का मतलब ही यही है, दर्शन का मतलब ही यही है कि जिंदगी जो सवाल पूछती है, उसके जवाब होने चाहिए। बर्टें्रड रसेल ने मरने के पहले, अपने नब्बे वर्ष के अनुभव के बाद लिखा है, लेकिन अब मैं बूढ़ा होकर यह कह सकता हूं कि फिलासफी से मुझे नए-नए सवाल तो मिले, लेकिन जवाब बिल्कुल नहीं मिले। और हर जवाब, जिसे मैंने अपनी नासमझी में जवाब समझा, थोड़े ही दिन में नए सवालों का पिता सिद्ध हुआ, और कुछ भी नहीं हुआ।

हर जवाब नये सवालों को पैदा करता रहा है। बुद्धि से दर्शन हार गया, इसलिए आज दर्शन पर कोई नई किताब नहीं लिखी जा रही है। अब दर्शन-शास्त्री सारे विश्वविद्यालयों में सारी दुनिया के दर्शन के नए सिद्धांत निर्मित नहीं कर रहे हैं। वे केवल पुराने दर्शन गलत थे, इसी को सिद्ध कर रहे हैं।
एक वैक्यूम, एक शून्य खड़ा हो गया है। दर्शन के पास कोई उत्तर नहीं है। धर्मशास्त्रों ने उत्तर दिए हैं, लोग उनको कंठस्थ कर लेते हैं। बुद्धि उनसे तृप्त होने की कोशिश करती है, पर कभी तृप्त नहीं हो पाती।
क्योंकि जीवन तब तक तृप्त न होगा जब तक जान न ले। विश्वास तृप्ति नहीं दे पाता। बुद्धि विश्वासों से भर जाती है। कोई ईसाई है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है। ये सब विश्वासों के फासले हैं और ये सब बुद्धि में जीनेवाले लोगों के ढंग हैं।
सत्य अब तक बुद्धि से मिला नहीं, मिलेगा भी नहीं। क्योंकि जब बुद्धि नहीं थी, तब भी सत्य था; और जब बुद्धि नहीं होगी तब भी सत्य होगा। क्योंकि सत्य इतना विराट है और बुद्धि इतनी छोटी है। आदमी की इस छोटी-सी खोपड़ी में एक छोटा-सा कंप्यूटर ही है। अब तो उससे बेहतर कंप्यूटर बनने शुरू हो गए हैं, लेकिन कोई कंप्यूटर यह नहीं कह सकता कि मैं सत्य दे दूंगा। कंप्यूटर इतना ही कह सकता है कि जो तुमने मुझे फीड किया, जो सूचनाएं तुमने मुझे पिला दीं और खिला दीं, मैं उनको जब वक्त पड़े तब दोहरा दूंगा। बुद्धि भी कंप्यूटर से ज्यादा नहीं है। यह नेचुरल कंप्यूटर है। बुद्धि ने जो-जो इकट्ठा कर लिया उसे जुगाली करके दोहरा देती है।
जब मैं आपसे पूछता हूं, ईश्वर है? तो आप जो उत्तर देते हैं वह आप नहीं
दे रहे हैं। सिर्फ आपकी बुद्धि का दिया गया उत्तर है। और बुद्धि वापस रि- ईको कर देती है, प्रतिध्वनित कर देती है। अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो बुद्धि कह देगी कि कैसा ईश्वर? कोई ईश्वर नहीं है। आत्मा ही सब कुछ है। अगर आप हिंदू घर में पैदा हुए हैं तो कहेंगे कि हां, ईश्वर है। अगर कम्युनिस्ट घर में पैदा हुए हैं तो कहेंगे, कोई ईश्वर नहीं है, सब बकवास है। लेकिन ये सभी उत्तर कंप्यूटराइज्ड हैं, ये सभी उत्तर बुद्धि ने पकड़ लिए हैं, उनको दोहरा रही है। बुद्धि सिर्फ रिप्रोड्यूस करती है, बुद्धि कुछ जानती नहीं। बुद्धि ने अब तक कुछ भी नहीं जाना है, न धर्म, न दर्शन, न विज्ञान।
लेकिन विज्ञान के संबंध में सोचते वक्त ऐसा लगता है कि विज्ञान ने तो कुछ जान लिया है। वह भी बड़ी भ्रांति मालूम पड़ती है। क्योंकि न्यूटन जो जानता था, आइंस्टीन उसको गलत कर जाता है। आइंस्टीन जो जानता था, वह आइंस्टीन के बाद की पीढ़ी गलत किये दे रही है।
अब इस दुनिया में कोई वैज्ञानिक इस आश्वासन से नहीं मर सकता है कि मैं
जो जानता हूं वह सत्य है। वह इतना ही कह सकता है कि पिछले असत्य से मेरा असत्य अभी ज्यादा अपीलिंग है, ज्यादा आकर्षक है। आनेवाले लोग उसे असत्य कर देंगे। वे दूसरे असत्य को पकड़ा देंगे। या इसको कहने का एक वैज्ञानिक का जो ढंग है, वह कहता है, अप्रोक्सिमेट ट्रुथ है। वह कहता है, करीब-करीब सत्य है।
लेकिन करीब-करीब कहीं सत्य होता है? या तो सत्य होता है या असत्य होता है, करीब-करीब का मतलब ही यही है कि वह असत्य है।
अगर मैं आपको कहूं कि मैं करीब-करीब आपको प्रेम करता हूं, तो इसका क्या मतलब होता है? इसका कोई मतलब नहीं होता। इससे तो बेहतर है कि आपको कहूं कि मैं आपको घृणा करता हूं, क्योंकि वह सच तो होगा। करीब-करीब प्रेम का कोई मतलब नहीं होता है। या तो प्रेम होता है या नहीं होता है। जिंदगी में करीब-करीब बातें होतीं ही नहीं।
विज्ञान कहता है, करीब-करीब सत्य, लेकिन सब सत्य रोज गड़बड़ हो जाते हैं। सौ वर्षों में विज्ञान के सब सत्य डगमगा गए। सौ वर्ष पहले विज्ञान बिल्कुल आश्वस्त था कि मैटर है, पदार्थ है। सौ वर्ष में पता चला कि पदार्थ ही नहीं है, और कुछ भी हो सकता है। अब वे कहते हैं कि मैटर है ही नहीं। सौ साल पहले विज्ञान कहता था कि पदार्थ ही सत्य है, ईश्वर सत्य नहीं है। आज वैज्ञानिक कहता है कि पता नहीं ईश्वर हो भी सकता है, क्योंकि अभी तक हम उसे असिद्ध नहीं कर पाये कि नहीं है। लेकिन पदार्थ तो सिद्ध हो गया है कि नहीं

है। अब वे कहते हैं, एनर्जी है, सिर्फ ऊर्जा है। कितने दिन कहेंगे, कहना मुश्किल है। बहुत ज्यादा देर नहीं चलेगी यह बात, क्योंकि कोई चीज ज्यादा देर नहीं चलती है। आदमी के सब सिद्धांत ओछे पड़ जाते हैं, सत्य बड़ा पड़ जाता है। सत्य रोज बड़ा सिद्ध होता है।
इसलिए तीसरा सूत्र स्मरण रखना जरूरी है साधक को, कि मन के किन्हीं सत्यों को सत्य मत समझ लेना। मन के पास कोई भी सत्य नहीं है, मन के पास केवल सत्य के ख्याल हैं, सत्य के सिद्धांत हैं। सत्य के लिए दिए गए शब्द हैं। मन के पास ईश्वर "शब्द" है, ईश्वर बिल्कुल नहीं है। मन के पास शब्दों की भीड़ है। मन शब्दों से आदमी को धोखा दे देता है। और यह धोखा गहरे से गहरा है। बाहर के जगत का धोखा जल्दी टूट जाता है, शरीर के धोखे को भी बहुत देर नहीं लगती टूटने में, पर मन का धोखा टूटने में सबसे ज्यादा देर लगती है। इसलिए तीसरी बात, साधक को निरंतर स्मरण रखना है कि मन जो भी कह रहा है वह मन की कल्पना है, इमेजिनेशन है। वह मन की मान्यता है, सत्य नहीं है। मन को सत्य का पता नहीं है, पता हो भी नहीं सकता है।
यह तीसरा स्मरण अगर बना रहे तो धीरे-धीरे मन सिद्धांतों से खाली हो जाता है, शास्त्रों से मुक्त हो जाता है, और धीरे-धीरे दर्शन, धर्म और वाद से मुक्त हो जाता है। और ये तीन घटनाएं अगर घट जायें तो व्यक्ति की तत्काल छलांग अपने अचेतन मन में लग जाती है। वह अपने भीतर उतर जाता है। खूंटियां टूट गयीं। अचेतन मन में उतरते ही क्रांति शुरू होती है। अचेतन मन में उतरते ही हम अपने जीवन के गहरे तलों से पहली दफा संस्पर्शित होते हैं, उनके स्पर्श में आते हैं। पहली बार हम जीवन को भीतर से अनुभव करते हैं। लेकिन अचेतन पहला ही कक्ष है। और अचेतन में फिर इन तीन बातों को स्मरण रखना पड़ेगा। अचेतन का भी अपना शरीर है। अचेतन का शरीर उसके पिछले जन्मों के समस्त कर्माणुओं से बना हुआ है, उसकी अपनी बाडी है, बाडी आफ द अनकांशस। आज मनोवैज्ञानिक अचेतन की बात करते हैं, अनकांशस की। चाहे जुंग हो, चाहे फ्रायड हो और चाहे एडलर हो और चाहे दूसरे, वे सारे के सारे लोग अचेतन की बात करते हैं। लेकिन उन्हें उस तरह के अचेतन की कोई खबर नहीं है जिस तरह की खबर साधक को है। अचेतन को उन्होंने चेतन को समझने के लिए एक सिद्धांत की तरह उपयोग किया है। जिन्होंने अचेतन को साधक की तरह जाना है, वे कहते हैं कि अचेतन के पास अपना शरीर है, वह कर्माणुओं का शरीर है। वह जो अनंत-अनंत जन्मों में कर्म किए गए हैं, उनकी देह है, उनकी बाडी है, उनकी अपनी काया है।
अचेतन में उतर कर स्मरण रखना पड़ेगा कि यह जो कर्मों की सूक्ष्म देह है, यह भी मैं नहीं हूं, यह भी मरणधर्मा है। यद्यपि हमारा यह शरीर, जो दिखायी पड़ता है पुदगल पदार्थ से बना हुआ, यह एक जन्म में मर जाता है। पर कर्मों की देह सिर्फ एक बार मरती है, मुक्ति के क्षण में, लेकिन वह भी मरणधर्मा है। जो हमने बाहर के शरीर के लिए स्मरण रखा है, वही अचेतन में, भीतर के शरीर के लिए स्मरण रखना पड़ेगा। और जो हमने बाहर के मन और विचारों के लिए स्मरण रखा, वही अचेतन में अचेतन के विचार, कल्पनाओं और कामनाओं के लिए स्मरण रखना पड़ेगा। अचेतन की देह पिछले जन्मों से निर्मित देह है, और अचेतन का मन समस्त पिछले जन्मों की स्मृतियों का जोड़ है। उसमें सब छिपा पड़ा है।
मन का एक अदभुत नियम है कि मन एक बार भी जिस बात को याद कर ले उसे कभी भूलता नहीं। आप कहेंगे, ऐसा नहीं मालूम होता। बहुत-सी बातें हमें भूल जाती हैं। वह सिर्फ आपको लगता है कि आप भूल गए, आप भूल नहीं सकते। स्मरण किया जा सकता है। सिर्फ अस्तव्यस्त हो गया होता है।

कभी कोई आदमी कहता है कि बिल्कुल जबान पर रखा है आपका नाम, लेकिन याद नहीं आ रहा है। यह आदमी बड़े मजे की बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि जबान पर रखा है और याद नहीं आ रहा है! दोनों का क्या मतलब है? ये दोनों कंट्राडिक्टरी हैं। अगर जबान पर रखा है तो कृपा करके बोलिये। कहता है, जबान पर तो रखा है लेकिन याद नहीं आ रहा है। असल में उसे दो बातें याद आ रही हैं। उसे यह याद आ रहा है कि मुझे याद था, और यह भी याद आ रहा है कि फिलहाल याद नहीं आ रहा है।

वह बगीचे में चला गया है, गड्ढा खोद रहा है, सिगरेट पी रहा है, कुछ और काम में लग गया है। अखबार पढ़ने लगा है, रेडियो खोल लिया है, और अचानक बबल-अप हो जाता है, अचानक याद आ जाता है। वह जो याद नहीं आ रहा था, एकदम भीतर से उठ आता है। वह कहता है, हां याद आ गया।
ठीक ऐसे ही अचेतन में उतरते ही पिछले जन्मों का सब कुछ याद आना शुरू
हो जाता है, लेकिन वह भी मन है। अगर उस मन का भी स्मरण रखें, कि इस मन से भी नहीं पा सकूंगा सत्य को, तो आदमी की दूसरी छलांग लग जाती है। वह दूसरी छलांग है कलेक्टिव अनकांशस में, समष्टि अचेतन में।
यह जो पहली छलांग थी, अपने व्यक्तिगत अचेतन में थी, इंडीविजुअल अनकांशस में थी, मैं अपने अचेतन में उतरा था। और जिस दिन अपने अचेतन से छलांग लगती है, उस दिन मैं सबके अचेतन में उतर जाता हूं। उस दिन दूसरा आदमी सामने से गुजरता है तो दिखाई पड़ता है कि यह आदमी किसी की हत्या करने जा रहा है। उस दिन दूसरा आदमी आया भी नहीं और पता चल जाता है कि यह आदमी क्या पूछने आया है। उस दिन कोई आदमी आंख से गुजरता दिखाई पड़ता है और उसी क्षण पता चल जाता है कि इसकी मौत तो करीब आ गई है, यह मरने के करीब है। उस दिन व्यक्ति समष्टि अचेतन में उतर जाता है। उस गहराई में हम सबसे जुड़ जाते हैं, सबके अचेतन से जुड़ जाते हैं।
वह बड़ा विराट अनुभव है, वह बड़ा गहरा अनुभव है। क्योंकि सारा जगत भीतर
से एक मालूम होने लगता है, पूरा जीवंत-जगत एक मालूम होने लगता है। सब जीवन अपना ही मालूम होने लगता है।
लेकिन यहां से भी छलांग लगानी है। यह भी परम स्थिति, अल्टीमेट नहीं है। इसकी भी देह है। इसमें समस्त लोगों के कर्मों की जो देह है, वह मेरी देह बन जाती है। इस स्थिति में आदमी अपने को करीब-करीब ईश्वर जैसा अनुभव करता है। इसलिए बहुत-से लोग जो घोषणा कर देते हैं कि मैं ईश्वर हूं, उसका कारण वही है। जैसे कि मेहर बाबा की घोषणा थी कि मैं ईश्वर हूं, मैं अवतार हूं।
इसलिए समष्टि अचेतन में जो व्यक्ति उतर जाता है, वह आपको धोखा नहीं देता। ऐसा उसे लगता है कि वह ईश्वर है, क्योंकि सबकी चेतना का सब कुछ उसे अपना मालूम होने लगता है। हमें लगता है कि कोई आदमी अपने को ईश्वर कहे तो कैसा पागलपन है। गहरे में पागलपन है। असल में यह भी कोई आखिरी स्थिति नहीं है। इसमें सबकी चेतना, सबके चेतन कर्म अपने मालूम होने लगते हैं। इसलिए मेहर बाबा कह सकते हैं... कि गांधी मरे तो वह कह देते हैं कि मैंने उन्हें अपने में लीन कर लिया। नेहरू मरे तो वह कह देते हैं कि मैंने उन्हें अपने में लीन कर लिया है।

कुछ लोग कहेंगे कि यह आदमी चालाक, धोखेबाज मालूम पड़ता है। जहां हम जीते हैं, वहां से यह धोखेबाजी मालूम होगी। धोखा है, धोखेबाजी नहीं है। धोखा मेहर बाबा को है, आपके लिए धोखेबाजी नहीं कर रहे हैं वे। ऐसा लगता है! जब समष्टि, सारे लोगों का अचेतन मन, मेरा ही मन मालूम पड़ने लगता है, तो जिसकी भी देह छूटती है, लगता है वह मुझ में ही लीन हो गया। सबकी देह, सबके कर्मों की देह, मेरी देह हो गई। और सबके मनों के विचार मेरे विचार हो गए। लेकिन अभी भी, अभी भी "मैं" मौजूद हूं। इसलिए मेहर बाबा कह सकते हैं कि मैं अवतार हूं। और जब तक "मैं" मौजूद है तब तक परम सत्य की उपलब्धि नहीं है। अगर हम यहां भी स्मरण रख सकें कि यह मेरी ईश्वर जैसी देह भी देह ही है,
और यह मेरा ईश्वर जैसा मन, यह डिवाइन माइंड भी मन ही है, यह सुपरामेंटल भी मन ही है, अगर यहां भी हम स्मरण रखें उन्हीं सूत्रों का, तो एक और छलांग लग जाती है और व्यक्ति कास्मिक अनकांशस में, ब्रह्म अचेतन में उतर जाता है। ब्रह्म अचेतन में वह कह पाता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। तब ये चांद-तारे उसे अपनी देह के भीतर घूमते मालूम पड़ने लगते हैं।
स्वामी राम निरंतर कहा करते थे कि चांद-तारे मेरे भीतर घूमते हैं, सूरज मेरे भीतर उगता है! अगर हम मनोवैज्ञानिक से कहेंगे तो वह कहेगा कि यह आदमी न्यूरोटिक है, साइकोटिक है। इस आदमी का दिमाग खराब हो गया है।
क्योंकि चांद-तारे सदा बाहर हैं, चांद-तारे भीतर कैसे हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक के कहने में भी सचाई है। जहां तक उसकी समझ है, वह ठीक कह रहा है। लेकिन उसे रामतीर्थ जैसे व्यक्ति के अनुभव का पता नहीं है। रामतीर्थ जैसे व्यक्ति का विस्तार कास्मिक बाडी का हो गया है। इस विश्व की जो अनंत सीमाएं हैं वही अब उनकी सीमाएं हैं। इसलिए सब उन्हें अपने भीतर घूमता हुआ मालूम पड़ेगा। चांद-तारे उसे अपने भीतर घूमते हुए मालूम पड़ेंगे। ऐसा व्यक्ति कह सकता है कि मैंने जगत को बनते देखा और मैंने जगत को मिटते देखा, और मैं चांद-तारों को जन्मते देखता हूं और चांद-तारों को मिटते देखता हूं। ऐसे व्यक्ति की स्मृतियां कास्मिक मेमोरी से आनी शुरू हो जाती हैं।
जिन लोगों ने दुनिया में सृष्टि के जन्म की बातें कहीं हैं उनमें से अधिक लोग ऐसे हैं जिन्हें कास्मिक अनकांशस का अनुभव हुआ है। इसलिए वे इस तरह की बात कहते हैं कि परमात्मा ने कब दुनिया बनाई, कब पृथ्वी बनी, कब चांद-तारे बने। उनकी तारीखों में भूल- चूक हो सकती है, क्योंकि उस क्षण में तारीखों का हिसाब रखना बहुत मुश्किल है। लेकिन उन व्यक्तियों के अनुभव आथेंटिक हैं। अनुभव आथेंटिक हैं, अल्टीमेट नहीं; प्रामाणिक हैं, पर अंतिम नहीं।
तीसरे, इस कास्मिक अनकांशस में, इस ब्रह्म अचेतन में भी अगर व्यक्ति उन्हीं सूत्रों का स्मरण रख सके--और सूत्र वही रहेंगे कि यह शरीर भी विराट ब्रह्म का शरीर ही है। शरीर छोटा हुआ, छह फुट का हुआ, कि अनंत-अनंत योजन विस्तारवाला हुआ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। विचार मेरे हुए कि परम ब्रह्म के हुए, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। यह सिर्फ मात्राओं के फर्क हैं--अगर यहां भी वह स्मरण रखे तो चौथी छलांग लग जाती है और व्यक्ति महानिर्वाण में प्रवेश कर जाता है। जहां मन समाप्त हो जाता है, जहां मैं समाप्त हो जाता है, वहां वह यह भी नहीं कहता कि मैं ब्रह्म हूं। बुद्ध जैसा व्यक्ति भी यह नहीं कहता कि मैं ब्रह्म हूं। वह यह भी नहीं कहता कि मैं ईश्वर हूं। वह यह भी नहीं कहता कि मैं आत्मा हूं।
इसलिए बुद्ध को समझना बहुत मुश्किल पड़ा है। क्योंकि वे कहते हैं कि आत्मा भी नहीं है, वे कहते हैं कि ईश्वर भी नहीं है, वे कहते हैं कि ब्रह्म भी नहीं है। फिर जो बच जाता है वही है, दैट व्हिच रिमेन्स। अब वह क्या बच जाता है? शून्य बच जाता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। शून्य बच जाता है, जिसमें कोई विचार की तरंग नहीं है। शून्य बच जाता है, जिसमें कोई सेंटर नहीं है, कोई ईगो नहीं है। शून्य बच जाता है। कहना चाहिए कुछ भी नहीं बच जाता है।
यह जो सब कुछ का खो जाना है, वही सब कुछ का पाना भी है। यह परम है, यह आखिरी है। इसके पार? इसके पार का उपाय नहीं है। क्योंकि अब कुछ पार भी किसी के जा सको, वह भी नहीं बच जाता है। कास्मिक अनकांशस से, ब्रह्म अचेतन से जो छलांग लगती है, वह शून्य में, परम में, सत्य में, महानिर्वाण में, मोक्ष में, उसे जो भी हम नाम देना चाहें, दे सकते हैं। असल में सब नाम व्यर्थ हैं। सब भाषा व्यर्थ है। इसी में बाधाएं हैं। पहली बाधाएं तो हमारी अपनी हैं, इसलिए मैंने उनकी विस्तार से चर्चा की।
हमारी मुख्य बाधाएं तीन हैं--बाहर के जगत में सुख की आशा, शरीर के जगत में अमृतत्व की आशा, मन के जगत में सत्य की आशा। तीन बाधाएं हैं। फिर ये तीन बाधाएं प्रत्येक तल पर वापस पुनरुक्त होती हैं। लेकिन आपको उससे बहुत लेना-देना नहीं है। इन तीन बाधाओं को पार कीजिए तो परमात्मा आपको नई तीन बाधाएं दे देगा। उनको पार कीजिए तो और गहरे तल पर नई बाधाएं होंगी। बाधाएं यही होंगी, सिर्फ उनका रूप और तल बदलता जाएगा। और यह अंत तक पीछा करेंगी। और जब कोई भी बाधा न रह जाये, जब लगे कि अब कुछ बचा ही नहीं, तभी आप जानना कि जाना उसे, जिसे जानने को उपनिषद के ऋषि प्यासे हैं; जाना उसे, जिसे जानने को कृष्ण गीता में कहते हैं; जाना उसे, जिसके लिए जीसस सूली पर लटक जाते हैं; जाना उसे, जिसके लिए चालीस वर्ष तक बुद्ध और महावीर गांव-गांव एक-एक आदमी का द्वार खटकाते फिरते हैं। लेकिन इसे जानने के लिए स्वयं को बिल्कुल ही मिट जाना पड़ता है। शरीर की तरह, आत्मा की तरह, ईश्वर की तरह, ब्रह्म की तरह भी स्वयं को मिट जाना पड़ता है। जीसस के एक वचन से मैं इस बात को पूरा करूं।

जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे जो अपने को खोने में समर्थ हैं, क्योंकि केवल वे ही उसे पा सकेंगे जो स्वयं को खो सकते हैं। और अभागे हैं वे जो अपने को बचाने में लगे हैं, क्योंकि जो अपने को बचायेगा, वह सब कुछ खो देता है।
ये तीन सूत्र, आप जहां हैं वहां से शुरू करें, और आगे की यात्रा अपने
आप खुलती चली जाएगी। ये ही तीन सूत्र निरंतर प्रयोग करने पड़ेंगे उस समय तक, जब तक कि कुछ भी बाकी रहे। और जब कुछ भी बाकी न रह जाये, आप भी बाकी न रह जायें और सूत्र भी खो जायें। कोई वक्तव्य देने का उपाय न रह जाये। मेहर बाबा की तरह कहने की जगह न रहे कि मैं ईश्वर हूं। राम तीर्थ की तरह कहने की जगह न रहे कि चांद-तारे मुझमें घूमते हैं। अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा की भी जगह न रह जाये। क्योंकि किसको घोषणा करनी? कौन घोषणा करेगा? जब सब शब्द शून्य हो जायें, सब वाणी गिर जाये, सब व्यक्तित्व खो जाये, तब जो शेष रह जाता है वही परम, वही द अल्टीमेट, वही सब धर्मों की खोज, वही सब प्राणों की प्यास, वही सब आत्माओं की आकांक्षा है। वही है अमृत।
जहां तक आकार है, वहां तक मृत्यु है; जहां निराकार है, वहीं अमृत है, वहीं है आनंद। क्योंकि जहां तक दूसरा है, वहां तक दुख है; जहां दूसरा नहीं है, वहीं आनंद संभव है, वहीं है शांति। क्योंकि जहां तक "मैं" हूं, वहां तक अशांति है, जहां "मैं" भी नहीं हूं वहीं शांति है। सत-चित-आनंद वहां है। कहने को नहीं, अनुभव में; बोलने को नहीं, जानने में; बताने को नहीं, हो जाने में। वहां ऐसा नहीं कि सत-चित-आनंद जाना जाता है, बल्कि ऐसा कि वहां हम सत-चित-आनंद हो गए।

ओशो, अप्रमाद की साधना के संदर्भ में कृपया समझाइए कि साक्षी, सजगता
और तथाता की साधना में क्या-क्या समानताएं और भिन्नताएं हैं।

साक्षी, सजगता और तथाता, इन तीनों शब्दों को अप्रमाद की साधना के लिए समझ लेना उपयोगी है। साक्षी पहला चरण है। साक्षी का मतलब है कि जीवन में मैं एक गवाह की तरह गुजरूं। साक्षी का मतलब है कि मैं एक विटनेस की तरह, एक देखने वाले की तरह, द्रष्टा की तरह जिंदगी में जीऊं। अगर आप मुझे गाली दें तो मैं अपने को अनुभव न करूं कि मुझे गाली दी गई। मैं ऐसा जानूं कि मैंने जाना कि आपने इसको गाली दी। आप पत्थर मारें तो मैं ऐसा न जानूं कि आपने पत्थर मारा और मैं मारा गया, वरन ऐसा जानूं कि आपने मारा और यह मारा गया ऐसा मैंने जाना। मैं निरंतर त्रिकोण के तीसरे कोने पर खड़ा रहूं। मैं निरंतर दो के बीच में अपने को न बांटूं, तीसरे पर उचक कर खड़ा हो जाऊं, तीसरे पर छलांग लेता रहूं। घर में आग लग जाए तो मैं ऐसा न जानूं कि मेरा घर जल रहा है, ऐसा जानूं कि इसका घर जल रहा है और मैं देख रहा हूं।
जिंदगी को तीन हिस्से में तोड़ना साक्षी की साधना का उपक्रम है। हम जिंदगी को दो हिस्से में तोड़ते हैं--यहां मैं और तू है। आप हैं गाली देनेवाले, मैं हूं गाली लेनेवाला। बस दो ही हैं, तीसरा वहां नहीं है। साक्षी में हम तीसरे को जोड़ते हैं निरंतर हर स्थिति में, मैं दूसरा न बनूं, बल्कि मैं तीसरा रहूं। और जैसे-जैसे यह तीसरा कोना स्पष्ट होता चला जाता है, वैसे-वैसे दोनों ही हंसने योग्य मालूम होने लगते हैं--वह जिसने गाली दी, और वह जिसको गाली दी गई।
राम न्यूयार्क में थे। कुछ लोगों ने उन्हें पत्थर मारे, कुछ लोगों ने उन्हें गालियां दीं। लौटकर उन्होंने अपने मित्रों से कहा, आज राम बड़ी मुश्किल में फंस गए। लोग बड़ी गालियां देने लगे। कुछ लोग पत्थर भी मारने लगे। बड़ा मजा आया। तो उन मित्रों ने कहा, आप किस तरह की बात कर रहे हैं? आप ही को तो गाली दी थी उन्होंने! राम ने कहा, मुझे कैसे गाली देंगे? क्योंकि मेरा नाम तो मुझे भी पता नहीं है, तो उन्हें पता कैसे हो सकता है? वे राम को गाली दे रहे थे। उन लोगों ने पूछा, क्या राम आप नहीं हैं? तो राम ने कहा, अगर मैं राम होता तो फिर मजा न ले पाता, फिर बहुत कष्ट लेकर लौटता। मैं खड़ा देख रहा था कि कुछ लोग गाली दे रहे हैं और बेचारा राम गाली खा रहा है। और मैं खड़ा देख रहा था, मैं कह रहा था कि राम आज अच्छी मुश्किल में फंसे।

यह जो तीसरा बिंदु है, इसे उघाड़ा जा सकता है। साधक के लिए पहला चरण साक्षी से ही शुरू होता है। यह आसान है। इन तीनों शब्दों में सबसे ज्यादा आसान साक्षी है। इसे देखते रहें। खाना खा रहे हैं, तब देखते रहें कि खाना खाया जा रहा है। जिसको आप अब तक "मैं" समझते रहे हैं, वह खा रहा है। और अब तीसरा--पीछे खड़े होकर जरा देखें टेबल के किनारे से--आप देख भी रहे हैं, खाना खाया जा रहा है। खाना खा रहा है कोई, और आप देख भी रहे हैं।
जैसे-जैसे यह तीसरा बिंदु उभरेगा, वैसे-वैसे आपकी जिंदगी में दुख क्षीण होने लगेगा, क्योंकि साक्षी को दुख नहीं दिया जा सकता। साक्षी को दुख दिया ही नहीं जा सकता, सिर्फ कर्ता को दुख दिया जा सकता है। जब आपको लगता है, मैं खाना खा रहा हूं, तब आपको दुख दिया जा सकता है। जब आप कहते हैं, मैं प्रेम कर रहा हूं, तब आपको दुख दिया जा सकता है। लेकिन जब आप कहते हैं कि एक प्रेम कर रहा है, दूसरा प्रेम झेल रहा है, और आप तीसरे देखने वाले हैं, तो आपको दुख नहीं दिया जा सकता है। आपको चिंतित नहीं किया जा सकता। अगर आप दिन में दस-पांच बार साक्षी का स्मरण कर लें तो रात आपके सपने खत्म हो जाएंगे। रात आपके सपने एकदम कम हो जायेंगे। क्योंकि सपने उसको आते हैं जो दिन भर कर्ता रहा है, रात में भी कर्ता रहता है। क्योंकि दिन भर की करने की आदत रात में एकदम से कैसे छूट जाये। दिन भर दुकान चलाता है तो रात भी चलाता रहता है। दिन भर अदालत में झगड़ता है तो रात में भी अदालत में खड़ा हो जाता है। दिन में युनिवर्सिटी में परीक्षा देता है तो रात भी परीक्षा देता रहता है। वह जो दिन में कर्ता है, वह रात में भी कर्ता बन जाता है। जो दिन में साक्षी है, वह रात में भी साक्षी बन जाता है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि दिन में आप साक्षी हो जायेंगे तो दुकान बंद नहीं हो जाएगी। दुकान तो चलती रहेगी, लेकिन आपके भीतर दुकान चलनी बंद हो जाएगी। दुकान बाहर चलती रहेगी, लेकिन रात अगर सपने में आप साक्षी हो गये तो सपना बंद हो जायेगा। क्योंकि सपने की दुकान कोई दुकान नहीं है, सिर्फ ख्याल है। आप साक्षी हुए कि वह विदा हुआ। बाहर की दुकान तो चलती रहेगी, सपने की दुकान एकदम खो जाएगी। अगर साक्षी हो गए तो चिंता असंभव हो जाएगी। इसलिए जिस मुल्क में जितना ही इस बात का ख्याल है कि मैं कर रहा हूं,
उस मुल्क में उतनी ही चिंता बढ़ जाती है। आज अमरीका में सबसे ज्यादा चिंता है, क्योंकि वहां सबसे ज्यादा ख्याल है कि मैं कर रहा हूं। जो भी है, उसके पीछे "मैं" खड़ा है। अतीत की दुनिया में चिंता बहुत कम थी। इसका कारण यह नहीं था कि चीजें कम थीं, इसका कारण यह नहीं था कि लोग बैलगाड़ी में चल रहे थे और हवाई जहाजों में नहीं चल रहे थे। अतीत में चिंता कम थी तो उसका कारण बिल्कुल ही और था।
अतीत में कर्ता के साथ एक तीसरा कोण भी था साक्षी का, जिसकी हम निरंतर कोशिश करते थे कि वह विकसित हो। और जिस दिन साक्षी थोड़ा भी विकसित हो जाता था, आदमी चिंता से बाहर हो जाता था। वह देखता था कि चीजें हो रही हैं, मैं नहीं कर रहा हूं। वह उसको कई ढंग से कहता था। कभी कहता था, ईश्वर कर रहा है। यह उसका एक ढंग था कहने का कि मैं करने वाला नहीं हूं। कभी कहता था, भाग्य कर रहा है। यह भी उसका एक ढंग था कहने का कि मैं करने वाला नहीं हूं। कभी कहता था कि जो लिखा है वह हो रहा है। यह भी उसका एक ढंग था कहने का कि करने वाला मैं नहीं हूं।
लेकिन हम पागल लोग हैं। हमने उनके कहने के ढंगों को इतना गलत पकड़ा कि
वे जिस लिए कह रहे थे, वह बात तो खो गई, और जो कही जा रही थी, वह जोर से पकड़ ली गई। अब भी हम कहते हैं कि जो भाग्य में हो रहा है, वह हो रहा है। लेकिन हम ज्योतिषी के पास पहुंच जाते हैं हाथ दिखाने कि कोई उपाय हो तो मैं कुछ यज्ञ-हवन करूं जिससे कि भाग्य बदल जाये। अब भी हम कहते हैं, जो ईश्वर कर रहा है, वह हो रहा है। लेकिन सिर्फ कहते हैं। इसकी हमारे प्राणों में कहीं कोई जगह नहीं है। कहीं कोई जगह नहीं है, शब्द रह जाते हैं हाथों में, ये सारे के सारे शब्द सिर्फ कहने के ढंग थे। इनके पीछे जो असली बात थी वह तीसरा कोण था--साक्षी का, कर्ता से अलग।
इसलिए कृष्ण अर्जुन से कह पाते हैं कि तू लड़, तू यह फिक्र ही क्यों करता है कि तू लड़ रहा है। लड़ानेवाला मैं रहा। कृष्ण उसे कह सकते हैं कि तू मार, तू फिक्र ही क्यों करता है कि तू मार रहा है। क्योंकि जिनको तू सोच

रहा है कि तू मार रहा है, वह पहले ही मारे जा चुके हैं। वह अर्जुन की समझ में नहीं आता। क्योंकि वह अपने को कर्ता समझे बैठा है। वह कहता है कि मैं कैसे अपने प्रियजनों को मार डालूं? ये मेरे हैं। नहीं, नहीं, इनको मैं कैसे मार सकता हूं। उसकी चिंता कर्ता की चिंता है। अगर गीता के राज को समझना हो तो गीता का राज दो शब्दों में है। अर्जुन को कर्ता होने का भ्रम है और कृष्ण पूरे समय साक्षी होने के लिए समझा रहे हैं। इससे ज्यादा गीता में कुछ भी नहीं है। वह कृष्ण कह रहे हैं, तू सिर्फ देखनेवाला है, द्रष्टा है, करनेवाला नहीं है। यह सब पहले ही हो चुका है। यह सिर्फ कहने का ढंग है कि पहले ही हो चुका है। वह सिर्फ यह कह रहे हैं कि तू करने वाला है, इतनी बात भर तू छोड़ दे। इतनी बात भर तुझे भटका देगी और वंचना में डाल देगी। इतनी बात तुझे चिंता में डाल रही है, मोह में डाल रही है।
साक्षी, साधक के लिए पहला कदम है। यह सरलतम है। ऐसे सरलतम नहीं है, और
जो आगे के कदम हैं, उनकी दृष्टि से सरल है। जो हम करने जा रहे हैं, उस दृष्टि से तो वह बहुत कठिन है। लेकिन थोड़ा प्रयोग करें तो इतना कठिन नहीं है। नदी में तैरते हुए कभी देखें जरा कि आप देख रहे हैं कि तैर रहे हैं। रास्ते पर चलते वक्त देखें कि आप देख रहे हैं कि चल रहे हैं।
कठिन नहीं है। कभी-कभी उसकी झलक आने लगेगी। और जैसे ही तीसरे कोण की झलक आएगी, आप अचानक पाएंगे कि पूरी दुनिया बदल गई। सब कुछ बदल गया, चीजों ने और रंग ले लिया। क्योंकि सारा जगत हमारी दृष्टि है। दृष्टि बदली कि जगत बदला।
दूसरी साधना सजगता की है। वह साक्षी से और गहरा कदम है। साक्षी में हम
दो को मानकर चलते हैं--तू और मैं। और इन दोनों को मानकर इनके प्रति हम अलग खड़े हो जाते हैं, कि मैं तीसरा हूं। साक्षी में हम तीन में जगत को तोड़ देते हैं। ट्रायंगल बनाते हैं। वह त्रय है। साक्षी त्रय है। सजगता में हम त्रय नहीं बनाते। हम यह नहीं कहते कि किस चीज के प्रति जाग्रत हैं। हम कहते हैं, हम सिर्फ जागे हुए जीएंगे। हम यह नहीं कहते कि मैं देख रहा हूं कि मैं चल रहा हूं। हम यह कहते हैं कि हम चलते हुए होश रखेंगे कि चलना हो रहा है और इसका मुझे पूरा पता रहे। यह बेहोशी में न हो जाये। यह ऐसा न हो कि मुझे पता ही न रहे कि मैं चल रहा हूं।
ऐसा रोज हो रहा है। आप खाना खाते हैं, आपको पता ही नहीं होता कि आप खाना खा रहे हैं। आप जब अपनी कार को अपने घर की तरफ मोड़ते हैं तो आपको पता नहीं रहता कि आप कार को बायें मोड़ रहे हैं। यह सिर्फ मेकेनिकल हैबिट की तरह गाड़ी मुड़ जाती है, आप अपने घर पहुंच जाते हैं। आप अपने बच्चे के सिर पर हाथ रख देते हैं कि कहो बेटा, ठीक हो? और आपको बिल्कुल पता नहीं होता कि आप क्या कर रहे हैं। यह आपने कल भी कहा था, परसों भी कहा था। आप ग्रामोफोन रेकार्ड हो गए। पत्नी को देखकर आप मुस्कुराते हैं। वह आप नहीं मुस्कुरा रहे हैं, वह ग्रामोफोन रेकार्ड है। वह मुस्कुराने की आपने आदत बना रखी है। असल में वह डिफेंस मेजर है, वह रक्षा का उपाय है कि पता नहीं, पत्नी अब क्या करेगी, तो आप मुस्कुराते हैं। पत्नी भी जो जवाब दे रही है, वह जवाब जानकर नहीं दे रही है। वह सब बिल्कुल आदत के हिस्से हो गए हैं। इसलिए हम मिलते ही नहीं कभी। क्योंकि सजग लोग ही मिल सकते हैं। सोये हुए लोग सिर्फ मिलते हुए मालूम पड़ते हैं। वे वही बातें कहे चले जाते हैं, कहे चले जाते हैं--रेकार्ड की तरह!
मेरे एक प्रोफेसर थे। मैं जब भी किसी किताब के बाबत पूछता कि आपने वह पढ़ी है? वे कहते, हां पढ़ी है, बहुत अच्छी किताब है। ऐसे उनकी बातचीत से मुझे कभी नहीं लगा था कि उन्होंने बहुत-कुछ पढ़ा है। एक दिन मैंने एक झूठी किताब का नाम उनसे लिया। न तो वैसा कोई लेखक है, न वैसी किताब कभी लिखी गई है। मैंने उनसे पूछा, आपने फलां-फलां लेखक की किताब पढ़ी है? उन्होंने कहा, अरे, बहुत बढ़िया किताब है। बहुत ही अच्छी किताब है। जो वे सदा कहते थे, उन्होंने कहा।
मैं उनकी आंखों की तरफ देखता रहा। मैं थोड़ी देर चुप बैठा रहा। तब उन्होंने कहा, क्या मतलब? वे थोड़े बेचैन हुए। उन्होंने पूछा, चुप क्यों बैठे हो? क्या मैंने गलत कहा? किताब ठीक नहीं है? हो सकता है, अपनी-अपनी पसंद है, आपको पसंद न पड़ी हो। मैं फिर भी चुप रहा और उनकी आंखों की तरफ

देखता रहा, तब उनकी घबराहट और बढ़ गई। और उन्होंने कहा, क्या मतलब है? दो में से एक ही तो बात हो सकती है! आपको पसंद न आयी हो, हो सकता है, लेकिन आप चुप क्यों हैं?
मैंने कहा, मैं इसलिए चुप नहीं हूं, मैं इसलिए चुप हूं कि शायद आपको अभी भी याद आ जाए। उन्होंने कहा, क्या मतलब? मुझे अच्छी तरह याद है। लेकिन अब उन्हें याद आ गया है। उनका पूरा चेहरा बदल गया। मैं फिर भी चुप रहा। उन्होंने कहा, माफ करना, यह मुझे बड़ी गलत आदत पड़ गई है। इसे मैं कह ही देता हूं। मैंने कई दफा तय किया कि यह बात मुझे नहीं कहनी चाहिए। लेकिन पता नहीं, जब तक मुझे पता चलता है तब तक तो बात हो ही चुकी होती है। मैं कह ही चुका होता हूं। न मालूम कैसी कमजोरी है कि मैं यह कभी कह ही नहीं पाता कि यह किताब मैंने नहीं पढ़ी। नहीं, मैंने यह किताब नहीं पढ़ी। लेकिन लाइब्रेरी में देखी जरूर है, उन्होंने कहा। ऐसे ही निकलते वक्त नजर पड़ गई होगी, बाकी मैंने पढ़ी नहीं है। मैंने उनसे कहा, आप वापस लौट रहे हैं, क्योंकि यह किताब है ही नहीं लाइब्रेरी में। देखी भी नहीं जा सकती।
ऐसा आदमी का मन है मूर्च्छित। वह क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, कहां
जा रहा है, कुछ भी पता नहीं है। सजगता का अर्थ है, प्रत्येक कृत्य होशपूर्वक हो कि मैं क्या कर रहा हूं। साक्षी में तीसरे बिंदु को उभारना है। और जो साक्षी बन गया उसके लिए सजगता आसान होगी। क्योंकि साक्षी में, उसे साक्षी होने के लिए तो सजग होना पड़ता है। लेकिन सजगता में प्रत्येक कृत्य को सजग रूप से करना है। ऐसा नहीं देखना है कि कोई और कर रहा है, और मैं अलग हूं। नहीं, अलग कोई भी नहीं है। जो हो रहा है, उस होने के भीतर एक दीया जल रहा है होश का। वह बिना होश के नहीं हो रहा है। पैर भी उठा रहा हूं, तो मैंने होशपूर्वक उठाया है। एक शब्द भी बोला है, तो वह मैं होशपूर्वक बोला हूं। मैंने हां कही है, तो मेरा मतलब हां है। मैंने होशपूर्वक कही है। और मैंने नहीं कही है, तो मेरा मतलब नहीं है। और मैंने होशपूर्वक कही है।
एक-एक कृत्य होश से भर जाये तो जीवन में जो व्यर्थ है, वह तत्काल बंद
हो जाता है, क्योंकि होशपूर्वक कोई भी व्यर्थ कुछ नहीं कर सकता। और जीवन में जो अशुभ है, वह तत्काल क्षीण होने लगता है। क्योंकि होशपूर्वक कोई अशुभ नहीं कर सकता। जीवन में बहुत-सा जाल, व्यर्थ का जाल, जो हम मकड़ी की तरह गूंथते चले जाते हैं और आखिर में खुद ही उसमें फंस जाते हैं, और निकल नहीं पाते हैं, वह एकदम टूट जाता है।
हम सभी गूंथ रहे हैं। एक झूठ आप बोल देते हैं, फिर जिंदगी भर उस झूठ को संभालने के लिए आप दूसरे झूठ बोले चले जाते हैं। फिर आपको पता ही नहीं रहता कि पहला झूठ आप कब बोले थे। वह इतने पीछे दब जाता है कि आपको भी सच मालूम होने लगता है। क्योंकि आप इतनी बार बोल चुके और इतनी बार सुन चुके अपने ही मुंह से कि दूसरे भला भरोसा न करें, लेकिन आप तो भरोसा कर ही लेते हैं। फिर एक जाल फैलता चला जाता है जिसमें हम रोज ऐसे कदम उठाये चले जाते हैं जो हमने कभी उठाने नहीं चाहे थे। ऐसे रास्तों पर चले जाते हैं जिन पर हम जाना न चाहते थे। ऐसे संबंध बना लेते हैं जो हम बनाना न चाहते थे। ऐसे काम कर लेते हैं जिनके लिए हमने कभी कामना न की थी। और तब सारी जिंदगी एक विक्षिप्तता बन जाती है।
सजगता का अर्थ है, जो भी मैं कर रहा हूं, करते समय पूरा होश, पूरी अवेयरनेस है। इसका भी थोड़ा प्रयोग करें तो उससे भीतर अपूर्व शांति उतरनी शुरू हो जाती है।
तीसरी बात--तथाता--और भी कठिन है। सजगता को कोई साधे तो ही तथाता को साध सकता है। तथाता का मतलब है, सचनेस, चीजें ऐसी हैं। तथाता का अर्थ है, परम स्वीकृति। तथाता का अर्थ है, कोई शिकायत नहीं। तथाता का अर्थ है, जो भी है, है; और मैं राजी हूं। साक्षी में हम द्रष्टा हैं, जो हो रहा है। हो सकता है, हम राजी न हों। सजगता में हम जाग गए हैं। जो नहीं होना चाहिए वह धीरे- धीरे गिर जायेगा, जो होना चाहिए वही बचेगा। तथाता में जो भी है, हम उसके लिए राजी हैं। दुख है, मृत्यु है, प्रिय का मिलन है, बिछोह है, जो भी है, उसके लिए हम पूरे के पूरे राजी हैं। हमारे प्राणों के किसी कोने से कोई शिकायत, कोई इनकार, कुछ भी नहीं है।

तथाता परम आस्तिकता है। वह आदमी आस्तिक नहीं है, जो कहता है कि मैं ईश्वर को मानता हूं। वह आदमी आस्तिक नहीं है, जो कहता है कि मैं भरोसा करता हूं, विश्वास करता हूं। आस्तिक वह आदमी है जो शिकायत नहीं करता। जो कहता है, जो भी है, ठीक है। कहीं भी, प्राणों के किसी कोने में मेरा कोई भी विरोध नहीं है। मैं राजी हूं। उसकी श्वास-श्वास राजीपन की श्वास है। वह टोटल एक्सेप्टिबिलिटी उसके हृदय की धड़कन- धड़कन है। जो भी है, यह जगत जैसा भी है... ।
आस्तिक भी ऐसा नहीं मानता था। वोल्तेयर ने कहीं लिखा है कि हे परमात्मा, तुझे तो हम कभी स्वीकार कर भी लें, लेकिन तेरे जगत को स्वीकार नहीं कर पाते। कोई है जो जगत को स्वीकार कर लेता है, लेकिन ईश्वर को स्वीकार नहीं कर पाता है। सुख को तो हम सभी स्वीकार कर लेते हैं, दुख को कौन स्वीकार कर पाता है! और दुख तब तक रहेगा जब तक स्वीकृत न हो जाये। शायद इस जीवन के आध्यात्मिक विकास में दुख का यही मूल्य है। जीवन की इस योजना में दुख की यही सार्थकता है कि जिस दिन दुख भी स्वीकृत होता है, उसी दिन जीवन में परम आनंद की वर्षा हो जाती है। फूल तो कोई भी स्वीकार कर लेता है, सवाल तो कांटों को स्वीकार करने का है। जीवन तो कोई भी स्वीकार कर लेता है, आलिंगन कर लेता है, सवाल तो मृत्यु को आलिंगन करने का है।
तथाता का अर्थ हैः सब, द टोटल, उसमें इंच भर भी हम कुछ निकाल नहीं देना चाहते, सब पूरे की स्वीकृति। ऐसी स्वीकृति पूरी सजगता में ही हो सकती है। ऐसी स्वीकृति साक्षी के बाद ही हो सकती है। ऐसी स्वीकृति जब किसी के प्राणों में बस जाती है तो उसके प्राणों में अनंत आनंद का नृत्य शुरू हो जाता है। उसके जीवन में बांसुरी बजने लगती है उस संगीत की, जो शून्य है। उसके जीवन में वह वीणा बजने लगती है, जिस पर कोई तार नहीं है। उसके जीवन में वह नृत्य आ जाता है, जिसके लिए कोई ताल नहीं है। उसके जीवन में ऐसी सुगंध फूटने लगती है, जिसमें कोई फूल नहीं है पीछे।
लेकिन तथाता बहुत कठिन है। तथाता का भाव ही बहुत कठिन है। उससे बड़ी आर्डुअस उससे ज्यादा कठिन और कोई बात नहीं है। उसका मतलब है, जो भी आ जाये... ।
एक भिक्षु एक वृक्ष के नीचे से गुजर रहा है। एक आदमी उसे लकड़ी मार गया है। घबड़ाहट में लकड़ी मारी तो लकड़ी हाथ से छूट गई और गिर पड़ी। वह भिक्षु लौटा। उसने लकड़ी उठायी। वह आदमी तो घबराहट में भाग ही गया मारकर। पास की दुकान पर जाकर उस भिक्षु ने कहा, यह लकड़ी रख लेना, शायद वह बेचारा वापस लौटकर लकड़ी खोजने आये। उस दुकान के मालिक ने कहा, आप आदमी कैसे हैं! उसने लकड़ी मारी है।
उस भिक्षु ने कहा, एक बार एक वृक्ष के नीचे से मैं गुजरता था, तब वृक्ष
से एक शाखा मेरे ऊपर गिर पड़ी। जब मैंने वृक्ष को स्वीकार कर लिया, तो यह आदमी वृक्ष से तो कम से कम अच्छा ही होगा।
ऐसा समझें कि नदी में आप एक नाव चला रहे हैं। एक खाली नाव दूसरी तरफ से आकर आपकी नाव से टकरा जाये, आप कुछ भी न कहेंगे। कुछ भी न कहेंगे, आप स्वीकार कर लेंगे और आगे बढ़ जाएंगे। लेकिन भूल से अगर उस नाव में एक आदमी बैठा हो, तब कलह हो जाएगी। नाव को माफ कर सके, लेकिन आदमी को माफ न कर सकेंगे। नाव को इसलिए माफ कर सके, कि स्वीकार कर सके, क्योंकि अस्वीकार करने का उपाय नहीं है। आदमी को माफ नहीं कर सके, क्योंकि उसे स्वीकार करना मुश्किल पड़ा।
लेकिन तथाता का अर्थ है कि नाव खाली टकराये, कि नाव में आदमी बैठा हो
तो टकराये, आपके मन में दोनों बातें एक सी हों तो तथाता है। अगर जरा सा भी फर्क पड़ जाये तो तथाता चूक गई। एक आदमी आपके ऊपर फूल फेंक जाये और एक आदमी आपके ऊपर पत्थर डाल जाये, और दोनों बातें एक-सी स्वीकृत हो जायें, भेद ही न हो, तो तथाता है। अगर जरा सा भी भेद हो जाये तो तथाता चूक गई।
तथाता का अर्थ है, इस जगत में जो हो रहा है, उसमें मेरे मन में उससे अन्यथा हो, अदरवाइज हो, ऐसी कोई आकांक्षा नहीं। सागर में लहरें उठ रही हैं। हवाओं में तूफान आ रहे हैं। वृक्षों पर फूल लग रहे हैं। आकाश में तारे चल रहे हैं। कोई आदमी गालियां दे रहा है। कोई आदमी गीत गा रहा है। यह

जो सारा का सारा विराट है, अंतहीन है, यह सारा अंतहीन विराट जैसा है, ऐसा का ऐसा, मैं राजी हूं, तो तथाता है। तथाता साधक की तीसरी बात है।
अप्रमाद की साधना में साक्षी से शुरू करें और तथाता पर पूर्ण करें। शुरू करें तीसरे कोण पर खड़े होने से, फिर जागें, सजग हों, और फिर स्वीकार को उपलब्ध हो जायें। पहले कर्ता से तोड़ें अपने द्रष्टा को। फिर अपने कर्म से जोड़ें अपने ज्ञान को। और फिर समस्त से जोड़ें अपनी स्वीकृति को। इन तीन चरणों में अप्रमाद धीरे-धीरे गहरा होता चला जाता है। और जिस दिन पूर्ण अप्रमाद, पूरा जागा हुआ मन होता है, किन शब्दों में कहा जाये कि उस दिन क्या होता है!
तथाता का एक ख्याल और मुझे आया वह आपसे मैं कहूं। एक झेन फकीर ने एक छोटा-सा गीत लिखा है। उस गीत में लिखा है कि आकाश में हंस उड़ते हैं। उनकी कोई इच्छा नहीं होती कि नीचे की शांत झील में उनका प्रतिबिंब बने। लेकिन प्रतिबिंब बन जाता है। नीचे की नीली झील पर से ऊपर जब हंस उड़कर निकलते हैं, झील की कोई इच्छा नहीं होती कि हंसों का प्रतिबिंब पकड़े, लेकिन प्रतिबिंब पकड़ लिये जाते हैं। फिर हंस उड़ जाते हैं और प्रतिबिंब भी उड़ जाते हैं। न हंसों को पता चलता है कि झील में प्रतिबिंब पकड़े गए थे, न झील को पता चलता है कि हंसों के प्रतिबिंब उसकी छाती में कुछ कुतूहल, कुछ हलचल, कुछ उपद्रव पैदा किये हैं। तथाता का अर्थ है ऐसा व्यक्तित्व। चीजें हो जाती हैं। सब के लिए राजी है। कुछ करना भी नहीं चाहता, कोई शिकायत भी नहीं है।
इसलिए बुद्ध का एक नाम तथागत है। बुद्ध को उस नाम से बहुत प्रेम था। खुद भी वह कहते थे, तो कहते थे कि तथागत एक गांव से गुजरे। तथागत का मतलब है, तथाता को उपलब्ध। तथागत का मतलब है, दस केम, दस गान। जैसे हंस आए झील पर और गए, ऐसा ही जो आया और गया। न कोई चाह थी कि यहां कुछ कर जाये, न कोई चाह थी कि यहां जो हो रहा है, उससे अन्यथा हो जाये। जो हुआ, हुआ। जो नहीं हुआ, नहीं हुआ। कोई हिसाब न रखा, कोई किताब न रखी। कोई आशा न रखी, कोई निराशा न बनायी। कोई सफलता न चाही, किसी असफलता को ग्रहण न किया। कोई जीत न मानी, किसी हार का कारण न बनाया। ऐसा जो आया हंस की तरह, पानी पर बने बिंब, और मिट गए। जापान में तो झेन फकीर कहते हैं कि बुद्ध कभी हुए ही नहीं। मजाक करते हैं गहरी, और सिर्फ गहरे फकीर ही गहरी मजाक कर सकते हैं। जापान का रिंझाई कहा करता था कि बुद्ध कभी हुए नहीं, कहां की कहानियां कहते हो! और रोज बुद्ध की प्रार्थना करता सुबह, मूर्तियों के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता और कहता कि बुद्धं शरणं गच्छामि। उसके शिष्यों ने उसको पकड़ा और कहा कि खूब धोखा दे रहे हैं। हमसे कहते हैं बुद्ध कभी हुए नहीं, और खुद मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि।
तो रिंझाई ने कहा, इसीलिए तो कहता हूं। अगर जरा भी हुए होते तो कभी उनके चरणों में जाने की बात न करता। हुए ही नहीं, थे ही नहीं। पानी पर खिंची लकीर जैसे थे, खिंच भी नहीं पाई और खो गई। कहना चाहिये--पानी पर खिंची लकीर भी जरा ज्यादा बात हो गई, वह हंस वाली बात ठीक है--प्रतिबिंब बना और खो गया। वह कहता कि हुए ही नहीं, इसीलिए तो उनकी मूर्ति बना कर बैठा हूं। इसी आशा में कि किसी दिन मैं भी उस जगह पहुंच जाऊं जहां होना और न होना बराबर हो जाता है। जहां हूं या नहीं, सब बराबर है। जहां जीवन और मृत्यु एक ही अर्थ ले लें। जहां अस्तित्व और अनस्तित्व समान, पर्यायवाची हो जाते हैं। इसीलिए तो कहता हूं, बुद्धं शरणं गच्छामि। इसका मतलब केवल इतना ही है, वह रिंझाई कहने लगा, कि मैं भी तुम्हारे चरणों में आता हूं, जिनके कोई चरण नहीं। मैं भी तुम्हारी शरण में आता हूं, तुम, जो हो ही नहीं। मैं भी तुम्हारे जैसा हो जाना चाहता हूं, तुम, जो कि कभी हुए ही नहीं हो। तुम हो ही नहीं।
एक शून्य व्यक्तित्व है तथाता। भीतर एक जीता-जागता शून्य, वायड एंबाडीड कहना चाहिए। एक शून्य जिसके चारों तरफ हड्डी-मांस-मज्जा है। भीतर सब शून्य है। इस शून्य की तरह जो हो जाता है, चौथी स्थिति में भी पहुंच जाता है। तथाता--वही मैंने जो पहले उत्तर में आपको कहा--कास्मिक अनकांशस से वह जो ब्रह्म अचेतन है, उसमें छलांग है।
साक्षी में हम बाहर के जगत से भीतर आते हैं, व्यक्ति अचेतन में प्रवेश
हो जाता है। सजगता से व्यक्ति अचेतन से पार होता है, समष्टि अचेतन में

प्रवेश हो जाता है। समष्टि अचेतन में तथाता की साधना शुरू करनी पड़ती है तो ब्रह्म अचेतन में प्रवेश हो जाता है। और ब्रह्म अचेतन के बाद तो कोई साधना नहीं बचती। तथाता फिर साधना नहीं होती। तथाता फिर स्वरूप हो जाता है, फिर कुछ साधना नहीं पड़ता। फिर वह इफर्टलेस है, फिर तीर चलाने नहीं पड़ते, चलते हैं; जैसे श्वास लेनी नहीं पड़ती है और ली जाती है। फिर हृदय की धड़कन जैसे चलती है, चलानी नहीं पड़ती; ऐसा ही जीवन का सब चलता है, चलाना नहीं पड़ता। फिर भीतर चलाने वाला खो गया। मैं खो गया। फिर भीतर वह जो व्यक्ति था, वह खो गया है।
तथाता परम उपलब्धि है, वह जीवन की अनंततम गहराई में, एबिस में, अनंत गहराई में उतर जाना है। धर्म द्वार है। योग उस द्वार पर चढ़नेवाली सीढ़ियों की विधि है। तथाता उस मंदिर में विराजमान देवता है।
एक आखिरी सवाल और!

ओशो, आपने कहा है अप्रमाद के प्रसंग में कि प्रमादी आदमी कुछ करता नहीं है, चीजें घटित होती हैं बिना उसकी इच्छा अथवा चुनाव के। तो कृपया बताइए कि सोए हुए कर्ता, और जागे हुए कर्ता में क्या अंतर है? गुरजिएफ कहते हैं कि जागा हुआ आदमी क्रिस्टलाइज्ड हो जाता है, इसका क्या अर्थ है? और क्या जागे हुए आदमी का अहंकार क्रिस्टलाइज होने के बदले विसर्जित नहीं हो जाता है?

सोया हुआ आदमी करता नहीं है, उस पर भी चीजें होती हैं। लेकिन सोया हुआ आदमी समझता है कि मैं कर रहा हूं। सोया हुआ आदमी भी करता नहीं है, समझता है कि करता हूं। जागा हुआ आदमी भी करता नहीं है, लेकिन समझता है कि करता नहीं हूं।
बस इतना ही फर्क पड़ता है। सोया हुआ आदमी सोचता है, मैं करता हूं। करता कुछ भी नहीं है, होता है। जागा हुआ आदमी भी कुछ नहीं करता है, सब होता है, लेकिन जागा हुआ आदमी यह जानता है, सब होता है, मैं करता नहीं हूं। सोए हुए और जागे हुए आदमी के करने में फर्क नहीं है, जानने में फर्क है। उनके कृत्य में फर्क नहीं है, उनके कर्तृत्व के बोध में फर्क है।
बुद्ध भी चलते हैं, अबुद्ध भी चलते हैं। होश से भरा हुआ आदमी भी चलता है, गैर होश से भरा हुआ आदमी भी चलता है। गैर होश से भरा हुआ आदमी चलता है मैं के केंद्र पर--मैं हूं। होश से भरा हुआ चलता है शून्य के केंद्र पर-- मैं नहीं हूं, वह चलने की क्रिया है।
साथ ही आपने पूछा है कि जार्ज गुरजिएफ कहता था कि जागा हुआ आदमी क्रिस्टलाइज्ड हो जाता है। उसके भीतर इंडीविजुएशन, व्यक्ति पैदा हो जाता है। जुंग भी इंडीविजुएशन की यही बात कहता है जो गुरजिएफ कहते हैं, कि जितना आदमी जागता है भीतर, उसका व्यक्ति उतना मजबूत हो जाता है। इससे यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या जागे हुए आदमी का व्यक्ति मजबूत होता है, या समाप्त होता है? अहंकार बनता है या विसर्जित होता है?
भाषा के भेद हैं और कुछ भेद नहीं। गुरजिएफ जिसे क्रिस्टलाइजेशन कहता है, गुरजिएफ जिसे व्यक्ति का पैदा होना कहता है, उसे ही मैं शून्य का पैदा होना कह रहा हूं। असल में शून्य होकर ही व्यक्ति पहली दफा पैदा होता है। क्योंकि शून्य होकर ही पहली दफा विराट जीवन का व्यक्तित्व उसे मिलता है। शून्य होकर ही, मिटकर ही, पहली दफा व्यक्ति व्यक्ति होता है।
लेकिन यह कठिन होगा। यह उन विरोधों में से एक है जो धर्म रोज बोलते हैं और हम समझ नहीं पाते। जैसे कि बूंद सागर में गिर जाती है तो कोई कह सकता है कि बूंद खो गई, अब कहां है? बूंद मिट गई! और कोई यह भी कह सकता है कि बूंद सागर हो गई, अभी तक कहां थी, अब पहली दफा हुई है। अभी तक बूंद ही थी, क्या था, कुछ भी न था, अब सागर हो गई है। ये दोनों बातें कही जा सकती हैं। कोई कह सकता है कि बूंद खो गई, अब नहीं है, शून्य हो गई। कोई कह सकता है कि बूंद सागर हो गई। अब है, पहले क्या थी, न कुछ थी, अब पहली दफा सागर हुई है।
यह निगेटिव और पॉजिटिव के बोलने के फर्क हैं।
गुरजिएफ और जुंग कहते हैं इंडीविजुएशन, क्रिस्टलाइजेशन। व्यक्ति पहली दफा हुआ है। यह उसी अर्थ में कहते हैं वे जैसे बूंद सागर हो गई है।

महावीर भी कहते हैं, आत्मा। वह गुरजिएफ के साथ उनकी भाषा का मेल है। शंकर कहते हैं, ब्रह्म। उनका भी गुरजिएफ की भाषा से मेल है। वे सभी पॉजिटिव टर्म्स का, विधायक शब्दों का उपयोग कर रहे हैं।
सिर्फ एक आदमी हुआ बुद्ध, जिसने निषेधात्मक शब्द का प्रयोग किया। उसने कहा, अनात्मा। आत्मा हुई नहीं, समाप्त हो गई। अब कोई आत्मा वगैरह नहीं है, अब कोई ब्रह्म वगैरह नहीं है, अब तो वही रह गया जिसको कोई भी शब्द कहनेवाला नहीं है। वह यह कह रहे हैं कि बूंद नहीं रह गई, अब छोड़ो बातचीत। वह कहेंगे कि तुम यह भी कहते हो कि बूंद सागर हो गई, तो फिर भी तुम बड़ी बूंद ही बना रहे हो। सागर भी बड़ी बूंद है, उसकी भी सीमा तो होगी ही। कितना ही बड़ा सागर हो, कल्पना करें। कितना ही बड़ा सागर हो, उसकी सीमा तो होगी ही।
तो बुद्ध कहते हैं कि जब भी तुम विधायक शब्द का उपयोग करोगे तब सीमा
बन जाएगी। हालांकि आम आदमी के मन में विधायक शब्द जल्दी पकड़ में आता है। अगर उससे कहा जाये कि तुम मिट जाओ बस, फिर पूछो मत। तो वह कहेगा, किस लिए मिट जायें, बनेंगे क्या? उससे कहो, ईश्वर बन जाओगे, तब बात समझ में आती है। उससे कहो, ब्रह्म बन जाओगे, तब बात समझ में आती है।
इसलिए बुद्ध के पैर इस देश में न जम सके। न जमने का कारण था। विधायक भाषा के हम आदी थे। बुद्ध ने पहली दफा मनुष्य-जाति के इतिहास में निषेधात्मक भाषा का ठीक-ठीक प्रयोग किया। और सच तो यह है कि परम सत्य के संबंध में सिर्फ निगेटिव स्टेटमेंट ही हो सकते हैं, क्योंकि सब विधायक वक्तव्य सीमा बनाएंगे।
इसलिए उपनिषद कहते हैं, नेति-नेति। वह नकारात्मक वक्तव्य है। वह कहते हैं, नाट दिस, नाट दैट; न यह, न वह। अगर तुम कहो कि ब्रह्म ऐसा है तो यह भी नहीं, और तुम कहो कि ब्रह्म वैसा है तो वह भी नहीं। और अगर उपनिषद के ऋषि से पूछो, तुम क्या कहते हो? तो वह कहेगा, नेति-नेति। यह भी नहीं, वह भी नहीं। और आगे मत पूछो, आगे जो बच जाये वही।
बुद्ध भी नकारात्मक भाषा का उपयोग करते हैं। बुद्ध कहते हैं, कुछ भी नहीं, शून्य। इसलिए जो शब्द उन्होंने उपयोग किया है निर्वाण, वह बड़ा अर्थपूर्ण है। निर्वाण कहते हैं दीये के बुझ जाने को। एक दीया है, फूंक मार दी, बुझ गया। अब हम पूछें कि कहां गई ज्योति? कहेंगे, खो गई। बूंद तो सागर हो जाती है, ज्योति क्या हो गई? तो कहेंगे, ज्योति खो गई। या अगर कहना ही हो तो यह कह सकते हैं कि ज्योति अब सब हो गई, सबके साथ एक हो गई, अब कोई सीमा नहीं रही उसकी।
तो बुद्ध, या वे सारे लोग जिन्हें ठीक-ठीक कहना है, नकारात्मक ढंग से कहेंगे। ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं, ऐसा नहीं कि शंकर को पता नहीं। लेकिन लोग आतुर होते हैं कि बूंद अगर खोने को भी राजी होगी तो सागर के लोक में राजी होगी। बूंद अगर खोने को राजी होगी तो तभी राजी होगी जब पता चले कि कोई हर्जा नहीं। बूंद ही खोयेगी न, सागर हो जाएगी। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि अगर सागर होने के मोह में कोई बूंद सागर में गिरेगी तो सागर न हो पाएगी। क्योंकि यह लोभ ही उसे बूंद बनाये रखेगा। यह लोभ ही, यह तृष्णा ही, उसका व्यक्तित्व ही चारों तरफ से बांधे रखेगा।
इसलिए मैंने शून्य शब्द का प्रयोग किया इस अर्थ में कि उस परम की कोई सीमा नहीं है। व्यक्ति बस खो जाता है। गुरजिएफ कहते हैं क्रिस्टलाइजेशन, मैं तो कहूंगा टोटल डीक्रिस्टलाइजेशन। मैं तो कहूंगा पूर्ण विसर्जन, पूर्ण समर्पण, टोटल सरेंडर, कुछ बचता ही नहीं, रेखा भी नहीं बचती। हंस उड़ गए और झील पर अब प्रतिबिंब भी नहीं बनता है। बूंद नहीं खो गई, दीये की ज्योति बुझ गई। और अब अनंत में भी खोजने पर भी कहीं उसका आकार नहीं मिलता है।
फिर भी आपकी पसंद की बात है। अगर मन डरता हो निषेध से तो विधायक शब्दों का प्रयोग करें। हिम्मत जैसे-जैसे बढ़ जाए वैसे-वैसे विधायक शब्द को छोड़ते जायें। और एक दिन तो हिम्मत जुटानी चाहिए नहीं में कूदने की। और जो नहीं में कूदने को राजी है, वही पूर्ण को उपलब्ध होता है। जो शून्य होने को राजी है, वह पूर्ण का अधिकारी हो जाता है।
ये बातें इतने प्रेम और शांति से इन दिनों में सुनीं, अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

[illegible]